लाल पसीना

लाल पसीना

अभिमन्यु अनत

शेर जगतसिंह को
जिनके भीतर इतिहास आज भी जीवित है।

अभिमन्यु अनत

फ्रांस के राजा लुई चौदहवें को जब इतिहास की पुस्तक की जरूरत महसूस होती थी उस समय वह आवाज देता था—
"ले आओ दुनिया के सबसे बड़े झूठ को मेरे सामने !"
'लाल पसीना' उस इतिहास का दावा नहीं करता। यह इसलिए भी इतिहास नहीं क्योंकि शासक, राजनेता, राज्यपाल और इस तरह की अन्य हस्तियां इसमें पात्र नहीं हैं ·····इसके पात्र वे हैं जो इतिहास की चक्की में पिसकर रह जाते हैं; पर उनका पिसा जाना इतिहास रहा है, यह इस उपन्यास का दावा है।

—अभिमन्यु अनत

प्रथम भाग

एक

वह नाव ताम्रपर्णी से निकली थी। दोनों भिक्षु नाविक कलिंग के थे। पाण्ड्य देश में दोनों भिक्षुओं ने बाक़ी भिक्षुओं से अलग अपना निर्णय लिया था। उनसे पहले निकले भिक्षु यवन, काम्बोज, गान्धार-जैसे देशों को पहुँच चुके थे। यह सूचना उन्हें कलिंग ही में मिल गयी थी। अतः उनकी नौका जब नयी भूमि की तलाश में ताम्रपर्णी पहुँची तो उन्होंने देखा कि वहाँ भी पहले ही से भिक्षु पहुँचे हुए थे।

ताम्रपर्णी में उन्होंने चुनी हुई लकड़ियों से अधिक विश्वसनीय नाव बनवायी। नयी भूमि पर प्रथम पहुँचने की चाह लिये दोनों ने वहाँ से नयी यात्रा शुरू की। सुदूर पूर्व के द्वीपों की चर्चाएँ वे सुन चुके थे। उस विस्तृत महासागर के एक द्वीप से दूसरे द्वीप को होते हुए फिर तो वे इतने अधिक आगे निकल आये कि न तो उन्हें स्थान का पता रहा, न दिशा का। सामने सागर विस्तृत होता चला गया था। इधर कई दिनों से वर्षा न होने के कारण और जल-पात्र खाली हो जाने से उनकी अपनी स्थिति तो नाज़ुक थी हो, उनके साथ पीपल का जो अन्तिम पौधा था वह भी मुरझाने लगा था। बीच पानी, पानी का मुहताज !

प्रथम भिक्षु ने दूसरे भिक्षु की ओर देखा। उसके साहस को बढ़ाने के लिए उसने धीरे से कहा, "बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय ! जाओ, बढ़ते जाओ !"

दूसरे ने अपने सूखे होंठों को हिलने दिया। कोई स्वर नहीं फूटा। फिर भी प्रथम भिक्षु ने नेत्र बन्द कर लिये, "बुद्धं शरणं गच्छामि······।"

नाव चलती रही ···

एकाएक—उस दोपहर में शाम का-सा धुँधलका छा गया। दोनों एक-दूसरे को देखते हुए मौन रहे। दूर, काफ़ी दूर, जहाँ एक क्षण पहले सागर और आकाश के रंग आपस में मिले हुए लग रहे थे वहाँ लाली छा गयी थी। देखते-ही-देखते सामने पहाड़-जैसे ऊँचे ज्वारभाटे उठने लगे। हवा में उष्णता आ गयी थी। दूर के प्रलयंकर ज्वारभाटे अपने फेनिल उफान के साथ नाव के पास आते गये। कूपदण्ड डगमगाने लगा, उसके साथ ही नाव भी जोरों से हिलने लगी। दोनों ने पूरी स्फूर्ति के साथ पाल

एक

वह नाव ताम्रपर्णी से निकली थी। दोनों भिक्षु नाविक कलिंग के थे। पाण्ड्य देश में दोनों भिक्षुओं ने बाकी भिक्षुओं से अलग अपना निर्णय लिया था। उनसे पहले निकले भिक्षु यवन, काम्बोज, गान्धार-जैसे देशों को पहुँच चुके थे। यह सूचना उन्हें कलिंग ही में मिल गयी थी। अतः उनकी नौका जब नयी भूमि की तलाश में ताम्रपर्णी पहुँची तो उन्होंने देखा कि वहाँ भी पहले ही से भिक्षु पहुँचे हुए थे।

ताम्रपर्णी में उन्होंने चुनी हुई लकड़ियों से अधिक विश्वसनीय नाव बनवायी। नयी भूमि पर प्रथम पहुँचने की चाह लिये दोनों ने वहाँ से नयी यात्रा शुरू की। सुदूर पूर्व के द्वीपों की चर्चाएँ वे सुन चुके थे। उस विस्तृत महासागर के एक द्वीप से दूसरे द्वीप को होते हुए फिर तो वे इतने अधिक आगे निकल आये कि न तो उन्हें स्थान का पता रहा, न दिशा का। सामने सागर विस्तृत होता चला गया था। इधर कई दिनों से वर्षा न होने के कारण और जल-पात्र खाली हो जाने से उनकी अपनी स्थिति तो नाजुक थी ही, उनके साथ पीपल का जो अन्तिम पौधा था वह भी मुरझाने लगा था। बीच पानी, पानी का मुहताज !

प्रथम भिक्षु ने दूसरे भिक्षु की ओर देखा। उसके साहस को बढ़ाने के लिए उसने धीरे से कहा, "बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय ! जाओ, बढ़ते जाओ !"

दूसरे ने अपने सूखे होंठों को हिलने दिया। कोई स्वर नहीं फूटा। फिर भी प्रथम भिक्षु ने नेत्र बन्द कर लिये, "बुद्धं शरणं गच्छामि·····।"

नाव चलती रही·····

एकाएक—उस दोपहर में शाम का-सा धुँधलका छा गया। दोनों एक-दूसरे को देखते हुए मौन रहे। दूर, काफी दूर, जहाँ एक क्षण पहले सागर और आकाश के रंग आपस में मिले हुए लग रहे थे वहाँ लाली छा गयी थी। देखते-ही-देखते सामने पहाड़-जैसे ऊँचे ज्वारभाटे उठने लगे। हवा में उष्णता आ गयी थी। दूर के प्रलयंकर ज्वारभाटे अपने फेनिल उफान के साथ नाव के पास आते गये। कूपदण्ड डगमगाने लगा, उसके साथ ही नाव भी जोरों से हिलने लगी। दोनों ने पूरी स्फूर्ति के साथ पाल

को नीचे उतारा। नाव डगमगाती ही रही।

सागर का उथल-पुथल बढ़ता गया। उसके गहरे नीलेपन को भेदकर गहराई से दूध की-सी फेनिल लहरें गम्भीर गर्जन के साथ उठती रहीं। उस भयानक नाद से दोनों भिक्षु सहम गये थे।

बवण्डर ! चक्रवात !!

और सागर चिंघाड़ता रहा। दूर की वह लालिमा विस्तार पाती गयी। अपने स्वर को सागर के गम्भीर गर्जन से ऊपर उठाते हुए एक नाविक ने अपने भय को प्रकट किया, "आँधी ?"

दूसरे ने उसी आश्चर्य-भरे स्वर में कहा, "विचित्र !"

यात्रा के दौरान यात्रियों ने कई आँधियाँ देखी थीं। चक्रवात, बवण्डर सभी देखे थे लेकिन इससे भिन्न। अचानक ही एक घटाटोप अँधेरे ने पूरे वातावरण को अपने में लपेट लिया। हाथ को हाथ नहीं सूझ पा रहा था। धड़कनें तेज होकर भी एहसास नहीं की जा रही थीं। नाव के डोलते रहने के कारण दोनों को अपने अस्तित्व का बोध बना रहा। दोनों के हाथ से पतवारें छूट गयी थीं। उस गहन अदृश्य वातावरण में दोनों के हाथ आगे बढ़े। स्पर्श होते ही दोनों हाथ एक-दूसरे के साथ बँध गये। मुखड़ों पर झंझावात के थपेड़ों से दोनों ने एक बार फिर अपने जीवित होने का प्रमाण पाया। कुछ दिखायी पड़ जाना नितान्त असम्भव था।

दोनों एक-दूसरे के हाथों को थामे महासागर की उपद्रवी स्थिति का अनुभव करते रहे। भयानक कालेपन के बीच दोनों जकड़े रहे। भारी कोलाहल होता रहा। छटास का पानी नाव में भरने लगा। नाव के आस-पास का पानी उबलता-सा प्रतीत हो रहा था।

बिजली कौंधी ! उसके साथ ही अँधेरा फट गया। दोनों ने विस्फारित नेत्रों से अपने सामने देखा। ऊँचे ज्वारभाटे एकदम पास आ गये थे। पानी का रंग नीलेपन से हटकर कालेपन को आ गया था। दोनों ने चारों ओर देखा। कोई क्षितिज नहीं था सामने। चारों ओर से उफनती लहरें, विद्रोही ज्वारभाटे……।

धमाके के साथ विस्फोट हुआ। वातावरण रंग बदलता रहा। दूसरा प्रलयंकर विस्फोट हुआ। दोनों नाव के भीतर लुढ़क गये। किसी तरह एक-दूसरे का सहारा लेकर दोनों खड़े हुए…उनके नेत्र खुले-के-खुले रह गये। जीवन का सबसे बड़ा आश्चर्य उनके नेत्रों के सामने व्यतीत हो रहा था। कुछ ही दूरी पर सागर के बीच अंगारे और लपटें उठती दिखायी पड़ीं। गरमी से दोनों के शरीर दग्ध हो चले थे। उनके मुखड़ों पर पानी के छींटे अब भी थे, फिर भी उन्हें पसीने का अनुभव हुआ।

ज्वारभाटे शिथिल होते गये। सागर के रंग बदलते रहे। आँधी, चक्रवात, बवण्डर सभी कुछ थमता जा रहा था। नाव पानी से भर जाने के कारण डूबने लगी थी कि तभी बादल का-सा कोई भारी गर्जन हुआ। बिजलियाँ चमकीं। एक-दो साधारण विस्फोट हुए……ज्वारभाटे अपने-आप में टूट-टूटकर लहरों का रूप लेते गये। तभी

दोनों को लगा कि समुद्र के पानी का तापमान बढ़ता जा रहा था...... लहरें उबलती दीख रही थीं। वातावरण इतना अधिक उष्ण हो चला था कि श्वास लेना कठिन प्रतीत हो रहा था।

अभी वे सोच ही रहे थे कि यह समुद्र के बीच से निकलनेवाला कैसा ज्वालामुखी है कि तभी दूरी पर सागर को फाड़कर पहाड़-सी कोई चीज ऊपर आती दिखायी पड़ी। एक बार फिर चारों ओर से ज्वारभाटे उठते दिखायी पड़े और बीच से उठनेवाला पहाड़ ऊपर को उठता गया। सागर फेनिल ज्वारभाटों के साथ पीछे को हटता गया और पहाड़ फँसते गये ....। भिक्षुओं की नाव के नीचे से भी ज्वारभाटे उठे और नाव को दोनों भिक्षुओं के साथ-साथ ऊपर, बहुत ऊपर उठाकर फिर लपेट में ले लिया। इससे आगे का दृश्य भिक्षुओं ने नहीं देखा। वे अथाह गहराई में विलीन हो गये। द्वीप विस्तृत होता गया जब तक कि बीच के ज्वालामुखी से अंगारे निकलने बन्द न हो गये ....। और इसी तरह महासागर के बीच एक नये द्वीप का जन्म हुआ।

लम्बे समय तक वह धरती बंजर बनी रही। फिर धीरे-धीरे धरती ठण्डी होती गयी। ज्वालामुखी का विषाक्त प्रभाव कम होता गया। वनस्पतियों का उगना आरम्भ हुआ। पक्षी और पशु भी पैदा होते गये।

इतिहास के धूमिल पन्नों से इस द्वीप को पहुँचनेवाला पहला जहाज द्रविड़ नाविकों का था जो सम्भवतः दिशाहीन होकर इधर भटक आया था। उस समय द्वीप निर्जीव था। द्रविड़ नाविकों को जब अन्य जहाजों और लोगों के इधर पहुँचने की सम्भावना नहीं दिखी तो वे वहाँ से चल पड़े।

इसी तरह समय बीतता गया। ईसा के बाद पहली शताब्दी के लगभग भारत की ओर जाते हुए अरबों की नजर इस वीरान द्वीप पर पड़ी। उन्होंने भी सम्भवतः अधिक उम्मीद न करके उसे छोड़ दिया। इसी तरह समय-समय पर जातियाँ आती रहीं, जाती रहीं।

इतिहास के पन्ने कुछ स्पष्ट हुए। हिन्द महासागर से यात्रा करते हुए पुर्तगालियों का आगमन इस द्वीप में हुआ। इसे बसाना जब उन्हें टेढ़ी खीर प्रतीत हुआ तो वे आगे बढ़ गये। उनकी इच्छा भारत जीतने की थी। पुर्तगालियों के बाद और भी लोग आये और गये।

भारत पर अधिकार जमाने के लिए फ्रांस और इंगलैण्ड के बीच संघर्ष था। उसी समय इस द्वीप को भारतविजय की सुविधा के लिए लक्ष्य में रखा गया। इसी द्वीप से होकर फ्रांसीसियों ने मद्रास में अंग्रेजों के खिलाफ़ पहली लड़ाई लड़ी। इन्हीं लोगों के समय में मारिशस में भारतीयों का आगमन शुरू हो गया था। इस द्वीप के महत्व को समझकर अंग्रेजों ने भारतीय सेना के साथ फ्रांसीसियों पर आक्रमण किया और द्वीप उनके अधिकार में आ गया।

यहाँ से मारिशस में भारतीयों के आगमन की महत्त्वपूर्ण कहानी शुरू होती है।

इतिहास के पन्नों पर धूल जमती गयी और कई पृष्ठों को जला भी दिया

को नीचे उतारा। नाव डगमगाती ही रही।

सागर का उथल-पुथल बढ़ता गया। उसके गहरे नीलेपन को भेदकर गहराई से दूध की-सी फेनिल लहरें गम्भीर गर्जन के साथ उठती रहीं। उस भयानक नाद से दोनों भिक्षु सहम गये थे।

बवण्डर ! चक्रवात !!

और सागर चिंघाड़ता रहा। दूर की वह लालिमा विस्तार पाती गयी। अपने स्वर को सागर के गम्भीर गर्जन से ऊपर उठाते हुए एक नाविक ने अपने भय को प्रकट किया, "आंधी ?"

दूसरे ने उसी आश्चर्य-भरे स्वर में कहा, "विचित्र !"

यात्रा के दौरान यात्रियों ने कई आंधियां देखी थीं। चक्रवात, बवण्डर सभी देखे थे लेकिन इससे भिन्न। अचानक ही एक घटाटोप अँधेरे ने पूरे वातावरण को अपने में लपेट लिया। हाथ को हाथ नहीं सूझ पा रहा था। धड़कनें तेज होकर भी एहसास नहीं की जा रही थीं। नाव के डोलते रहने के कारण दोनों को अपने अस्तित्व का बोध बना रहा। दोनों के हाथ से पतवारें छूट गयी थीं। उस गहन अदृश्य वातावरण में दोनों के हाथ आगे बढ़े। स्पर्श होते ही दोनों हाथ एक-दूसरे के साथ बँध गये। मुखड़ों पर झंझावात के थपेड़ों से दोनों ने एक बार फिर अपने जीवित होने का प्रमाण पाया। कुछ दिखायी पड़ जाना नितान्त असम्भव था।

दोनों एक-दूसरे के हाथों को थामे महासागर की उपद्रवी स्थिति का अनुभव करते रहे। भयानक कालेपन के बीच दोनों जकड़े रहे। भारी कोलाहल होता रहा। झटास का पानी नाव में भरने लगा। नाव के आस-पास का पानी उबलता-सा प्रतीत हो रहा था।

बिजली कौंधी ! उसके साथ ही अँधेरा फट गया। दोनों ने विस्फारित नेत्रों से अपने सामने देखा। ऊँचे ज्वारभाटे एकदम पास आ गये थे। पानी का रंग नीलेपन से हटकर कालेपन को आ गया था। दोनों ने चारों ओर देखा। कोई क्षितिज नहीं था सामने। चारों ओर से उफनती लहरें, विद्रोही ज्वारभाटे……।

धमाके के साथ विस्फोट हुआ। वातावरण रंग बदलता रहा। दूसरा प्रलयंकर विस्फोट हुआ। दोनों नाव के भीतर लुढ़क गये। किसी तरह एक-दूसरे का सहारा लेकर दोनों खड़े हुए…उनके नेत्र खुले-के-खुले रह गये। जीवन का सबसे बड़ा आश्चर्य उनके नेत्रों के सामने व्यतीत हो रहा था। कुछ ही दूरी पर सागर के बीच अंगारे और लपटें उठती दिखायी पड़ीं। गरमी से दोनों के शरीर दग्ध हो चले थे। उनके मुखड़ों पर पानी के छींटे अब भी थे, फिर भी उन्हें पसीने का अनुभव हुआ।

ज्वारभाटे शिथिल होते गये। सागर के रंग बदलते रहे। आंधी, चक्रवात, बवण्डर सभी कुछ थमता जा रहा था। नाव पानी से भर जाने के कारण डूबने लगी थी कि तभी बादल का-सा कोई भारी गर्जन हुआ। बिजलियां चमकीं। एक-दो साधारण विस्फोट हुए……ज्वारभाटे अपने-आप में टूट-टूटकर लहरों का रूप लेते गये। तभी

दोनों को लगा कि समुद्र के पानी का तापमान बढ़ता जा रहा था ·····लहरें उबलती दीख रही थीं। वातावरण इतना अधिक उष्ण हो चला था कि श्वास लेना कठिन प्रतीत हो रहा था।

अभी वे सोच ही रहे थे कि यह समुद्र के बीच से निकलनेवाला कैसा ज्वाला-मुखी है कि तभी दूरी पर सागर को फाड़कर पहाड़-सी कोई चीज ऊपर आती दिखायी पड़ी। एक बार फिर चारों ओर से ज्वारभाटे उठते दिखायी पड़े और बीच से उठने-वाला पहाड़ ऊपर को उठता गया। सागर फेनिल ज्वारभाटों के साथ पीछे को हटता गया और पहाड़ फैलते गये···। भिक्षुओं की नाव के नीचे से भी ज्वारभाटे उठे और नाव को दोनों भिक्षुओं के साथ-साथ ऊपर, बहुत ऊपर उठाकर फिर लपेट में ले लिया। इसमे आगे का दृश्य भिक्षुओं ने नही देखा। वे अथाह गहराई मे विलीन हो गये। द्वीप विस्तृत होता गया जब तक कि बीच के ज्वालामुखी मे अंगारे निकलने बन्द न हो गये·····। और इसी तरह महासागर के बीच एक नये द्वीप का जन्म हुआ।

लम्बे समय तक वह धरती बंजर बनी रही। फिर धीरे-धीरे धरती ठण्डी होती गयी। ज्वालामुखी का विषाक्त प्रभाव कम होता गया। वनस्पतियों का उगना आरम्भ हुआ। पक्षी और पशु भी पैदा होते गये।

इतिहास के धूमिल पन्नो से इस द्वीप को पहुँचनेवाला पहला जहाज द्रविड़ नाविकों का था जो सम्भवतः दिशाहीन होकर इधर भटक आया था। उस समय द्वीप निर्जीव था। द्रविड़ नाविकों को जब अन्य जहाजों और लोगों के इधर पहुँचने की सम्भावना नहीं दिखी तो वे वहाँ से चल पड़े।

इसी तरह समय बीतता गया। ईसा के बाद पहली शताब्दी के लगभग भारत की ओर जाते हुए अरबों की नजर इस वीरान द्वीप पर पड़ी। उन्होंने भी सम्भवतः अधिक उम्मीद न करके उसे छोड़ दिया। इसी तरह समय-समय पर जातियाँ आती रहीं, जाती रहीं।

इतिहास के पन्ने कुछ स्पष्ट हुए। हिन्द महासागर से यात्रा करते हुए पुर्तगालियों का आगमन इस द्वीप में हुआ। इसे बसाना जब उन्हें टेढ़ी खीर प्रतीत हुआ तो वे आगे बढ़ गये। उनकी इच्छा भारत जीतने की थी। पुर्तगालियों के बाद और भी लोग आये और गये।

भारत पर अधिकार जमाने के लिए फ्रांस और इगलैण्ड के बीच संघर्ष था। उसी समय इस द्वीप को भारतविजय की सुविधा के लिए लक्ष्य मे रखा गया। इसी द्वीप से होकर फ्रांसीसियों ने मद्रास मे अंग्रेजों के खिलाफ़ पहली लड़ाई लड़ी। इन्ही लोगों के समय मे मारिशस में भारतीयों का आगमन शुरू हो गया था। इस द्वीप के महत्त्व को समझकर अंग्रेजो ने भारतीय सेना के साथ फ्रांसीसियों पर आक्रमण किया और द्वीप उनके अधिकार मे आ गया।

यहाँ से मारिशस मे भारतीयों के आगमन की महत्त्वपूर्ण कहानी शुरू होती है। इतिहास के पन्नों पर धूल जमती गयी और कई पृष्ठों को जला भी दिया

गया। फिर भी कुछ पन्नों को एक ऐसी स्याही से लिखा गया था जिस पर धूल टिक नहीं पायी। चन्द ऐसे भी पन्ने थे जो भारतीय मजदूरों के खून-पसीने से कुछ इस तरह भीगे हुए थे कि उन्हें आग जला न सकी और जो पन्ने जले भी उनकी राख को खाद समझ नियति ने खेतों में बिखेर दिया। इतिहास की बलि का वह सारा रक्त बहकर खेतों के रक्त से जा मिला और······

और दबोचा हुआ वह इतिहास परतों के नीचे कैसे सांसों के लिए संघर्ष करता रहा, उसकी गवाही आज भी धरती की सोंधी गन्ध देती रहती है। लेकिन उस इतिहास को कैसे जिया गया था ?

आगे उसी जीवन की कहानी है।

दो

अपनी सांसों को महसूसते हुए वह घास पर पड़ा रहा। उन सांसों के साथ-साथ वह खामोशी की गहराई को भी भांप रहा था। आकाश के झिलमिलाते तारों को वह अपने मस्तिष्क के भीतर टिमटिमाता अनुभव करता रहा। सामने के अँधेरे को अपनी सांसों से चीरने के प्रयास में असफल वह अपने-आप उसके मिटने की आस में बैठा रहा। अँधेरे में एक हाथ से दूसरे हाथ को टटोलकर उसने घासों को हटाया। भूमि की हल्की गरमी को अनुभव किया। फिर अपने दाहिने हाथ को अपने शरीर पर दौड़ाते हुए उसे नाक तक पहुँचाया। वहाँ भी सांसों के साथ उसी तरह की गरमी थी। उसे अपने सही-सलामत होने का पूरा यकीन हो गया था।

उसने पैरों को हिलाकर देखा। अभी ताकत बाकी थी। दोनों हाथों को धरती पर टिकाकर वह धीरे से खड़ा हुआ। सीधा खड़ा हो जाने के बाद उसे लगा कि जाँघों में बहुत कम ताकत बाकी थी। दाहिनी जांघ पर हाथ फेरकर उसने मुंडेर पर से गिरने के बाद के घाव को महसूसा। उसकी अंगुलियाँ तरल हो गयी थीं। उस कालेपन में लाल रंग को बस महसूसा ही जा सकता था। वह रंग गहरा था। अधिक गहरा था। चोट गहरी थी। हाथ से छू जाने के बाद उसे दर्द का अनुभव हुआ।

आँखें ऊपर करके तारों को देखा। फिर ख्याल आया, धुंधलके में रास्ता टटोलकर उसे बढ़ना था। अभी वह बहुत दूर नहीं निकल पाया था। अँधेरे का लाभ उठाकर उसे दूर निकल जाना था। दूर, जहाँ उसके भीतर का डर मिट जाये। जहाँ से क्षितिज उसे विस्तृत लगे। सांसों की अकुलाहट कम हो जाये। पर वह स्थान अभी दूर था। अभी उसे बहुत अधिक चलना था। उसने कदम उठाया। एक के बाद दूसरा। बड़ी कठिनाई से तीसरा उठा, फिर चौथा भी। थकान अभी बनी हुई थी। पूरी कठोरता के साथ जांघ की पीड़ा को नकारकर वह बढ़ने लगा। घाव रिसता जा रहा था। वह उसे चलने से रोक रहा था। लेकिन उसे रोक पाना आसान नहीं था।

उसका दाहिना पाँव जमीन पर अच्छी तरह पड़ नहीं पा रहा था, फिर भी वह चलता रहा।

उसका अपना शरीर अधिक बोझिल प्रतीत होने लगा था। लग रहा था, वह इतिहास के सभी बोझ को अपने ऊपर लिये चल रहा है। इतिहास तो कुछ लोगों को कुछ भी नहीं देता। बोझ ही सही, उसे कुछ तो मिला था। लेकिन यह गठरी इतनी भारी कभी नहीं थी। थकान और चोट का ख्याल करके उसके होंठों के बीच जो फीकी मुस्कान आयी वह क्षणिक रही। उस अँधेरे में उसका ओझल हो जाना बड़ा सहज और तेज रहा। एक क्षण उसे ऐसा ख्याल भी आया कि जाँघ के घाव के कारण पाँव बेकार हैं। हाथों और घुटनों के बल चलने की इच्छा हुई। वह फीकी हँसी एक बार फिर आयी और उसी तेजी के साथ फिर गायब हो गयी। सामने के अँधेरे को टटोलते हुए उसके हाथ झाड़ियों से छू गये। उन्हें हटाता हुआ वह बढ़ता गया।

दर्द के अधिक बढ़ जाने पर वह झींगुरों और जंगली कीड़ों की आवाजों की झनझनाहट को अपने ही भीतर पाने लगता। रात के घटाटोप अँधेरे को टटोलता-पकड़ता वह बढ़ता गया। उसकी वह पकड़ कहीं मुलायम थी, कहीं एकदम कठोर और कहीं तो वह स्पर्श से बाहर थी। तब उसके कदम अनुमान से उठते और अचानक किसी खरगोश या चिड़िया द्वारा पैदा की गयी खरखराहट से वह सिहर जाता। उसकी जोरों से आती-जाती साँसें और काँपते कदम वर्षों पहले के फौजी जीवन की याद दिला जाते। उस समय वह कभी नहीं हाँफता था। उसे पसीना बहुत आता था, पर पसीना आने का मतलब थकान नहीं होता था।

पैर जब जवाब-से देने लगे तो वह क्षण-भर को ठिठका, फिर रात के उस भारी सन्नाटे में उसने धीरे-से कहा, "नहीं ! लोग मुझे यहाँ पड़े हुए नहीं पा सकते, मुझे बेबस पाकर यहाँ से बाँध नहीं ले जा सकते। नहीं नहीं !" वह फिर से चलने लगा। वह अभी उतनी दूर नहीं आ सका था जहाँ से चारदीवारी की अकुलाहट पीछे छूट चुकी हो। वह नर्क अब भी उसके मस्तिष्क के अंश-अंश में था। वह लम्बा अतीत अब पास ही था। उसे मरना भी था तो उससे दूर जाकर, उससे कटकर। जीवन के एक-दो क्षण ही सही, वह अलग से उन वेदनाओं को नकारकर ही जीना चाहता था। वह ठौर दूर था, फिर भी उसके संकल्प में वह उतना अधिक दूर नहीं था जहाँ पहुँचा न जा सके। वह हाथों के बल रेंगकर भी वहाँ पहुँचना चाहता था। उसके अपने भीतर की सीली आवाज भीतर-ही-भीतर अकुलाती रही । आगे का यह दूर तक तना हुआ एकान्त और पीछे की वह सीमित चारदीवारी । बीच में वह

उसके कदम बोझिल थे। सभी कुछ युग-सा लम्बा लग रहा था। उसकी अपनी साँसें भी। एक टिमटिमाता चिराग भी दीख जाता तो उसका हौसला इस तरह पिघलकर बह न जाता। अपने बहते हौसले को वह अँजुली में थामे एक कदम को ऊपर उठाकर आगे बढ़ाता और दूसरे को घसीट लाता। वह अपनी हड्डियों को ढीली-सी होते हुए महसूसने लगा था। उसके भीतर एक भय, जो पहले कभी नहीं

था, घर करता जा रहा था। चारदीवारी के भीतर वर्षों तक रहकर वहाँ की उस यन्त्रणा से वह जितना डरा था, उससे अधिक वह वहाँ फिर से लौटने के ख्याल से काँप रहा था। इसी तरह की स्थिति उसकी भारत छोड़ते वक्त भी हुई थी। भावना में अन्तर था, पर स्थिति वही थी। अपने गाँव और देश से दूर होकर ही वह वहाँ के अपनापन को पहचान सका था। जहाज में पहली बार उसे ज्ञात हुआ था कि सभी अभावों के बावजूद वह स्थान उसका एकमात्र स्थान था। इस बार वही स्थिति, एकदम विपरीत ढंग से। कैद से बाहर उसकी वीभत्सता सामने आयी थी। अब तो मरकर भी वहाँ नहीं लौटना चाहेगा।

एक बड़े-से पत्थर से टकराकर वह उसी पर बैठ गया। पहली बार उसे यह ख्याल आया कि जंगलों में जीया जा सकता है। कम-से-कम मारीच की एक चीज तो सराहनीय रही। भयानक जंगली जानवरों से रहित इस देश का जंगल ही वह स्थान था जहाँ स्वच्छन्द घूमा जा सकता था। पहाड़ों, नालों और नदियों के बीच का स्वतन्त्रतामय जीवन! सामने के गहरे अँधेरे में उसे जेल के सिपाहियों के चेहरे झिलमिलाते-से नजर आये। उस अँधेरे में मालगासी काले चेहरे और भी भयानक प्रतीत हुए। उसके ख्याल को पीछे की ओर उछलते देर नहीं लगी। बहुत पीछे·····बिहार की एक डरावनी रात। अहीरों के मुहल्ले से वह बिरहा सुनकर लौट रहा था। बहुत पुरानी याद समय की झिलमिल परतों से एकदम धूमिल थी। न जाने मस्तिष्क के किस भाग में मुद्दतों तक छिपे रहने के बाद आज सम्पूर्ण अस्पष्टता के साथ वह दृश्य सामने कौंध गया। वह रात एकदम ऐसी ही थी। ऐसी ही बोझिल, इसी तरह की गन्ध लिये। दो रात पहले चन्दर महतों के खेत से उसने अधकच्ची मकई चुरायी होगी और हाथ में लट्ठ लिये चन्दर महतों का काला शरीर लाल और·····और·····। बाकी यादें स्पष्ट नहीं हो सकीं और उसने भी नहीं चाहा कि उसके जीवन का वह प्रथम भय, प्रथम आन्तरिक पीड़ा उसके भीतर फिर से जीवन्त हो·····उसने मस्तिष्क पर जोर नहीं दिया।

सामने का अँधेरा कैद की दीवार की तरह उसे अपने सामने की चीजों को देखने से रोक रहा था। उस घटाटोप अँधेरे में उसके लिए एक ही उपाय था। उसने वैसा ही किया। आँखें मूँद लीं उसने। नये आनेवालों से चारदीवारी के भीतर कई नयी बातें वह सुनता आ रहा था। उसने उन सारी बातों को एक-एक करके याद किया। उसीके देश के, उसीके प्रान्त के लोग·····झोंपड़ियाँ एकदम वहीं-जैसी·····वहीं की बोली·····वहीं के रीति-रिवाज। किसी पिछले कैदी ने तो हनुमानजी के चौथरे तक की चर्चा की थी·····। उसे बिहार के गाँव याद आये। अपने गाँव की कालीमाई याद आयी। इसके साथ ही नये कैदी का फुसफुसाना उसे सुनायी पड़ा·····।

"हम सबन मिलके गाँव में कालीमाई की स्थापना करना चाहत रहीं पर कोठी वाले गोरवा ने आज्ञा ही ना दी·····साले मौगों को मालूम नाहीं कि राज करते राजा जइहें, रूप करते रानी, वेद पढ़ते पण्डित जइहें, रह जयहीं नेक निशानी।"

उसने मन-ही-मन पूछा : आखिर धरम-करम के मामले में दखल देनेवाले ये कौन होते हैं ? इन हरामजादों ने अभी देवीमैया का कोप नहीं देखा। सारी शेखी निकल जायेगी। इधर नये कैदियों से उसने जो कुछ सुन रखा था, उसे देखने की इच्छा उसके भीतर तीव्र हो चली थी। वह रेंगकर भी एक ऐसे गाँव में पहुँचना चाहता था जहाँ बिहार का भी कोई टुकड़ा आनेवाले कुलियों के साथ आ गया था।

उसके कानों में मुर्गे की बाँग आयी। एकदम वैसी ही जो वह मुद्दतों पहले अपने गाँव में सुनता था। उसके कदमों ने उत्साह पा लिया था। वह आगे बढ़ा। सामने के अँधियारे की आड़ से दूर कोई चिराग झिलमिलाता नजर आया। शायद वे पेड़ के पत्ते रहे होंगे जिनसे आँखमिचौनी खेलती हुई वह धूमिल रोशनी ओझल हो गयी। दूसरे ही क्षण एक दूसरा चिराग दिखायी पड़ा, उसी तरह दूरी की टिमटिमाहट लिये। फिर तो दो-तीन दीखने लगे। अपने घायल पाँव को खींचता हुआ वह उस अनजान डगर के लिए इस तरह बेताब हो गया जैसे कि वह उसका अपना ही गाँव हो और वहाँ उसके अपने ही लोग उसकी प्रतीक्षा कर रहे हों। उसने दो बहुत ही उतावले कदम उठाये, फिर एकाएक सहमकर स्थिर हो गया। कुछ ही समय में पौ फटनेवाला था। जिस गहरे अँधेरे को कुछ ही देर पहले वह कोस रहा था, उसके बहुत जल्द मिट जाने के ख्याल से वह काँप उठा। यह अँधेरा उसका रक्षक था। उसके बिना सामने के नये गाँव में पहुँचने की उसकी हिम्मत नहीं हो रही थी।

बड़ी कठिनाई से उसने समय का अनुमान किया। सुबह करीब होने पर भी तीन-चार घण्टों के फासले पर थी। बगल से जो कल-कल ध्वनि आ रही थी उससे यह समझते उसे देर नहीं लगी थी कि चन्द ही कदमों पर कोई नदी थी। वह गाँव की ओर न बढ़कर नदी की ओर बढ़ गया। नदीकिनारे पेड़ों के झुरमुट के कारण अँधेरा और भी गहन था। चट्टान पर बैठकर उसने सामने के अँधेरे में छिपे गाँव के बारे में सोचा···वहाँ के लोगों के बारे में। गाँव के किसी व्यक्ति की नजर उस पर पड़ जाये, इससे पहले वह खुद गाँव के किसी आदमी को देखकर उस गाँव के बारे में अपने विचार निर्धारित कर लेना चाहता था; क्योंकि इतनी दूर आकर भी वह चारदीवारी को नहीं भूल सका था।

गाँव के किसी व्यक्ति का इधर आना हो सके, इसमें अभी तीन-चार घण्टे बाकी थे। समय पहले ही से उसके लिए युग-सा लम्बा था। उसे काटने के लिए उसने एक बार पीछे छोड़ आये लोगों के बारे में सोचना चाहा—चाहे वह याद दर्दनाक ही क्यों न ठहरे। पीछे वह जो छोड़ आया था वहाँ भी अनिश्चितता थी और···एकाएक नदी की ठण्डक को अपने भीतर तक महसूस करके उसे अपनी मुक्ति पर आश्चर्य हुआ। क्या यह सम्भव था ? कुछ भी हो वह सपना नहीं देख रहा था, इसका उसे पूरा यकीन था···तो फिर ? खैर कुछ भी हो, वह चारदीवारी से बाहर आ गया था।

वह सुबह की प्रतीक्षा में बैठा रहा।

वह सुबह अभी तीन-चार घण्टे की दूरी पर थी। इस लम्बे समय को काटने

के लिए उसने चारदीवारी की उस घनिष्ठता को याद किया जिससे घुलमिलकर एक अलग संसार बना था। एक सीमित इच्छा का संसार। लम्बी सांसों का संकुचित जीवन ···· यादें घिस गयी थीं।

अधिक आगे की यादें कोड़ों और जूतों के प्रहार से छिन्न-भिन्न थीं। इसलिए उसने अधिक आगे की स्मृति का सहारा न लेकर उसी क्षण तक अपनी याद को पीछे जाने दिया जब वह जेल के अस्पताल में था—जहाँ से बाहर के ईख के खेत ठीक सामने थे······।

तीन

ईख के खेत ठीक सामने थे। वहाँ की हरियाली स्वतन्त्र थी। कुन्दन की चारपाई खिड़की के पास होने के कारण उसकी आँखें उस दुर्लभ स्वतन्त्रता को घूरा करतीं। कुछ वर्ष पहले यह हरियाली वहाँ नहीं थी। सभी कुछ देखते-ही-देखते हो गया था। उस हरियाली को हाथों से स्पर्श करने को वह लालायित-सा था। वहाँ की स्वतन्त्रता को महसूसते हुए उसके अपने भीतर की चाह सामने के कँटीले तारों की ऊँची दीवार से टकराकर रह जाती। उस हरे-भरे खेतों से भी पास थी वह काले पत्थरों की चारदीवारी, जहाँ वह इतने लम्बे समय से था कि वह युग-सा प्रतीत होने लगा था। इस स्थान को कैदी दो नामों से पुकारते थे। कभी वे खुश होते तो उसे ननिहाल कह लेते थे अन्यथा वह चारदीवारी से ही जाना जाता था। साँसें जितनी वहाँ घुटती थीं, यहाँ भी घुटती हैं। अन्तर केवल इतना होता कि यहाँ कुन्दन अपने को जंजीर में नहीं पाता। उसे पड़े रहने के लिए यहाँ लकड़ी की चारपाई पर वाक्वा की चटाई होती। नंगी लकड़ी और उस पर पतली चटाई कुन्दन के लिए कोई विशेष अन्तर नहीं पैदा करती। दोनों स्थानों की व्यवस्था दो बूंद पानी की तरह एक-दूसरे से मिलती थी।

कैदखाने का यह बारह चारपाइयों का छोटा-सा अस्पताल कैदखाने के पिछवाड़े में पड़ता था। उस दिन कैदखाने के भीतर एक और दीवार खड़ी करते समय कुन्दन के पाँव पर पत्थर लुढ़क आया था। चोट गहरी थी। यहाँ अस्पताल में आने पर भी कैद का एहसास क्षण-भर के लिए भी नहीं मिटता। यहाँ भी एक सिपाही भीतर बैठा होता और दूसरा दरवाजे पर तैनात रहता। दरवाजा एक ही था। टट्टी के लिए जाते वक्त भी एक सिपाही साथ हो जाता था। कुन्दन का आज यहाँ दसवाँ दिन था। यह तो वह अंगुलियों पर गिनकर याद किये हुए था, लेकिन उसकी गिरफ्तारी के बाद आज तक कितने दिन हुए थे उन्हें दीवार की लकीरें भी बताने में असफल थीं। पहले तीन वर्षों के बाद दूसरी लकीरों के लिए दीवार पर जगह ही नहीं रह गयी थी। कुन्दन को इतना अनुमान अवश्य था कि इस तरह की कोई और दस दीवारें अब तक भर गयी होतीं।

उसके पैर का घाव अब भी दूसरे दिन जैसा था। दर्द भी लगभग वैसा ही था। यहाँ प्रवेश पाने पर तीन दिन तो उसे एक दूसरे रोगी के साथ उसी की चारपाई पर टिकना पड़ा था। आज भी कई चारपाइयों पर दो-दो बीमार पड़े हुए थे। अस्पताल में दाखिल होने पर दो दिन तक मुँह में पहुँचाने के लिए कुन्दन को एक दाना तक नहीं मिला था। दवाई के नाम पर इधर दो दिन से काले रंग की कोई चीज उसके घाव में लगायी जा रही थी जिसका कोई खास असर भी नहीं था।

रावेनाल की दीवार के बीच कटी हुई छोटी-सी खिड़की से वह दूर के नये उपजे खेतों को देखा करता। वहाँ की हरियाली के उस पार की कुछ यादें उसके भीतर कभी विद्रोह कर जातीं। ठीक सामने के मुड़िया पर्वत के पार्श्व में थी वह छोटी-सी वस्ती, जहाँ लड़ाई की जीत के तीसरे ही दिन बाद उसे अपने लोग मिल गये थे......अपने देश से आये लोग। उनमें उसका कोई नहीं था, पर सभी अपने हो गये थे। टुकड़ी के सबसे जवान सिपाही के नाते उस समय उसकी उम्र उन्नीस की रही होगी। अपने गठीले शरीर के कारण फौज में दाखिल होने में उसे तनिक भी कठिनाई नहीं हुई थी। आरा की छोटी-सी अस्थायी छावनी में उसने प्रशिक्षण पाया था। और बहुत कम समय में बहादुरी की कई दाद पा चुका था।

.....और एक दिन सिपाही-जीवन के दस साल बाद मारिशस को जीतने की चाह लिये वह भी सैकड़ों भारतीय सिपाहियों के साथ जहाज पर सवार हो गया। सभी सिपाहियों की तरह उसे भी यही बताया गया था कि अंग्रेज मारिशस को फ्रांसीसियों से जीतकर भारतीयों के हवाले कर देंगे। अंग्रेजों के चन्द ठेकेदारों ने सभी सिपाहियों को यही सुनाया था कि उनकी वफादारी और वीरता के लिए मारिशस उन्हें भेंट कर दिया जायेगा। कुन्दन ने कई सिपाहियों से भी यही सुना था कि वह टापू उन लोगों का अपना हो जायेगा। कुन्दन मन-ही-मन खुश था—'रोवे के जी करले रहल अँखवे खोदना गईल।' धारम मामा का स्वर रहा होगा वह।

उस समय कुन्दन के भीतर यही एक बहुत बड़ी खुशी थी। भारत में तो वे गुलाम थे, मारिशस में कम-से-कम इस लाघव भावना से बच जाने की आशा उसके भीतर की सबसे बड़ी प्रसन्नता थी। जहाज के सभी लोगों की आँखों में आँसू थे। अपने जनों से बिछुड़ने का दुःख था। कुन्दन की अपनी आँखों में आँसू नहीं थे। जिन लोगों से बिछुड़ना था वे सभी तो बहुत पहले ही उससे बिछुड़ चुके थे। कुन्दन एक नये द्वीप को जा रहा था। एक नये संसार को। उसके अपने भीतर एक टीस-सी अवश्य पैदा हुई थी। काश ! उसके वे अपने लोग अकाल के शिकार न होकर उस बेहतर संसार के लिए जहाज में साथ होते। इस ख्याल मात्र से उस समय कुन्दन की वह खुशी सीमित और क्षणिक रह गयी थी।

मालगासी था वह काला परिचारक, जिसने उसके पास पहुँचकर उसके ख्यालों को झकझोर दिया। न चाहते हुए भी कुन्दन को उसके हाथ से बूँदों की कटोरी लेनी पड़ी। टीन की वह पतली अधमैली कटोरी भीतर के गरम बूँदों के कारण बाहर से

भी गरम हो गयी थी। उसे एक हाथ से दूसरे हाथ में पहुँचाते हुए कुन्दन ने काले परिचारक को गौर से देखा। वह डीलडौलवाला था। कुन्दन उसके उस साहस को भीतर-ही-भीतर आजमाता रहा जिससे उस मालगासी और उसके साथियों ने दासता को नकारा था। आज उन सभी क्रिओलों को हलके-फुलके कामों में लगे देख कुन्दन कभी उनके साहस को सराह उठता, कभी उन्हें आलसी मान उन्हें कोस जाता। एकाध बार उसके मन में यह विचार भी आया था कि इन्हीं मालगासी गुलामों की तरह अगर भारतीय मजदूर भी खेतों में काम करने से हट जायें तो मालिकों की दशा दयनीय हो सकती थी। पर ऐसा होने से रहा। वह बिहारियों को बहुत अच्छी तरह से जानता था।

आखिर वह भी तो उन्हीं में से एक ठहरा! परिश्रम से कभी न थकनेवाली जाति खेतों से भागे तो क्यों? लेकिन हाल के कैदियों के मुँह से जिस अत्याचार की कहानी वह सुनता आ रहा था, उसके खिलाफ़ तो वे खड़े हो सकते थे! यहाँ भी कुन्दन को उन लोगों की सहनशीलता याद आ जाती, सन्तोष याद आ जाता। उसे इन दोनों शब्दों से चिढ़ थी। कभी वह बिहारी मजदूरों के भूमि-प्रेम को अन्धविश्वास मान लेता, कभी उस आस्था को इस देश का भविष्य मानकर गम्भीर हो उठता।

उसकी अपनी चारपाई के ठीक सामने मंगरू की चारपाई थी। इस अस्पताल में मंगरू ही एक व्यक्ति था जिससे उसकी घनिष्ठता कैदखाने से शुरू हुई थी। मंगरू से जेलर के पानी का बरतन नीचे गिरकर फूट गया था जिसके बदले में भीमकाय जेलर ने पूरी ताकत के साथ अपनी लात उस पर दे मारी थी। आसपास के सभी कैदियों के देखते-ही-देखते मंगरू उछलकर सामने की दीवार से जा टकराया था। उसके सिर से खून बहते देखकर भी किसी कैदी की हिम्मत नहीं हुई थी कि बढ़कर उसे उठाये। हण्टरों की परवाह किये बिना कुन्दन ने उस वक्त उसके सिर को अपनी गोद में लिया था, जब उसने उसे बेहोश पाया था। फिर तो दो और कैदियों की हिम्मत आगे बढ़ने की हो सकी थी, पर किसी से कुछ नहीं हो सका था क्योंकि दो सिपाही क्रिओली में गालियाँ देते हुए सामने आ गये थे।

कुन्दन का खून कई अवसरों पर खौला था। सिपाहियों के कन्धे से बन्दूक छीन लेने के लिए कई बार उसकी अँगुलियाँ हिल-डुलकर रह गयी थीं। उसके दाँत कई बार कड़कड़ा उठे थे। हर बार उसके भीतर का सिपाही-आवेश मोम की तरह भीतर-ही-भीतर जमकर रह गया था। बेबस बने मालगासी सिपाहियों के कन्धों की बेढंगी लटकी बन्दूकों को देखकर उसे अपने बेहतर सिपाही होने का मन-ही-मन गर्व होता। कभी अवसर आ जाये तो वह प्रमाणित कर दे। पर अवसर आये तब तो! उसे अपनी नादानी पर हँसी आ जाती। इस कैद में उसके दिमागी तर्क तक संकुचित हो गये थे। यहाँ उमर ढली जा रही थी, फिर भी उसका बच्चों की तरह सोच लेना बन्द नहीं होता।

कई अन्य अवसरों की तरह उस दिन भी बड़े संयम के साथ उसे अपने को सँभालना ही पड़ा था। वह पीछे हट गया था। फौजी जीवन में हमेशा आगे बढ़ना

सोचकर भी वह अपनी उसी सोच का उपयोग नहीं कर पाता। जब से उसके फौजी कपड़े उस पर से उतरे थे, वह लगातार पीछे ही हटता जा रहा था। उसकी हर छोटी गुस्ताखी के लिए उसके सिर पर भारी बोझ रखकर उसे पीछे को झपटाया जाता। कई बार गिरने पर सिर का भारी पत्थर उसके ऊपर आने से बचा था। उसे पीछे हटना गवारा नहीं था, पर क्या करता! पीछे हट चुकने के बाद ही उसे अपने फौजी प्रशिक्षण के चन्द उसूल याद आते। आरा जिले की छावनी में कर्नल भगूसिंह कई बार उससे कह चुका था कि क्षत्रिय जितनी बार पीछे को हटता है, उतनी बार उसकी मृत्यु होती रहती है। इस याद के साथ कर्नल की बड़ी-बड़ी मूंछोंवाला गोरा चेहरा उसकी आँखों के सामने झिलमिलाने लगता और कुन्दन का अपना गोरा चेहरा लाल हो जाता।

आज का जूयों भी पतले मांड के ऊपर सजोहन के चार-पाँच पत्तों के सिवाय कुछ भी नहीं था। नमक ज्यादा पड़ गया था, यह भी हो सकता है कि जानबूझकर ऐसा किया गया हो। दो दिन पहले तीन मरीजों ने यह कहकर जूयों नहीं पिया था कि वह एकदम पनछोछर बना था। नमक की उस कमी को इस बार बहुत ही अच्छी तरह से पूरा कर दिया गया था। सामने के सिपाही की आँखें बचाकर कुन्दन ने खिड़की के जरिये कटोरी को खाली कर दिया।

अस्पताल के भीतर बैठे सिपाही को भोजपुरी नहीं आती थी, यह जानकर कैदी आपस में कुछ समय खुलकर बातें कर लेते थे। मंगरू ने अपनी चारपाई पर पड़े-पड़े कुन्दन से पूछा, "क्यों कुन्दन, आज भी कोनो डाक्टर आई कि नाही?"

"अभी तो डाक्टर के यहाँ से गये तीन ही दिन हुए हैं मंगरू भैया!" बगल के जगेसर ने धीरे से कहा।

"अरे अभी कोयके मरे की नौबत तो आये।" मंगरू ने एक लम्बी साँस लेकर कहा, "दिन मोरे ओही दिवस भये आन, खात रहली मेवा पीयत रहली गुड पान।" उसके चेहरे पर जो मुस्कान थिरक आयी थी, वह व्यंग्य से सनी हुई थी। वह व्यंग्य, जो आदमी का अपने ही ऊपर हो।

मंगरू की बगल की चारपाई पर दो रोगी दो अलग दिशाओं को मुंह किये सो रहे थे। दीवार की ओर वाले जगलाल ने, जो यहाँ से भाग निकलने के दो असफल प्रयास कर चुका था, दबे स्वर में कहा कि उस डाक्टर के आने-न-आने से क्या लाभ जो रोगी से चार कदम दूर ही खड़े रहकर चिकित्सा पूरी कर जाता है। सप्ताह के भीतर दो कैदी मरे थे और चार नये आ गये थे। चारों नये दाखिल हुए रोगियों को जोरों का बुखार था, फिर भी दो दिन उन्हें नीचे के बोरों पर एक ही साथ पड़े रहने दिया गया था। कुन्दन ने चाहा था कि अपनी जगह वह उन चारों में से सबसे अधिक पीड़ित को दे दे। इस पर अस्पताल के मुख्य परिचारक ने उसे माँ की गाली सुनाते हुए पीछे को ढकेल दिया था। उसके पाँव की चोट से खून बह चला था। दर्द बढ़ गया था। रात को वह सो नहीं सका।

रात को काफी देर तक वह मन-ही-मन गुनगुनाता रहा :

"ओ रे मोरी नींदवा कहाँ खेले गुली डण्डवा…।"

इस अस्पताल में सुबह महीनों देर से आती थी। सुबह होते ही दो मरीजों को हाथ में जंजीर पहनाकर काली कोठी को लौटा दिया गया था। दूसरे दिन मंगरू की बारी थी। मुख्य परिचारक से अपनी बारी सुनकर उसे हँसी आ गयी थी। खुशी से नहीं बल्कि उस करारे व्यंग्य के कारण जिसे वह भीतर ही महसूस रहा था। उसके माथे की चोट कुछ-कुछ अच्छी हुई थी, पर इधर तीन-चार रात से उसके पेट का दर्द और भी बढ़ गया था। दर्द इतना अधिक था कि वह बच्चे की तरह रोने लगता था। चीत्कार कर उठता। यहाँ के अन्य मरीजों को उसकी चीख से बचाने के लिए उसे चारदीवारी को लौटाया जा रहा था। कम-से-कम इस बात की थोड़ी-बहुत खुशी मंगरू को थी कि रोगी कैदियों का इतना ख्याल तो रखा ही गया था। दिन में उसका दर्द कम होता था और उसके अपने हाथों में……कुछ न करने के कारण खुजली-सी होने लगी थी। पिछले दिनों रोगियों को वाक्वा के पत्तों से चटाई बुननी पड़ती थी। सूखे पत्तों के अभाव के कारण वह भी बन्द था।

जिन्दगी में इससे पहले मंगरू कभी बीमार नहीं पड़ा था। उसकी छोटी अंगुली कभी नहीं दुखी थी। एक दिन के लिए भी वह कभी बेकार नहीं रहा, जबकि यहाँ पूरे तीन सप्ताह से बैठे-बैठे वह ऊब गया था। इन तीन सप्ताहों में उसे बहुत कम नींद आयी थी, पर जब भी आयी थी सपने में उसने अपने को पत्थर ही तोड़ते पाया था। वह सभी कैदियों से अधिक फुर्तीला था। सबसे अधिक पत्थर तोड़ता था। उस काम को करते हुए चिपचिपाती गरमी में भी अपने शरीर के बहते पसीने की ठण्डक को महसूसता रहता। उस सक्रियता में वह अपने परिवार की याद को बिसार जाता, जबकि अस्पताल की चारपाई पर ऐसा करना उसके लिए असम्भव था। यहाँ तो हर क्षण उसे फूलवन्ती की याद आती। दोनों बच्चों के चेहरे सारा धुंधलापन लिये आँखों के सामने झिलमिला उठते। उनकी इस समय की हालत के ख्याल से वह भीतर-ही-भीतर काँप उठता।

सात लम्बे नीरस साल बीत चुके थे। उसकी पुष्पा तो उसी समय दस वर्ष की थी। अब तो विवाह-योग्य हो गयी होगी। इस ख्याल से उसको धमनियों का रक्त जमता-सा प्रतीत होने लग जाता। फूलवन्ती क्या कर पायी होगी? यह प्रश्न वह कुन्दन से कई बार कर चुका था। बार-बार उसे सान्त्वना देकर कुन्दन अपनी उस सान्त्वना को अधिक खोखला पाने लगता। कुन्दन ही तो था वह, जिसे सिपाही और परिचारक की आँखें बचाकर वह अपनी कहानी सुनाया करता। मंगरू को अपनी उम्र मालूम नहीं थी, पर जब कुन्दन अपनी उम्र का अनुमान पैंसठ के लगभग कहता, उस समय मंगरू अपनी उम्र का अन्दाजा पचास का लगा लेता। वह इससे भी दो-तीन वर्ष अधिक ही का होगा—कुन्दन सोचता।

उसके चेहरे की झुरियों और सलवटों को देखकर वह ऐसा नहीं सोचता क्योंकि उनसे तो वह और भी बूढ़ा प्रतीत होता था। दिन में खाना काफी देर से

पहुँचा। तीन दिन से लगातार मिलनेवाले मकई के भात को इस बार भी अपने आगे पाकर मंगरू के होंठों के बीच से वही फीकी मुस्कान निकल पड़ी। तीन दिन से वह अपने हिस्से के भात को बगल के मरीजों में बाँटते आ रहा था। इस मकई के भात से उसके पेट का दर्द और भी बढ़ जाता था। मंगरू को एकटक मिट्टी की थाली की ओर देखते हुए कुन्दन से नहीं रहा गया। उसने परिचारक से टूटी-फूटी भिओनी में कहा, "यह आदमी इसी मकई के भात को खा-खाकर रात-भर सो नहीं पाता। पेट के दर्द से चिल्लाता रहता है। कम-से-कम इस व्यक्ति के लिए तो किसी हल्की चीज का प्रबन्ध किया जा सकता है।"

परिचारक ने पहले तो कुन्दन को घूरकर देखा। उसकी आँखों में किसी तरह का भय न पाकर उसने हँसकर व्यंग्य किया, "कल से यह हलवा खाने के लिए बड़े घर को लौट रहा है। तुम्हें चिन्ता करने की कोई जरूरत नहीं।"

"दोक्तेर क्रिन ओपेस ली मांज जोरी माई।" बिसेसर ने बड़े साहस के साथ कहा।

परिचारक ने बिसेसर के ही स्वर में उत्तर दिया, "क्यों नहीं—डाक्टर ने सचमुच ही इसे मकई का भात खाने से मना किया है। उसने तो तुम सभी की सेहत के लिए बासमती चावल का हुक्म दिया है। साला छिनरझप करता है।"

उसके इस व्यंग्य पर भात परोसनेवाला काला रसोइया अपनी भयंकर हँसी से ईख के सूखे पत्तों के छाजन तक को हिला गया। कुन्दन ने तो ऐसा ही महसूस किया। हँसी थमने के बाद एक क्षण का सन्नाटा रहा। दूसरे क्षण जगेसर ने अपने मोटे स्वर में अप्रत्यक्ष प्रश्न किया, "अभी तक दवाई नहीं मिली है?"

परिचारक की चिल्लाहट के साथ निकली आवाज में प्रत्यक्ष उत्तर आया, "खाने के बाद।"

"भाई, हियाँ त मोसिया के मुँह कुत्ता चाटेला।" बिसेसर की आवाज धीरे-से आयी।

दवाई कभी खाने से पहले दी जाती थी, कभी बाद में। कभी यह कहकर बिल्कुल ही नहीं दी जाती कि दवाई अभी पहुँची नहीं। सभी मरीजों को एक ही दवाई दी जाती थी। वही सफेद रंगवाली। सूखे नारियल का आधा छिलका था वह, जिससे कटोरे का काम लिया जाता। एक ही कटोरे से सभी मरीजों को पीना पड़ता था। पिछले दिनों उस लम्बी चोटीवाले व्यक्ति की मृत्यु का कारण परिचारिका ने उसकी दवाई लेने की इन्कारी को बताया था। इस पर किसी ने हँसकर कह दिया था कि वह तो दवाई लेने-पीनेवालों से भी अधिक समय तक छटपटाता रहा। मंगरू ने पूरे गाम्भीर्य के साथ कहा था कि इन जल्लादों को ब्राह्मण की मृत्यु से ब्रह्महत्या लगकर रहेगी।

रात को धीमे स्वर में जगलाल अपने आसपास के दो-चार व्यक्तियों को अपने दोनों बार के भागने की असफलता की कहानी सुनाता रहा। एक बार तो वह कँटीले तारों के कारण पकड़ा गया था, दूसरी बार अपने साथ के डरपोक साथी के कारण।

फिर तो यहाँ से निकल सकने की बात को एकदम असम्भव मानने से नये प्रयास की नौबत ही नहीं आयी। किसी के इस प्रश्न पर जगलाल चुप हो गया था कि अगर सचमुच ही यहाँ से भागना असम्भव था तो फिर कई लोग कैसे फरार हो सके थे। मंगरू के पेट का दर्द कुछ कम हुआ। उसे नींद आ गयी थी। लेकिन कुन्दन उस कहानी को बड़े ध्यान से सुनता रहा। इससे पहले वह सन्तू के भाग जाने की कहानी सुन चुका था। उस युवक ने अपने ऊपर बांस की बौछार करते हुए एक गोरे को एक ही कुदाली में मार डाला था। अपनी गिरफ्तारी के तीसरे ही दिन वह कैदखाने की ऊँची दीवारों को फांद गया था। अपने घर पहुँचकर हताश हो उसने दूसरे ही दिन अपने को फिर से सिपाहियों के हवाले कर दिया था, क्योंकि उसकी नवविवाहिता पत्नी ने बलात्कार का शिकार होकर आत्महत्या कर ली थी। सन्तू की कहानी से अपने को हटाकर कुन्दन जगलाल की योजनाओं की असफलता पर गहरे दुख का अनुमान करता रहा। उससे हुई भूलों पर वह उस समय तक गौर करता रहा जब तक सभी मरीजों के बाद उसे भी नींद न आ गयी।

कुन्दन सबसे बूढ़ा न होते हुए भी सबसे पुराना कैदी था। जिस दिन उसकी गिरफ्तारी हुई थी उस दिन तक तो उसके इर्दगिर्द के ये सारे लोग इस द्वीप में पहुँचे भी नहीं थे। इन लोगों के इधर पहुँचने से कोई बीस-पच्चीस वर्ष पहले ही कुन्दन अपनी टोली के कुछ मित्रों के साथ भारत को लौट गया होता अगर······

अगर उस दिन छावनी से छुट्टी पाकर रास्ते में वह उस नदी के किनारे सुस्ताने के लिए रुक न जाता। अपनी पुरानी कहानी कुन्दन को सुना चुकने के बाद मंगरू ने बार-बार यह चाहा था कि कुन्दन भी उसे अपनी कहानी सुनाये। बार-बार वह कुन्दन से अनुरोध करता रह गया था और कुन्दन हर बार 'फिर कभी' कहकर टाल जाता। आज मंगरू के उधर लौट जाने के बाद उसका हृदय एकाएक भारी-सा हो गया था। मन-ही-मन पश्चात्ताप को झेलते हुए वह अपने-आपको अपनी वही कहानी सुनाता रहा जिसकी वजह से वह कैद हुआ था। नदी किनारे के राफ़िया के पेड़ के नीचे वह अपने हाथों पर सिर को पीछे की ओर टिकाये लेट गया था। सामने की पहाड़ी से आती ठण्डी हवा उसके शरीर के पसीने को सोखती हुई उसकी सांस तक को ठण्डक पहुँचा रही थी कि·····

कि तभी एकाएक सामने के पानी में छपाक की आवाज़ हुई थी। हल्की नींद के उचट जाने की घबराहट के साथ वह अपनी जगह पर खड़ा हो गया था। आवाज को लक्ष्य करके उसने अपने सामने जो दृश्य पाया, उसे देख स्तम्भित रह गया था। वह अपने को भीतर-ही-भीतर कांपकर गर्म हो जाने से रोक नहीं सका।

देखता रह गया·····सामने के उस दुलर्भ दृश्य को। वह अपनी सांसों को थामे उस दृश्य को अपलक देखता रह गया था। उस समय वह अपने सामने जो कुछ देख रहा था, जीवन में पहली बार के लिए।

अपनी भीतर की उष्णता और बाहर की खामोशी के साथ वह उस वक्त भी

उसी ओर देख रहा था जब पीछे से किसी का धक्का खाकर वह मुँह के बल जा गिरा था। फिर तो फ़ौज में चुनींदी गालियों की बौछार थी और सामने के टोप पहने उस गोरे की लातों की मार थी। इससे भी बाज न आकर गोरे ने सामने से पत्थर उठाकर कुन्दन पर पटकना चाहा था कि तभी कुन्दन ने प्रशिक्षण पाये सिपाही की फुर्ती के साथ उछलकर वार को खाली कर दिया था। गोरे ने पत्थर को दोबारा उठाकर जब उसे कुन्दन पर उछालना चाहा तो कुन्दन के लिए बस अपने को बचाने का एक ही उपाय था—उसके पैरों से लिपट जाना। उसने तेजी के साथ वैसा ही किया। गोरा पत्थर के साथ गिर पड़ा था और उसकी कनपट्टी उसी पत्थर से टकराकर रह गयी थी।

उस घटना के तीन दिन बाद कुन्दन को एक गोरी औरत को नंगे स्नान करते देखने और उसके पति की हत्या के अभियोग में उम्रक़ैद की सजा हो गयी थी। अपने लिए एक फ़ौजी अदालत की रियायत माँगते हुए कुन्दन ने क़ैदखाने की सबसे काली कोठरी पायी थी। मगरू को अपनी कहानी न सुनाकर वह अपने हृदय को बोझिल कर गया था। अपने को पश्चात्ताप से बचाने के लिए वह स्वयं को सान्त्वना देता रहा कि चारदीवारी में लौटते ही वह मगरू को अपनी कहानी सुना डालेगा।

मुद्दत पहले जब वह क़ैदखाने के भीतर जंजीर के साथ पहुँचा था, उस समय क़ैदियों में सभी मलगासी गुलाम थे। तीन दिन बाद उसे पता चला था कि क़ैदखाने के बीच की दीवार के उस पार चार भारतीय भी थे। कुछ दिन बाद उनमें से दो से वह मिल भी सका था। अंग्रेजों द्वारा मारिशस के जीते जाने के कई साल पहले वे दोनों वहाँ पहुँचे थे। एक व्यापार करने आया था। दूसरे का इस द्वीप में आगमन इंजीनियर के रूप में हुआ था। दोनों व्यक्तियों पर एक ही आरोप था, मजदूरों को बहका कर जमींदारों के विरुद्ध खड़ा करना। न जाने क्यों कुन्दन को यह आरोप बहुत अच्छा प्रतीत हुआ था। उसने चाहा कि खून के बदले उसके ऊपर भी ऐसा ही आरोप होता।

उस समय क़ैदखाना विस्तृत भी नहीं था। दाहिनी ओर की दीवारें नहीं खड़ी हुई थीं। क़ैदियों की संख्या दो सौ से अधिक नहीं रही होगी। क़ैदियों में एक भी गोरे रंग का नहीं था। सभी मलगासी थे। साँवले-काले और भीमकाय। उनके पैरों में हर वक्त जंजीरें होती थीं। शुरू में जब वे पत्थर तोड़ने के लिए एकसाथ मिलकर फिर टुकड़ियों में बँटते तो कुन्दन को उनसे डर लगता, लेकिन समय के साथ वह उन लोगों से हिलमिल गया था। वे लोग इसे अपनी जबान सिखाते। वह उन लोगों को चीज़ों के हिन्दी नाम सिखाता।

जिस दिन कुन्दन ने गाब्रियल नाम के क्रिओल क़ैदी को पीछे करके उसकी जगह चाबुक की मार को अपने ऊपर सह लिया था, उस दिन से सभी मलगासी क़ैदी उसे 'फ़ेर' कहकर पुकारने लगे थे। जब तक वे लोग वहाँ रहे, कुन्दन उन लोगों का भाई ही बनकर रहा। गाब्रियल कहता, "तू सावायेर फ़ेर।"

कुन्दन मन-ही-मन सोचता। काश गाब्रियल के कहेनुसार सभी मजदूर भाई-भाई होते।

चार

जुल्म ढानेवाले दो व्यक्ति भाई होते हैं, जुल्म सहनेवाले दो व्यक्ति भाई नहीं हो पाते। मालगासी वन्दियों ने सीधे बालोंवाले साँवले वन्दियों को अपना भाई नहीं माना।

बारी-बारी से मालगासी वन्दी चारदीवारी से बाहर होते गये थे। उनमें से दो, जिन्हें उम्र कैद की सज़ा थी वे अवधि से पहले ही चल बसे थे। मालगासी कैदी जाते रहे, कुछ मालाबार कैदी भीतर आनेवाले थे। कुन्दन ने उधर कोई विशेष ध्यान नहीं दिया था। लेकिन मालाबार नाम से भारतीयों को कैद के भीतर पाकर उसे जितनी हैरानी हुई भी, उतना ही हर्ष भी। वह हर्ष भी अपने ढंग का था……हँसी आँसू को साथ लिये। हर दूसरे-तीसरे दिन कोई-न-कोई नया कैदी भीतर आ ही जाता। कैदियों की संख्या। बढ़ती गयी थी। सभी की कहानियाँ एक-सी होतीं……

……पत्थरों के नीचे सोना पाने की वही एक-सी चाह लिये 'मारीच देसवा' पहुँचना। जहाज से उतरते ही गले में नम्बर लटकाये खेतों को झोंका जाना। आधा पेट खाना, आधी देह कपड़ा। पीठ पर बाँसों की बौछार और……

कोई बैल-जैसा काम करने से इन्कारी के कारण इधर आ गया था। कोई भारत लौटने की माँग करके। कोई न्याय की दुहाई करता हुआ, तो कोई बीमारी की वजह से तीन दिन नौकरी पर न पहुँच सकने के कारण। किसी की गिरफ्तारी केवल इसलिए हो गयी थी कि उसने अपने गले से नम्बर लिखे टीन के टुकड़े को निकाल फेंका था। किसी ने सरदार से मुँह लगाने की हिम्मत की थी। जिस व्यक्ति ने पहले दिन भीतर आते ही आत्महत्या कर ली थी, उसकी गिरफ्तारी इसलिए हुई थी कि सरदार की माँग पर उसने अपनी खूबसूरत पत्नी को पहली रात मालिक के घर नहीं पहुँचाया था।

अस्पताल में कुल चार खिड़कियाँ थीं, वे भी इतनी छोटी कि उनसे बाहर निकलना कठिन था। यदा-कदा थोड़ी-बहुत हवा भीतर आ ही जाती थी जिससे दोपहर की चिपचिपाती गरमी से द्वार पर का सिपाही ऊँघने लगता था। उसके पासवाला रोगी उसके पसीने की गन्ध से नाक सिकुड़ते ही अपने मुँह को दूसरी ओर फेर लेता। लोग बताते कि न नहाने के कारण उसके पसीने से इस तरह की दुर्गन्ध आती थी। इधर तो सभी रोगियों के लिए भी नहाने का कोई खास प्रबन्ध नहीं था। कुन्दन को भी नहाये कई दिन हो गये थे, फिर भी उसके पसीने की गन्ध इतनी बुरी नहीं हो पायी थी। कुछ लोग इसे त्वचाभेद बताकर चुप रह जाते।

खिड़की से हाथ बाहर करके कुन्दन ने बाहर की हवा को महसूसना चाहा, पर ऐसा लगा कि हवा वह ही नहीं रही थी। अपने शरीर का पसीना उसे लेई की तरह लसलस लगने लगा था। टट्टी के द्वार की बाल्टी में इतना कम पानी होता था कि उससे हाथ के अलावा बाकी अंगों को भिगाना तक कठिन था। वह पानी भी बिरले ही साफ होता था। कई दिनों तक बाल्टी के न धुलने के कारण उसके भीतर के रेंगते सफेद कीड़े साफ़ दिखायी पड़ने लगते थे। जिस लोटे के साथ टट्टी के भीतर प्रवेश करना

पड़ता था, उसकी पेंदी घिस गयी थी। भीतर निवृत्त होते-होते लोटे का आधा पानी बह जाता था।

उस मौलिक आवश्यकता की पूर्ति के लिए सभी को शीघ्रता होती थी। लोटे में छेद तो था ही, उसी तरह के कई छोटे छेद अस्पताल के छप्पर में भी थे। छोटी-सी बारिश के वक्त भी छाजन रीसने लगता था और चारपाइयों को इधर से उधर करना पड़ जाता था।

दिन में रोगियों को जो मान्योक परोसा गया था, वह अच्छी तरह सीझ नहीं पाया था। यह कन्द अच्छी तरह सीझ जाने पर मकई के भात से अच्छा ही होता था। शायद यही कारण था कि उसे अच्छी तरह सीझने नहीं दिया जाता। उस तरह का अवसर बहुत कम होता जब सीझे हुए रूप में मान्योक मरीजों के सामने रखा जाता। वैसा रसोइये की भूल से हो जाता होगा। अपने दाँतों के नीचे उसे 'कच-कच' पाकर कुन्दन ने उसे उगल देना चाहा था, पर उसके भीतर की भूख ने उसे ऐसा करने दिया ही नहीं। किसी तरह जी जाँत कर खाना ही पड़ा था। बालू में पड़े हुए बैल को अपनी आँखें तो बचानी ही थीं।

पिछली रात कुन्दन के पाँव का दर्द बहुत अधिक बढ़ गया था। बड़ी कठिनाई से वह चल सका था। उधर सप्ताह-भर भूमि पर सोते रहनेवाला व्यक्ति भी, जो मगरू के जाने के बाद उसकी चारपाई पर आ गया था, रात-भर कराहकर कुन्दन के दर्द को दुगुना कर गया था। इस व्यक्ति की जाँघ का घाव पककर चमकीले पीले रंग का हो गया था। उसके काटे जाने के दिन को रोज ही स्थगित किया जा रहा था। सात दिन लगातार उसको यह कहकर उसे जिलाया जाता रहा कि दूसरे दिन डाक्टर के पहुँचते ही पहला काम उसके घाव को काटना होगा। पिछली बार डाक्टर घाव को दूर ही से देखकर कह गया था कि अभी वह काटे जाने के लिए तैयार नहीं था।

सुबह अपने पाँव के दर्द से खुद दुखी कुन्दन ने जब घाववाले व्यक्ति के पास पहुँचकर उसकी हालत जाननी चाही तो उस समय वह खाट पर बेहोश था। रात में उसका घाव अपने-आप फूट गया था। खून और पीब से वह लथपथ था। खून कुछ इतना अधिक बहा-सा दीख रहा था कि सभी मरीज घबरा गये थे। दिन में खबर आयी थी कि डाक्टर खुद बीमार हो जाने के कारण बिलकुल नहीं पहुँच सकता। परिचारक घाव को बिना पोंछे, मरीज की बेहोशी हालत में उसमें बिना कुछ लगाये उसे अधमैली पट्टी से बाँध गया था।

दूसरे दिन उसे एकदम चंगा बताकर डाक्टर उसे कैदखाने में भिजवा देने का आदेश दे गया। वह व्यक्ति अपनी जाँघ थामे गिड़गिड़ाता रहा और परिचारक ने उसके हाथों में जंजीर पहनाकर सिपाही के हवाले कर दिया। एक पैर से चलकर रोता-चिल्लाता वह कैदखाने को चल पड़ा। उसे घूम-घूमकर अपनी चारपाई की ओर देखते पाकर सभी मरीजों को उसकी हालत पर दया आ गयी थी। किसी से कुछ होना तो दूर, किसी का अपनी दया जाहिर करना भी असम्भव था।

और फिर यह तो रोज की बात थी। आगे भी सभी को यहाँ से इसी हालत में निकलना था। कुछ अच्छा हो जाने पर मरीज को घर भेज दिया जाता है, पर चूँकि इन कैदियों के लिए घर का प्रश्न ही नहीं उठता था इसलिए उनके चंगे होने का इन्तजार भी नहीं हो पाता था। डाक्टर के मन की बात थी, जब चाहे वह किसी को अच्छा बता सकता था और जब चाहे किसी को सबसे नाजुक स्थिति में चारदीवारी को लौटा सकता था।

कुन्दन के सामनेवाली छोटी-सी खिड़की से वह बकाईन का निपाती पेड़ स्पष्ट दिखायी पड़ता, जिसकी डालियों पर मैना की जोड़ी फुदकती रहती थी। ये मैनाएँ ही भारत के अपने गाँव की सबसे अधिक याद दिलाती थीं। इन मैनाओं को यहाँ की फसल की रक्षा के लिए लाया गया था। पहली बार कैद की दीवार पर एक मैना को देखकर वह हैरान रह गया था। पहले तो मारिशस में उसने कहीं भी मैना नहीं देखी थी। बहुत बाद में उसके अन्य साथियों ने बताया था कि उन्हीं लोगों के साथ मैना की पचास जोड़ियाँ आयी थीं। अपने साथियों से सभी कुछ सुन चुकने के बाद कुन्दन ने हँसकर कहा था,—"वाह रे मेरे देश की मैना! जहाँ तुम्हारे देश के लोग खुरी घँस-घँसकर बंजर जमीन को खेतों में बदल रहे हैं, वहाँ तुम भी फसलों पर उत्पात करनेवाली टिड्डियों को मिटाकर इस देश को सँवारने में अपने ढंग से सहयोग दे रही हो।"

भारत में मैना को देखना तक कुन्दन नहीं चाहता था। लेकिन यहाँ उसी पक्षी से उसे अगाध प्यार हो चला था। चारदीवारी के भीतर से मैना की टाँय-टाँय में उसके लिए जितनी आत्मीयता थी, वह कहीं नहीं थी। वह लम्बे समय तक मैनाओं को देखता और उन्हें सुनता रहता। कभी अपनी मुट्ठी में रोटी का छोटा टुकड़ा या मकई का थोड़ा-सा भात छिपाकर पत्थर तोड़ने निकलता। उन चीजों को मैनाओं के बीच फेंककर वह गदगद हो उठता। उनकी टाँय-टाँय में उसके लिए कहानियाँ होतीं। उनमें उसके गाँव की नदियाँ थीं। पनघट की औरतों की धाँवधाँव थीं। गाँवों की वे तमाम यादें थीं उनमें, जिन्हें वह बिसार गया था। वहाँ की हरियाली वहाँ की सुखारी। सभी कुछ आँखों के सामने बरबस ही आ जाते। कुन्दन चाहता कि इन पक्षियों में से एक तो कभी उसके कन्धे पर आ टिके, लेकिन लगता कि मैनाओं को अपनी स्वतन्त्रता कहीं अधिक प्यारी थी।

परिचारक को अपना पाँव दिखाते हुए कुन्दन ने चाहा कि उस पर लगाने के लिए उसे कोई दवा मिले। उसकी बात सुनी-अनसुनी करके परिचारक चला गया। दूसरी बार जब कुन्दन ने फिर से दवाई का आग्रह किया तो एक दूसरा मोटा परिचारक मिट्टी की सुराही जैसी किसी चीज के साथ उसके पास पहुँचा। नीले रंग के एक तरह के पदार्थ की कुछ बूँदों को पाँव पर टपकाकर वह चला गया। उन बूँदों से कुन्दन का समूचा पैर झनझना उठा।

जहर का सा जलन था वह। अच्छा ही हुआ, परिचारक वहाँ से उसी क्षण

टल गया था अन्यथा कुन्दन ने अपने हाथ का जूठा बरतन उस पर चला दिया होता।

कुछ देर बाद कुन्दन को अपना पैर और भी बेकार लगने लगा। घाव एक बार फिर ताजा हो गया था। जगलाल ने सहानुभूति प्रकट करते हुए कहा, "दवाइयवा काम करत बाते इहीं खातिर वह दुःख रहत था। साँझ तक अच्छा हो जाय कुन्दन, जरा धीरज धर।"

साँझ से रात हो गयी। कुन्दन के चेहरे की पीड़ा बनी रही। जगलाल ने इस बार बड़ी सहानुभूति के साथ प्रश्न किया, "बहुत ज्यादा कसरत बा का ?"

कुन्दन ने होंठों के बीच एक कठिन मुस्कान लाकर सचाई को छुपाने का प्रयत्न किया। रात-भर बिना कराहे वह दर्द को भीतर-ही-भीतर महसूसता हुआ करवटें बदलता रहा। एक पल के लिए भी उसकी आँखें नहीं झपक सकीं। रात में कैदखाने से आते किसी बंदी के चीत्कार को वह रह-रहकर सुनता रहा। उस चीत्कार में उधर की पीड़ा का अधिक असह्य होना स्पष्ट था। अपनी पीड़ा को भूलने के लिए कुन्दन को मनोबल मिला।

"तुम्हें बड़े घर लौट जाने की आज्ञा मिली है।"

कुन्दन को हैरानी नहीं हुई। पहले ही बात उसकी समझ में आ गयी थी। दोपहर में सिपाही अस्पताल के भीतर पहुँचा। कुन्दन के हाथों को जंजीर से जकड़ा और उसे लिये अस्पताल से बाहर होने लगा। बारी-बारी से सभी मरीजों की आँखों से कुन्दन की आँखें मिलीं और हटती गयीं। सभी आँखों ने गोया यही कहा :

"फिर मिलेंगे—चारदीवारी के भीतर !"

कैदखाने की पत्थर की ऊँची दीवारों से झनझनाता हुआ किसी बन्दी का स्वर गूँजता रहा—

मूसे मारतें के खेतवा में सोना फइल बा
हमर तोहर हथवा में लोहा लगल बा।

कुन्दन इस स्वर को पहचानता था। वही पागल कैदी लोहे की छड़ों को दोनों मुट्ठियों से पकड़े कभी उन्हें ईख समझकर दाँतों से छिलके उतारने की कोशिश करने लगता था। कहा जाता है, वह भारत का कोई बहुत बड़ा क्रान्तिकारी था। अंग्रेज सरकार ने गिरफ्तारी के बाद उसे इस द्वीप में भेज दिया था। कालापानी।

पाँच

इस द्वीप के चारों ओर समुद्र-ही-समुद्र था जिसे लाँघने के प्रयास से उसी में विलीन हो जाना कई लोगों ने बेहतर समझा। उन ज्वारभाटों के बीच अकुलाते हुए दम का घुटना क्षणिक था, चारदीवारी की तरह वह लम्बा और स्थायी नहीं था।

चारदीवारी के भीतर कई नये लोग आ गये थे। वापसी पर कुन्दन को लगा

कि वह किसी यात्रा के बाद अपने घर लौट आया था। अपने पैर के दर्द के बावजूद वह खुश था। जानी-पहचानी दीवारें अपने जैसे लगनेवाले खम्भे। वही तारों का परदा, लोहे की सलाखें। पहरेदारों की वही सूरतें, वे ही सिपाही। परिचारक भी वे ही। वे ही बन्दी बन्धुगण। जंजीरों की वही झनझनाहट, वही खनखनाहट। जेलर का कर्कश स्वर! सभी कुछ वही था। वहां के धुंधलके में अपनापन का यही आभास था।

दुःख अगर थोड़ा-बहुत हुआ था तो बस इस बात का कि उसे पैंतालीस नम्बर की वह कोठरी नहीं मिल सकी थी जिसकी दीवारों पर उसने समय की छाप छोड़ी थी। सिपाही से पूछने पर पता चला कि उसमें किसी बहुत ही खतरनाक कैदी को रखा गया है। यह बात कुन्दन को दूसरे कैदी से मालूम हुई कि उसकी पुरानी कोठरी में जो कैदी था, उसे बगावत के जुल्म में सात वर्ष की सज़ा हुई थी। कुन्दन के भीतर उस व्यक्ति को जल्द-से-जल्द देखने की इच्छा पैदा हो गयी थी। लेकिन उसकी उस इच्छा और उस बागी के बीच एक दूसरी ऊँची दीवार थी। वह उत्तरी विभाग में था और कुन्दन तो इस नये पूर्वी विभाग में आ गया था।

कैदियों के बीच बन्दीगृह के सिपाहियों के अलग-अलग नाम थे। उनके सही नाम जानना कैदियों के लिए असम्भव था, इसलिए उस एक सौ पैंतीस नम्बर का कैदी मरने से पहले सभी को अपने ढंग के नाम दे गया था। किसी का नाम दुःशासन था किसी का जरासन्ध। वह जो द्वार पर खड़ा-खड़ा ऊँघने का आदी था उसे सभी कुम्भकरण नाम से जानते थे। लम्बी मूंछोंवाले सिपाही को कंस मामा कहकर पुकारा जाता था। दुबला-पतला, जो कुछ रहमदिल था, उसे कैदी विभीषण कहकर पुकारते थे। यह विभीषण अपने नाम की तरह जितनी डरावनी सूरत का था, भीतर से वह उतना ही कोमल था। यही एक सिपाही था जिसे सभी कैदी आदर से देखते थे। उसे पास से गुजरते देखकर कुन्दन ने कहा, "विभीषण भैया, नमस्ते!"

उसके पास पहुँचकर सलाखों के इसी ओर से विभीषण ने उसकी नमस्ते का उत्तर देते हुए पूछा, "कां तो फिन रेतुने?"

"आज ही।"

"तुम्हारा पांव कैसा है?"

"कुछ अच्छा है।" शिष्टाचार के नाते कुन्दन को झूठ बोलना पड़ा।

एक तरह से इस चारदीवारी के भीतर सभी कठोरता और बेरहमी के बावजूद कुन्दन को कभी-कभार थोड़ा-बहुत आदर सा मिल जाता था। विभीषण के अलावा दूसरे सिपाही भी अच्छी मनःस्थिति में होने पर उससे एकाध बातें कर ही लेते थे। दो कारणों से। एक तो उसके स्वयं सिपाही होने के कारण और दूसरी वजह थी उसका यहां सबसे पुराना होना।

कुछ देर पहले एक परिचारक कुन्दन को उसकी पुरानी गठरी दे गया था। लकड़ी की खाट पर बैठकर कुन्दन ने गठरी खोली। उसके हाथ के कड़े छोटे-के-छोटे रह गये थे और वह बढ़कर अब ढलने को था। बीते दिनों की याद दिला जाने की

कई चीज़ें थीं उस गठरी में। लेकिन…… कुन्दन उन बीते दिनों को याद करके चुभन का शिकार होना नहीं चाहता था। इसलिए उन चीज़ों को फिर से बाँध दिया। बस, उस फूलदार रूमाल को अपने हाथ में रह जाने दिया। मरनेवाले ने अपनी मृत्यु के एक दिन पहले कुन्दन को भेंट किया था। उस मरनेवाले के बारे में भी कुन्दन ने अधिक सोचना नहीं चाहा। बस रूमाल को अपने सिर और दीवार के बीच तकिये की तरह रखकर ऊँघ गया। पहली बार चारदीवारी के भीतर आकर कुन्दन ने इसी छोटी-सी गठरी को बाँधा था, इसी क्षण वह गठरी उससे ले ली गयी थी। उस दिन वह जेलर की हिफ़ाज़त से निकलकर फिर से उसके हाथों में आ गयी थी। चारदीवारी के भीतर उसके बीस वर्ष पूरे होने को थे। तब से यह गठरी लगातार उसकी अपनी कोठरी में थी। जिस दिन वह अस्पताल जाने लगा था, उससे गठरी ले ली गयी थी। आज उसे फिर से पाकर उसने जैसे एक घनिष्ठ साथी को पा लिया था।

दूसरे दिन कुन्दन के साथ रियायत की गयी। उसकी टोली के कैदियों के साथ उसे शहर के रास्ते बनाने को नहीं ले जाया गया। उसे कोठरी से निकालकर ऊँची दीवारों के बीच के विस्तृत स्थान में मकई के दाने छुड़ाने का काम सौंपते हुए विभीषण ने हँसकर कहा, 'दो दिन के लिए तुम बड़े काम पर नहीं जा रहे हो।"

वहाँ से जाने के पहले उसने कुन्दन के घायल पैर को गौर से देखा, फिर यह बोलता हुआ आगे बढ़ गया, "जल्द अच्छा हो जायेगा। पा ताकासि।"

कुन्दन को लगा कि उसके घाव पर यह पहली मरहम-पट्टी थी।

जिस स्थान पर वह दो अन्य कैदियों के साथ मकई के दाने छुड़ाने के लिए बैठा था, वहाँ से सामने की पत्थरों की दीवार के बीच की दो खिड़कियाँ एकदम सामने पड़ती थीं। खिड़कियाँ काफ़ी चौड़ी थीं, पर सलाखों के फ़ासले बहुत कम थे। फिर भी, बाहर के दृश्य काफ़ी विस्तृत थे। दूर आदमी की सी आकृति में खड़ा पहाड़। यहाँ के आसपास की हरियाली।

दूसरी ओर शान्त समुद्र का गहरा नीलापन … उड़ते हुए पक्षी … सभी कुछ कुन्दन को एक दूसरी दुनिया की तरह लग रहा था। वह कोई अदृश्य गिरजाघर था, जिसके घण्टे की आवाज़ कैद की चारदीवारियों के भीतर भी प्रतिध्वनित हो रही थी।

जिस मरनेवाले की गठरी को अपनी गोद में लिये हुए भी कुन्दन उसके बारे में सोचना नहीं चाहता, उसकी आवाज़ इस घण्टे की आवाज़ के साथ मिलकर उसके कानों में गूँजने लगी। उन प्रतिध्वनियों के बीच कुन्दन उस नौजवान के स्वर की अनुध्वनियाँ सुनता रहा—"कुन्दन भैया … मुझसे बार-बार यही कहा जाता कि मैं अपने गले के उस तावीज़ को उतार फेंकूँ जिसके भीतर हनुमानजी का चित्र था। मैं इन्कार करता रहा, मेरी पीठ पर कोड़े बरसते रहे। मुझे गिरजाघर के आँगन में खड़ा करके घण्टे की ओर से बजाया जाता … और … और … फिर मुझसे कहा जाता कि मैं घुटने टेककर असली परमात्मा का नाम लूँ। … कुन्दन भैया, मैंने सलीबवाली चेन लेने से इन्कार किया … मेरे गले से मेरी माँ की निशानी उस तावीज़ को नोच लिया गया।

······बस, यही मेरा जुर्म रहा······इसीलिए मैं यहां हूं······। जिन्होंने चैन ले ली, चैन से हैं। तुम पतियाओगे नहीं कि उनके साथ हमारे अपने लोग भी मिले हुए थे।"

कुन्दन हँसकर रह जाता।

······उग्रसेन के वंश में कंस !

कुन्दन की आंखों में आंसू नहीं आये। वे बहुत अधिक मात्रा में आ चुके थे। वह अपने होंठों के बीच की उस विचित्र मुस्कान के साथ मकई के दानों को छुड़ाता रहा। यह दाने छुड़ाने का काम कुन्दन को तनिक भी पसन्द नहीं था। पहले भी कई अवसरों पर वह ऐसा कर चुका था। बड़ा अजीब था यह काम। अँगुलियों की सक्रियता के साथ मस्तिष्क के तारों की सक्रियता भी बढ़ जाती थी। ख्याल बरबस ही पीछे को लौट जाते और······

वह बार-बार एकाग्रता का प्रयत्न करता और बार-बार खण्डित होता रहता। एक याद से दूसरी याद, फिर तीसरी और वह यादगारों के खोखले जर्जर सोपानों के सहारे शून्य में आ गिरता।

शाम को रोटी लेने के लिए कतार में आगे बढ़ते हुए कुन्दन को मंगरू मिल गया। कड़कती धूप में पत्थर तोड़ने के बाद लौटा था वह। उसकी आंखों में अब भी थकान थी। चेहरे का रंग अधिक सांवला हो चला था। उसके समूचे शरीर से कमजोरी फूट रही थी। कुन्दन को लगा, यह आदमी वर्षों से बीमार हो। पहली बात कुन्दन के मुँह से निकली, "तुम्हारे पेट का दर्द कैसा है ?"

"लगता है उसके साथ ही जाना पड़ेगा।"

"ऐसा क्यों कहते हो ?"

"छोड़ो इस बात को। तुम इसे अपने पास रख लो।" यह कहते हुए मंगरू ने एक छोटी-सी पुड़िया कुन्दन के हाथों पर रख दी।

"क्या है यह ?"

दुःशासन के सामने आकर खड़ा हो जाने से दोनों चुप हो गये। तार के बीच की छोटी-सी खिड़की के रास्ते से बासी फ्रांसीसी रोटी के टुकड़े लिए कैदी अपने-अपने ठौर को जाते रहे। सिपाही जंजीरों का निरीक्षण कर-करके लोगों को कोठरियों की ओर भेजते रहे, जहां दूसरे सिपाही पहले ही से तैनात थे। दुःशासन के हटते ही अपनी मुट्ठी में छिपायी वस्तु को गौर से देखते हुए कुन्दन ने दोबारा पूछा, "क्या है यह मंगरू भाई ?"

"तुम्हारे घाव में लगाने के लिए।"

"कहां मिला ?"

"मैंने खुद तैयार किया है घास-पत्तों से। तीन बार लगाओगे, बस पांव एकदम चंगा हो जायेगा। मैंने अपने बाप से सीखा था। और भी कई दवाइयां मुझे आती हैं। बस, अपने पेट के इस जालिम दर्द की क्या दवा है, यही नहीं पता मुझे। साला नया रोग होगा नहीं तो इसकी क्या चलती !"

कुछ देर चुप रहकर उसने आगे कहा, "साले आदमी अस्पताल जाते हैं अच्छा होने के लिए, यहाँ तो रोग को और भी बढ़ाने के लिए जाना पड़ता है। जहाँ सेंगी में पानी मिलाया जाता है। दवाई तक के लिए टिढियाव पड़ेगा।"

दुशासन फिर सामने आ गया। बातें फिर रुक गयीं। इस बीच कुन्दन के हाथ में पत्थर की सी कठोर रोटी आ गयी। उसे लिये हुए वह पूर्वी इलाके की ओर जाते हुए मंगरू को उत्तरी विभाग की ओर बढ़ते हुए देखता रहा।

अपनी कोठरी में पहुँचकर सबसे पहले उसने उस पुलिन्दे को खोला जिसमें हरे रंग का लेप था। उसने तुरन्त उसमें से थोड़ा-सा लेकर अपने घाव पर लगाया। लगाते ही उसे एक ठण्डक-सी महसूस हुई। पुड़िया को उसी तरह बन्द करके उसने उसे मोटरी के भीतर सँजोकर रख दिया। यह नयी कोठरी उसकी पिछली कोठरी से थोड़ी बड़ी थी। इसमें दो-तीन कैदियों को एकसाथ रखा जाता था। कुन्दन को अकेले रखने का उन लोगों का न जाने क्या कारण रहा हो। यहाँ रोशनी भी अच्छी थी। तीन ओर पत्थर की दीवारें थीं। सामने लोहे की छड़ें थीं। दाहिने ओर की दीवार के पत्थरों के बीच से मुट्ठी बराबर के एक पत्थर को हटा लिया गया था जिससे बगल की कोठरी तक कम-से-कम आवाज पहुँचायी जा सकती थी।

बाहर अँधेरा छाने में अभी कुछ देर थी, लेकिन कोठरियों के भीतर रात होने लगी थी। निरीक्षण पर निकले हुए विभीषण को रोककर कुन्दन ने पता लगा लिया कि यह कोठरी छः महीनों से खाली थी। इससे पहले इसमें एक इंजीनियर दूसरे कैदी के साथ तीन साल की सजा भुगतकर एक पहरेदार की गोली का शिकार हो गया था। विभीषण ने बड़ी धीमी आवाज में कुन्दन को बताया कि वह इंजीनियर बहुत ही साहसी था। अपने साथी को चाबुक की मार से बचाने के लिए उसने एक सिपाही की गरदन दबोच ली थी। पीछे से पहरेदार ने उस पर गोली चला दी थी।

बहुत जल्दी-जल्दी बातें बताकर विभीषण वहाँ से आगे बढ़ गया था। ऊँची दीवार के उस पार से कुन्दन इस कहानी को उसी समय सुन चुका था, पर सच्चाई पहली बार मालूम हुई। जाते-जाते विभीषण उसके हाथ में आधी रोटी थमा गया था। हाथ से छूटकर उसके नीचे गिर जाने पर कुन्दन उसे उठाने के लिए झुका ही था कि उस धुँधलेपन में भी चारपाई के निचले भाग में उसने कागज के एक टुकड़े को लटके पाया। उसे बिना ज्यादा महत्त्व दिये वह खड़ा हो गया। चारपाई पर बैठते हुए फिर एकाएक न जाने क्या सोचकर वह नीचे आ गया। उकड़ूँ बैठकर उसने कागज को ध्यान से देखा और हाथ बढ़ाकर उसे वहाँ से निकाल लिया। कागज का अधफटा पुराना टुकड़ा कई तहों में लिपटा हुआ था। उस पर काफी अस्पष्ट-सी हिन्दी में कुछ लिखा हुआ था। मुद्दत बाद किसी दूर देश में निहत्थेपन की स्थिति को जीते हुए अपनी भाषा के अक्षरों पर नजर पड़ जाने का मतलब होता है नवजीवन पा लेना और किसी घटाटोप अँधेरे में एकाएक प्रकाश का कौंध जाना।

कोठरी के भीतर गलियारे से आते हुए प्रकाश का केवल एहसास-सा होता। उस दूरी से आते-आते वह कुन्दन की कोठरी में दम तोड़ता-सा लगता था। अपने हाथ के कागज को कुन्दन उलटकर देखता रहा। यह जानकर कि उस पर की लिखी हुई भाषा को वह पढ़ सकता था, उसके भीतर एक उत्सुकता जाग उठी थी। वह अपने किसी बन्धु के विचार जानने को अधीर हुआ, पर उस धुंधलेपन में पढ़ पाना उसके लिए कठिन रहा। पहली ही नज़र में अक्षरों की अस्पष्टता उसे दिखायी पड़ गयी थी। दिन के उजाले में भी आसानी से वह उसे नहीं पढ़ पायेगा, यह उसे मालूम था। कागजों को टेंट के हवाले कर वह चारपाई पर जा बैठा।

उसके पांव का दर्द कम था। बगल की कोठरी से छिद्र के रास्ते दूसरे कैदी के विरहा की धीमी आवाज़ रह-रहकर आती। कुन्दन को बहुत जल्दी नींद आ गयी। यहां की चारपाई बकाईन के तने के अलावा कुछ नहीं थी, फिर भी अस्पताल की चारपाई से अच्छी ही थी। कुन्दन की पीठ की कठोरता की चारपाई की सख्ती से काफी घनिष्ठता हो चली थी। कुन्दन की नींद इतनी गहरी रही कि सुबह चार बजे के घण्टे की प्रलयंकर आवाज़ से भी वह नहीं जाग पाया। दु:शासन ने लोहे की छड़ों को ज़ोर से झनझनाकर उसे जगाया।

कैदियों के जमा होनेवाले विस्तृत स्थान पर पहुंचने पर उसने सभी कैदियों को पहले ही से कतार में खड़े पाया। हवा में शरीर को सिहरन दे जानेवाली ठण्डक थी। सूरज की किरणों के ऊपर आने में अभी काफी समय था, फिर भी अंधेरा धीरे-धीरे मिटकर उजाले के लिए स्थान बना रहा था। दूर से आती हुई मुर्गों की एकाध बांगें सुनायी पड़ जाती थीं। जरासन्ध ने अपने भारी-भरकम स्वर में चिल्लाकर कतारों को सीधा करने का आदेश दिया। हल्के शोरगुल के साथ कैदी हिल-डोलकर सीध में खड़े होने लगे। जरासन्ध ने दोबारा चिल्लाकर हल्ला-गुल्ला बन्द करने का हुक्म दिया। उसने तथा कैदियों ने सभी कुछ यान्त्रिकता के साथ किया।

"प्रिज़ोन्ये दे सां त्वा।"

एकदम पहली कतार के उस छोर से इस छोर तक चिल्लाता हुआ कंस मामा बीच में आ खड़ा हुआ। उसकी इस आवाज़ की पुनरावृत्ति अन्य सिपाहियों ने भी की। अन्त में विभीषण ने अपने क्रिओली उच्चारण के साथ हिन्दी में आवाज़ दी:

"कैदी दो सौ तीन।"

कोई उत्तर नहीं मिला।

पन्द्रह मिनट बाद कैदियों की कानाफूसी से पता चला कि कैदी दो सौ तीन अपनी कोठरी में मरा पाया गया। कुन्दन उसे अच्छी तरह जानता था। रूपलाल तो सबसे तगड़ा, सबसे चंगा कैदी था।

उसकी यह अकस्मात मौत? कैदियों के बीच एक बार फिर कानाफूसी हुई।

कई प्रश्न उठे। कहीं रामदेव की तरह सिपाहियों ने इसे भी जहर तो नहीं दे दिया ? दबी आवाज में कई लोगों ने सहमति दी।

"ऐसा ही हुआ होगा। कई दिनों से ये लोग उसे रास्ते से हटाने की सोच रहे थे। अभी परसों उसने अधपका पनछोछर भात रसोइये के मुंह पर फेंक दिया था।"

पीछे से एक दूसरी आवाज आयी, "अरे कल की बात है। उसने जरासन्ध के गाल पर थप्पड़ जड़ते हुए कह दिया था—एक दिन तोर पारी, एक दिन मोर पारी, आज भैया पारी-पारी।"

लोगों की कानाफूसी देर तक नहीं चल सकी। कैदखाने के लगभग सभी कर्मचारी सामने आ गये थे। रामदेव के शव को दफनाने की बात सुनकर कुन्दन से चुप नहीं रहा गया। उसने कंस मामा को सम्बोधित करके कहा, "कंस मामा, पिछली बार भी हमने इस बात के लिए अपना विरोध प्रकट किया था। रूपलाल भी हिन्दू है, उसे दफनाया नहीं जा सकता। जलाना होगा उसे।"

पल-भर का सन्नाटा रहा।

कुछ देर बाद कंस मामा ने क्रोध-भरे स्वर में कड़ककर कहा, "ठीक है, उसे जला आने की तैयारी की जाये।"

"इतनी जल्दी क्यों पड़ी है ? डाक्टर को तो आने दिया जाये।"

"फ़ेर्म ता गेल !" कंस मामा चिल्ला पड़ा।

और कुन्दन को चुप रह जाना पड़ा। उसके पीछे से किसी साथी ने धीरे-से कहा, "डाक्टर के आइल न आइल बराबर का कुन्दन भैया।"

मान्योक वितरण करते वक्त विभीषण ने कुन्दन के कानों में कहा कि उसकी छुट्टी रद्द कर दी गयी। उसके साथ कोई रियायत नहीं होगी और उसे घायल पाँव के साथ शहर की सड़कें बनाने जाना ही होगा। कुन्दन को इस बात से ज़रा भी दुख नहीं हुआ। मान्योक खाकर उसने भरपेट पानी पी लिया और फिर काम पर जाने के लिए अपने को तैयार पाया।

उजाला होने लगा था, फिर भी सूरज की प्रथम किरणें धरती को छू नहीं पायी थीं। जब कैदखाने के फाटक से कैदियों की दो टोलियाँ निकलीं, तीन-तीन कैदियों के पैर एक ही लम्बी जंजीर में बँधे हुए थे। हेमन्त की आखिरी ठण्डक को अनुभव करते हुए वे चल रहे थे। जंजीरों की खनक के साथ उनके कदम बढ़ रहे थे। कभी-कभार आदत से मजबूर सिपाही उन्हें अनुशासन में लाने के लिए अकारण ही चिल्ला पड़ते।

शहर के उस भाग में पहुँचने पर, जहाँ कैदियों को काम में लगना था, सूरज पूर्वी पेड़ों के ऊपर आ गया था।

चलकर आने की थकान अभी मिटी भी नहीं थी कि उन्हें काम का हुक्म मिल गया। चलने के कारण कुन्दन के पैर का दर्द बढ़ आया था। उसे भीतर-ही-भीतर झेलता हुआ वह कंकड़ों को सड़क पर बिछाने में लगा रहा। कैदियों के पाँव और हाथ

में जंजीर थी। इस पर भी किसी को कमर सीधी करने की इजाजत नहीं थी। मुंह पर बहते पसीने को पोंछने का मतलब था, पीछे से बन्दूक की मूठ का पीठ से लग जाना। पुल और इमारतें बनाते समय भी लोगों की यही दशा होती थी।

पांच घण्टों के लगातार काम के बाद सीटी बजी। जिसको जहां जगह मिली, बैठ जाना पड़ा। मैले हाथों से ही सभी को सूखी रोटी और उबली हुई अरबी लेनी पड़ी। खाने के दौरान कुन्दन का हाथ कोई तीन-चार बार टेंट पर पहुंचा। उस कागज को वह अब भी उसी स्थान पर महसूस रहा था। उन्हें एक बार पढ़ जाने की चाह अब भी उसके भीतर बनी हुई थी। अपनी उत्सुकता को उसे दबाना पड़ा, क्योंकि इस खुली जगह में सिपाहियों की आंखें एक क्षण के लिए भी उन्हें नहीं छोड़तीं। उसके ठीक सामने था जरासन्ध। कुछ देर के लिए अगर वह थोड़ा-सा हट पाता तो सम्भवतः कुन्दन उस कागज पर नजर दौड़ा सकता। कुन्दन इस ताक में रोटी को धीरे-धीरे चबाता रहा। कुछ देर बाद आखिर वह होकर रहा जो कुन्दन मन-ही-मन चाह रहा था। धूप से तंग आकर जरासन्ध कुछ आगे जा बैठा जहां थोड़ी-सी छांव थी। उसे उम्मीद बंधी। उसके हटते ही कुन्दन ने आगे-पीछे देखकर टेंट से कागज को बाहर निकाला। सींक और किसी जंगली फूल के रस से लिखी हुई अस्त-व्यस्त पंक्तियां थीं।

"......जिस दिन सिर पर बोझ लिये दण्ड भुगतता हुआ मैं बड़ी दीवारों के चक्कर काट रहा था, उसी दिन मेरी पैनी नजर को मेरी कोठरी के नीचे की सुरंग का पता लग गया था। यह बात तो मुझे पहले ही से मालूम थी कि इस इलाके में जल-दस्यु सुरंग बनाकर अपने खजाने छुपा जाते थे। दूसरी ही रात मैंने अपनी कोठरी में में सूराख की खोज शुरू कर दी थी। आज पूरे सुरंग का पता चल गया है। अपनी चारपाई के नीचे के दो पत्थरों को हटाकर मैंने उनको सतही रख दिया है। सुरंग चालीस फुट का है, इसका यह मतलब है कि वह नाले के पास निकलता होगा। दीवार पार का मेरा साथी कुछ डरपोक है, फिर भी कल रात हमें इस नर्क से बाहर होकर रहना है—लेकिन यहां हर दूसरे क्षण कुछ-से-कुछ हो जाता है—कल की रात हम दोनों के लिए कैसी रहेगी—मालूम नहीं, इसलिए सुरंग का पता इस कागज पर लिखे जा रहा हूं—भाग्य हमारे पक्ष में रहा तो यह कागज भी हमारे साथ इस चार-दीवारी से पार हो जायेगा—और अगर ऐसा नहीं हुआ तो—जिसके हाथ यह कागज लगे—उसे आजादी मुबारक......।"

कुन्दन ने जल्दी से कागज को मरोड़कर टेंट के हवाले कर दिया। उसकी हैरानी कम होने पर पहला प्रश्न उसके मस्तिष्क में पैदा हुआ—लिखनेवाला है कौन ?

सीटी बज चुकी थी। काम शुरू हो चुका था। हाथों की सक्रियता के साथ-साथ कुन्दन का दिमाग भी सक्रिय रहा। वह सोचता रहा।

—गोली खाकर मर जानेवाला इंजीनियर......।

एक दूसरी उत्सुकता से कुन्दन का ख्याल बोझिल होता गया। अपनी कोठरी में पहुंचकर सच्चाई जानने की उसकी अधीरता बढ़ती गयी। कैदी जीवन की इस लम्बी

अवधि ने जीवन की अलग परिभाषा दे दी थी। यही मानकर साँसें लेने में उसे सुविधा होती कि उसका तो जन्म ही इस चारदीवारी के भीतर हुआ था और मरना भी उसे इसी के भीतर था। इस दायरे से बाहर होकर सोचने में कोई लाभ नहीं था। चारदीवारी के बाहर की कल्पनाएँ अगर कभी-कभार कर लेता तो न जाने किस भावना से विवश होकर। अपने शरीर को दीवारों के भीतर कैद रखकर वह अपने ख्यालों को भी अपने ही भीतर बन्द किये हुए था। लेकिन ...आज अचानक ही उसके ख्यालों ने मुक्ति के लिए संघर्ष किया। उसने अपने आगे चन्द बचे हुए दिनों की कल्पना की। कैसी हो सकती है वह ? अब तक उसका यह ख्याल असम्भव की सलाखों के भीतर बेबस था। वे सलाखें एकाएक गल गयी थीं। दीवारें ढह गयी थीं और सामने पहाड़ थे, नदियाँ थीं, खेत थे, हरियाली थी... साँसों की स्वतन्त्रता थी....। विस्तृत क्षितिज था और... और क्या था.... उसने अपने ख्याल को एक बार फिर से असम्भव की सलाखों की ऊँची दीवारों के बीच बन्द हो जाने दिया।

शाम को अपनी कोठरी के भीतर पहुँचने के लिए वह सामने खड़ा विभीषण का इन्तज़ार कर रहा था। विभीषण बाकी कैदियों को भीतर पहुँचाकर कुन्दन की कोठरी के पास आया। उसकी बगल में मंगरू था। कुन्दन से उसने धीरे से कहा, "कुन्दन, मुझे लगता है कि मेरा दिन एकदम पास आ गया है। शायद तीन-चार दिन और... पर तुम्हारी बगल में मरना लिखा है इसलिए मेरी कोठरी बदली जा रही है। ठीक तुम्हारी बगलवाली में आ रहा हूँ।"

कुन्दन कुछ कह पाता कि तब तक विभीषण ने सलाखोंवाला दरवाज़ा खोलकर कुन्दन को धीरे से भीतर ढकेल दिया, "तुम्हें कल शाम जेलर साहब के सामने हाज़िर होना है।"

यह कहते हुए विभीषण मंगरू के साथ दूसरी कोठरी की ओर बढ़ गया। जाते-जाते कुन्दन ने मंगरू की आँखों में देख लिया था। उसमें मृत्यु की निर्धारित आभा थी।

अपनी कोठरी के भीतर कुन्दन ने विभीषण के वाक्य को दोहराते हुए मन-ही-मन कहा—कल शाम जेलर साहब के सामने ? वही धूप में नंगी पीठ पर सौ कोड़े और पन्द्रह दिनों तक उस बड़ी चक्की को अकेले चलाना ? या इससे भी अधिक ?

चारपाई पर बैठकर वह अँधेरा होने की प्रतीक्षा करता रहा। बार-बार उसकी आँखें चारपाई के नीचे पहुँचकर कुछ ढूँढ़ निकालना चाहती थीं। वहाँ अँधेरा था। वह अँधेरा और कुछ ही समय में पूरी कोठरी को अपने शिकंजे में कस लेगा। बगल की कोठरी से बिरहे की आवाज़ आती रही, अँधेरा बढ़ता गया। वह पूरी कोठरी में छा गया। उस अँधेरे को टटोलती हुई कुन्दन की अँगुलियाँ आगे बढ़ीं।

धीरे-धीरे उसने चारपाई हटायी। दीवार को टटोलता रहा। उसकी अँगुलियाँ एक खंडित पत्थर से दूसरे खंडित पत्थर को जाती रहीं। एकाएक उसकी धड़कनें तेज़ हो गयीं। एक पत्थर डगमगाया, फिर दूसरा। अपनी साँसों को थामे उसने एक पत्थर को धीरे-धीरे खिसकाकर पीछे की ओर हटाया। दूसरा पत्थर आसानी से पीछे आ

गया। कुन्दन ने हाथों से सुरंग का अन्दाजा लगाया। तीन फुट। वह आसानी से उसके भीतर रेंग सकता था। मंगरू की कोठरी में मौत-सा सन्नाटा था। बगल की दूसरी कोठरी से बिरहे की कम्पन-भरी आवाज आती रही। गठरी उठाकर कुन्दन ने अँधेरे की आँखों से एक बार कोठरी के चारों ओर के अँधेरे को देखा। पहली बार उसे अँधेरा प्यारा लगा। उसमें आत्मीयता थी, शीतलता थी। उस अँधेरे में शान्ति की भीनी-भीनी-सी गन्ध थी।

सात

गन्ने का रस उबलते समय हवा सोंधी गन्ध से लद जाती थी। कारखाने के काले धुएँ से वातावरण धूमिल और बोझिल प्रतीत होने लगता था। धुएँ से मुक्त स्थानों में आकाश जितना स्पष्ट दीखता, कारखाने के इर्द-गिर्द वह उतना ही मैला-मैला-सा लगता था। इसीलिए काम समाप्त होते ही किसन पहाड़ी की गोद में चला जाता और वहाँ की साफ नदी में साफ आकाश को देखा करता। ऐसा करने का अवसर उसे बहुत कम मिलता, क्योंकि उसका काम कभी न खतम होनेवाला काम था। यही कारण था कि वह उस पहाड़ी और शीतल नदी-तट के लिए हमेशा लालायित रहता। नदी के पानी में तैरती हुई पेड़ों की हरियाली, पुरैन और कच्चू के पत्ते। उनपर चमकती हुई पानी की बूँदें। वह सभी कुछ उसके भीतर के तार-तार को झंकृत कर जाता। चट्टानों से टकराती फेनिल तरंगों की थपकियाँ उसे उस रोज के नीरस और ऊब के जीवन से काटकर क्षणिक स्वतन्त्रता और आनन्द का आभास देती थीं। कल ही रात की निर्मल चाँदनी को वह नदी के पानी में देख रहा था। स्वच्छ आकाश के तारे इतने पास लग रहे थे कि किसन सोच सका था—बस, थोड़े ही ऊपर जाने पर उन्हें छुआ जा सकता था। ये ही तारे उसकी अपनी धुआँधार बस्ती में कितनी दूर प्रतीत होते थे !

कल काम से छूटकर वह सीधे नदी के किनारे पहुँच गया था। वहाँ से नहाकर घर लौटा था और फिर चाँदनी रात का ख्याल आ जाने पर वह अपनी माँ द्वारा लाख रोके जाने पर भी फिर से नदी को दौड़ गया था। किसन अपना उन्नीसवाँ वर्ष पार कर चुका था। अठारह की उम्र तक वह इतना अधिक डरपोक था कि रात को एक कदम भी अकेले चलने से डरता था। अठारह के बाद उसमें भारी परिवर्तन आ गया था। पहली बार जब रात के वक्त वह नदी की ओर निकला था, उस समय उसके बाप के साथ-साथ पूरी बस्ती हैरान रह गयी थी। नदी एकदम दूर न होकर भी एकदम पास नहीं थी। एक बार किसन ने गिनकर देखा। पूरे बारह सौ कदम पर थी।

आज जब फिर काम पर से लौटते ही किसन ने नदी की ओर पहला कदम उठाया तो रघुसिंह ने उसे रोकने का प्रयत्न किया, "अभी कल दस बजे रात के उधर से लौटल रहले। तोर माँ हियाँ रात भर परेशान रहल।"

"आज रात होने से पहले लौट आऊँगा।"

"ई अपन साथ का लिये जात रहे हो ?"

"नहाकर बदलने के लिए पतुही।"

झूठ कहकर किसन दौड़ गया। लम्बी पथरदार पगडण्डी से होता हुआ वह जब नदी-किनारे पहुँचा तो वहाँ के पेड़ों के झुरमुट के कारण शाम का साँवलापन घना था। काली चट्टान पर खड़े होकर उसने चारों ओर देखा। जोर से सीटी बजायी, फिर अपने हाथ की मारकीन की पतुही को चट्टान पर रखकर वहीं बैठ गया। उसकी आँखें रह-रहकर अगल-बगल को देख जातीं। चट्टान से टकराती फेनिल लहरें उसके पाँवों से भी आँखमिचौली-सी खेल जातीं। कुछ दूरी पर के किसी घने पेड़ पर गाँव-भर के पक्षी इकट्ठे होकर अजीब कोलाहल पैदा कर रहे थे। इस स्थान से किसन को बहुत अधिक प्यार था।

जब वे लोग कुएँ-सी संकुचित उस दूसरी कोठी से इस इलाके में आये थे, उस समय किसन दस-ग्यारह का रहा होगा। इस जगह का पता उसे तीन-चार वर्ष बाद ही लगा था जब पहली बार कन्धे पर कुदाली लिये वह नौकरी के लिए निकला था। इससे पहले अपने घर के आसपास से वह पेड़ों के झुरमुट को बस देखा करता था और सुनता रहता था कि वहाँ नदी है। उसके पार्श्व की पहाड़ी तो उसी समय से उसे मोहे हुए थी। नदी और पहाड़ी की सुन्दरता को निरखते हुए वह मन-ही-मन पूछा करता कि जब लोगों को गाँव ही बसाना था तो फिर इस सुन्दर स्थान में क्यों नहीं बसाया ? अगर उसकी बस्ती नदी के करीब और पहाड़ी के एकदम नीचे होती तो कितना अच्छा होता ! इसके साथ ही उसे यह भी ख्याल आ जाता कि यहाँ अपनी पसन्द से कौन कुछ कर पाता है। कोठीवाले चाहें तो पहाड़ पर [illegible] [illegible] [illegible] के पिंजर लगवा दें।

किसन के पास केवल प्रश्न-ही-प्रश्न थे; उत्तर नहीं था उसके पास। जब भी वह प्रश्न करता, रघु उसके मुँह पर हाथ रख देता। उसका हर वक्त यही कहना होता कि दास प्रश्न नहीं करते, [illegible] [illegible] करते हैं। इतने पर भी किसन के प्रश्न नहीं रुकते। वह उसी स्वर में [illegible] [illegible] पूछ बैठता, "आखिर हम दास क्यों ?"

किसन अपने हर प्रश्न को [illegible] [illegible] [illegible] जबकि रघुसिंह उन्हें बच्चों की जिज्ञासा मानकर उन्हें इधर-उधर के उत्तरों से टाल जाता। अपने दास के किसी भी उत्तर से किसन सन्तुष्ट नहीं था। उसने [illegible] कर लिया था कि उसके प्रश्नों के उत्तर मिलें न मिलें, वह प्रश्न करता ही रहेगा। अपने इर्द-गिर्द के लोगों की हालत को देखते हुए उसे लगता कि इन सारे लोगों ने अपने प्रश्न करने की ताकत को खो दिया है। उनके अभावग्रस्त जीवन का यही कारण था। अपनी [illegible] [illegible] [illegible] कर वे चुपचाप दारुण दण्डों को झेलते आ रहे हैं। किसन बार-बार पूछता—[illegible] क्यों ?

एक बात वह समझ नहीं पाता। तीन वर्षों से वह इधर काम कर रहा था। अपने बड़ों का अनुकरण करते हुए वह भी देह-तोड़ परिश्रम करता। उसकी अपनी किस्मत में भी गालियां थीं, बांसों की बौछार थी। वह क्यों चुपचाप सह लेता था? क्या केवल इसलिए कि शुरू से अब तक सभी लोग सहते आ रहे थे, इसलिए उसका भी वैसा ही करना अनिवार्य था? या वह भी उतना ही बेबस था, उतना ही डरपोक था जितना कि सभी लोग थे? उसके अपने पास केवल प्रश्न होते। तो फिर क्या कारण था कि इन प्रश्नों को जिनके सामने करना चाहिए उनके सामने न करके वह अपने लोगों से किया करता? यह उसके अपने-आप से प्रश्न था।

पिछले सप्ताह खेतों में काम करते हुए वह मुंडेर से नीचे आ गया था। पैर में मोच आ जाने के कारण दो दिन काम पर नहीं जा सका था और उसके लिए उसके चार दिन के पैसे जब्त कर लिये गये थे। कुली बीमार होकर भी घर पर नहीं रह सकता। ऐसा क्यों? जिस गोरे से वह यह प्रश्न करना चाहता था, उसके सामने पहुंचते ही उसकी घिग्घी बन्द हो जाती थी? क्यों?

जिस दिन अपनी आंखों से उसने अपने बाप को बैल की जगह ईख के बोझ को खींचते पाया था, उस दिन उसके भीतर के सभी प्रश्नों ने पिघलकर आक्रोश का रूप ले लिया था। वह आक्रोश भी सीला निकला। वह कुछ नहीं कर सकता था क्योंकि औरों की तरह उसके अपने सवालों में भी उसके अपने हाथ-पांव बंधे हुए थे। उस दिन वह और कुछ न कर सका था। उसके मन और हृदय के कुछ आंसू बहकर रह गये थे। वे आंसू भी इतने गाढ़े थे कि वे उसके तमाम सवालों को बहा न सके। लेकिन क्या प्रश्नों से मुक्ति पाकर वह जी लेगा? उसने तो प्रश्न करते रहने को जीवन मान लिया था। एक बार अपने बाप से यहां तक कह गया था कि उसके प्रश्न करने की शक्ति को बने रहने दिया जाये।

—अगर शुरू से ही प्रश्न किया गया होता तो स्थिति यह नहीं रहती।

फिर उसे लगता—प्रश्न तो आज भी नहीं किया जा रहा। जो आवाज हस्तियों के कानों के लिए हो, उनके चारदीवारी के भीतर गूंजते रहने से क्या होता है?

वह यह मानने को विवश हो जाता कि वह आज भी डरपोक था। कायर था, भीरु था। एक वर्ष पहले की उसकी वह कायरता, वह भीरुता आज भी उसकी अपनी धमनियों में सजीव थी। उसका इस तरह अपने को बहुत अधिक साहसी बताते हुए रात में जंगलों की ओर आ जाना उसकी निर्भयता का द्योतक नहीं था। वह उसके अपने ढंग का भय था। उसकी ऊपरी निर्भयता उसके भीतर के भीषण भय को छिपाने का तरीका था, और कुछ नहीं।

इस एकान्त स्थान में पहुंचकर किसन अपने-आपसे संघर्ष करता रहता। जब थक जाता तो प्राकृतिक गुफाओं में अपने अन्तर्द्वन्द्व को डुबो देता। आज भी लहरों को चट्टानों से टकराकर उन्हें चूर-चूर करने के उस प्रण पर वह गम्भीरता से सोचते रहने के बाद अपने प्रश्न कर बैठा—इस तरह अपनी सतही निर्भयता का प्रदर्शन करके

क्या मैं भी सहरों की तरह सीने आक्रोश को ही व्यक्त तो नहीं कर रहा ? क्या मेरा यह साहस भी इसी तरह फेनिल नहीं ? अगर यही साहस है तो फिर ......?

वह उस व्यक्ति के बारे में सोचने लगा जो सचमुच ही साहसी था। जो कल रात को उसे यहीं मिला था। जिसे देखते ही उसकी सारी निर्भयता काफूर हो गयी थी। वह डर गया था। भीतर-ही-भीतर कांप गया था।

इस समय उसे उसी व्यक्ति की प्रतीक्षा थी। उसी साहसी व्यक्ति की। इस दसवीं उम्र में भी उस आदमी के भीतर के साहस की कल्पना मात्र से किसन प्रभावित था। वह सचमुच ही हिम्मतवाला था। निर्भीकता थी उसमें तभी तो......।

सूरज डूबने के बाद उसके पहुँचने की बात हुई थी। क्षितिज की लालिमा भी धीरे-धीरे मिट रही थी। थके-मांदे दिन को विदाई देकर शाम रात की अगवानी करती सूरज की दिशा को बढ़ती जा रही थी। कल किसन उससे बहुत अधिक बातें नहीं कर सका था। अगर वह ठीक समय पर पहुँच जाता तो काफी बातें हो सकती थीं। किसन उसके लिए फतुही ले आया था। कुल मिलाकर किसन के पास दो ही कमीजें थीं। एक उसके शरीर पर थी, दूसरी को वह घर से उठा लाया था। कल रात उसे यह ख्याल जरूर आया था कि अगर वह एक फतुही उस व्यक्ति को दे बैठता है तो फिर एक ही से वह कैसे पार पायेगा ? एक क्षण चिन्तित होकर दूसरे ही क्षण उसने अपने-आपसे कहा था कि आगे की बात आगे देखी जायेगी।

अँधियारे को बढ़ते पाकर उसे इस बात की चिन्ता हो चली कि कहीं वह नहीं पहुँचा तो ! उसने इस चिन्ता को अपने भीतर घर करने नहीं दिया। उसे झकझोर-कर वह अगल-बगल को देखता रहा। एक बार फिर से जोर की सीटी बजायी। उधर का कलरव धीरे-धीरे कम होने लगा था। नदी की कलकल की आवाज बढ़ आयी थी। अंधेरा अभी उस गहनता को नहीं पहुँचा था कि सामने की चीज दिखायी न पड़े। किसन ने अपने-आपसे पूछा—और अगर वह नहीं आया तो ? पर क्यों नहीं आयेगा ? कई कारण हो सकते हैं। यह भी हो सकता है कि वह गिरफ्तार कर लिया गया हो ?

पर नहीं। किसन इतनी आसानी से यह मानने को तैयार नहीं था। उस आदमी के आने का विश्वास उसे अब भी था। शायद अपने छिपे हुए स्थान से बाहर आने के लिए वह कुछ और अँधेरा चाह रहा हो। हालांकि कैदखाने के पतलून को बदलकर उसने अधफटी पुरानी धोती पहन रखी थी, फिर भी कैदखाने की कमीज तो उसी पर थी। किसन इस तरह सोच ही रहा था कि झाड़ियों के बीच खड़खड़ाहट हुई। उसने उधर देखा। दूसरे ही क्षण आकृति दिखायी पड़ी और धुंधलके में भी किसन ने कुन्दन को पहचान लिया। सामने आते ही कुन्दन ने पूछा, "क्यों बेटे, तुम अकेले हो न ?"

"मैंने कहा था न अकेले ही आऊँगा ?"

"गाँव में तुमने किसी से मेरी चर्चा तो नहीं की है न ?"

"न करने का मैंने आपको वचन दिया था।"

कुन्दन ठीक किसन के पास चट्टान पर बैठ गया।

"दिन-भर आप भूखे रहे क्या ?"

"नहीं...... कुछ पपीते मिल गये थे।"

"मैं आपके लिए फतुही ले आया हूँ। आप इसे तुरन्त पहन लीजिए...... कुछ छोटी होगी पर......। कोई बात नहीं।"

कुन्दन ने जल्दी से अपने ऊपर से कैद की कमीज उतारी। आत्म-शान्ति की गहरी साँस ली। अपने शरीर को बिल्कुल स्वच्छन्द और बोझ से निवृत्त पाया। वर्षों बाद की स्वतन्त्र मुस्कान के साथ किसन की ओर देखा। उसके हाथ से फतुही ली और उसे पहन लिया।

वह, वह क्षण था, जब आदमी के भीतर दर्द पहुँचानेवाले कीड़े कुतरना भूल जाते हैं। और चोट, चोट-सी नहीं लगती।

आठ

कुन्दन की चोट ताजा थी। पहले दिन अपने को खेतों के बीच पाकर उसे जो खुशी हुई थी, वह अधिक देर तक टिक नहीं सकी थी। ईख के पैने पत्तों से उसके पैर का घाव छिल गया था। धोती के अँगोछे से वह उस पर के खून को पोंछ ही रहा था कि पीछे से आवाज़ आयी थी। उस समय उसने उस आवाज़ को विभीषण की आवाज़ मानकर उस ओर अधिक ध्यान नहीं दिया था। दूसरी बार जब आवाज़ के साथ उसने माँ की गाली सुनी तो झुके न रहकर उसने कमर सीधी की थी। पर इससे पहले कि वह सरदार से गाली की वजह पूछ पाता, उसके कन्धे पर ईख का जोरदार प्रहार हो चुका था। वह उसके लिए बिल्कुल तैयार नहीं था। इससे पहले कि होश सँभालकर वह स्थिति को समझ पाता, वह मोटी-सी ईख उसकी पीठ पर टूट गयी थी।

काफी देर बाद होश आने पर कुन्दन ने अपने को ईखों के ढेर पर पाया था। मजदूरों की धुंधली आकृतियाँ दूरी पर थीं। वह अकेला था। अपने पांव की चोट से एक असह्य जलन का उसे अनुभव हुआ था। पीड़ा उसकी हड्डियों तक प्रवेश कर गयी थी। उसकी आँखों से पहले उसका हाथ दर्द पर पहुँचा था। कुछ रूखड़े-से दाने थे उस घाव पर। उसने अपनी आँखें उधर की थीं। उस भारी दर्द से उसकी आँखें पूरी खुल न सकी थीं। अपने पांव को हिलाना तक उससे नहीं हुआ था। उस रात कैद से भागते हुए जब चोट आयी थी, उस समय भी दर्द इतना अधिक नहीं था।

कुन्दन भीतर-ही-भीतर कराहता रह गया था।

उसे दोबारा बेहोशी आकर टूट भी गयी थी। उसके कन्धों पर ईखों की छाप लाल थी। पूरी पीठ में हलकी पीड़ा थी। पर घाव की पीड़ा के कारण कन्धों और

पीठ की पीड़ा, पीड़ा-सी नहीं लग रही थी। अपने पैर के घाव के आसपास के भाग को कुन्दन अपने दोनों हाथों से दबाये रह गया था। कैद के अपने लम्बे जीवन में उसने शायद ही इतना दर्द जाना हो।

उस समय शाम का धुंधलापन छाने लगा था, जब किसन को उसने अपने पास पाया था। किसन ने उसे अपने कन्धे का सहारा देकर खड़ा किया था। गाँव को जाती हुई पगडण्डी पर अपने कानों से उसने अपनी ही आवाज सुनी थी। पहले तो उसे अपनी वह आवाज किसी दूसरे की आवाज-सी लगी थी। उसकी अपनी आवाज मंगरू की आवाज-सी थी। उसका अपना कराहना कैद के भीतर से मंगरू का वही पुराना कराहना था। बहुत दिन बाद उसे मंगरू की याद आयी थी। उसे दुख हुआ कि उस घनिष्ठता की याद उसे पीड़ा के सहारे आयी थी। उसने अपने स्वर को दोबारा सुना था।

"किसन !"

"बहुत अधिक दर्द हो रहा है न चाचा ?"

उसने सिर हिलाकर हामी भर दी थी।

घर पहुँचकर अपने को रावेनाल की टाटी के सहारे छोड़ते हुए उसने किसन से पूछा था, "यह मेरे घाव पर क्या डाला गया है ?"

"यहाँ सभी को अधिक-से-अधिक यातना पहुँचाने के लिए ऐसा किया जाता है चाचा।"

"पर यह चीज है क्या ?"

"नमक !"

"घाव में नमक ?"

"यहाँ जहर ही दवा होता है।"

दूसरे दिन जब उसी हालत में उसे काम पर जाना पड़ा था तो एक बार फिर उसे ख्याल आया था कि बेहतर तो चारदीवारी के दिन ही थे। मंगरू की याद फिर ताजी हो गयी थी। अस्पताल में चारदीवारी की याद करते हुए वह कहता था—आसमान का छूटा बबूल पर। उसका वह वाक्य कुन्दन के भीतर अनुध्वनित होता रह गया था। शाम को धधकते बुखार के साथ वह घर लौटा था। किसन की बात उसने मान ली थी। उस रात गौतम के यहाँ न टिककर वह किसन के घर आ गया था। रघुसिंह ने अपने हाथों उसके घावों पर कच्चे अदरक के लेप दिये थे। किसन ने उसके तलुवों पर पीतल का कटोरा रगड़कर उसके बुखार को उतारने का प्रयास किया था।

तभी से कुन्दन गौतम के साथ रहते हुए भी कभी-कभार किसन के घर भी रात बिता देता था। जिस दिन उसकी इच्छा आल्हा सुनने की होती, उस दिन वह जतन के यहाँ डेरा डाल देता। उन रातों में टीस पैदा कर देनेवाली बिहार की रातों की यादें होतीं। उस दिन वह किसन ही के यहाँ टिका हुआ था जब रघुसिंह ने किसन को डाँटते हुए उसे सरदारों के विरुद्ध जाते रहने से रोका था।

"तोर ईमय हरखनवन से एक दिन हियाँ रहल मुश्किल हो जाये। तू हर दूसरे

खातिर लड़ पड़त हो। इराना मरे विराना फिकिर, बूरबक मरे पराया फिकिर।"

कुन्दन को बीच में बोलना पड़ गया था, "रघु भैया, चुप रहकर भी तो यहाँ रहना आसान नहीं होता।"

इस पर रघुसिंह कुन्दन पर भी वरस पड़ा था, "देवननत् भाई, तू कहाँ ई लईवन के अच्छा रास्ता पर डलवे उलटे तू ही उलोगन के भड़कावत रहत हो।"

"तुम जिसे अच्छा रास्ता कहते हो रघु भाई, वह बुजदिली का रास्ता है।"

बाद में कुन्दन को लगा था कि रघुसिंह के साथ उसकी बहस का कोई भी मतलब नहीं था। काफी देर तक शान्त भाव से सोचते रहने के बाद उसे यह भी मालूम हो गया था कि इस तरह की बातों के लिए रघुसिंह को दोष नहीं दिया जा सकता। उसे बुजदिल समझकर उसने भूल की थी। वह बुजदिली नहीं थी, एक बेवसी थी। रघुसिंह के दोनों हाथ बस्ती के सभी लोगों की तरह पत्थर के नीचे थे। उन हाथों को उस पत्थर के नीचे से खींचकर निकालने में हाथों को घायल कर जाने की सम्भावना थी। लेकिन कुन्दन को तो ऐसा आभास हो रहा था कि ये लोग अपने हाथों को धीरे-धीरे भी पत्थरों के नीचे से निकालने की बात नहीं सोच रहे थे। हाथों के लहूलुहान हो जाने के भय से उन्होंने बिना हिले-डोले अपने हाथों को पत्थरों के नीचे पड़े रहने को छोड़ दिया था। किसन की आँखों में कई बार उसने इस प्रश्न को चमकते पाया था।

—इन हाथों को अभी और कब तक इसी तरह पत्थर के नीचे रहना है?

किसन से बातें करके वह उसके भीतर बेशुमार प्रश्न पाता। वह चाहता कि उन तमाम प्रश्नों में से किसी एक का भी उत्तर किसन को देकर वैसा कर जाना उतना आसान नहीं था।

उसका अपना घाव अभी पूरी तरह भरा नहीं था। पिछली मार और गालियों की बौछार उसे अब भी याद थी, पर वह चुप था। कोई दूसरा रास्ता नहीं था। उसने बोलने की कोशिश की थी और उसका नतीजा भी देख लिया था। उसने तो चन्द दिनों को झेला था और चुप हो गया था जबकि और बाकी लोग कोई बीस वर्ष से झेलते आ रहे थे। ऐसे तो चारदीवारी के भीतर उसने भी बहुत-कुछ झेला था, पर चारदीवारी से बाहर खुले मैदान में उसने उससे बदतर की बात कभी नहीं सोची थी। चारदीवारी से तो वह भाग सका था। यहाँ से कहाँ भागना था?

कई अवसरों पर कुन्दन को ऐसा प्रतीत हुआ था कि यह बस्ती अपने ढंग की चारदीवारी थी। जिन बाकी बस्तियों के बारे में वह सुनता, उनके बारे में भी यही सोचता। बिना दीवारों की इस चारदीवारी में सभी मजदूर कैदी थे। सभी के हाथ-पाँव बँधे थे। सभी के होंठ सिले हुए थे। जीभ जकड़ी हुई थी।

दीवारें दीखने पर उन्हें फाँदा जा सकता है। बेड़ियाँ होने पर उन्हें तोड़ा जा सकता है, पर जहाँ ये चीजें बाहर न होकर आदमी के भीतर हों वहाँ उन्हें कैसे फाँदा और तोड़ा जा सकता है? ये प्रश्न किसन के थे।……और खामोशी होती थी कुन्दन की। एक बोझिल खामोशी जिससे कुन्दन ऊबने लगा था। वह सोचने लगता…।

उसके अपने आगे बहुत कम दिन थे। अपना समूचा जीवन उसने चारदीवारी को भेंट कर दिया था। जो बाकी था, उसे वह अंगुलियों पर गिन सकता था। यह बाकी अवधि अँगड़ाई के साथ समाप्त हो सकती थी। यही एक बात कुन्दन को पसन्द नहीं थी। वह चाहता था कि यह अवधि बिना लम्बी प्रतीत हुए अपने-आप में लम्बी प्रमाणित हो। यहाँ के चन्द दिनों में वह जो लम्बाई महसूसने लगा था, वह बोझिल थी। उसे इस तरह की लम्बाई नहीं चाहिए थी।

कल का दिन भी उसी चारदीवारी के दिनों की लम्बाई लिये हुए था। उस तरह की उमस और ऊब पैदा कर देनेवाली लम्बाई उसे नहीं चाहिए थी। चारदीवारी के लम्बे दिनों में सबसे लम्बा दिन उसके लिए वह दिन था जब रूपलाल के नंगे शरीर पर कोड़े बरसाने के बाद उस पर मिर्चें रगड़ दिये गये थे। कल का दिन उस दिन की याद को एकदम ताजा कर गया था। कल साहब के जूतों की मार से जतन के वे चीत्कार मानो रूपलाल के चीत्कार थे। रूपलाल के चीत्कार के समय वह सलाखों के कारण आगे बढ़ने से बेबस था। जबकि कल जतन के चीत्कार के वक्त वह उसके एकदम पास होकर भी उस तक नहीं पहुँच सका था। फासले की इस लम्बाई से कुन्दन को नफरत थी। बहुत लम्बे समय तक उस फासले की लम्बाई को मिटाने का उपाय ढूँढ़ते-ढूँढ़ते वह हार गया था।

बस्ती के मजदूरों पर जो कुछ बीतता था, उसके सभी लोग आदी थे। उन बातों से किसी के बीच कोई विशेष प्रतिक्रिया नहीं थी। घटनाएँ इस तरह घट जाती थीं गोया आँगन में बैठे हुए कुत्ते पर अकारण ही कोई कंकड़ चला दे। कुत्ते के काँय-काँय करके दुम को टाँगों के बीच छिपा लेना जैसे रोज की साधारण बातें थीं, उसी तरह मजदूरों का कराहना था। बस्ती में कुन्दन नया था। वह अकेला था जो इन घटनाओं का आदी नहीं था। उसके अकेले के लिए वे बातें भिन्न थीं। कुत्ते के काँय-काँय और आदमी के कराहने को वह अकेला था जो अलग-अलग देखता था।

जतन के घर पहुँचकर उसने अपने हाथों से उसके कोड़ों से कटे भागों पर मरहम लगाया था। पड़ोस से आये हुए भात को उसने अपने हाथ से उसे खिलाया था। उस समय अपनी गहरी चोट के बावजूद जतन ने तड़पने से 'आल्हा' उतारा था और उदल-ब्याह का भाग गाने लगा था। ऊपर से छनती हुए उस आदमी के स्वर में उस समय भी ओज था। लेकिन इसके साथ ही जिस विडम्बना पर कुन्दन को दुखद आश्चर्य हुआ, वह साहस के गान करनेवाले उस आदमी की निरीहता थी।

बस्ती के वे घर क्या थे, एक ही दालान और एक ही छत के नीचे कोई चालीस घिरावटें थीं। हर घिरावट को एक घर कहा जाता था। जतन अकेला था, इसलिए उसका घर बाकी घरों से कुछ छोटा था। पिछवाड़े की सभी दीवारें राफिया की थीं और बीच की दीवारें किसी घर में रावेनाल की थीं तो किसी में सन के पुराने बोरों की। कुन्दन को रातें जब इस घर में बीतती तो न जाने क्यों चारदीवारी का अस्पताल याद आ जाता। दोनों जगहों में कोई सम्बन्ध न होते हुए भी न जाने क्यों उसे यह याद

अनायास ही आ जाती थी। बाद में उसने जतन के चेहरे को इसका कारण मान लिया था। चेहरे से जतन मंगरू और यहाँ के सभी बीमार लोगों से भी अधिक बीमार दीखता था।

मंगरू की अपनी पीठ के घाव ताजे थे। लेकिन जतन के घावों को देखकर उसे अपने घाव का ख्याल जाता रहा था। यह आदत उसे कैद से बनी थी।

रात को काफी देर तक जतन से आल्हा सुनते रहने के बाद उसने मन-ही-मन पूछा था—रात में आल्हा गानेवाला यह ओजपूर्ण स्वर दिन होते-होते दब क्यों जाता है? बाँसों और कोड़ों के भय से?

अपने इसी प्रश्न के साथ उसे बस्ती की औरतों और बच्चों की याद आ गयी थी और उसे नींद आ गयी थी। नींद में उसने सपना देखा। एक गधे और एक घोड़े का। गधा काम कर रहा था। घोड़ा सो रहा था। वह सपना जतन की बातों का असर था। जतन ने कहा था, "गधा काम करे, घोड़ा खाय!"

नौ

चावल खाने योग्य था ही नहीं। घोड़ा तो घोड़ा होता है, गधा भी शायद उसे सूंघना न चाहे।

इस सप्ताह मजदूरों को जो चावल मिले थे उनमें खुद्दियों की भरमार थी। शाम के वक्त ओरियानी की शीतल छाया में बैठी किसन की माँ सूप के चावलों को फटक रही थी। धान और खुद्दियों को अलग करने के साथ-साथ वह गोपाल की माँ, रुकमीनवा की बहन और सन्ध्या को पिछली महामारी की घटनाएँ सुना रही थी। घटनाओं के गवाह वे लोग भी थे, परन्तु कोसिला तो खुद मरते-मरते बची थी। उसे अलग की उस छावनी में रखा गया था जहाँ रोज दस-बीस लोग मर रहे थे। गाड़ियों में लदी लाशों को श्मशान की ओर ले जाते हुए वह उन काले लबादेवाले आदमियों को अधखुली खिड़की से देखा करती थी। उसे लगता था कि कुछ ही दिनों में उसकी लाश को भी लाशों के ऊपर लादकर सभी लाशों के साथ एक ही गड्ढे में दफना दिया जायेगा। अगर महामारी के टल जाने पर उसने अपने को जीवित पाया था तो आश्चर्य के साथ।

रघुसिंह ने उसकी उस वापसी को उसका दूसरा जन्म मानकर दूसरे ही दिन देवी की पूजा की थी। वह पूजा चोरी-चुपके की गयी थी, फिर भी मालिक को उसका पता लग ही गया था। दूसरे दिन रघुसिंह से बीसों प्रश्न किये गये थे। कोसिला उन्हीं पुरानी बातों को सुना रही थी। जब वह बिहार में थी तो उसके घर देवी मैया की बहुत बड़ी पूजा होती थी। एक अवसर चूक जाने पर पूरे परिवार पर देवी मैया का प्रकोप छा जाता था। एक तरह से प्रकोप देवी मैया का नहीं होता था। वह गुनुआ

गूंगा की छाया थी जो मरी की तरह लोगों को सताने लग जाती थी। उसी से बचने के लिए हर वर्ष देवी मैया की पूजा आवश्यक हो जाती थी। सुनुआ गूंगा के बारे में अधिक जानने के लिए गोपाल की माँ ने जब जिज्ञासा जाहिर की तो कोसिला ने पूरी कहानी विस्तार से सुना दी।

सुनुआ गूंगा हमारे यहाँ बहुत पुराना नौकर था। उस समय हमारे अच्छे दिन थे। जमीन-जायदाद थी। मैं छोटी थी। बात आँखों देखी तो नहीं है, पर हमारे खानदान में सभी लोग उस कहानी से परिचित थे। सुनुआ बहरा और गूंगा भी था, पर बहुत ही मेहनती और आज्ञाकारी था। एक दिन खेत में बोआई हो रही थी। मेरे बाबा ने सुनुआ को खेत से घर भेजा ताकि वह बीज की टोकरी वहाँ से ले आये। मेरे बड़े भाई की नयी-नयी शादी हुई थी। घर पर हम दो-तीन छोटे बच्चों के अलावा एक ही सयाना आदमी था। वह थी बड़े भाई की दुल्हन। गूंगे से जब बीज की भारी टोकरी नहीं उठी तो मेरी भौजी ने आगे आकर टोकरी को उसके सिर पर पहुँचाने में मदद की। ऐसा करते हुए उसकी माँग से थोड़ा-सा सिन्दूर टोकरी पर गिर पड़ा था। खेत पहुँचकर सुनुआ ने जैसे ही सिर से टोकरी नीचे उतारी, मेरे बाप की नजर सबसे पहले टोकरी पर के सिन्दूर पर पड़ी। उसी क्षण खीस से तमतमाते हुए उसने गूंगे से पूछा, "तुमने घर पर बहू से छेड़छाड़ की है, तभी तो उसके माथे का सिन्दूर इस टोकरी में गिर सका है। बोल, तुम बोलते क्यों नहीं ?"

और जब सुनुआ गूंगे से अपने बचाव के लिए शब्द भी नहीं कहा जा सका तो मेरे बाप ने आपे से बाहर होकर हाथ की कुदाली उसके सर पर दे मारी थी। उसी क्षण सुनुआ गूंगे की मृत्यु हो गयी थी। तभी से हमारे खेत की रौनक तो जाती ही रही, साथ-साथ हमारे परिवार पर उसकी वह भटकती आत्मा सवार हो गयी।

कहानी समाप्त करती हुई कोसिला बोली, "हमके त अभी भी ओकर डर लगेला बहिन।"

सन्ध्या को हँसते पाकर कोसिला गोपाल की माँ से बोली, "देखत हवे बहिन। एकर और किसनवा के लिए त ई सब भरम के बात है। अभी सिर पर ना पड़ल बा। परी तब जनियन स।"

गोपाल की माँ आँखें बन्द करके मन्त्र पढने लगी।

जिस समय पुष्पा अपनी ओढनी में पैबन्द लगाती हुई वहाँ पहुँची, गौतम की माँ उस चुड़ैल की कहानी सुना रही थी जिसके कारण उसके सातों बच्चों में से एक का भी स्वास्थ्य अच्छा नहीं था। किसी को रोहानी नहीं थी। उसके ससुर की जान भी लेकर वह चुड़ैल बच्चों का पीछा नहीं छोड़ रही थी।

पुष्पा हँसती हुई पीढ़े पर बैठ गयी। गौतम की माँ की कहानी समाप्त होने से पहले गोपाल की माँ ने अपनी कहानी शुरू कर दी। उसका आदमी तो बड़े-बड़े भूतप्रेत और चुड़ैलों को मुट्ठी में बाँधे रहता था। घर के कोने में जो देवकूर था वहाँ उसके घुटने के बल हो जाने पर बस···· बोल भगत, का चाहेला ? जलते हुए कपूर को

उसने हाथों में लेकर शरीर को झकझोरा और वर्षों से लगा हुआ भूत पाँवों को सिर पर रखे भाग खड़ा होता है।

सन्ध्या और पुष्पा एकसाथ हँसती रहीं।

गौतम की माँ कुढ़कर रह गयी। मन-ही-मन बोली—देख छोंड़ी समधिन।

सन्ध्या और पुष्पा बात करती हुई बरगद के नीचे के चबूतरे के पास जा पहुँची। पुष्पा को चिकोटी लेती हुई सन्ध्या बोली, "तू इस तरह बेशरम-सी हमारे यहाँ न आया-जाया करना!"

"क्यों री? मेरा आना-जाना तुम्हारी आँखों में खटकता है क्या?"

"तुम्हें मेरे भाई की दुल्हन बनकर जो आना है।"

पुष्पा का चेहरा लाल हो गया। दोनों के ठीक सामने दो गौरैया जमीन से कीड़े-मकोड़े चुगने में लगी हुई थीं।

"अरी हाँ, तुम्हें एक बात बताना भूल गयी।"

"कौन-सी बात?"

"सत्या ने किसन के लिए धोती और सर का रूमाल भेजा था।"

"मुफ्त में?"

"भेंट में दी थी।"

"क्यों?"

"लो? मैं कैसे जानूँ क्यों?"

"किसन ने क्या किया?"

"तुम्हीं बताओ तो उसने क्या किया होगा?"

"भेंट को स्वीकार कर लिया होगा।"

"नहीं। उसने उसी क्षण चीजें लौटा दी थीं।"

पुष्पा की आँखों में चमक आ गयी।

कुछ देर तक वहाँ बैठकर इधर-उधर की बातें करते रहने के बाद दोनों अपने-अपने घर लौटने के लिए खड़ी हुईं। उसी समय सन्ध्या को एक बात याद आ गयी, "आज तो मैं गोदना गोदाके ही रहूँगी।"

"अरी तू अभी तक यह बात भूली नहीं। पर मेरी माँ इस समय कामों में न लगी हो तब तो!"

"मैं कुछ नहीं जानती। चाची हर बार इसी बहाने से बात टालती आयी है। आज मैं बिन हाथ गोदाये घर नहीं जाऊँगी।"

पुष्पा के बायें हाथ को अपने हाथों में लेकर वह उसके गोदनाओं को देखती रही। सचमुच पुष्पा के हाथ का गोदना बहुत सुन्दर था। फूलवन्ती ने काफी समय लगाकर अपनी बेटी के हाथ में सबसे भिन्न गोदना की थी। सन्ध्या भी ठीक उसी तरह की गोदना अपने हाथ में चाहती थी। इसीलिए फूलवन्ती हर बार उसे टालती रही थी। उस तरह की गोदाई आसान नहीं थी।

फूलवन्ती घर लीपने के लिए गोबर सान रही थी जब दोनों उसके सामने पहुँचीं।

"माँ, तुम सन्ध्या का हाथ गोद दो, मैं घर लीपे देती हूँ।"

"आज त बहुत काम बाते बेटी ! काल्ह जरूर गोद सकब।"

"नहीं चाची, तुम्हें आज ही गोदना होगा।" सन्ध्या ठुनकती हुई बोली।

"हाँ माँ, आज ही गोद दे।"

दोनों एकसाथ जिद करती रहीं और फूलवन्ती को अपनी जगह से उठकर गोबर में सने हाथों को धोना ही पड़ा। पुष्पा उसी क्षण घर लीपने बैठ गयी और फूलवन्ती हाथ में सुई और काली स्याही लिये सन्ध्या के आगे बैठ गयी।

"बोल, कौंची गोदवाएगी ? शंखा चुड़ी कि कदमगाछ ?"

"जो पुष्पा के हाथ में है।"

"ओकर हाथ मे त शंखा चुडी है।"

"तो फिर वही गोदो।"

"सुई के दरद सहे सकबे न ?"

"अरी चाची, तुम गोदोगी भी या यों ही बातें करती रहोगी ?"

"अच्छा ला हाथ।"

"कौन-सा ?"

"बाँया।"

अपने हाथ को आगे बढ़ाते हुए सन्ध्या ने कहा, "चाची जोर से मत दुखाना।"

"अभिये से तोर जान जाई लगल !"

गोदना का गीत गुनगुनाती हुई फूलवन्ती अपने काम में लग गयी। उन चुभती सुइयों को सन्ध्या चुपचाप सहती रही। दर्द बहुत अधिक होने पर वह अपने निचले होंठ को दाँतों से दबा जाती और फूलवन्ती हँसती हुई उसके हाथ को फूँकने लग जाती। इधर अगर फूलवन्ती किसी का भी हाथ नहीं गोदती थी तो उसका एक दूसरा कारण यह भी था कि ऐसा करते हुए उसे अपने घरवाले की याद बहुत अधिक आने लगती थी। उसके अपने हाथ में जो कदमगाछ था, उसे उसके घरवाले ही ने गोदा था। उस गोदने के नीचे उसने अपने नाम का पहला अक्षर भी लिख दिया। उसी से फूलवन्ती ने गोदाई सीखी थी। उसकी अनुपस्थिति में यह काम करते हुए उसके भीतर कसक पैदा होती थी।

घर लीपती हुई पुष्पा अपनी माँ की ओर मुड़ पड़ी।

"माँ, तुमने सुना ?"

"कौंची ?"

"कुएँ पर आज जो चर्चा हुई थी।"

"घर बैठल हम कुँआ के बात कैसे सुनब पुप्पी ?"

"तुमने सुना सन्ध्या ?"

"नहीं।"

"पड़ोस की बस्ती में एक गर्भवती औरत को गोली मार दी गयी।"

फूलवन्ती ने गोदना रोककर पुष्पा की ओर देखा।

"उसके पति से कोल्हू चलवाने के बाद उसे पेड़ से लटका दिया गया था। उसकी औरत ने गोरे के मुँह पर थूक दिया था और इसीलिए गोरे ने उस पर गोली चला दी।

'यह कब की बात है पुष्पी ?"

"परसों की तो बात है।"

एक लम्बी सांस के साथ फूलवन्ती ने फिर से गोदना शुरू कर दिया।

ऊपर का आकाश बादलरहित था।

दस

आकाश के चांद और फिर उसके इर्द-गिर्द के तारों को ध्यान से देखते हुए रघुसिंह ने उन्हीं महत्त्व खोते तारों में से किसी एक तारे की तरह अपने को पाया। देवननन् को कोठी में आये अभी पूरा महीना भी नहीं हुआ था, फिर भी कोठी में उसका वही स्थान हो गया था जो आकाश में चांद को था। रघुसिंह को लगता कि इस आगन्तुक की उपस्थिति से उसकी अपनी चमक घट गयी थी। इस बस्ती के डेढ़ सौ मजदूरों के बीच उसकी जो हैसियत थी, जो महत्त्व था, वह अचानक ही कम हो गया था। उसने मस्तिष्क पर जोर देकर कुछ बीती हुई घटनाओं को याद किया।

......सात वर्ष से ज्यादा ही हुआ होगा उस पहली कोठी से हटे। इतने लम्बे समय से वह वहां के लोगों के बीच था, सामने के गन्ने का कारखाना उसकी आंखों के सामने बना था। कोठी उसके देखते-देखते बसी थी। कुएँ दोनों उसने खुदवाये थे। तीन वर्ष लगातार पंचायत का मुखिया होते चला आ रहा था। बड़े ही साहस के साथ देश की पहली शादी का आयोजन उसी ने करवाया था। इस द्वीप में हिन्दू रीति-रिवाज से हुआ सन्तू और सोमा का विवाह पहला विवाह माना जाता है। कुलियों को विवाह करने का अधिकार ही कहां था। खुद रघुसिंह ने तो कतार में घूंघट में खड़ी कोकिला के पांव की केवल पायली देखकर उसे पत्नी मान लिया था। रघुसिंह ने इस बस्ती में और भी कई छोटे-बड़े काम किये थे जिनके कारण गांव के उमर वाले भी उसे उतने ही आदर के साथ देखते थे। लेकिन इधर कुछ दिनों से उसे लोगों के बीच का अपना महत्त्व घटता-सा दीखने लगा था।

शुरू में जब यह कोठी बसी थी, उस समय कठिनाई से पचास आदमी रहे होंगे। घरों की एक ही कतार थी। सामने की दूसरी कतार तो उस वक्त बनी थी जब दूर की किसी कोठी से भागकर एक ही सप्ताह के भीतर कोई सौ मजदूर इधर

आ गये थे। कुछ ने अपने भागने का कारण वहाँ के मालिक की चरित्रहीनता बतायी थी। दिन दहाड़े वह औरतों को अपनी बाँहों में कस लेता था। कुछ लोगों को इसी बात के विरुद्ध आवाज उठाने के कारण वहाँ से जबरन निकाला गया था। सभी के लिए रघु ने खुद लंगड़वा साहब से बातें की थीं। लंगड़वा साहब को नयी कोठी के लिए मजदूरों की सख्त जरूरत थी, इसलिए वह रियायत कर गया था। दो-तीन मजदूर तो अपने कागज-पत्र वहीं भूल आये थे। रघु के गिड़गिड़ाने पर लंगड़वा साहब ने उन लोगों को भी कोठी में रख लिया था। उसी क्षण से रघु बस्ती का मुखिया समझा जाने लगा था।

बस्ती के दो आदमी देवननन् के फेरे में इस तरह आ गये थे कि वही उनके लिए सभी कुछ था। रघुसिंह का अपना बेटा तो था ही, परसदवा का बेटा भी अब उसका पिछलगवा बन गया था। इस अहीर के छोकरे गोपाल को तो रघुसिंह ने कैद होने से बचाया था।

यही नहीं, उस देवननन् के साथ पूनम की रात होने के कारण गोपाल घरो की दोनों कतारों के बीच के चबूतरे पर बैठा चिल्लाये जा रहा था।

उसका कभी न खत्म होनेवाला वह बिरहा रघु के कानों को चुभने लगा था। वहाँ के कोलाहल के कारण उसे नींद भी नहीं आ रही थी। उस कोलाहल में उसे किसन का स्वर भी सुनायी पड़ जाता था जिससे उसकी खीज और भी बढ़ जाती। अपनी बगल की दूसरी चटाई पर लेटी हुई कोसिला से उसने पूछा, "इतना देरी ले उ किसुनवा हुआँ करत का बा ?"

"जहाँ पूरा बस्ती गावत-बजावत बा हुआँ तोहरे किसुनवा का क्या फिकर होवे लगल।"

"जोन बाँस बाँसुरी तोने बाँस सूप दौरी।"

कुन्दन ने केवल अपना नाम ही नहीं बदला था। देवननन् होने के साथ-साथ अपना चेहरा भी बदल लिया था। घनी मूँछ-दाढ़ी में उसका चेहरा और भी गम्भीर हो गया था। कोठी के मालिक के सामने पहुँचकर जब उसने नौकरी की माँग की थी तो मालिक ने बड़ी-बड़ी आँखों से उसे घूरते हुए कहा था कि वह पहले अपनी दाढ़ी बना आये। किसन, जो कि बगल में खड़ा था, झट शुद्ध फ्रेंच में कह उठा था, "साहब ! देवननन् पंजाबी है और पंजाबी के लिए दाढ़ी रख छोड़ना धर्म है।"

आसानी से बात न माननेवाला लंगड़वा साहब ने किसन की बातों में आकर कुन्दन का नाम मजदूरों की सूची में लिख लिया था। वह कागज-पत्तर की बात करता कि इससे पहले ही किसन ने उसे बता दिया कि पिछली कोठी से निकाले जाने के कारण देवननन् की सभी चीजें जब्त कर ली गयी थी।

मुद्दत बाद की अपनी स्वतन्त्रता को कुन्दन ने जी-भरकर भोगा। कोड़े की हर मार, गालियों की हर बौछार को वह दूसरे ही दिन भूल जाता। उसे अपनी इस सहजता पर स्वयं आश्चर्य था। एक तरह से पूरी बस्ती उसके साथ [illegible]

गयी थी। रात हल्की ठण्ड लिये हुए थी। चबूतरे के बीच की आग के प्रकाश में सभी के चेहरों पर की उमंगें साफ चमकती दीख रही थीं। कुन्दन को गाना तो बिल्कुल नहीं आता था, फिर भी गोपाल के राग से प्रभावित होकर वह भी स्वर में स्वर मिला जाता था।

पहली बार जब काफी रात तक लोगों का गाना-बजाना होता रहा था तो लंगड़वा साहब ने आदमियों को भेजकर उसे रोकने का आदेश दिया था। सुबह किसन कुन्दन और गोपाल को साथ लिए कोठी पर पहुँचा था। बड़ी कठिनाई से वह लंगड़वा साहब तक पहुँच पाया था, पर उसकी दरखास्त को साहब ने मानने से इन्कार कर दिया था। बाद में तीनों के बीच यह तय हुआ था कि आगे जो होगा देखा जायेगा। अभी कल ही किसन को साहब के सामने प्रस्तुत किया था। धमकियों के बावजूद आज भी आधी रात तक महफिल जमी रही। किसन को विश्वास था कि इस बार वह साहब के सामने जो दलील रख आया था वह खाली नहीं जा सकती। लंगड़वा साहब का असली नाम रेमों साहब था। उसने कहा था, "तुम लोग जंगलियों की तरह शोर मचाते हो।"

ढिठाई के साथ किसन ने कहा था, "नहीं साहब, हम अपनी थकान दूर करते हैं ताकि दूसरे दिन ताजगी के साथ काम शुरू कर सकें।"

उसकी इस बात से रेमों साहब का क्रोध थोड़ा-बहुत कम हो गया था। इसी को किसन ने अपने ढंग की इजाजत मान ली थी। आज रात पिछली रातों से भी अधिक देर तक गाना-बजाना होता रहा। गोपाल के स्वर में थकान के कारण एक तरह का कम्पन-सा आ गया था।

······ईंधन के कट जाने से हो रे मोरे भैया हो।
पनिया से बचना होवे ला बड़ा ही मुश्किलवा।
चप-चप भीग के उधर टक-टक देखी ला हो।
जहाँ सजनी की ओढ़नी नीचे छीपे ला कोई और······।

हर दूसरी पंक्ति के चार शब्दों को सभी लोग मिलकर दोहरा जाते और उसके बाद ही किसन अपने हाथ की डफली को इस तरह थप-थपा उठता कि बैठे-ही-बैठे लोग झूमने लग जाते। लोग दिन-भर की कड़ी मेहनत की थकान को सचमुच ही भूल जाते··· ·कोड़ों और बाँसों की बौछार के दर्द भी अपने-आप कम हो जाते थे। गा-बजाकर तथा खुली हवा को अपनी फरियाद सुना कर ये सभी मजदूर आश्वासन पा जाते। भीतर और बाहर की पीड़ा को कम करने के लिए इससे अच्छा उपाय उनके लिए दूसरा था ही नहीं। वह उल्लास उनके अपने ढंग का रो-तड़पकर अपनी कुण्ठा को मिटाना था। उसे भूल जाना था।

जिस दिन किसन की आँखों के सामने गोपाल की पीठ पर एक ही साथ बाँस, चाबुक और जूतों की बौछार हुई थी उस दिन किसन दाँतों से अपने निचले होंठ को काटकर घटनास्थल पर अपने को रोक पाया था, पर उससे उसके भीतर का रोदन

बन्द नहीं हुआ था। उसके जीवन का वही एक दिन था जब नदीकिनारे काली चट्टान पर बैठकर वह घण्टों तक जो भी मन में आया था गाता रह गया था। अपने हृदय के आँसुओं को सुखा देने का यही एक सहज उपाय कोई उन्हें बता गया था। कभी यह भी होता कि यह महज उन्हें असमर्थता का आभास देकर उन्हें और भी दुखी कर जाता, पर किसन उसे क्षणिक मानकर आगे के लिए बहुत-कुछ सोचने में लगा रहता।

टोपवाले दूसरे साहब को एक बार खुश-सा पाकर किसन ने डरते-डरते धीरे-से पूछा था, "साहब ! इस जी-जान की मेहनत का हमें गलत इनाम क्यों दिया जाता है ?"

टोपवाले साहब के चेहरे का रंग बदलते देर नहीं लगी थी। उत्तर के बदले मे उसने डाँटकर पूछा था, "क्या कहा तूने ?"

अपने को सँभालने में किसन ने थोड़ा समय लिया था। उसके पास प्रश्नों की कमी नहीं थी, इसलिए उसने इस बार कुछ और धीमे स्वर मे पूछा था, "गाड़ियों के बोझ हमारी पीठ पर क्यों तोड़े जाते है साहब ?

"तुम सभी को आदमी बनाने के लिए।"

किसन के भीतर एक ही साथ कई प्रश्न पैदा हुए थे, पर साहब की ओर देख कर उससे प्रश्न करने की हिम्मत जाती रही थी। साहब ने अपने कुत्ते की जंजीर किसन के हाथ मे थमाते हुए आदेश दिया था, "इसे नदी से नहला लाओ।"

नदी के उस विशेष ठौर पर जहाँ साहब के कुत्ते को नहलाया जाता था, वहाँ आज भी किसी आदमी को नहाने की इजाजत नहीं मिलती। एक बार खुद किसन को वहाँ नहाते पकड़ा गया था और उसके लिए उसे अपनी नंगी पीठ पर दस कोड़े सहने पड़े थे। सजा उसे सात कोड़े की हुई थी, पर चूँकि उसने प्रश्न करना चाहा था, इस-लिए तीन कोड़े और भुगतने पड़े थे। उसी दिन उसने नया गीत बनाया था। गीत इतना अच्छा बन गया था कि तीन ही चार दिन में बस्ती के कई लोग उसे गुनगुनाने लगे थे।

बाद में उस गीत के लिए भी उसे चन्द कोड़े और खाने पड़े थे। बीच खेत में दो साहबों के पीछे से सरदार ने सभी मजदूरों को चेतावनी दी थी कि आइन्दा किसी ने उस गीत को गाने की कोशिश की तो उसे नौकरी और बस्ती से निकाल दिया जायेगा। फिर तो कभी-कभार घर के भीतर एकदम ही धीमे स्वर में उस गीत को गा लिया जाता।

आज की महफिल मे जब सभी कुछ भूलकर लोग झूमने लगे थे तो किसन भी सभी कुछ भूलकर उस गीत को शुरू कर गया—

······ओ रे रे मूसे लगड़वा के राज मे।
कुतवन के बड़ा भाग बा
दुम हिलावल से ओकर त बनल बात बा
मूसे रेमो के राज मे

गयी थी। रात हल्की ठण्ड लिये हुए थी। चबूतरे के बीच की आग के प्रकाश में सभी के चेहरों पर की उमंगें साफ चमकती दीख रही थीं। कुन्दन को गाना तो बिल्कुल नहीं आता था, फिर भी गोपाल के राग से प्रभावित होकर वह भी स्वर में स्वर मिला जाता था।

पहली बार जब काफी रात तक लोगों का गाना-बजाना होता रहा था तो लंगड़वा साहब ने आदमियों को भेजकर उसे रोकने का आदेश दिया था। सुबह किसन कुन्दन और गोपाल को साथ लिए कोठी पर पहुँचा था। बड़ी कठिनाई से वह लंगड़वा साहब तक पहुँच पाया था, पर उसकी दरखास्त को साहब ने मानने से इन्कार कर दिया था। बाद में तीनों के बीच यह तय हुआ था कि आगे जो होगा देखा जायेगा। अभी कल ही किसन को साहब के सामने प्रस्तुत किया था। धमकियों के बावजूद आज भी आधी रात तक महफिल जमी रही। किसन को विश्वास था कि इस बार वह साहब के सामने जो दलील रख आया था वह खाली नहीं जा सकती। लंगड़वा साहब का असली नाम रेमों साहब था। उसने कहा था, "तुम लोग जंगलियों की तरह शोर मचाते हो।"

ढिठाई के साथ किसन ने कहा था, "नहीं साहब, हम अपनी थकान दूर करते हैं ताकि दूसरे दिन ताजगी के साथ काम शुरू कर सकें।"

उसकी इस बात से रेमों साहब का क्रोध थोड़ा-बहुत कम हो गया था। इसी को किसन ने अपने ढंग की इजाजत मान ली थी। आज रात पिछली रातों से भी अधिक देर तक गाना-बजाना होता रहा। गोपाल के स्वर में थकान के कारण एक तरह का कम्पन-सा आ गया था।

......ईखवन के कट जाने से हो रे मोरे भैया हो।
पनिया से बचना होवे ला बड़ा ही मुश्किलवा।
चप-चप भीग के उधर टक-टक देखी ला हो।
जहाँ रजनी की ओढ़नी नीचे छीपे ला कोई और......।

हर दूसरी पंक्ति के चार शब्दों को सभी लोग मिलकर दोहरा जाते और उसके बाद ही किसन अपने हाथ की डफली को इस तरह थप-थपा उठता कि बैठे-ही-बैठे लोग झूमने लग जाते। लोग दिन-भर की कड़ी मेहनत की थकान को सचमुच ही भूल जाते.... कोड़ों और बाँसों की बौछार के दर्द भी अपने-आप कम हो जाते थे। गा-बजा-कर तथा खुली हवा को अपनी फरियाद सुना कर ये सभी मजदूर आश्वासन पा जाते। भीतर और बाहर की पीड़ा को कम करने के लिए इससे अच्छा उपाय उनके लिए दूसरा था ही नहीं। यह उल्लास उनके अपने ढंग का रो-तड़पकर अपनी कुण्ठा को मिटाना था। उसे भूल जाना था।

जिस दिन किसन की आँखों के सामने गोपाल की पीठ पर एक ही साथ बाँस, चाबुक और जूतों की बौछार हुई थी उस दिन किसन दाँतों से अपने निचले होंठ को काटकर घटनास्थल पर अपने को रोक पाया था, पर उससे उसके भीतर का रोदन

बन्द नहीं हुआ था। उसके जीवन का वही एक दिन था जब नदीकिनारे काली चट्टान पर बैठकर वह घण्टों तक जो भी मन में आता था गाता रह गया था। अपने हृदय के आँसुओं को भुला देने का वही एक महज उपाय कोई उन्हें बता गया था। कभी यह भी होता कि यह महज उन्हें असमर्थता का आभास देकर उन्हें और भी दुखी कर जाता, पर किसन उसे क्षणिक मानकर आगे के लिए बहुत-कुछ सोचने में लगा रहता।

टोपवाले दूसरे साहब को एक बार खुश-सा पाकर किसन ने डरते-डरते धीरे-से पूछा था, "साहब ! हम जी-जान की मेहनत का हमें गलत इनाम क्यों दिया जाता है ?"

टोपवाले साहब के चेहरे का रंग बदलते देर नहीं लगी थी। उत्तर के बदले में उसने डाँटकर पूछा था, "क्या कहा तूने ?"

अपने को सँभालने में किसन ने थोड़ा समय लिया था। उसके पास प्रश्नों की कमी नहीं थी, इसलिए उसने इस बार कुछ और धीमे स्वर में पूछा था, "गाड़ियों के बाँस हमारी पीठ पर क्यों तोड़े जाते हैं साहब ?

"तुम सभी को आदमी बनाने के लिए।"

किसन के भीतर एक ही साथ कई प्रश्न पैदा हुए थे, पर साहब की ओर देख कर उससे प्रश्न करने की हिम्मत जाती रही थी। साहब ने अपने कुत्ते की जंजीर किसन के हाथ में थमाते हुए आदेश दिया था, "इसे नदी से नहला लाओ।"

नदी के उस विशेष ठौर पर जहाँ साहब के कुत्ते को नहलाया जाता था, वहाँ आज भी किसी आदमी को नहाने की इजाजत नहीं मिलती। एक बार खुद किसन को वहाँ नहाते पकड़ा गया था और उसके लिए उसे अपनी नंगी पीठ पर दस कोड़े सहने पड़े थे। सजा उसे सात कोड़े की हुई थी, पर चूँकि उसने प्रश्न करना चाहा था, इस-लिए तीन कोड़े और भुगतने पड़े थे। उसी दिन उसने नया गीत बनाया था। गीत इतना अच्छा बन गया था कि तीन ही चार दिन में बस्ती के कई लोग उसे गुनगुनाने लगे थे।

बाद में उस गीत के लिए भी उसे चन्द कोड़े और खाने पड़े थे। बीच खेत में दो साहबों के पीछे से सरदार ने सभी मजदूरों को चेतावनी दी थी कि आइन्दा किसी ने उस गीत को गाने की कोशिश की तो उसे नौकरी और बस्ती से निकाल दिया जायेगा। फिर तो कभी-कभार घर के भीतर एकदम ही धीमे स्वर में उस गीत को गा लिया जाता।

आज की महफिल में जब सभी कुछ भूलकर लोग झूमने लगे थे तो किसन भी सभी कुछ भूलकर उस गीत को शुरू कर गया—

"……ओ रे रे मूसे लगड़वा के राज में।
कुतवन के बड़ा भाग बा
दुम हिलावल से ओकर त बनल बात बा
मूसे रेमो के राज में

गोर चाटे के मोल था
आदमी था कुत्ता। कुत्ता सरदार था
ओ रे……रे मूसे।
किसन की आवाज पुष्पा को आज बहुत अधिक अच्छी लगी।

ग्यारह

पुष्पा ने किसन को जिस घटना की याद दिलायी, वह महामारी के छः महीने बाद की थी। एक संकट के मारे वे लोग अभी अच्छी तरह सँभल भी नहीं पाये थे कि वह तूफान आ गया था। उस घड़ी को याद करते ही सभी कुछ एक बार फिर से आँखों के सामने गुजरने-सा लगता था। सभी कुछ आकाश के लाल होने से शुरू हुआ था। फिर अकुलाहट-भरी उमस फैली थी। हवा सांय-सांय करने लगी थी। रात होते-होते वर्षा मूसलाधार हो गयी थी। बादल गरजने लगे थे। डरावनी बिजलियाँ चमकने लगी थीं। और देखते-ही-देखते हवा की रफ्तार एकदम बढ़ गयी थी। बस्ती के घरों की सभी खिड़कियाँ, सभी दरवाजे बन्द कर लिये गये थे। घरों के भीतर सहमे हुए लोग हनुमानचालीसा का पाठ करने लग गये थे।

इस तरह की भय-भरी स्थिति का यह एक ही वर्ष के भीतर तीसरा अवसर था। पहला अवसर महामारी के तीन महीने पहले था। जब पश्चिमी आकाश में धूमकेतु देखकर पूरी बस्ती में यह डरावना स्वर फैल गया था कि आकाश में तारे के साथ झाड़ू उगा है। जवान लोगों ने पहली बार सुना कि झाड़ू उगना आगे के दिनों के बहुत बड़े संकट का संकेत होता है। वह झाड़ू सात दिनों तक आकाश पर रहा। उससे लोगों का भय बढ़ता ही गया था। उस अवसर पर भी सभी दरवाजे-खिड़कियाँ सवेरे ही बन्द हो जाती थीं।

पुष्पा ने तूफान की याद दिलायी थी। तूफान के उस भयावह अवसर पर ही उसकी और किसन की घनिष्ठता बढ़ी थी। पेड़ों के साथ-साथ घर की दीवारें तक हिलने लगी थीं। छप्पर टुकड़े-टुकड़े होकर उड़े जा रहे थे। उसी डरावनी रात में किसन ने पुष्पा को मौत के मुँह से बचा लिया था। अपना घर बिना छत का हो जाने के कारण पुष्पा अपनी माँ के साथ उस मूसलाधार वर्षा और प्रलयकारी हवा वाली रात में दूसरे आश्रय की ओर बढ़ रही थी। जब बरगद के पेड़ की एक मोटी-सी डाली उस पर गिरने ही वाली थी कि न जाने किस संयोग से बिजली के क्षणिक प्रकाश में किसन ने उस चरमराती डाली को देख लिया था। वह भी बिजली ही की तरह पुष्पा तक पहुँच गया था और उसे धक्का देकर उसके साथ खुद दूरी पर जा गिरा था जहाँ सिर्फ डाली के पत्ते दोनों को छू सके थे।

तूफान भयंकर होता गया था। दोनों ने रात जतन की छत के नीचे बितायी

थी। उसी घटना की याद पुष्पा आज किसन को दिला गयी। उस समय किसन आज से अधिक डरपोक था। आकाश में उगे झाड़ से वह दहल गया था। आशंकाओं में जकड़ा हुआ वह घर से बाहर नहीं होना चाहता था। तूफान का भी उसे उतना ही डर था। लेकिन न जाने वह कौन सी दैवी शक्ति थी जिसके कारण पुष्पा के सामने वह सबसे साहसी प्रमाणित होकर रह गया था।

तूफान की समाप्ति पर जब वातावरण शान्त और सुहावना था तो पुष्पा के घर की छत को ठीक करने के लिए किसन ही पहला आदमी वहाँ पहुँचा था। इस तरह की कुछ और बातें थीं जिनके कारण पुष्पा किसन का हर समय आभार मानती रहती थी और किसन को इन बातों से चिढ़ थी।

तूफान के तीन दिन बाद किसन नदीकिनारे बैठा नया गीत तैयार करने में लगा हुआ था जब सूखे कपड़ों की गठरी लिये पुष्पा उसके पास आ गयी थी। गठरी में पूरी बस्ती के कपड़े थे जिन्हें पुष्पा और सन्ध्या ने मिलकर धोये थे, पर उन्हें बटोरने पुष्पा अकेली आयी थी। वह शाम पहले ही से सुहानी थी। तूफान के कारण सभी पेड़ निपाती थे जिससे दूर के पहाड़ किरणों की आखिरी छाप लिये दिखायी पड़ रहे थे। पश्चिम की ओर काफी दूरी के क्षितिज पर गहरा नीलापन था। किसन जानता था कि वह समुद्र है। कई बार समुद्र देखने की भारी इच्छा उसे हुई थी, पर उधर जाना उतना आसान नहीं था। पुष्पा उसके एकदम पास ही बैठ गयी थी।

निपाती पेड़ों से आते हुए पक्षियों के कलरव में एक टीस थी। उन पक्षियों के स्वर में घोंसले के टूट जाने और बन्धु-बान्धवों से बिछुड़ जाने की पीड़ा थी। बस्ती में अब भी कुछ घरों के छप्पर उजड़े हुए थे। तूफान में दो आदमियों की मृत्यु भी हो गयी थी। लेकिन पुष्पा को सामने पाकर किसन उन सभी बातों को भूल गया था। पक्षियों की दर्द-भरी आवाज भी उससे अनसुनी रह गयी थी।

नदीकिनारे की उस बात का पता न जाने रामजी सरदार की बेटी को कैसे लग गया था। दूसरे दिन उसने किसन से मुँह फुला लिया था। उन सवालों से किसन को हैरानी हुई थी। उसने जो भी उत्तर दिये, सभी सही नहीं थे। बाद में उसे झूठ के लिए दुख भी हुआ था। सत्या सरदार की बेटी थी, इसीलिए क्या वह उससे भी डरता था?

किसन को उन यादगारों में खोये पाकर पुष्पा ने उसके कन्धे को झकझोरते हुए कहा, "इतने सबेरे सोने लगे क्या?"

सचमुच ही नींद से जागते हुए किसन ने उसकी ओर देखा और दोनों ठहाके के साथ हँस पड़े। पुष्पा के दोनों पाँव हर दूसरे क्षण पानी में नयी तरंगें पैदा कर रहे थे, जबकि उसके दोनों हाथ कुश के हरे पत्तों से चिड़िया बनाने में लगे हुए थे। सूरज की अन्तिम किरणें अब भी पेड़-पत्तों के आलिंगन में थीं।

किसन के मन में जो नया गीत आया था, उसे उसने पुष्पा को सुनाया। गीत की पहली पंक्ति थी—'उजड़ खोंतवा से चिड़िया उड़ी गयले दूसरे बसेरा को'। पुष्पा

को यह गाना बहुत पसन्द आया। अपने घर के काम-काज के समय वह किसन के गानों को गुनगुनाती रहती थी। किसन का गाना पुष्पा का सबसे अच्छा साथी होता था। उससे कभी भी उसे अकेलेपन का आभास नहीं होता था। किसन अपनी जगह से उठा और उसने अपने हाथ को पुष्पा की ओर बढ़ा दिया।

उसके हाथ को पकड़कर पुष्पा भी अपनी जगह से उठ खड़ी हुई। बस्ती से विपरीत दिशा की उस ओर दोनों बढ़ गये जिस ओर उन लोगों का जाना बहुत कम होता था। दो खरगोश दोनों के सामने से निकलकर भाग गये। किसन को गौतम की याद आ गयी। अगर वह होता तो दोनों खरगोशों के पीछे हाथ धोकर पीछे पड़ जाता।

पगडण्डी के एक ओर पेड़ों का झुरमुट था, दूसरी ओर कटे हुए ईख के खेत थे ईख के सूखे पत्तों से ढँके हुए। एक-दूसरे का हाथ थामे दोनों सुनसान पगडण्डी पर चलते रहे। दोनों के पास बातें नहीं थीं। दोनों के बीच हमेशा ऐसा ही होता आया है। एक-दूसरे से दूर उनके पास बहुत-सारी बातें होती हैं, पर आमने-सामने होते ही बातें कपूर की तरह उड़ जाती हैं।

एक लम्बी चुप्पी के बाद पुष्पा को कुछ-न-कुछ बोलने के लिए एक विषय मिल ही गया। अपनी चाल को कुछ और धीमा करती हुई वह बोल उठी, "कल माँ फिर भारत की बातें सुना रही थी।"

"क्या फायदा है ?"

"मन को शान्ति मिल जाती होगी।"

"दुख को और अधिक बढ़ाना हुआ।"

"एक बात मेरी समझ में नहीं आती।"

"कौन-सी ?"

पुष्पा तुरन्त नहीं बोली। कटे हुए खेतों के पार हो जाने पर उसने कहा, "माँ कहती है कि वहाँ के मन्दिर इतने ऊँचे हैं कि सिर उठाकर कलश देखनेवाले आदमी के सिर से पगड़ी नीचे गिर जाती है।"

"गिर जाती होगी।"

"तो फिर जिस देश में इतने बड़े-बड़े मन्दिर हैं वहाँ गरीबी कैसे हो सकती है ? ऐसे देश को छोड़ने की नौबत क्यों आयी ?"

"वहाँ हमारे अपने लोगों का राज थोड़े ही है !"

"यहाँ भी वही हाल। क्या हमारे लोग इसीलिए पैदा हुए हैं ?"

"छोड़ो इन बातों को।"

"माँ कहती थी कि मेरे नाना के यहाँ दूध देनेवाली सात गायें थीं।"

कुछ देर चुप रहकर पुष्पा ही ने आगे कहा, "मेरे यहाँ भी एक गाय होती तो……।"

उसकी बात को बीच ही में काटते हुए किसन बोला, "न पैसा न कौड़ी बाजार

चले छौड़ो।"

"हाँ किसन, काश हमारे यहाँ भी एक गाय होती ! मैं उसके लिए घास लाया करती और......"

"तुम केवल सपना ही क्यों देखती रहती हो ?"

एक सूखी सरसराती हवा आयी और पुष्पा के कन्धे से उसकी ओढ़नी उड़ा ले गयी। दोनों अपने हाथों को बिना छुड़ाये हँसते हुए उसके पीछे दौड़ गये। हवा ने सहमकर ओढ़नी को छोड़ दिया। उसे उठाते हुए किसन ने कहा, "हवा को जब ओढ़नी उड़ानी ही थी तो कुछ दूर तक उड़ाये जाती।"

उसके हाथ से ओढ़नी लेकर पुष्पा ने उसे अपने गले में लपेट लिया। गाय का उसका सपना अभी खत्म नहीं हुआ था। कुछ अधिक गम्भीर होकर बोली, "सच मानो किसन, अपनी बस्ती में कहीं से एक गाय आ जाती तो......।"

"तो तुम्हें भी दूध का स्वाद आ जाता।"

किसन से हाथ छुड़ाकर पुष्पा खड़ी हो गयी, "तुम तो हर बात को मजाक में लेते हो।"

"तुम पगली हो पुष्पा !"

"क्यों, हमारे भाग्य में कभी गाय नहीं हो सकती क्या ? सुना है, पड़ोस की किसी बस्ती में चार-चार गायें हैं।"

"अपने घरों में तो जूठा-कूँठा खाने के लिए चूहा भी नहीं है। जहाँ चूहों को बिना खाये मर जाना होता है, वहाँ तुम गाय की बात कर रही हो।"

"तो फिर यह स्थिति कब तक रहेगी ?"

"लो ! अब तुमने की मतलब की बात ! पर रोना तो इसी बात का है पुष्पी, कि हम लोग इस स्थिति के आदी होते जा रहे हैं। उसके लिए हमारे भीतर मोह पैदा होने लगा है। इस बेबसी के सामने उसे बदलने का तो प्रश्न ही नहीं पैदा होता।"

इसके बाद दोनों के बीच बातें नहीं हुईं।

वातावरण साँवला होता गया। काफी दूर निकल जाने के बाद दोनों फिर से बस्ती की ओर लौट पड़े। कुश के पत्तों की बनी चिड़िया को पुष्पा ने किसन के हाथ में रख दिया। बस्ती के द्वार पर पहुँचने से पहले पुष्पा ने किसन से पूछा, "किसू ! यहाँ तुम्हारा सबसे अच्छा मित्र कौन है ?"

"बस तुम हो।"

"मैं !"

"हाँ, तुम।"

"मैं तुम्हारी मित्र हूँ ?"

"हाँ। वह भी सबसे अच्छी।"

"बस, केवल तुम्हारी मित्र हूँ ?"

"कहा न सबसे अच्छी।"

फाटक से प्रवेश करके दोनों को दो तरफ जाना पड़ा।

बगल के जतन के घर से दबे स्वर में कुछ बच्चे रामागती पढ़ने में लगे हुए थे। अब धूप नहीं थी, फिर भी धूप में सूखने के लिए जो कपड़े रस्सी पर टँगे हुए थे, अब भी झूल रहे थे।

बारह

धूपीली दोपहर। ईख का झुलसा हुआ खेत। पसीने से लथपथ मजदूर भीगे कपड़ों की तरह निचोड़े जा रहे थे कि तभी खाने की छुट्टी हुई। खाने के लिए उतना ही समय मिलता था जितने समय में सरदार की थूक चट्टान पर सूख जाये।

जामुन के पेड़ से अपनी भात की टोकरी उतारने के बाद किसन को मालूम हुआ था कि टोकरी के भीतर की ईख की भेली के कारण भात के बरतन में लाल चींटियाँ भर आयी थीं। पहले तो वह बरतन को धूप में रखकर काफी देर तक चींटियाँ निकालता रह गया था। बाद में यह जानकर कि चींटियाँ भात के साथ-साथ सहीजन की भूँजरी तक चली गयी थीं, उसने बरतन को बन्द करके टोकरी में रख दिया था और इस बात का पता किसी को नहीं लगने दिया था। कुन्दन को भी नहीं। वह यह नहीं चाहता था कि किसी को अपना खाना उसके साथ बाँटना पड़े। खाने के समय कुन्दन से आँखें बचाकर वह चट्टान के पीछे चला गया था। खाने के नाम पर कुन्दन अगर कुछ लाता था तो बस अपने हाथ की तैयार की हुई मक्की की रोटी। कभी साथ में कोई चटनी होती, कभी वह भी नहीं। केवल किसन ही था जिससे कभी-कभार वह थोड़ी-बहुत तरकारी-चटनी ले लिया करता था।

कुन्दन के यह पूछने पर कि भोजन के समय वह कहाँ ओझल हो गया था, किसन ने दूसरी बात छेड़कर बात टाल दी थी। सूरज ढलते ही घर पहुँचकर उसने सबसे पहले खाना ढूँढ़ा था, पर उस समय ऐसी कोई भी चीज तैयार नहीं थी जिससे वह अपनी भूख को मिटा पाता। माँ और बहन दोनों को अपने ढंग से कुछ खरी-खोटी सुनाकर वह नदी को चला आया था। चट्टान पर बैठकर डूबते सूरज की स्वर्णिम छाप को तरंगों के साथ अठखेलियाँ करते देखता हुआ वह दिन की घटना के बारे में सोचता रहा। दोनों साहबों की निगरानी के बाद लम्बी साँस लेते हुए सोनालाल किसन से सीखे उस नये गीत को गुनगुनाने लगा था :

> रामजी की ईख को तू चूस लेइली मिठसवा
> हमरो खातिर छोड़ गइले सीठिया हो रामा।

सरदार ने दूर ही से चिल्लाकर उसे चुप करा दिया था। उसके चुप होते ही गौतम का बाप उस गीत को गुनगुनाने लगा था।

"यह खेत आज कटकर साफ नहीं हुआ तो समझ जाओगे !"

"सरदार !" किसन ने बड़े अन्दाज से पुकारा था।

"क्या है ?"

"तुम्हारे और मेरे दादा अगर श्मशान से लौट भी आयें तो यह खेत आज पूरा कटने को नहीं।"

"चुप रहो !"

और फिर गौतमवा के बाप के पास पहुँचकर सरदार ने अपनी हमेशावाली गाली से बात शुरू की थी, "अरे सात छोटे सुअरों के बाप ! औरत से मजा लूट-लूटकर बच्चे पैदा करना तो तुम्हें खूब आता है, पर खेत में जाँगार के चोर निकले।"

गौतम कुछ दूरी पर था, फिर भी अपने बाप के प्रति उन घृणित शब्दों से उसकी भौहें चढ़ गयीं। अगर वह रुकमिनवा के कारण अपने बाप से अलग रहता था तो उसका मतलब यह नहीं था कि वह अपने बाप के अपमानित होने पर चुपचाप रह जाये। उसने सरदार की ओर देखा। गड़ाँसे पर उसकी मुट्ठी कसती जा रही थी। चेहरे पर पसीने की लकीरें अधिक स्पष्ट हो आयी थीं। सूरज की दग्ध किरणों को अपनी आँखों में सहेजे वह घूरता रहा। बगल से दाऊद ने धीरे से कहा, "गौतमवा, अपने काम में लग जाओ।"

तब तक उधर से सरदार के मुँह से दो-तीन गालियाँ और भी निकल चुकी थीं। गौतम का पूरा शरीर काँपकर रह गया। वह कम्पन भय का नहीं था। बेबसी का कम्पन था वह। उसके हाथ में चोखा गड़ाँसा था, फिर भी वह अजीब निहत्थेपन की स्थिति में था। गड़ाँसेवाले हाथ को ऊपर उठाकर जब उसने माथे के पसीने को पोंछने की कोशिश की, उस समय उसके चमकीले भाग में पूरा सूरज कौंध गया। उस तेज चमक से उसकी आँखें चौंधिया गयीं। दाऊद ने फिर से उसे काम में जुट जाने को कहा। बगल से सोनालाल ने भी यही कहा।

दाऊद के तीसरी बार कहने पर गौतम ने कमर झुकायी। एक हाथ से सामने के मोटे गन्ने को थामकर दूसरे हाथ से गड़ाँसा चलाना चाहा कि पीछे से गेंडे की चोट खाकर वह लोथिया-सा गया। उसके सँभलते-सँभलते गेंडा उसकी पीठ पर बत्ती-बत्ती हो गया। वह भूल गया था कि मार खाते समय बोलना मना होता है। सूरज की लाल किरणों को अपनी आँखों में लिये हुए उसने पूछा, "क्यों मार रहे हो मुझे ?"

इसके तुरन्त बाद सभी कुछ यान्त्रिक गति से हो गया था। दो और सरदार दो तरफ से आकर एकदम सामने खड़े हो गये थे। वह हिल पाता कि तभी तीनों सरदारों ने उसे दबोच लिया। सामने की ऊँचाई पर से लँगड़वा साहब के दामाद ने इशारे से कुछ कहा और गौतम को ईखों के ऊपर से घसीटते हुए चट्टानों के पिछवाड़े में ले जाकर पूरी ताकत के साथ ढकेल दिया गया। बेहोशी हालत में उसे जामुन के पेड़ से बाँधकर कोड़ों की मार से होश में लाने की कोशिश होती रही।

गौतम के बाप की सजा इससे एकदम भिन्न रही। ईख से लदी गाड़ी से बैल को हटाकर उसे बैल की जगह बाँध दिया गया और चाबुक की आवाज के साथ

उससे गाड़ी को आगे खिंचवाया गया। उसने गन्ने काटते समय जो गाना शुरू किया था, उसको दोहरवाते हुए उसके शब्द-शब्द पर दस-दस कोड़े लगवाये गये।

सूरज के खेत छोड़कर भाग जाने पर साँवली पगडण्डी से गुजरते हुए कुन्दन ने सभी को सुनाकर अपने को धिक्कारा, "यह नामर्दी ही तो हुई !"

"साफ-साफ क्यों नहीं कहते कि हम सभी नामर्द हैं ?" जतन ने कहा।

सूरज के अस्त हो जाने के बाद की भी हवा उसके ताप को अपने में लिये हुए थी। वातावरण में वही अकुलाहट थी जिसे सभी मजदूर भीतर से महसूस रहे थे। लिजलिजेपन को बाहर और भीतर से लिये हुए वे अपने बोझिल कदमों को उठाये आगे बढ़ रहे थे। उन कदमों में दिन-भर के घोर परिश्रम के बाद घर लौटने की उमंग थी।

रात में कुछ मजदूरों ने बासी भात से गुजारा किया। कुछ लोगों को भूखा रहना पड़ा। जो नये चावल मिले थे, उन्हें पकाना किसी से नहीं हो सका। बरगद के पीछे चांदनी में बैठे मातम मनाने पर उन लोगों को कोसती हुई पुष्पा की माँ बोल पड़ी थी, "चावल दाल दूनों में खद-खद पिलवा भरल बा। जोन चीज कुत्ता भी न खाई खोजी ओके कैसे पकावल जाय ? के बा तू लोग में जे सकी मालिक के सामने चावल दाल रख कर पूछे कि हय अनाज आदमी कैसे खाई ?"

लोगों की चुप्पी बनी रही।

चांदनी रात में सभी के चेहरों की लाचारी स्पष्ट थी। झाल-ढोलक ओरियाली में पड़े हुए थे। न कोई झनक न कोई थाप। गुनगुनाहट भी नहीं थी। पुष्पा की माँ से पहले कई स्त्रियां सामूहिक स्वर में मर्दों की बेबसी बखान चुकी थीं। सभी मर्दों को ऐसा आभास हुआ था कि पहली बार औरतों ने विद्रोह किया हो। उनके बात करने के ढंग में रूखापन था। आवाजों में झाल की झनक थी और आँखों में स्नेह और हमदर्दी की जगह कोई दूसरी झलकती चीज थी। सभी औरतों ने एक-जैसी बात की थी। लोगों को समझते देर नहीं लगी थी कि दिन में औरतों की कोई सभा अवश्य लगी होगी।

कुन्दन और किसन दोनों चुप थे। किसन पहली बार अपनी माँ को अपने बाप पर बरसते देख चुका था। बरगद के नीचे चबूतरे पर कोई बीस आदमी बैठे थे। कोई बोल नहीं रहा था। सभी सोच रहे थे। जो सभी लोग सोच रहे थे, वह किसन नहीं सोच रहा था और जो किसन सोच रहा था, वह सभी लोग नहीं सोच रहे थे। कुन्दन सभी लोगों और किसन के बीच में सोच रहा था। वह लोगों और किसन के बीच जो अन्तर था, उसे दूर करने के बारे में सोच रहा था। उसके अपने विचार में सभी लोगों और किसन दोनों पक्षों का हित तभी था जब बीच की खाई को पाटकर कुछ सोचा जाये, कुछ किया जाये। लाचारी और उद्दण्डता की दरार को भरकर ही आन्दोलन का रूप सही हो सकता है। जीवन के लम्बे पीड़न ने उसे भावुकता और संवेदना से एकदम काट दिया हो, यह बात नहीं थी लेकिन मात्र संवेदना और भावुकता उसके लिए खोखली चीज थी। इसीलिए कभी जितने खोखले उसे सभी लोग लगते थे, उतना ही

योग्यता किसन भी लगता।

यह चण्डी का रूप था जब……

सभी लोगों ने पुन्ना की माँ को मुट्ठी में कीड़ों से भरे चावल लिये सामने खड़े यह कहते सुना, "तुम लोगन मे अगर मा होई त कह दो। हम जाव मालिक के सामने। तुम लोगन के हिया गाना मुसन बानी। घर में भूँजी भाँग नाहीं देहरी पर नाच।"

कुछ लोग अवाक् थे। कुछ को काठ मार गया था।

किसन चावल और दाल देख चुका था। दाल इतनी सड़ी हुई थी कि उसमें बदबू आ रही थी। क्या करना था? लोग सोच रहे थे। कुछ तय नहीं हो पा रहा था। कुछ तय हो पाता कि तभी ईख के कारखाने से बुलावा आ गया। दो सरदार सामने आ कर खड़े हो गये। एक ने अपनी मोटी क्रिओली में कहा, "वावाय इन ब्लोके लावा। बोर्डे सैन्ज जोमून।"

अगर ईख के कारखाने में काम पिछड़ गया था तो इसका कारण किसन को भली-भाँति मालूम था। वहाँ के चालीस मजदूर बिना खाये काम पर लगे हुए थे। जब पूरी बस्ती में खाना पका ही नहीं था तो फिर उन्हें पहुँचता कहाँ से? किसन ने ढिठाई की, "कितने आदमी चाहिए?"

"कहा न पन्द्रह आदमी!"

"हम कैसे जा सकते हैं?"

"क्यों नहीं चल सकते?"

"हम लोग भूखे हैं। अभी तक कुछ खाया नहीं। खाली पेट काम कैसे कर सकेंगे?"

"तुम लोग यहाँ बैठने के लिए नहीं, काम करने के लिए हो।"

"पर हमें जो काम करना था हम कर चुके!"

"साले, तुम्हें चावल-दाल के अलावा जो मकई, मान्योक आदि चीजें मिलती हैं, उन्हें तुम्हें मुफ्त में देने के लिए तुम्हारा कोई माँ का भतार बैठा है यहाँ क्या?"

"सरदार, मुँह सँभालकर बात करो। इस समय हम ईख के खेत में नहीं हैं।"

कुन्दन बीच में आ गया। किसन को पीछे करते हुए उसने कहा, "सरदार, इस समय हम लोगों से कैसे काम हो सकेगा?"

"क्यों नहीं हो सकेगा?"

"भूखे हैं।"

"यह बात तुम साहब को बताना।" दूसरे सरदार ने कहा।

"देखाजे।"

"जल्दी चलो। पन्द्रह आदमी चाहिए हमें।"

क्षण भर की छोटी-सी चुप्पी के बाद सबसे पहले दाऊद अपनी जगह से उठा। उसके बाद कुन्दन का कदम आगे बढ़ा और अन्त में सिर झुकाये आगे बढ़नेवाला पन्द्रहवाँ आदमी किसन था।

रास्ते में जब दाऊद ने अपने-आपसे कहा कि आखिर कब तक इस तरह बैल बनकर जीवन जीना होगा तो उसकी बात सुनकर उत्तर में सरदार ने व्यंग्य किया, "पास्यांस गेरी लागाल।"

किसन ने मन-ही-मन पूछा—होता है सबूरी का फल मीठा ?

कारखाने का धुआं काली रात से भी अधिक काला होता। काली रात बहुत ऊँचाई तक आकर खालीपन में ओझल हो गयी थी और उसमें लिपटा हुआ था बोझिल धुआं। धरती की उदासी और भी बढ़ गयी थी। खेतों की पगडण्डियां सो रही थीं। बेसुध। उन पर के मजदूरों के पदचिह्न थे, जो जाग रहे थे—अँधेरे में चमक रहे थे क्योंकि ऊपर कारखाने के काले धुएँ में तारे ओझल थे। कल के सूरज की न जाने क्या दशा होगी !

तेरह

बुढ़ापे से टूटा हुआ सूरज कमर पर जोर देते हुए धीरे-धीरे आगे बढ़ रहा था। अभी दिन बीतने में आधा दिन बाकी था। अभी माटी मजदूरों के पसीने से भीगी नहीं थी। कटनी की विडम्बना। दिन दुगुना लम्बा लगता है। सूरज मजदूरों की थकान की गठरी को सिर पर लिये चलता है। लम्बे दिन को गड़ासे से काटकर भी मजदूर उसे छोटा नहीं कर पा रहे थे। उनके पसीने की ठण्डक से गरमी घुल नहीं पा रही थी। अभी सूरज ठीक सिर के ऊपर था। अभी आधा दिन बाकी था, आधा दम भी बाकी था।

लंगड़वा साहब का अभी बग्गी से उतरना भी नहीं हुआ था कि उसके खेत में पहुँच आने की खबर कानाकानी इस छोर से उस छोर तक पहुँच गयी। लम्बी छड़ की बड़ी-सी छतरी को दोनों हाथों से थामे मालगासी नौकर पगडण्डी की छोटी-मोटी ठोकरें खाते हुए भी आँखों को छतरी और······साहब के सिर पर टिकाये चल रहा था। उसे अपने रास्ते और घायल अंगूठे से बहुत अधिक ख्याल मालिक के सिर का रखना होता था। कुन्दन और किसन पगडण्डी से सटकर एक ही मुंड़ेर के दोनों ओर से ईखों को काटे जा रहे थे। लंगड़वा साहब के इस आगमन का किसन पर कोई विशेष प्रभाव तो नहीं पड़ा। कुन्दन भी उसी की तरह बिल्कुल न दहला हो, यह बात नहीं थी। बाकी सभी मजदूरों से कम डरकर भी वह भीतर-ही-भीतर जरूर ही कांपा था।

कुन्दन की बगल के दाऊद के पास रुककर लंगड़वा साहब ने जोर से सरदार को आवाज दी। उस चीख से पूरा खेत कांप गया। सरदार मुंड़ेरों को फांदता हुआ सामने आ गया। कम्पन-भरे स्वर में उसने पूछा, "वही म्सां मीस्ये !"

लंगड़वा साहब ने अपने हाथ की छड़ से दाऊद की ओर इशारा करते हुए फड़ककर फ्रेंच में कहा, "यह आदमी ईख को इतने ऊपर से क्यों काट रहा है ?"

मालगामी सरदार ने कटे हुए गन्नों से एक गन्ना उठाया और दाऊद की पीठ पर दो जोरदार वार करने के बाद अस्पष्ट त्रिओली में चिल्लाकर कहा, "तीन इंच गन्ने अपने बाप के लिए छोड़ रहे हो क्या? अगर तुम्हारी कमर लकड़ी की है और काम को ढंग से करने के लिए मुड़ नहीं पाती तो काम पर क्यों आते हो?"

किसन एक पल के लिए ठिठका। अपने हाथ के कटे हुए गन्ने को पीछे की ओर फेंकते हुए एक छिपी नजर से लंगड़वा साहब और सरदार दोनों की ओर देखा। कुन्दन ने दबे हुए स्वर में कुछ कहा और वह फिर से अपने काम में लग गया। लंगड़वा साहब ने अपने आगे की चौड़ी चट्टान पर खड़े होकर एक बार चारों ओर देखा, फिर अपने सिर से टोप उतारकर हाथ के रूमाल से चेहरे के अकारण झलक आये पसीने को पोंछा। किसन की ओर देखा, फिर पसीने से लथपथ चट्टान से नीचे आकर आगे बढ़ गया। सरदार उसके पीछे हो लिया। उनके आगे चले जाने पर किसन ने दाऊद की ओर देखा। गठीले शरीर का दाऊद इस तरह काम में लगा रहा जैसे कि गन्ने के प्रहार का उसके शरीर पर कोई खास असर हुआ ही नहीं था। किसन ने मार की पीड़ा को कुन्दन के चेहरे पर देखा, अपने भीतर अनुभव किया और बगल से दूसरे सरदार को आते देख ईख काटने में लग गया।

आगे निकल गये लंगड़वा साहब के चिल्लाने की आवाज आती रही। उसके साथ-साथ बाँसों के कड़ाक-चड़ाक टूटने की आवाज को भी वह सुनता रहा और सिर झुकाये अपनी खीज को ईखों के हवाले करता रहा।

"अभी तक पानी लेके कोई ना आया?" कुन्दन ने धीरे से पूछा।

कुन्दन के इस प्रश्न का कोई उत्तर दिये बिना किसन ने गाँव से आती हुई बगल की पगडण्डी की ओर देखा। वह सुनसान थी। इस सुनसान लम्बी पगडण्डी को देखकर किसन को अपना कण्ठ भी सूखा-सा लगा। उसके माथे से टपकती बूँदें चेहरे पर फैलकर अपने खारेपन को जीभ तक पहुँचा गयी थीं। अपनी प्यास की जुगाली करता हुआ वह काम में लगा रहा। दोनों सरदारों के साथ लंगड़वा साहब के आगे निकल जाने के बाद उसने दाऊद की ओर देखा। आगे दोनों ओर से ईख कट जाने के कारण इमली के पेड़ तक का दृश्य साफ दिखायी पड़ रहा था। किसन ने जल्दी से छलाँग मारकर दाऊद के पास पहुँचते हुए कहा, "कुछ देर के लिए तुम उधर बैठ जाओ।"

अपनी सारी फुरती के साथ कोई तीन-चार गज तक गन्नों को काट चुकने के बाद जब उसने देखा कि दाऊद की कतार भी बाकी लोगों तक पहुँच गयी थी, तो फिर बिना कुछ कहे वह जल्दी से अपनी कतार को लौट गया। अपने चेहरे के ताजे पसीने की ठण्डक का अनुभव करते हुए वह फिर से अपने काम में जुट गया। आकाश पर बादल का कोई भी ऐसा टुकड़ा नहीं दिखायी पड़ रहा था जो क्षण-भर के लिए सूरज को ढाँपकर मजदूरों की थकान और अकुलाहट को जरा-सा कम कर जाता।

कुन्दन ने दूसरी बार पानी की बात की। किसन ने दूसरी बार अपनी जीभ को

होंठों से बहते हुए पसीने पर फेरा।

"कुन्दन चाचा !"

"क्या है किसन ?"

"कल रात मैंने एक सपना देखा था।"

"मुझे तो वह भी नहीं दीखता।"

"सपनों का क्या मतलब होता है ?"

"सपनों का भी कोई मतलब होता है ?"

"होता तो होगा।"

"जिस तरह तुम्हारे इस पसीने का कोई मतलब नहीं होता, उसी तरह......।"

"पसीने का तो मतलब होता है।"

"क्या मतलब होता है ?"

"अपनी हरियाली, फसल, ये सारी बातें तो पसीने से ही होती हैं।"

"लेकिन किसन बेटा, इन बातों का अधिक लाभ तो उन लोगों को होता है, जिनका पसीना तनिक भी नहीं बहता, जो बग्गी में आते हैं, पालकी में जाते हैं।"

"सपने तो सभी को बराबर आते होंगे चाचा ?"

"बराबर काहे को ? अरे, तुम्हारे सपने भी तो किसी और के हो जाते हैं।"

बगल से किसी ने बताया कि लंगड़वा साहब लौट रहा है। दोनों की बातचीत बन्द हो गयी। सामने से गुजरते हुए लंगड़वा साहब ने कर्कश स्वर में आसपास के सभी मजदूरों को सुनाते हुए कहा कि अगर आज यह पूरा खेत कटकर समाप्त नहीं होता है, तो सभी के आधे पैसे काट लिये जायेंगे। मजदूर उसे कनखियों से देखते रहे। वह बग्गी पर चढ़ा और दूसरे खेतों की ओर बढ़ गया। राहत की सांस किसी ने नहीं ली। वे दोनों सरदार हाथों में बांस लिए हुए सामने थे। किसन ने धीमे स्वर में कहा, "चाचा कल रात का मेरा सपना बहुत ही लम्बा रहा होगा। पर सभी बातें याद नहीं आ रही हैं।"

"मैं जानता हूँ, तुम सुनाकर ही दम लोगे। सुना दे जो भी याद है।"

दूसरे खेत से किसी के चीत्कारने की आवाज आयी। सुनना मना नहीं था, इसलिए सभी ने सुना। प्रतिक्रिया मना थी, इसलिए सुनी-अनसुनी करके लोग कामों में लगे रहे। किसन ने फुसफुसाहट-से स्वर में आगे कहा, "बिनसहारा का सपना था।"

कुन्दन अपनी धुन में ईख काटे जा रहा था।

"चाचा तुम सुनो भी तो मैं सुनाऊँ।"

"सुन तो रहा हूँ।"

"गड़ांसे चलाये जा रहे हो।"

"सुन भी तो रहा हूँ। तू बता तो सही।"

"एक खुले हुए मैदान में एक ओर सारे मालिक खड़े थे। उनकी बग्गियाँ थीं। बन्दूकें थामे कई सिपाही थे। बांस थे। कुत्ते थे। उसी तरफ उनके पीछे उनकी बड़ी

इमारतें थीं, कारखाने थे। और भी बहुत-कुछ था उधर। दूसरी ओर हम थे। दो-तीन मजदूर निहत्थेपन की स्थिति में। बेबस सारी दयनीयता के साथ।

उसके चुप होते ही कुन्दन ने पूछा, "और ?"

"और कुछ नहीं !"

"यह भी कोई सपना हुआ।"

"हमारे हाथ में हमारी कुदाली भी नहीं थी। हमारे गड़ासे भी नहीं थे। हाँ ·····और भी कुछ था ····· वे लोग अपनी सभी चीजों के साथ हमारी ओर बढ़े आ रहे थे और हम केवल अपने खाली हाथों के साथ पीछे को हटते जा रहे थे।"

"बिना सिर-पाँव का है तुम्हारा सपना।"

"वह भयानक था। इतना डर मुझे कभी नहीं लगा था।"

दाऊद फिर से पीछे छूटने लगा था।

सरदारों से आँख बचाकर कुन्दन ने कमर सीधी की। माथे के पसीने को आस्तीन से पोंछकर उसने पगडण्डी की ओर देखा। वह अब भी सुनसान थी। अपने होंठों पर जीभ फेरकर कुन्दन शिथिलता के साथ गड़ासे को चलाता रहा। आगे की ओर सरदार की गालियों की बौछार होती रही। किसन ने अपने आगे से ईख के सूखे पत्तों को हटाते हुए कहा, "आज पानी नहीं पहुँचेगा चाचा !"

कुन्दन को कैद की चारदीवारी के भीतर की एक घटना याद आ गयी। तीन दिन उसे बिना पानी के रखा गया था। चौथे दिन भी उसे पानी नहीं मिलता। वह विभीषण था जिसने चुपके से भीगा हुआ रूमाल कोठरी के भीतर फेंक दिया था। उसे अपने मुँह में निचोड़कर उसने तीन दिनों की प्यास बुझायी थी। वह प्यास कुछ भी रही हो, इस तरह की नहीं थी। उस समय वह तिलमिलाया नहीं था।

किसी दूसरे मजदूर की जोरदार आवाज आयी, "अभी तक पानी क्यों नहीं पहुँचा ?"

"लाये कौन ?" किसन ने पूछा।

"हरबनिया कहाँ है ?"

"उसे रेमों साहब के यहाँ से छुट्टी मिले तब तो !"

कई आँखें एकसाथ पगडण्डी की ओर मुड़ीं।

पगडण्डी उसी तरह सुनसान थी।

"एक-दो मजदूर चोरी-चुपके ईख चूसने लगे थे। यह जानकर भी कि रस की मिठास कुछ ही देर में उनकी प्यास को और भी बढ़ा जायेगी। ठीक सर के ऊपर का सूरज भी किसन को प्यासा-सा प्रतीत हुआ। पर उसके पीने के लिए तो मजदूरों के शरीर में पसीना-ही-पसीना था। किसन को हँसी आ गयी। सूरज पसीने को नहीं पीता। उसे अपने ठण्डे हो जाने का डर रहता है। शायद यही कारण हो कि मजदूर भी अपने पसीने से अपने प्यास को नहीं बुझा पाता। पर यह परहेज धरती को नहीं था। मजदूरों के माथों से छूटती हर बूँद को धरती पीती गयी। निगलती गयी एक-एक बूँद को ·····

पर......। किसन सोचता रहा......पर पसीने की इन बूंदों के बदले में धरती जो दूसरी कीमती बूंदें उगलती रहती है वे किसी दूसरे की मुट्ठियों को पहुँच जाती हैं।

किसन पूछता है, "ऐसा क्यों ?"

पगडण्डी उसी तरह सुनसान पड़ी रही। ईख के पत्ते झूमते रहे।

चौदह

ईखों को कारखाने तक पहुँचाते हुए जतन की अचानक मृत्यु से खेतों का काम एकाएक रुक गया। लोग क्षण-भर को अपने-अपने स्थानों पर ठिठके रह गये थे। एक-दो लोगों ने बढ़ने के लिए जो पहले कदम उठाये थे, उन्हें पीछे को लौटा लेना पड़ा था। चारों दिशाओं से सरदारों की चेतावनी एक साथ आयी थी कि कोई अपना काम छोड़ने का साहस न करे। उन बुलन्द आवाज़ों से लोगों की आगे बढ़ने की इच्छा मोम की तरह जम गयी थी। वह केवल किसन था जो सुनी-अनसुनी करके उस चौराहे पर पहुँच ही गया था जहाँ ईख के बोझ के नीचे जतन का शव दबा पड़ा था।

बाद में लोगों ने उसकी मृत्यु के कई कारण बताये थे। किसी ने कहा था कि तीन दिन से खाली पेट वह काम कर रहा था। किसी ने धीरे से बताया था कि पिछले दिनों की बांसों की वह बौछार थी जिसने जतन को आधे दम का कर दिया था। उसका पीला शरीर कुछ और ही कहता-सा प्रतीत हुआ था। लाश को उसकी झोंपड़ी के भीतर रखते हुए किसन एकटक उस निचुड़े हुए शव को देखता रह गया था। उसे लगा था कि जतन बहुत पहले से मरा हुआ था। इधर के कुछ दिनों को उसने बड़े साहस के साथ जीया था। उसकी बन्द आँखों के आसपास की गहराई मिट्टी के खाली चिराग-सी लग रही थी। उसके गोरेपन को खेतों की धूप ने बेरहमी से झुलसकर साँवला कर दिया था। चूसे हुए आम-जैसे उसके पिचके गालों को भरने के लिए अंजुली-भर चावल भी कम होते। सामने की वह लाश एक टूटे-सिमटे-घुटे जीवन का जीवन्त प्रमाण-सी प्रतीत हुई थी। उन यन्त्रणाओं को किसन ने पहली बार उतना सजीव पाया था।

जतन मरा था। गोरों के खेतों में काम करनेवाला एक कुली मरा था। किसन के बाप के साथ मारीच के पत्थरों को बीस वर्ष तक लगातार उलट-उलटकर सोना ढूंढनेवाले एक बिहारी की मृत्यु हुई थी। मरते-मरते गंगाजल की जगह जिसके मुंह में थूक भी बाकी नहीं था। गले में नम्बर लटकाये एक दास मरा था, पर उसकी चिल्लाहट, तड़प और चीत्कार अभी जीवित थे। किसन के भीतर के सभी प्रश्न जम गये थे बर्फ की तरह। वह सामने की लाश के मौन प्रश्नों को सुनता रह गया था। निरुत्तर।

एक लिजलिजेपन की स्थिति को वह झेलता रह गया था। उसे अपने आसपास

पर……। किसन सोचता रहा……पर पसीने की इन बूंदों के बदले में धरती जो दूसरी कीमती बूंदें उगलती रहती है वे किसी दूसरे की मुट्ठियों को पहुँच जाती हैं।

किसन पूछता है, "ऐसा क्यों ?"

पगडण्डी उसी तरह सुनसान पड़ी रही। ईख के पत्ते झूमते रहे।

चौदह

ईखों को कारखाने तक पहुँचाते हुए जतन की अचानक मृत्यु से खेतों का काम एकाएक रुक गया। लोग क्षण-भर को अपने-अपने स्थानों पर ठिठके रह गये थे। एक-दो लोगों ने बढ़ने के लिए जो पहले कदम उठाये थे, उन्हें पीछे को लौटा लेना पड़ा था। चारों दिशाओं से सरदारों की चेतावनी एक साथ आयी थी कि कोई अपना काम छोड़ने का साहस न करे। उन बुलन्द आवाजों से लोगों की आगे बढ़ने की इच्छा मोम की तरह जम गयी थी। वह केवल किसन था जो सुनी-अनसुनी करके उस चौराहे पर पहुँच ही गया था जहां ईख के बोझ के नीचे जतन का शव दबा पड़ा था।

बाद में लोगों ने उसकी मृत्यु के कई कारण बताये थे। किसी ने कहा था कि तीन दिन से खाली पेट वह काम कर रहा था। किसी ने धीरे से बताया था कि पिछले दिनों की बांसों की वह बौछार थी जिसने जतन को आधे दम का कर दिया था। उसका पीला शरीर कुछ और ही कहता-सा प्रतीत हुआ था। लाश को उसकी झोंपड़ी के भीतर रखते हुए किसन एकटक उस निचुड़े हुए शव को देखता रह गया था। उसे लगा था कि जतन बहुत पहले से मरा हुआ था। इधर के कुछ दिनों को उसने बड़े साहस के साथ जीया था। उसकी बन्द आंखों के आसपास की गहराई मिट्टी के खाली चिराग-सी लग रही थी। उसके गोरेपन को खेतों की धूप ने बेरहमी से झुलसकर सांवला कर दिया था। चूसे हुए आम-जैसे उसके पिचके गालों को भरने के लिए अंजुली-भर चावल भी कम होते। सामने की वह लाश एक टूटे-सिमटे-घुटे जीवन का जीवन्त प्रमाण-सी प्रतीत हुई थी। उन यन्त्रणाओं को किसन ने पहली बार उतना सजीव पाया था।

जतन मरा था। गोरों के खेतों में काम करनेवाला एक कुली मरा था। किसन के बाप के साथ मारीच के पत्थरों को बीस वर्ष तक लगातार उलट-उलटकर सोना ढूंढनेवाले एक बिहारी की मृत्यु हुई थी। मरते-मरते गंगाजल की जगह जिसके मुंह में थूक भी बाकी नहीं था। गले में नम्बर लटकाये एक दास मरा था, पर उसकी चिल्लाहट, तड़प और चीत्कार अभी जीवित थे। किसन के भीतर के सभी प्रश्न जम गये थे बर्फ की तरह। वह सामने की लाश के मौन प्रश्नों को सुनता रह गया था। निरन्तर।

एक लिजलिजेपन की स्थिति को वह झेलता रह गया था। उसे अपने आसपास

की बेचारगी चीत्कारती-सी लगी थी। उसके भीतर का सीला आक्रोश एक ठण्डे पड़े विद्रोह से अधिक कोई दूसरा रूप ले ही नहीं सका था। उसे लगा था कि जतन मौत से नहीं मरा था। उसे उसकी अपनी निरीहता, बेबसी और ठण्डेपन ने मारा था। सैकड़ों लोग दो के सामने विकलांग थे। हत्यारा अगर कोई था तो जुल्म ढानेवाला नहीं, बल्कि उसके अपने ही लोगों की असमर्थता !

असमर्थता ?

किसन को यह कवच पसन्द नहीं था। वह असमर्थता नहीं थी। नामर्दी थी। भय था। नपुंसकता थी। उसने आसपास के सभी चेहरों को ओर देखा था। मुरझाये हुए रंगों में वे अपाहिजों के चेहरे-से लगे थे। वह पहली मृत्यु नहीं थी।

किसन के भीतर का विद्रोह पहला विद्रोह नहीं था। वह पहला दिन नहीं था कि घर लौटकर किसन ने कहा हो कि आज मुझे भूख नहीं।

उस दिन नदीकिनारे चट्टान पर अकेले बैठे अपने बाप से सुनी हुई कुछ बातों को मस्तिष्क से बाहर करके उन्हें धुँधली आकृतियों में देखने का प्रयास किया था उसने। उसका बाप और जतन दोनों एकसाथ चले थे। आरा जिले से मारिशस के बन्दरगाह तक ! जहाज पर सवार होने से पहले दोनों ने एकसाथ गोरों के ठेकेदारों को यह कहते सुना था—चलो ! मारीच के देश चलो।

अकाल से पीड़ित लोग डगमगाते खड़े हो गये थे। आँखें फाड़े लोगों ने आपत्काल में पहुँचे उन मसीहों से सुना था :

"यहाँ अब पार पाना मुश्किल है। यहाँ की इस बंजर पड़ी जमीन के मोह में तुम सभी कुत्ते बिल्ली की मौत मरोगे। यहाँ कोई वर्तमान नहीं, कोई भविष्य नहीं।......"

कितनी ही बातें थीं जिन्हें लोग समझ नहीं पाये थे। उन उलझी हुई बातों ने सभी के भीतर जिज्ञासा पैदा कर दी थी। लोगों ने अधिक जानना चाहा था। प्रश्न किये गये थे :

"कहाँ है मारीच ? क्या है वहाँ ?"

"वह बहुत दूर नहीं। वहाँ कोई भूखा नहीं मर सकता। अनाज बेशुमार है वहाँ। रुपया और सोना तो हर पत्थर के नीचे है। जिन चीजों के लिए तुम लोग यहाँ तड़प रहे हो, वहाँ वे ही चीजें तुम लोगों के लिए तड़प रही हैं।"

लोगों की कल्पनाएँ बावली हो गयी थीं।

अपने-अपने ख्यालों की लकीरों से उन्होंने आकृतियाँ बनायी थीं। ·· और अन्त में एक नये जीवन के लिए लोगों ने बच्चे-कच्चों की गठरियाँ बाँध ली थीं। उमंगों के भारी बोझ के साथ जहाज नये क्षितिज को चल पड़ा था।

फिर तो मारिशस की धरती पर पाँव पड़ते ही लोगों के सपने बिखर गए। उमंगें पश्चाताप में बदल गयी थीं। लोगों ने सामने के अथाह सागर पर दौड़कर अपनी धरती को लौट जाना चाहा था, जब उन्हें स्थिति की जानकारी हुई थी। जब उन्होंने

एक अनजान धरती पर अपने को गुलाम के रूप में पाया था, उस समय पहले सभी ने उन ठेकेदारों को मन-ही-मन गालियाँ दीं जिन्होंने उन्हें ठगकर इधर घसीटा था। बाद में वे लोग अपने-आपको कोस बैठे थे। ललक में आकर लोगों की यह दशा हुई थी।

—लेकिन वह ललक हमारी मजबूरी थी·····हमारी वेबसी थी·····।

अपने बाप की इस दलील को मान लेने की स्थिति में किसन ने अपने को कभी नहीं पाया। पर इधर कुछ दिनों से वह मजबूरी और वेबसी जैसे शब्दों के बारे में पूरी गम्भीरता के साथ सोचता आ रहा था।

आज की उसकी स्थिति का कारण क्या था ?

क्या यही मजबूरी और वेबसी ?

अब जतन नहीं था।

उसी घर में चोरी-चुपके किसन ने अक्षर और शब्द पहचाने थे। बस्ती के और भी कुछ लोगों को जतन ने पढ़ना सिखाया था। कभी झूठ न बोलनेवाले जतन को जब लंगड़वा साहब के सामने खड़ा किया गया था तो उस दिन पहली बार उसने साहब के इस प्रश्न का झूठा उत्तर दिया था।

"मना करने पर भी लोगों को तुम अपने घर के भीतर पढ़ाते हो ?"

"नहीं माई-बाप !"

यह उसके जीवन का एकमात्र झूठ था जो हर वक्त उसके ऊपर बोझ-सा बना रहा। जतन थोड़ा-बहुत रामायण गुनगुना लेता था। हनुमानचालीसा की चौपाइयाँ उसे कण्ठस्थ थीं। किस्से-कहानियों की एक-दो पुस्तकें भी वह पढ़ लेता था। इसी के बल उसे शब्दों का थोड़ा-बहुत ज्ञान औरों से अच्छा ही था। मजबूरी और बेवसी दो ऐसे शब्द थे जो उसे बिल्कुल पसन्द नहीं थे। इन दो शब्दों से उसे घृणा थी पर क्या करे—यहाँ भी बेवसी शब्द अपनी हस्ती को बना ही जाता।

अभी दो सप्ताह पहले जतन उससे कह रहा था, "किसन ! मेरे बाद ये सारी पुस्तकें, जिन्हें मैं अपना सबसे बड़ा ऐश्वर्य मानता हूँ, तुम्हारी होंगी। इन्हें लुका-छिपाकर बड़ी कठिनाई से यहाँ तक ला सका था। यहाँ की कठिन-से-कठिन घड़ियों में इन पुस्तकों ने मुझे धैर्य दिया है, इसलिए मैं चाहूँगा कि इनका सही उपयोग होता रहे।"

उस दिन जतन की अचानक मृत्यु के वक्त किसन को लगा था कि इस आदमी को अपनी मृत्यु का आभास पहले ही चुका था। उसकी वह बात, जिसे उस समय उसने कोई बहुत बड़ी बात नहीं मानी थी, अब उसको एक बहुत बड़ी जिम्मेवारी प्रतीत हुई। उसके जतन चाचा की एक बहुत बड़ी इच्छा यह थी कि मालिक को किसी तरह मनाकर जमीन का एक छोटा-सा टुकड़ा माँगा जाये और उसमें एक बैठक खड़ी की जाये। पहले तो किसन को इस बैठक शब्द का सही अर्थ ही नहीं मालूम हुआ था। बाद में जतन ने विस्तार से उसे बताया था कि उससे क्या लाभ होगा।

जतन की अकस्मात मृत्यु के बाद किसन में कई नयी बातों ने जन्म लिया था जिनमें बैठक उसकी सबसे बड़ी चिन्ता थी। वह भी महसूसने लगा था कि वह स्थान

एक बैठक ही होगा जहाँ से एक संघर्ष को पूरी सशक्तता के साथ आरम्भ किया जा सकता था। इस बात की चर्चा वह कुन्दन से कर चुका था। कुन्दन पूरी योजना से सहमत था, पर इसके साथ ही उसे योजना के साकार होने की आशा कम थी। किसन को हताश न करते हुए भी उसने उससे पूछा था, "ये लोग तुम्हें गाने-बजाने और धार्मिक ग्रन्थों के पाठ के लिए कोड़े लगाते हैं, क्या तुम्हें बैठकों के लिए जमीन देंगे ?"

"जरूरी नहीं है कि जमीन मिले तभी उसकी नींव डाली जाये।"

"तो फिर ?"

"जतन का घर खाली है।"

"तुम्हारा मतलब है उसे ही बैठक मान लिया जाये ?

"बस और क्या ?"

"उसमें कोठीवाले कल किसी नये आदमी को भेज देंगे।"

"इससे पहले हम साहब से मिलकर वह घर तुम्हारे लिए ले लेते हैं।"

"लेकिन बैठक के लिए तो अलग से कुछ होना चाहिए। यह घर तो सभी घरों से मिली हुई एक चारदीवारी है।"

"तो क्या हुआ ?"

"गुप्त बातें भी तो होंगी।"

"अपने ही लोग तो होंगे। अपने लोगों से क्या छिपाना ?"

"कभी-कभार ये अपने ही लोग ज्यादा खतरनाक निकलते हैं। जो हमारे लोगों को यहाँ ठगकर लाये, वे भी तो अपने ही लोग थे और फिर कोड़े बरसानेवाले सरदारों में भी तो कई अपने ही लोग हैं। कंस भी तो भगवान किसन का अपना ही था। अपना जब वैरी होता है तो बहुत बड़ा वैरी होता है। महाभारत की लड़ाई अपनों के बीच की लड़ाई थी।"

"तुम गलत तो नहीं कह रहे चाचा, लेकिन हमें तो विश्वास ही के बल पर सभी कुछ करना है।"

"ठीक है किसन, मैं तुम्हारे साथ हूँ।"

"बस, यही चाहिए मुझे।"

कुन्दन का यह वाक्य किसन के हौसले को दुगुना कर गया था। पहली बार उसने यह अनुभव किया था कि अपने किसी प्रण में वह अकेला नहीं था। देवननन् चाचा उसके साथ था। कुन्दन उसे अपनी पूरी कहानी सुना चुका था। अपने को एक सिपाही के सम्पर्क में पाकर किसन के अपने भीतर भी एक दिलेरी-सी आ गयी थी। कुन्दन संकट के जिन क्षणों से गुजरा था, उन्हें मात्र अनुभव करके किसन की निर्भयता बढ़ गयी थी। जब उसने कुन्दन से उन खतरों के बारे में प्रश्न किये थे तो कुन्दन ने मुस्कराकर धीरे से कहा था, "जिन्दगी अगर मुसीबतों और खतरों की आगाही न देती रहे तो उससे ऊब जाने की नौबत आ सकती है।"

दूसरे दिन जतन की पुस्तकों से बच्चों को किसन ने ही कहानी सुनायी।

बैठक में बच्चों का पढ़ना नियमित हो गया। वह कुन्दन का घर भी था और बैठक भी थी।

कुन्दन के घर में पहली बैठक उस समय लगी जब गोपाल की माँ की आत्म-हत्या के कारण से अवगत होकर पूरे गाँव में खलबली-सी थी। एक सहमी हुई खलबली। लोग बरगद के नीचे घटना की चर्चा कर चुके थे। कुएँ पर औरतों के बीच भी कानाफूसी हो चुकी थी। जो जिससे मिला था, दबे हुए स्वर में उसी बात को छेड़ गया था। कुन्दन के घर में पहला जुटाव करने की बात खेत में चली थी। सभी लोगों को बात अच्छी नहीं लगी थी, कुछ लोगों के लिए वह मुफ्त में मुसीबत मोल लेनेवाली बात थी।···

पन्द्रह

पर निर्णय चूंकि किसन का था और कुन्दन ने उस पर जोर दिया था, इसलिए गड़ांसों की आवाज में बात सभी तक पहुँच गयी थी। अन्त में सभी ने गड़ांसों को दो बार झनझनाकर अपनी स्वीकृति दे दी थी।

जुटाव का समय आते-आते कुछ लोगों का भय दुगुना हो गया था, पर जिन बीस व्यक्तियों को बैठक में पहुँचना था वे उस रिमझिम में भी पहुँच गये थे। काली बदली से वातावरण काफी अँधेरा था। उस गहन अँधेरे से लोगों के भीतर जो भय था, वह बढ़ गया था। आकाश अगर साफ होता तो चार दिन का चाँद साफ दिखायी पड़ता। जुटाव का पता कारखाने के पास के दोनों सरदारों के घर तक न पहुँचे, इसके लिए उस घटाटोप अँधेरे में भी बाहर कोई मशाल का प्रबन्ध नहीं हुआ था। लोग टटोलते हुए किसी तरह कुन्दन के घर तक पहुँच ही गये थे। घर के भीतर टीन के चिराग के प्रकाश में लोगों का भय थोड़ा-बहुत जाता रहा।

इधर किसन के घरके सामने गाने-बजाने का कार्यक्रम भी जारी था। वैसा करके सरदारों के ध्यान को इधर आकर्षित होने से रोक दिया गया था। किसन ने सबसे बाद में बाक्बा की चटाई पर जगह ली। कुन्दन उसी की ओर देख रहा था। आँखों से उसका इशारा पाकर उसने बात शुरू की, "पहले क्या होता रहा है मैं नहीं जानता, लेकिन जब से मैं यहाँ हूँ इस तरह की यह दूसरी घटना है। अब आप ही लोग सोच लें कि इस तरह की और कितनी घटनाओं को होने देना है।"

उसने फिर से किसन की ओर देखा और किसन ने उसे इशारे से बात को जारी रखने को कहा।

"गोपाल की माँ को आप लोगों में से कुछ लोगों की सुना-सुनी में भी बेटी कहने लगा था। उसके पति की मृत्यु किन हालतों में हुई थी सो तो आप लोग मुझसे अधिक अच्छी तरह जानते हैं। गोपाल की माँ को पहली बार देखकर मैंने कभी यह नहीं

सोचा था कि उसका गोपाल जैसा लड़का हो सकता है। गोपाल की माँ की तरह अभी और भी कई विधवाओं को जबरदस्ती अपने यहाँ मँगवाकर ये लोग ऐसा करते रहेंगे।"

वह चुप हो गया। कुछ लोगों के बीच कानाफूसी शुरू हो चुकी थी। उन्हें शान्त करते हुए कुन्दन ने आगे कहा, "हम लोग यहाँ इसलिए जुटे हैं कि और कुछ तो हमसे हो नहीं सकता, कम-से-कम अपनी बहू-बेटियों को लुटने से तो बचायें।"

"देवननन् भाई, ऐसा सोचे के तू पहला ना बानी।" बगल से दाऊद के बाप ने कहा।

"मैं जानता हूँ चाचा, कि तुम लोग पहले भी इस पर सोच चुके हो। पर अब तक कुछ कर नहीं पाये।"

"ऊ त अब भी ना होई देवननन् !"

"क्यों नहीं होगा ?" किसन ने धीरे से पूछा।

"कौन करेगा ?"

"हम सभी को करना होगा।"

किसन की इस बात पर दो-तीन बूढ़े हँस पड़े। उनकी हँसी का गोया यह मतलब हो कि अरे कभी हमने भी ऐसा ही कहा था ! बीच में कई लोगों ने धीमे स्वर में बातें कीं। कई लोग कुन्दन के साथ थे, कई आज भी उसकी इधर की वास्तविक परिस्थिति से अनभिज्ञ रहे। जब लोगों के बीच धाँव-माँव होने लगा तो किसन के बाप ने पहली बार बात शुरू की, "देवननन्, जो आज सोचत रहली ओके हम लोगन बरीसन पहले से सोचते आवत बानी जा पर सोचल कुछ होवेला और करल और कुछ। सो बात के एक ही बात बा।"

"वह क्या ?"

"किसी से कुछ भी होने को नाही।"

"तो फिर जो कुछ हो रहा है उसे आँखें मूँदकर होने दिया जाये ?"

रघुसिंह ने अपने बेटे की ओर देखा। अपने नारियल के हुक्के का लम्बा कश लिया और उसी गाम्भीर्य के साथ कहा, "करके क्या पाना है ?"

कुछ देर तक कानाफूसी होती रही। किसन ने ऊँचे स्वर में सभी को चुप कराकर उनके ध्यान को अपनी ओर आकर्षित किया।

"अब तक हम सोचते रहे हैं और अगर अब तक कुछ नहीं हो सका है तो इसका यह मतलब थोड़े ही हो जाता है कि हम कभी भी कुछ नहीं कर सकते !"

रघुसिंह ने डाँट-भरे स्वर में पूछा, "का करेके विचार बा ?"

"यह तो हम सभी को मिलकर सोचना है।"

"गोरवन से जाकर ई कहना है कि वे लोगन अपन ई आदत को छोड़े नाही तो ?"

"बापू, तुम इस बात को इस तरह कह रहे हो जैसे कि यह दुनिया का कठिन काम हो।"

निर्णय दूसरे से तीसरे स्थान तक पहुँचेगा और अवसर आने पर सभी कोठियों के लोग एकसाथ खड़े होंगे। तब कहीं जाकर लोगों को हमारी शक्ति का भान होगा और हमारे ऊपर उठनेवाले ये हाथ दोबारा उठने की हिम्मत नहीं कर सकेंगे।"

किसन की बातें सभी लोगों की समझ में नहीं आयी थीं, पर जिन थोड़े लोगों की समझ में वह आयी थी उससे किसन सन्तुष्ट था। कुन्दन भी।

सोलह

किसन का सन्तोष कभी बहुत जल्दी ही व्यग्रता का रूप ले लेता।

इधर कुछ दिनों से किसन में एक व्यग्रता-सी देखकर रघुसिंह कह उठता कि हड़बड़ी से गूलर ना पकेला। किसन हमेशा से यही तो सुनते आ रहा था कि वह समय अपने-आप आयेगा। वह जानता था कि जिस समय की सभी को प्रतीक्षा थी, वह कभी नहीं आयेगा। इस तरह के समय को सामने लाने के लिए आगे बढ़ना पड़ता है और उसे घसीटकर ही अपने बीच लाया जा सकता है। बहुत सोचने के बाद किसन को लगता कि समय को घसीट लाने की वह शक्ति अभी बस्ती के लोगों में नहीं आयी है। वह कुन्दन से कई बार पूछ चुका था कि उस बल को कैसे पैदा किया जाये। उत्तर में कुन्दन कहता, "वह बल समय के साथ ही आयेगा।" और किसन फिर से उसी प्रश्न के सामने अपने को खड़ा पाता—वह समय कब आयेगा ?

समय को समय से पहले घसीट लाने के प्रयास में किसन को लगता कि समय उससे बलवान था। कुन्दन यह भी कहता कि हम आसपास की सभी बस्तियों की शक्ति को अगर एक सूत्र में बाँधकर आगे बढ़ें तो सम्भवतः हम समय से अधिक बलवान प्रमाणित हो जायें। लेकिन यह काम सम्भव था ? इसके उत्तर में किसी के मुँह से कभी 'हाँ' नहीं निकलता।

कुन्दन के यहाँ पहुँचने से पहले उस दिन जब फूलवन्ती के बच्चे की मृत्यु हुई थी, गातमपुरजी के समय कुछ वृद्धों और जवानों के बीच बहस छिड़ गयी थी। वह पहला अवसर था जब सभी जवानों का अपना अलग स्वर था। बेचारगी की स्थिति को उस दिन पहली बार नकारा गया था। बूढ़ों के भीतर पहली बार यह डर पैदा हुआ था कि इस धरती के ये पहले जन्मे बच्चे कहीं हिंसात्मक कार्य न कर बैठें। इधर कुन्दन की उपस्थिति में रघुसिंह के भीतर यह डर और भी बढ़ गया था।

बीस-पच्चीस वर्ष से वे जिस जीवन को जीते आ रहे थे, उसके इतने अधिक आदी हो गये थे कि स्थिति में परिवर्तन का विचार उन्हें कभी छूता भी नहीं था। जबकि जवानों में एक चेतना-सी आने लगी थी। उसी चेतना के विरुद्ध बोलते हुए रघुसिंह कहता कि उफनता दूध बरतन से बाहर जा गिरेला। किसन को इस बात की परवाह नहीं थी, इसके लिए रघुसिंह उसे कोसता ही रहता। कभी किसन की माँ पर

भी बरस पड़ता, यह कहता हुआ कि वही उसे बढ़ावा देती है। अपने सामने कुन्दन को पाकर किसन एक आन्दोलन का रूप तैयार करने लगा था और उसका बाप इस आन्दोलन को दूध-मुँहा बच्चा मानता।

किसन की माँ सिल पर नीम के पत्ते पीस रही थी जब रघुसिंह ने बात छेड़ी थी।

"कॅंसनो त मुट्ठी-भर खायके मिलत बा पर तोर लड़का के कारन लगत बा एकरो मोहाल हो जाए। तुम्हारा बेटा त बस कालहे बनिया आज है सेठ, जमा चुकाये सारा देस। हम पूछत बानी कि दूसर लोगन के झंझट को ई अपन माथे काहे लेवत फिरत ह ?"

लोढ़े को चलाती हुई बिना सिर उठाये किसन की माँ बोली, "तोहरा त ओकर कोई भी काम अच्छा ना लगेला।"

"सरदार लोगन के त मुँह देवत ही रहल, अब मालिक के साथ भी झगड़ा खोज रहल बा। आजकल देवननन् ओकर गुरु बनल बा।"

कुछ ही दूरी पर किसन बस्ती के बच्चों को कबड्डी सिखाने में लगा हुआ था। दो दिन पहले इन्हीं बच्चों को सरदार ने अपने यहाँ मक्की के दाने छुड़ाने की आज्ञा दी थी। और किसन ने बच्चों को उस मुफ्त के काम से रोक लिया था। रामजी सरदार शिकायत लिये रघुसिंह के पास पहुँचा था। एक-एक करके सभी बच्चों के बापों को धमकी दी थी। यह कह गया था कि अगर आज वे बच्चे उसके काम नहीं करते तो फिर वह उन सभी से ईख की गाड़ियाँ खिचवा कर रहेगा। किसन अगर लड़के ही बच्चों को कबड्डी के खेल में लगा चुका था तो बस इसीलिए कि वे सरदार के यहाँ न पहुँचकर अपने खेल में लगे रहें।

"अपने हाथ के दतवन को फेंकते हुए रघुसिंह ने कहा, "पानी में रहके इ लईका मगरमच्छ से बैर करत बाते।"

मैदान से लौटते हुए कुन्दन अपने हाथ के लोटे को आगे रखकर सामने के पत्थर पर बैठ गया। उसे अपने दिन याद आ गये थे।

पक्षियों के कलरव के बन्द होने पर जब किसन खेत की ओर बढ़ा, उस समय बस्ती के सभी मजदूर जा चुके थे। वह पिछड़ गया था। उसे इमली के पेड़ तक छोड़ने के लिए पुष्पा साथ ही गयी थी। पगडण्डी की दूबों पर ओस की बूँदें चमक रही थीं। पाँवों में छू जानेवाली उसकी ठण्डक प्रिय थी। किसन की अँगुली को छोड़ते हुए पुष्पा बोली, "बस्ती के कुछ लोगों को तुम्हारी बातें पसन्द नहीं हैं।"

"तुम्हें तो पसन्द हैं न ?"

"कभी-कभी तो मुझे भी · · ।"

"इसका मतलब है कभी-कभी तुम भी बूढ़ों की तरह सोचने लगती हो !"

दोनों उस स्थान पर पहुँच गये थे जहाँ से पुष्पा को पीछे लौट जाना था। दोनों रुक गये। किसन की निगाह ईख के कारखाने की ओर थी। पुष्पा ने किसन को देखा।

उसके आगे आकर उसने धीरे से कहा, "तुमने कलवाला उत्तर नहीं दिया।"

"कलवाला उत्तर ?"

"भूल गये ?"

याद करने का अभिनय करते हुए किसन ने मुस्कराकर कहा, "कल तुमने एक ही बात थोड़े ही पूछी थी ?"

"मुझे पिछली बात का उत्तर चाहिए।"

"क्या थी वह ?"

"कुछ लोग सत्या से तुम्हारे व्याह की बात करते हैं।"

"मुझे जिस लड़की से व्याह करना है वह अभी मुझे दिखी ही नहीं है।"

"तुम सत्या से व्याह मत करना।"

"क्यों ? वह अच्छी लड़की नहीं ?"

"अच्छी तो है लेकिन......।"

"बोलो !"

"उससे व्याह करके तुम भी बड़े आदमी बन जाओगे।"

"क्यों, मेरा बड़ा बनना तुम्हें गवारा नहीं !"

"मेरे कहने का मतलब है कि फिर तो तुम हम गरीबों से कट जाओगे।"

"कैसे कट जाऊँगा ?"

"जिस लड़ाई की तुम बात करते हो उसे फिर कैसे लड़ सकोगे ?"

किसन जाने लगा। पुष्पा की ओर देखा और ऊँचे स्वर में बोला, "मैं सत्या से व्याह नहीं कर रहा हूँ।"

पुष्पा दौड़ती हुई बस्ती की ओर लौट पड़ी।

कुछ देर बाद आकाश पर जो सूरज चमकता दिखायी पड़ा, वह इस प्रण के साथ ऊपर आया था कि मजदूरों के शरीर से सभी पसीने को निचोड़कर रहेगा। दौड़ती हुई पुष्पा कुएँ के पास से गुजरी ही थी कि हरखसिया ने उसे आवाज़ देकर रोक लिया।

"क्या है चाची ?"

"अरी कलमुँही, कै बार तोके कह लीं कि हम तोर चाची नाहीं मौसी लागत बानी।"

"ठीक है, चाची और मौसी दोनों एक ही बात है।"

"हमर डोलवा उठाके जाना।"

"चाची, मरदों को......।"

"फिर चाची बोली हवे ?"

"मौसी, मरदों को तुम्हारे हाथ का पानी बहुत मीठा लगता होगा।"

सूरज की चमचमाती किरणें सीधे पुष्पा के चेहरे पर पड़ रही थीं। हरखसिया कुछ देर तक उसे एकटक देखती रही।

"क्या देख रही हो मौसी ?"

दौड़कर आने के कारण पुप्पा अब भी हाँफ रही थी। नीचे-ऊपर को होती उसकी छाती को देखती हुई हरबसिया बोल उठी, "देखत ही देखत तोर मे त जवानी ढबढबा गईल पुप्पी !"

पुप्पा कुछ और लाल हो गयी, "मौसी, मैं डोल उठा दूँ ?"

"अरे कोई जल्दी ना बा। थोड़ा बात त कर ले।"

"तुम्हारा लहंगा बहुत सुन्दर है मौसी।"

"पुप्पा, तू हमार एक बात मानिगी ?"

"तुम्हारे पास तो बस एक ही बात होती है, कोई नयी बात हो तब तो !"

"पगली, जेतना तू हूवे ओतना ही तोर माँ भी बातें।"

"मैं डोल तो उठा जाऊँ, मुझे भी पानी भरना है।"

"तू हमर बात मान जायबे त मादाम बनके जयबे।"

"चाची, फिर वही बात !"

',अरी पगली, तू दूनों के दिन फिर जाये।"

"अगर तुम्हें डोल नहीं उठवाना है तो मैं चलती हूँ।"

"हम तोके बोली ला कि एक दिन हमर सगे खाली कोठी घूमे चलिहे।

"मैं जाती हूँ।"

"अरी हमर डोल उठाती जा।"

हरबसिया ने अपने सिर पर कपड़े का बिठा रखा और पुप्पा ने झुककर डोल को उठाकर उसके सिर पर रख दिया। खेतों की ओर बढ़ने से पहले हरबसिया ने एक बार फिर कहा, "घर पहुँचके सोचना।"

पुप्पा मन-ही-मन खुश थी कि आज हरबसिया ने बात को छोटे ही में खत्म कर दिया। अपने प्रयोजन का न तो विस्तार किया और न ही प्रलोभन गिनाये। उन प्रलोभनों के असर से अपने को बचाते हुए भी पुप्पा कई बार सोचती रही थी .... कोठी .... वहाँ की हवेली · गहने सुन्दर कपड़े ....।

उसकी माँ ने एक ही थप्पड़ में उसके गाल को लाल कर दिया था।

बहुत अधिक गरमी थी।

हरबसिया की कुछ पुरानी बातों को सोचती हुई पुप्पा घर की ओर बढ़ गयी। यह गरम जितनी बाहर थी, उतनी ही भीतर भी। वह मन-ही-मन सोचती रही। चन्द बातों में रिमन सचमुच ही बहुत ही पीछे था। उन्हीं चन्द बातों की उष्णता से जूझती हुई वह चलती रही। उसकी पलकें बोझिल हो चली थीं। उसके चेहरे पर पसीने के कई दाने चमक आये थे। भीतर से उस गरमी की अकुलाहट को लिये वह घर पहुँची। खटिया पर लेटकर उसने आँखें मूँद लीं। सूरज उसके भीतर धधकता रहा।

सत्रह

पुष्पा के बारे में कुन्दन ने सबसे पहले किसन के ही मुँह से कुछ सुना था। जतन के यहाँ टिकते हुए एकाध बार उसने उस साँवली घुआँधार आँखोंवाली लड़की को देखा भी था। इधर जब से जतन का घर उसका अपना घर हो गया था तब से पुष्पा सुबह-शाम उसके सामने होती थी। जतन के घर के ठीक सामनेवाली कतार में था वह घर। दोनों तरफ के घरों के बीच में जो बरगद का विस्तृत पेड़ था, उसी के नीचे के चबूतरे पर वह कभी चक्की में आटा पीसती नजर आ जाती तो कभी कपड़ों में पेबन्द जोड़ती हुई। दिन में दो-तीन बार कुन्दन की अनुपस्थिति में भी वह कुन्दन के घर पहुँचकर उसके जूठे बरतनों को माँजने के लिए उठा ले जाती और घर के बाकी कामों को भी निपटा जाती।

किसन ने जो बातें कुन्दन को नहीं बतायी थीं, उन्हें पुष्पा ने भी उसे नहीं बताया था। फिर भी कुन्दन के बारे में पुष्पा जो भी बात करती उससे एक दुर्लभ घनिष्ठता का आभास होता। उसकी उन घुआँधार आँखों की धुंधली मायूसियत कुन्दन को बहुत अच्छी लगती। उसे बात-बात पर मुस्कराते पाकर कुन्दन मन-ही-मन दुआ कर बैठता कि वह निर्मल मुस्कान सभी मजदूरों की स्थायी मुस्कान बन जाये।

इस घर में आकर और पुष्पा को नजदीक से जानकर कुन्दन को एक रात अचानक ही ख्याल आया कि कहीं पुष्पा तक अपनी पहुँच को अधिक सुविधाजनक बनाने के लिए तो किसन ने उसे उस घर का नहीं बनाया था ? दूसरे क्षण वह अपने-आप पर झुंझला उठा था। किसन के इरादे पर शक कर उसने अच्छा नहीं किया था। उसने इस बात को संयोग ही मानना चाहा कि पुष्पा के घर के पास ही घर खाली हुआ था। किसन का जो नदी की ओर कम जाकर इधर की ओर अधिक आना शुरू हो गया था उसका भी कुन्दन ने अपने को ही कारण समझा।

किसन के बारे में सोचते हुए उसे लगता कि पूरे गाँव में वह अकेला था। अकेला जिसके भीतर एक चिनगारी थी। कई वर्षों से चली आनेवाली एक बेबसी को जलाकर राख कर देनेवाली चिनगारी। किसन के मुँह से वह सन्तू और राधन की कहानी सुन चुका था। वे दोनों प्रथम चिनगारियाँ थीं, पर एक को चारदीवारी निगल गयी थी और दूसरे की छाती से बग्गी गुजर गयी थी। इस ख्याल से कुन्दन काँप जाता कि कहीं किसन के भीतर की चिनगारी को भी भड़कते ही उसे मिटा न दिया जाये। पुष्पा को उसने सुबह और शाम के धुंधलके में अधिक देखा था, फिर भी वह उसे बहुत निकट की मानने लगा था। उसे निकट की मानने पर तो उसकी किसन के प्रति चिन्ता और भी बढ़ जाती।

यहाँ नये घर में आये कुन्दन का पहला रविवार था। पहली बार वह काम पर से सूर्यास्त से पूर्व लौटा था। पहली बार बरगद के नीचे वह पुष्पा से काफी देर तक बात कर सका था। पुष्पा से बात शुरू करने का उसे एक ही तरीका सूझा था।

"तुम पराठे बहुत अच्छा बनाती हो।"
"माँ तो कहती है कि मेरा पकाया पराठा मोटी की तरह होना है।"
"घर की मुरगिया साग बरोबर बेटी !"
"पर क्या आपको सचमुच ही पसन्द है ?"
"जो चीज अच्छी न लगे उसे अच्छा क्यों कहूँ ?"
"मुझे खुश करने के लिए आप कह भी सकते हैं।"
"अच्छा, यह तो बता कि तू कब तक मेरे पराठे बनाती रहेगी ?"
"जब तक यहाँ रहूँगी।"
"क्यों, यहाँ से कहीं जाने की बात भी तूने सोच रखी है क्या ?"
"चाचा !"
उसका ठुनककर कहना कुन्दन को बहुत अच्छा लगा।
"पुष्पी !"
पुष्पा ने आँखें उठाकर कुन्दन की ओर देखा।
"अगर तेरा बाप होता तो तू उसे क्या कहती ?"
"बापू कहती और क्या कहती ?"
"नहीं, मेरा मतलब यह नहीं।"
"तो ?"
"तू उसे आप-आप कहकर पुकारती या प्यार से तुम कहती ?"
"यह तो मैं नहीं जानती चाचा !"
"अच्छा तो तू अपनी माँ को कैसे पुकारती है ?"
"तुम कहकर।"
"तो फिर इसका मतलब है कि तू मुझे कम चाहती है।"
"और आपको भी तुम कहना शुरू कर दूँ तो ?"
"तो अधिक चाहने लगेगी।"
"तो फिर अब आपको तुम कहूँगी।"
कुछ देर के लिए दोनों के बीच बातें बन्द रहीं।
"पुष्पी, तेरी माँ बीमार रहती है, फिर भी वह सरदार की गाय के लिए घास काटती रहती है !"
"इसी से तो हमें थोड़ा-बहुत आटा-चावल मिल जाता है चाचा !"
यह तो कुन्दन को बाद में मालूम हुआ था कि रोजाना तीन गाय और दस बकरों के लिए घास जुटाने पर पुष्पा की माँ को क्या मिलता था। सप्ताह में दो डिबिया चावल तीन डिबिया आटा, मुट्ठी-भर दाल और अजुली-भर तेल। उसी में दो प्राणियों का गुजारा हो जाता था, इसमें कुन्दन को हैरत हुई थी। प्रश्न करने पर पुष्पा की माँ के मुँह से उसने सुना था, "भैया चिरई के पेट खातिर चिरई ही के खुराक चाहीं न।"
शाम को काम से लौटते हुए कुन्दन कुएँ के पास रुक गया था। पुष्पा कुएँ से

सत्रह

पुष्पा के बारे में कुन्दन ने सबसे पहले किसन के ही मुंह से कुछ सुना था। जतन के यहाँ टिकते हुए एकाध बार उसने उस साँवली धुआँधार आँखोंवाली लड़की को देखा भी था। इधर जब से जतन का घर उसका अपना घर हो गया था तब से पुष्पा सुबह-शाम उसके सामने होती थी। जतन के घर के ठीक सामनेवाली कतार में था वह घर। दोनों तरफ के घरों के बीच में जो बरगद का विस्तृत पेड़ था, उसी के नीचे के चबूतरे पर वह कभी चक्की में आटा पीसती नजर आ जाती तो कभी कपड़ों में पेवन्द जोड़ती हुई। दिन में दो-तीन बार कुन्दन की अनुपस्थिति में भी वह कुन्दन के घर पहुँचकर उसके जूठे बरतनों को माँजने के लिए उठा ले जाती और घर के बाकी कामों को भी निबटा जाती।

किसन ने जो बातें कुन्दन को नहीं बतायी थीं, उन्हें पुष्पा ने भी उसे नहीं बताया था। फिर भी कुन्दन के बारे में पुष्पा जो भी बात करती उससे एक दुर्लभ घनिष्ठता का आभास होता। उसकी उन धुआँधार आँखों की धुँधली मायूसियत कुन्दन को बहुत अच्छी लगती। उसे बात-बात पर मुस्कराते पाकर कुन्दन मन-ही-मन दुआ कर बैठता कि वह निर्मल मुस्कान सभी मजदूरों की स्थायी मुस्कान बन जाये।

इस घर में आकर और पुष्पा को नजदीक से जानकर कुन्दन को एक रात अचानक ही ख्याल आया कि कहीं पुष्पा तक अपनी पहुँच को अधिक सुविधाजनक बनाने के लिए तो किसन ने उसे उस घर का नहीं बनाया था? दूसरे क्षण वह अपने-आप पर झुंझला उठा था। किसन के इरादे पर शक कर उसने अच्छा नहीं किया था। उसने इस बात को संयोग ही मानना चाहा कि पुष्पा के घर के पास ही घर खाली हुआ था। किसन का जो नदी की ओर कम जाकर इधर की ओर अधिक आना शुरू हो गया था उसका भी कुन्दन ने अपने को ही कारण समझा।

किसन के बारे में सोचते हुए उसे लगता कि पूरे गाँव में वह अकेला था। अकेला जिसके भीतर एक चिनगारी थी। कई वर्षों से चली आनेवाली एक बेबसी को जलाकर राख कर देनेवाली चिनगारी। किसन के मुँह से वह रन्तू और राधन की कहानी सुन चुका था। वे दोनों प्रथम चिनगारियाँ थीं, पर एक को चारदीवारी निगल गयी थी और दूसरे की छाती से बग्गी गुजर गयी थी। इस ख्याल से कुन्दन काँप जाता कि कहीं किसन के भीतर की चिनगारी को भी भड़कते ही उसे मिटा न दिया जाये। पुष्पा को उसने सुबह और शाम के धुंधलके में अधिक देखा था, फिर भी वह उसे बहुत निकट की मानने लगा था। उसे निकट की मानने पर तो उसकी किसन के प्रति चिन्ता और भी बढ़ जाती।

यहाँ नये घर में आये कुन्दन का पहला रविवार था। पहली बार वह काम पर से सूर्यास्त से पूर्व लौटा था। पहली बार बरगद के नीचे वह पुष्पा से काफी देर तक बात कर सका था। पुष्पा से बात शुरू करने का उसे एक ही तरीका सूझा था।

"तुम पराठे बहुत अच्छा बनाती हो।"
"माँ तो कहती है कि मेरा पकाया पराठा लीटी की तरह होता है।"
"घर की मुरगिया साग बरोबर बेटी !"
"पर क्या आपको सचमुच ही पसन्द है ?"
"जो चीज अच्छी न लगे उसे अच्छा क्यों कहूँ ?"
"मुझे खुश करने के लिए आप कह भी सकते हैं।"
"अच्छा, यह तो बता कि तू कब तक मेरे पराठे बनाती रहेगी ?"
"जब तक यहाँ रहूँगी।"
"क्यों, यहाँ से कहीं जाने की बात भी तूने सोच रखी है क्या ?"
"चाचा !"
उसका ठुनककर कहना कुन्दन को बहुत अच्छा लगा।
"पुप्पी !"
पुप्पा ने आँखें उठाकर कुन्दन की ओर देखा।
"अगर तेरा बाप होता तो तू उसे क्या कहती ?"
"बापू कहती और क्या कहती ?"
"नहीं, मेरा मतलब यह नहीं।"
"तो ?"
"तू उसे आप-आप कहकर पुकारती या प्यार से तुम कहती ?"
"यह तो मैं नहीं जानती चाचा !"
"अच्छा तो तू अपनी माँ को कैसे पुकारती है ?"
"तुम कहकर।"
"तो फिर इसका मतलब है कि तू मुझे कम चाहती है।"
"और आपको भी तुम कहना शुरू कर दूँ तो ?"
"तो अधिक चाहने लगेगी।"
"तो फिर अब आपको तुम कहूँगी।"
कुछ देर के लिए दोनों के बीच बातें बन्द रहीं।
"पुप्पी, तेरी माँ बीमार रहती है, फिर भी वह सरदार की गाय के लिए घास काटती रहती है !"
"उसी से तो हमें थोड़ा-बहुत आटा-चावल मिल जाता है चाचा !"
यह तो कुन्दन को बाद में मालूम हुआ था कि रोजाना तीन गाय और दस बकरों के लिए घास जुटाने पर पुप्पा की माँ को क्या मिलता था। सप्ताह में दो डिबिया चावल तीन डिबिया आटा, मुट्ठी-भर दाल और अंजुली-भर तेल। उसी में दो प्राणियों का गुजारा हो जाता था, इससे कुन्दन को हैरत हुई थी। प्रश्न करने पर पुप्पा की माँ के मुँह से उसने सुना था, "भैया चिरई के पेट खातिर चिरई ही के खुराक चाही न।"
शाम को काम से लौटते हुए कुन्दन कुएँ के पास रुक गया था। पुप्पा कुएँ से

पानी निकाल रही थी और कुछ औरतें कुएँ के इर्द-गिर्द खड़ी थीं। कुन्दन को अपने बीच आते देख सभी को हैरानी हुई थी। पुष्पा ने हँसकर पूछा था, "देवननन् चाचा ! प्यास लगी है क्या ? लगता है हरबसिया मौसी ने आज तुम लोगों को पानी नहीं पिलाया होगा।"

किसी को यह नहीं मालूम हो सका था कि कुन्दन सामने से आते हुए दो सिपाहियों से आँखें बचाने के लिए औरतों के बीच आ पहुँचा था। बस्ती में पहली बार दो सिपाहियों को देखकर कुन्दन डर गया था। एक के हाथ में जो जंजीर थी, वह काफी देर तक कुन्दन के कानों में खनकती रह गयी थी। बाद में जब पुष्पा की माँ के मुँह से उसने सुना कि वे यों ही गश्ती लगाने आ गये थे तो कुन्दन ने चैन की लम्बी साँस ली। फिर अपने चेहरे पर की लम्बी दाढ़ी-मूँछ पर हाथ फेरते हुए मन-ही-मन हँस पड़ा। उसे पहचानना आसान थोड़े ही था, पर उस समय सिपाहियों पर नजर पड़ते ही उसे अपनी दाढ़ी-मूँछ की याद जाती रही थी।

बरगद के पेड़ के नीचे औरतें मकई पीसती हुई चक्की की घरघराहट के साथ स्वर मिलाये जँतसार गाये जा रही थीं। जाँते की उस घरघराहट ने सबसे पहले उसे कैद की याद दिलायी, फिर जँतसार के राग से बिहार का वह गाँव याद आ गया जहाँ उसकी माँ एकदम इसी तरह सतवा पीसती हुई गाया करती थी। उन जँतसारों की इधर-उधर की एकाध पंक्तियाँ उसे आज भी याद थीं। औरतों के स्वर के साथ वह भीतर-ही-भीतर गुनगुनाता रहा। धुन के बाद शब्द भी आ गये, अस्पष्ट से :

मोरे नैहर के सँदेसवा लेके तू पहुँचो
मोरे भैया ताकत हूँ मैं तोरी राह
गवाँ के कुवाँ पानी से भरल होवे
कि अकाल मचेला चहूँ ओर
ननदीया मोरी जो तोहे आने न देवे
मोरे भैया देना न तू ओके चन्दरहार
मोरे नैहर.......................

गौतम की माँ अपने सातवें बच्चे को नहाने के लिए उसके पीछे-पीछे चिल्लाती हुई दौड़ रही थी। कुन्दन ने आगे बढ़कर बच्चे को पकड़ लिया। गौतम की माँ एक हाथ से अपनी ओढ़नी को ठीक करती हुई आगे आयी और दूसरे हाथ को आगे बढ़ाकर बच्चे का हाथ थामना चाहा कि कुन्दन ने बच्चे को अपने पीछे कर लिया।

"इसे मारोगी तो नहीं ?"

घूँघट के नीचे से गौतम की माँ ने सिर हिला दिया और कुन्दन ने बच्चे के हाथ को उसके हाथ में थमा दिया।

अपने हाथ-पाँव धोते हुए भी कुन्दन चक्की की घरघराहट और जँतसार सुनता रहा। बिहार के खलिहानों और कैद की दीवारों के बीच भटकता रहा जब तक कि पुष्पा सामने आकर खड़ी न हो गयी। उसके हाथ में मिट्टी का बरतन था। हाथ-पाँव धो

दूसरे ही क्षण उसकी आंखों के सामने एक के ऊपर एक कई चित्र झिलमिला उठे। उन पिछले सैकड़ों सपनों की तरह इसे भी उसने सपना ही समझा। लेकिन सपने दूसरे क्षण मिट जाते थे। यह तो आंखें मूंदते-खोलते ज्यों-का-त्यों बना रहा। धोती को हाथ में लिये फूलो बाहर से आते हुए बिरहे को सुनती रही। वह बिरहा सपना नहीं था......और अगर वह बिरहा सपना नहीं था तो वह धोती सपने की नहीं हो सकती थी। वह उसे उलट-पलटकर देखती रही। वर्षों पहले की कई यादें एक साथ आयीं—

नदीकिनारे धोती धोते समय उसके निचले छोर में केले के दाग का लग जाना। एकदम ऊपर के भाग में अपने पति की रक्षा के लिए फूलो ने केले के दूध से जो मंगल-चिह्न बना दिया था......वह भी ज्यों-का-त्यों था।

वह वही धोती थी।

इस बात का पूरा विश्वास हो जाने पर फूलो बारी-बारी से पुष्पा और धोती को देखती रही। कई चेष्टा के उपरान्त भी उसके मुंह से शब्द नहीं निकला। उस कम समय में अपनी मां के चेहरे की उन विचित्र प्रतिक्रियाओं से पुष्पा हैरान थी। वह भी निःशब्द उसे घूरती रही। उसने अपनी मां की आंखों को सजल हो जाते देखा और अन्त में उसके मुंह से निकल ही पड़ा, "क्या बात है मां ?"

फुलवन्ती कुछ नहीं बोली। उसने जल्दी से अपनी आंखें पोंछ लीं, फिर भी भीतर से डबडबायी आंखों के कारण उसके सामने की चीजें धूमिल रहीं। पुष्पा का चेहरा भी धुंधियारी में डूबा रहा।

फुलवन्ती की ओर एकटक देखती हुई पुष्पा ने दोबारा प्रश्न किया।

उसकी मां चुप ही रही। उसकी वह ऊपर की चुप्पी भीतर की खलबली को स्पष्ट कर रही थी। भीतर की उथलपुथल के कारण को जानने के लिए अधीर पुष्पा एकदम छोटी बच्ची की तरह मां से लिपट गयी। ऐसा करके मौन रूप से उसने अपने प्रश्न को फिर से दोहराया। उत्तर में फुलवन्ती का हाथ उसके बालों को सहलाता रहा। दिन में पुष्पा की एक छोटी-सी भूल पर वही हाथ थप्पड़ के रूप में उसके गाल पर पड़ा था।

कई बार ऐसा हुआ था।

कई बार अपनी मां से थप्पड़ खाने के कुछ ही देर बाद पुष्पा को उसका स्नेह मिल जाता, पर आज का स्नेह भिन्न था। अपने सिर पर की अंगुलियों से वह उस भिन्नता को महसूसती रही।

सूर्यकिरणों के साथ बाहर के बकाइन के पत्तों की जो छाया भीतर आ गयी थी, उसी कम्पन के साथ पुष्पा के ख्याल भी भीतर-ही-भीतर कम्पित रहे। जब एकाएक किसी बदली के कारण पत्तों की छाया सूर्यकिरणों के साथ ओझल हो गयी तो उसकी जगह पुष्पा ने अपने भीतर के ख्यालों को आंखमिचौनी खेलते पाया।

—मां को बीते दिन याद आ गये होंगे......पर यह धोती ?......शायद पिताजी

इसी रंग की धोती पहनते होंगे······

और भी कई तरह के ख्याल धूप में पत्तों की परछाईं की तरह झिलमिलाते रहे। जिस तरह धूप के बीच से पत्तों की परछाईं को पकड़ना असम्भव था, ठीक उसी तरह अपने सम्भावित ख्यालों में से एक को सही मान लेना उसके लिए कठिन रहा। उसकी माँ कई बार रोयी थी। कई बार उसकी आँखों से आँसू बहे थे। कई बार पुष्पा को अपने से सटाकर उसने परिस्थिति की पीड़ा को सहा था। लेकिन हर बार की विकलता के कारण स्पष्ट होते थे। वजह जानने में पुष्पा को इतनी देर कभी नहीं हुई थी। स्वयं विकल होकर उसने धीरे से भिन्न स्वर में पूछा, "क्या बात है माँ ?"

फुलवन्ती की खामोशी टूटकर रही, "है धोती तोके के देलक बेटी ?"

"देवनन्दन् चाचा ने।"

दूसरे ही क्षण पुष्पा के साथ फूलो कुन्दन के घर के भीतर थी।

"भैया, है केकर धोती है ?"

"मेरी है, क्यों ?"

"नाहीं······ई आपकी नाहीं।"

"कैसे कह सकती हो ?"

"सच-सच बता भैया, ई केकर है ?

"सच-सच यह है कि······ "

कुन्दन के चुप होते ही पुष्पा ने कहा, "चुप क्यों हो गये चाचा ?"

"मेरे एक मित्र की है।"

फुलवन्ती ने तुरन्त कहा, "नाहीं देवनन्दन् भैया, ई धोती मेरे पति के रहल।"

"तुम्हारे पति की ?"

"हाँ भैया।"

"तुम भूल रही हो। धोती धोती की तरह हुआ करती है।"

"भैया आप कैद मे आईल हैं न ?"

"नहीं तो।"

"है धोती त हम लाख धोती मे पहचान लेवव भैया !"

"क्या था तुम्हारे पति का नाम ?"

"बता दे पुष्पा !"

"मेरे पिता का नाम मगरू है चाचा !"

कुन्दन को अपने कानों पर विश्वास नहीं हुआ।

बाहर बच्चों का शोर पराकाष्ठा पर था।

एक सप्ताह पहले बस्ती के बच्चो को चोर-सिपाही का खेल खेलते पाकर कुन्दन ने सभी को अपने इर्दगिर्द बुला लिया था। बच्चो के सामने ही उसने अमरूद की लकड़ी काटकर गुल्ली-डंडा बनाया था और अपने बचपन के दिनों को याद करता हुआ बच्चों को वह खेल सिखाया था। चोर-सिपाही का खेल खेलते हुए बच्चों को उसने

इसलिए गुल्ली-डण्डा की ओर आकर्षित किया था कि जिस ढंग से ये बच्चे चोर-सिपाही का खेल खेलते, वह कुन्दन को अच्छा नहीं लगता था। नये खेल से बच्चे बहुत खुश थे। उनकी उमंग कोलाहल का रूप ले लेती थी।

शाम के इस धूमिल वातावरण में भी घरों की दोनों कतारों के बीच के खुले भाग में बच्चे खेल में लगे हुए थे। किसन काम से अभी-अभी लौटा था। हाथ-पाँव धोने के लिए घड़े में पानी नहीं था। कुएँ सूखे पड़े थे। किसन चौखट के पास बैठा बच्चों का खेल देख रहा था। काम से लौटते हुए रास्ते में उसने ऊख की जो पिछली फुल्ली चूसी थी, उससे उसके हाथ-मुँह लसलस हो गये थे।

किसन का जी बच्चों के साथ मिल जाने को करता। वे सभी खेल में इस तरह खोये हुए थे कि आस-पास की बाकी चीजों का उन्हें तनिक भी भान नहीं था। किसन ने बार-बार चाहा था कि वह भी कुछ घड़ी के लिए अपने को सामने की स्थिति-परिस्थिति से काट ले। असम्भव था ऐसा करना। एक बार उसने गोपाल के बाप से पूछा था कि उसके गाँजे पीने का क्या कारण था, इसपर गोपाल के बाप ने गाँजे के धुएँ से लसटैच मूँछों पर ताव देते हुए कहा था, "अपन को इ सब झंझट से अलग करेके और कोई उपाय भी तो नाहीं।"

अपने को झंझटों से अलग करने के लिए एक बार किसन ने भी चुपके से उस पौधे का एक कश ले ही लिया था जिसे गोपाल का बाप चोरी-चुपके पिछवाड़े के जंगल से ले आता था। कहा जाता था कि इस पौधे को रोपनेवाला वही पहला आदमी था। उस कश से किसन का सर चकराकर रह गया था, उसे झंझट से राहत नहीं मिली थी। इस समय बच्चों को पूरी निश्चिन्तता के साथ खेल में जुटे पाकर उसका मन ललच-ललचकर रह जाता था। दिन-भर की अपनी सभी थकान को भूलकर भी वह बच्चों के साथ बच्चा बन जाने की सोच रहा था।

घर के भीतर से आती हुई चकरी की घरघराहट उसके भीतर के ख्यालों को और भी बोझिल किये जा रही थी। चावल के पकाने योग्य न होने के कारण चकरी में मकई पीसी जा रही थी। इधर दो दिन से लोग मकई के भात से गुजारा कर रहे थे। माँ का गुनगुनाना, जो उसे हमेशा बहुत अच्छा लगता था, इस समय उसके कानों को खल रहा था। जाँते की वह घरघराहट उसके कानों में बजती हुई उसे कीड़े-भरे चावल की याद दिला रही थी। कानों के रास्ते से चुभती हुई मस्तिष्क को पहुँचकर वह आवाज उसे झनझनाती रही।

अँधेरा एकाएक घिर आया था। इसका ख्याल किये बिना किसन हाथ-पाँव धोने के लिए नदी की ओर चल पड़ा, अपने-आप सोचते हुए कि जब कारखाने में पानी ही की जरूरत थी तो वह नदी से भी लिया जा सकता था। गाँव का सभी पानी क्यों बटोर लिया गया था। छोटी-छोटी बातों पर मजदूरों को बड़ी-बड़ी यातनाएँ देने के लिए। निर्ममता की हद उसके दिमाग को और भी अस्तव्यस्त कर जाती।

वह रास्ते से लौटकर कुन्दन के घर आ गया। कुन्द पहले ही नदी को पहुँच

गया था। पुष्पा घर के भीतर चिराग जलाकर बाहर आ रही थी। किसन को देखकर ठिठक गयी। उसके मुँह से निकला, "देवनन्दन चाचा नदी की ओर गये हैं।

"मैंने कुछ और ही सोचा था।"

"क्या सोचा था? मैं जाती हूँ।"

"पूरी बात तो सुन जाओ।"

"तुम्हीं बोलो तुम्हीं सुनो।"

"अच्छा तो फिर नहीं बोलता। अब तो ठहरो।"

"मैं नहीं ठहरती?"

नीचे बिछी हुई बाबरा की चटाई पर बैठते हुए किसन ने पूछा, "क्यों नहीं ठहरती?"

"तुम अब पहले जैसे नहीं रहे।"

"तुम चाहती हो कि मैं पहले ही जैसा रहूँ—उसी घुटनों तक की कमीज में बहती हुई नाक के साथ··· "

"तुम मेरा मतलब अच्छी तरह समझते हो।"

"समझता हूँ तभी तो वह तो कह हूँ कि ··।"

"पहले तुम इस तरह रूखेपन के साथ बातें नहीं करते थे। हर समय मेरे पीछे-पीछे रहते थे। कहानियाँ सुनाते थे। मेरे लिए गीत गाते थे।"

"तुम उस समय की बात कर रही हो पुष्पा जब मैं गुलाम की उम्र का नहीं था।"

कुछ क्षण के लिए दोनों चुप हो गये।

घर के बीच की दीवार के पीछे से सहमे हुए स्वर में हनुमानचालीसा सुनायी पड़ता रहा।

उन्नीस

मोटे की राख से माँज चुकने के बाद उसे अपनी ओढ़नी के घेर से पोंछती हुई फुलवन्ती उसके चमकीले भाग पर अपलक आँखें गड़ाये रही। धीरे-धीरे सामने के माहौल से कटती हुई वह पीछे को लौटती गयी ··· लौटती गयी और··· ··

वह भारत छोड़कर सात समुद्र पार आना चाहती थी। उसने तो अपनी माँ से कहा था कि वह वहीं रहकर सभी कुछ झेल सकती है। उसकी माँ, जो पति की मृत्यु के बाद से अपनी कमर को सीधी नहीं कर पायी थी, फूलो से लिपट गयी थी। उसे अपने जीवन की कोई आशा नहीं थी। महामारी में सभी कुछ तहस-नहस हो गया था। उस लम्बी बुखारी ने उसे भी भीतर-बाहर से सुखा दिया था। बिहार की भूमि बंजर-सी पड़ी हुई थी। आरा के इस छोर से उस छोर तक हाहाकार था। फूलो का गाँव बेबसी की साँसें लेता-सा लग रहा था। खेतों में अस्तव्यस्तता थी। न काम था,

न रोटी थी। फूलो की मां अपने दो बच्चों को भूख से मरते देख चुकी थी। उसका बड़ा लड़का माधो मारीज देश को चला गया था। धीरे-धीरे गांव खाली होने लगा था। झोपड़ियों की छतों पर कौवों की संख्या बढ़ती गयी थी। तालाब-नदी-नाले सभी सूखे पड़े थे। जहां-तहां की बची हुई फीकी हरियाली के ऊपर पीलापन गहरा होता जा रहा था।

तीन दिन की भूखी-प्यासी फूलो के माथे पर हाथ फेरती हुई उसकी मां ने उससे यही तो कहा था कि बस्ती उजड़ी जा रही थी। सगे-सम्बन्धी सभी रोटी की तलाश में इधर-उधर जा चुके थे। गांव में कोई नहीं बचा था जिससे जान-पहचान हो। फूलो की मां को अपनी अन्तिम घड़ी पास आती-सी प्रतीत हुई थी। वह चाहती थी कि कोई काफिला बनारस की ओर जाता मिल जाये तो वह उसमें से किसी एक व्यक्ति के जिम्मे फूलो को सौंप सके। अपनी मृत्यु पर अधिकार जमाये वह प्रतीक्षा करती रही।

उस दिन पन्द्रह-बीस व्यक्तियों के साथ धनवा सरदार गांव से गुजरा था। फूलो की मां से भी उसने वही कहा था जो गांव-गांव कहता आ रहा था। उसकी बातों पर फूलो की मां कैसे विश्वास नहीं करती, जबकि उसके माथे का टीका उतने गहरे रंग का था। उस झुण्ड में सात स्त्रियां भी थीं। उन्हीं में से सबसे अधेड़ के हाथों में फूलो को सौंपती हुई मां ने कहा था, "बहन, अपन ही समझयो।"

लोटा ही वह आखिरी चीज था जिसे गठरी में रखकर फूलो की मां अपनी बेटी से लिपट गयी थी। मन-ही-मन उसने कामना की थी कि मारीच में फूलो को माधो मिल जायेगा। दोनों भाई-बहन मिलकर सुख से रहेंगे। धनवा सरदार की बात सच निकलेगी, हर पत्थर के नीचे से सोना निकलेगा और यहां के रोटी-कपड़े के मुहताज ये सभी लोग धनधान्य से पूर्ण हो जायेंगे।

जहाज में फूलो एक क्षण अपनी मां के बारे में सोचती थी तो दूसरे क्षण सात समुद्र पार के उस जजीरे के बारे में, जहां वह जहाज के तीन सौ व्यक्तियों के साथ पहुंचने जा रही थी। अपनी मां, अपने गांव, अपनी झोपड़ी से दूर होने के दुख को वह यह सोचकर कम कर पाती थी कि मारीच में उसे अपना भाई मिल जायेगा। दोनों मिलकर उस मायावी देश के पत्थरों के नीचे से बहुत सोना बटोरेंगे और फिर अपने देश को लौट आयेंगे। उस समय वह सोलह पार कर गयी थी, फिर भी उस समय उसकी कल्पना बच्चों की सी हो गयी थी। वह अकेली नहीं, जहाज के सभी लोग प्रायः उसी की तरह सोच रहे थे। सरदार ने कुछ इस तरह से बातें सुनायी थीं कि जहाज का हर-एक आदमी यही सोचने लगा था कि वे परियों के देश को जा रहे थे। यात्रा कई दिनों की हो जाने पर भी जब किसी द्वीप का नामोनिशान नहीं दीखा तो लोग विचलित-से होकर एक स्वर में पूछ बैठे थे, "कहां बाते मारीच का देश ?"

सरदार ने हँसकर उत्तर दिया था, "मैं तुम सबों की अधीरता को समझता हूं। हम पहुँच ही रहे हैं। बस, कुछ दिनों की बात है। सबूरी रखो। सभी मालामाल

केवल तीन सौ उन्नीस ही जहाज से उतरे थे। एक कम था, पर उस मामूली कमी पर कोई विशेष ध्यान नहीं दिया गया। उसके लिए कोई चिन्तित भी नहीं हुआ। इसके बाद फूलो का हाल पूछने कभी नहीं कोई आया। हिन्दमहासागर की गहराई अथाह थी। उसके भीतर की आवाज़ बाहर कभी नहीं सुनायी पड़ती। चट्टानों से टकराती सतही ज्वार-भाटे की आवाजें फूलवन्ती तब से अब तक सुनती आ रही है। समुद्र की उन लहरों के कारण को वह कभी नहीं जान सकी। आज बुढ़िया हो जाने पर भी वह एकान्त में अपने प्रश्न को सुना करती इस द्वीप की ये लहरें इस तरह कराहती क्यों हैं?

आज तक किसी ने उसको यह नहीं बताया कि चारों दिशाओं से ये लहरें ही थीं जो द्वीप में घटनेवाले एक-एक क्षण की गवाह थीं। सभी ऊँचे पहाड़ अपनी कठोरता के कारण खामोश थे, पर ये लहरें अपनी फेनिल तरलता के कारण गाने को विवश थीं।

कुछ असह्य क्षणों को जीते समय फूलो कई बार अपने से पूछ चुकी थी कि उसके भारत छोड़ने की नौबत क्यों आयी थी। कौन-सा ऐसा संकट था जो इससे भी भयंकर था? फिर तो पुरानी धुँधली यादें धीरे-धीरे उसके मस्तिष्क में उभरने लग जातीं। भारत में स्वतन्त्रता के लिए आन्दोलन हो रहा था। उसका भाई माधो बिहार के गाँव-गाँव में लोगों को उस आन्दोलन में सक्रिय भाग लेने के लिए प्रेरित कर रहा था। अंग्रेज उसके पीछे थे। पकड़े जाने के भय से वह मारीच को भाग आया था। अंग्रेजों के हाथ जब क्रान्तिकारी नहीं आये तो उसने बिहार को मटियामेट कर देने के ख्याल से वह सभी कुछ किया जिससे महामारी दुगुनी हो गयी। खेत सुखारी सूखते रहे और झोपड़ियाँ आग से जलती रहीं। प्रकृति की निर्दयता के साथ-साथ अंग्रेजों की निर्दयता मिल गयी। खेत उजड़ते गये। बिहार ऐश्वर्य मिटता गया, भूख बढ़ती गयी। लाशें सड़ती गयीं। और बीमारियाँ बढ़ती गयीं फूलो ने कई लोगों से सुना था कि बिहार पाँच सौ वर्ष पीछे हो गया था। तभी तो उसकी माँ ने भी उससे यही कहा था कि जो धरती पाँच सौ वर्ष पिछड़ गयी वहाँ जीवन के चन्द वर्षों को किस आस पर जिया जाये! बहुत बाद में मारीच की कठिनाइयों को झेलती हुई, जूझती हुई फूलो ने कई बार अपने से कहा था कि इधर के इस जीवन से बेहतर तो यह होता कि वहाँ की उस स्थिति को वहीं झेला जाता। उससे वहीं जूझा जाता। किसी भी हालत में वहाँ की स्थितियाँ यहाँ से बदतर नहीं थीं। पर चुग गये खेतों के लिए पछताने से क्या होता है?

तभी उस दिन सात मजदूरों के पूरे महीने का पैसा जब्त कर लिये जाने पर उसके मुँह से निकल गया था, "अपन देश के संकट में छोड़के भाग आवल के ई सब फल मिल रहल बा!"

दाड़े ने कटी हुई छोटी-सी कोठरी के छूटकर जब गौतम घर लौटा तो उस समय वह आधे दम का था। फूलवन्ती ने अपने हाथों उसे तीन दिन माँड़ पिलाकर हिल-डोल सकने के काबिल बनाया था। तीन फुट चौड़ी और पाँच फुट ऊँची उस कोठरी में गौतम को पन्द्रह दिन रहने पड़े थे। दिन में बस एक मुट्ठी अधउबला चावल दरार से उसके

उस समय किसन को ईख के कारखाने में होना चाहिए था। मालगासी नौकरों ने ईख पेरने के काम को ठाले छोड़ दिया था। बस्ती के पन्द्रह मजदूर चीनी पकाने में लगे हुए थे। किसन को वहाँ से उठा लाया गया था।

"तुम्हें मालूम है किसन, साहब ने एक बार मेरे बाप से क्या कहा था ?"

किसन ने सिर हिला दिया।

"उसने कहा था कि मैं बस्ती में सबसे मादक हूँ। यह बात मेरी माँ ने मुझे सुनायी थी। जानते हो मैंने माँ से क्या कहा था ?"

किसन ने फिर से सिर हिला दिया।

"मैंने कहा था, साहब से कह देना कि मेरी मादकता का हकदार कोई है। वह हकदार तुम हो किसन !"

अपने से सटी मांसलता को महसूसकर किसन भीतर से ज्वालामुखी बनता रहा। अपनी धमनियों में उसने उष्णता को तीव्र होते पाया।

"किसन ! अगर तुम नहीं बोलोगे तो मैं चुप हो जाती हूँ।"

उसकी सांसों की गरमी ने, जो किसन की अपनी सांसों के अति निकट थी, किसन की उष्णता को और भी उत्तेजित कर दिया। दोनों चुप रहे।

सांसें बोलती रहीं। चांदनी पत्तों के छिद्रों से चुपचाप झांकती रही। डाली के पक्षियों ने करवटें लीं। डैनों की फड़फड़ाहट हुई। दोनों की सांसों ने एक ही साथ रफ्तार तेज की।

टिप-टिप बूंदें टपकीं। झींसी-सी आयी। उसके बाद बारिश भी शुरू हो गयी। दोनों पाकड़ के पेड़ से सटे रहे। किसन ने नहीं चाहा कि जो उसके साथ थी वह भीगे। उसने उसे जकड़कर अपने सिर को उस पर झुका दिया। वह बच्ची-सी उसके अंक में सिकुड़ गयी। चांदनी की सफेदी लुप्त थी। अँधेरा ईख के पके हुए रस की तरह गाढ़ा हो चला था। उस घटाटोप में ईख का कारखाना और बस्ती सभी कुछ दूर हो चला था।

किसन ने अपने कान के पास गुदगुदी अनुभव की। होंठों की गरमी और फिर कराहती हुई-सी फुसफुसाहट, "किसन, तुम अपने बाप को मेरे बाप से मिलने क्यों नहीं भेजते ?"

किसन की अंगुलियों को उसने अपने होंठों पर विचरते पाया। उसके समूचे शरीर में फिर से सिहरन पैदा हो गयी। फिर से गरमी पाकर धमनियों का खून खौला······फिर से······।

एक सुस्ती-सी आयी। दोनों निर्जीव पड़े रहे। एक लम्बी खामोशी बनी रही। डैनों की फड़फड़ाहट ने उसे तोड़ा।

"किसन ! तुम उत्तर नहीं दोगे ?"

"···।"

"कब भेजोगे अपने बाप को मेरे यहाँ ?"

किशन जानता था कि इन प्रश्नों का कोई अर्थ नहीं था। यह क्षणिक था। इस क्षणिक बन्धन के खुलते ही यह प्रश्न ठन्ड में जम जायेगा।

किशन ने बन्धन को थोड़ा-सा शिथिल किया।

"मुझे लौटना होगा।"

"अभी कारखाने का काम पूरा नहीं हुआ।"

"तड़के ही खेतों में पहुँचना है।"

"अभी समय है।"

"तुम्हारा बाप अगर घर पहुँच गया हो तो ?"

"कुछ नहीं होगा।"

जिस सरलता के साथ उसने उत्तर दिया, वह किशन को बहुत अच्छी लगी। किशन कई बार अपने-आपसे पूछता रहता था कि आखिर जो साहस और निर्भयता लड़कों में है, वह लड़कियों में क्यों नहीं ? घूंघटवाली लड़की किसन को कभी भी अच्छी नहीं लगी। उसने चाहा था कि लड़कियाँ भी स्थिति को बदलने में सक्रिय भाग लें। यह लड़की कुछ हद तक स्वतन्त्र और दिलेर थी, लेकिन इसकी यह स्वतन्त्रता और दिलेरी उस लक्ष्य को नहीं छू पाती जो किशन का था।

बारिश के थमने के बाद भी चाँद ओझल ही रहा। समय का अनुमान नहीं हो पा रहा था। किसी तरह अपने को अँधेरे के झालर से मुक्त करके किशन ने उस ओर देखा जहाँ टिमटिमाते चिराग अँधेरे को चीरने का भरसक प्रयत्न कर रहे थे।

"चलो, पहले तुम्हें अहाते तक छोड़ आऊँ !"

"अभी तो मुर्गों की बाँग भी शुरू नहीं हुई।"

"तुम भीग गयी हो। कपड़े बदलने होंगे तुम्हें।"

"भीगे तो मुझसे अधिक तुम हो।"

"मैं आदी हूँ।"

"तुम तो बहुत-सी चीजों के आदी हो।"

"समझा नहीं।"

"खैर······अब कब मिलोगे ?"

"तुम सोचती हो हमारा इस तरह का मिलना अच्छा रहेगा ?"

"अच्छे-बुरे की परख मुझे नहीं आती, तुम्हें आती है क्या ?"

"केवल एक स्थिति ऐसी होती है जब आदमी बरसात और गरमी के प्रभाव को भी परख नहीं पाता।"

"कौन-सी स्थिति होती है वह ?"

"वह बीत गयी।"

"दोहरायी नहीं जा सकती क्या ?"

"बस, अब चलना होगा।"

"तुम पुष्पा से भी इसी तरह कतराते रहते हो क्या ?"

किसन इस प्रश्न के लिए बिल्कुल तैयार नहीं था, "मैं तुम्हें कारखाने के उस पार तक छोड़ आता हूँ।"

"सुना है, पुष्पा तुम्हें देखे बिना भात नहीं खाती है।"

"कारखाने में मेरा काम अधूरा रह गया होगा।"

"तुम्हारी माँ को भी पुष्पा बहुत प्यारी है।"

दोनों उस कुछ-कुछ फटते हुए अँधेरे में चलने लगे थे।

"तुम डरती नहीं हो ?" किसन ने पूछा।

"तुमसे ?"

"नहीं। अँधेरी रात में, अकेली।"

"मैं अकेली हूँ क्या ?"

चीनी पकने की गन्ध से भीगा माहौल तर था। कल की आवाज रुकी हुई थी। किसन ने अनुमान लगाकर जान लिया कि कल में फिर से गड़बड़ी आ गयी होगी और उसकी जगह मजदूर उस भारी पहिये को घुमा रहे होंगे। उनका पसीना ईख के रस में मिलकर चीनी बन रहा होगा। एक आवारा ख्याल आ गया उसे—कभी ऐसा नहीं होगा कि मजदूरों के पसीने की मात्रा चीनी में कुछ अधिक हो जाये और चीनी मीठी न होकर नमकीन हो जाये !

कारखाने के भीतर मशालें जल रही थीं। बाहर भी उसका प्रकाश था। उस प्रकाश से कतराकर दोनों पत्थर की ऊँची दीवार के आसपास चलने लगे थे। भीतर काम पराकाष्ठा पर था। सरदार के चिल्लाने की आवाज दीवारों को भेदकर बाहर तक गूँज रही थी। दीवारों के भीतर के दृश्यों को किसन आँखें मूँदे भी देख सकता था। अपने को बस कोसने के अलावा उसके पास कुछ और था भी नहीं।

सामने के घर से टिमटिमाता चिराग दिखायी पड़ रहा था। किसन ने रुककर पूछा, "अब मैं कारखाने को लौट सकता हूँ ?"

"वहाँ मेरा बाप पहुँच गया होगा।"

"तो फिर क्या करूँ ?"

"घर क्यों नही चले जाते ?"

"घर ?"

"हाँ, तो क्या ? पर देखो, यह बताकर ही जाना होगा कि अब कब मिलोगे ?"

"तुम मेरे लिए एक काम नहीं कर सकती हो ?"

"मुझे इस योग्य तो समझा तुमने !"

"तुम वचन दो तो मैं कुछ कहूँ।"

दोनों के बीच थोड़ा-सा जो फासला बन गया था, वह कम हो गया। वह फिर से किसन के उतने ही पास आ गयी जहाँ से दोनों की साँसें टकराकर एक हो जाती थीं।

"मैं तुम्हारे इतने करीब हूँ। और किस दूसरे वचन की बात कर रहे हो ?"

"तुम अपने बाप को मना तो सकती हो।"
"हमारी शादी के लिए?"
"इससे भी बड़ी चीज के लिए।"
"इससे भी बड़ी चीज क्या हो सकती है?"
"तुम अपने बाप से कहना, वह मजदूरों के साथ कुछ कम क्रूरता के साथ पेश आये।"
"जहाँ तक मैं जानती हूँ, मेरा बाप सभी सरदारों से अच्छा सरदार है।"
"जो तुम जानती हो वह सच नहीं।"
"मेरा बाप सभी से क्रूर है क्या?"
"मजदूरों से पूछकर क्यों नहीं देखती?"
"मैं अपने बाप को मना लूँगी.....एक शर्त......।"
"कैसी शर्त?"
"हमारे बीच का सम्बन्ध।"
"क्या मतलब इसका?"
"कोई मतलब नहीं इसका?"
"मेरा मतलब है कि क्या करना है हमारे बीच के सम्बन्ध के साथ?"
"इसे सही सम्बन्ध बनाया जा सकता है।"
अधिक अनजान बनना किसन से नहीं हो सका। इस सौदे के भाव को वह पहले ही से जानता था। दोनों के बीच का यह संवाद हमेशा इसी ठौर पर आकर रुकता था। दोनों यहीं से विदा होकर कई दिनों तक एक-दूसरे से दूर रहते थे। फिर नयी उम्मीदों के साथ दोनो एक बार फिर अपनी-अपनी बातों के साथ एक-दूसरे से मिलते।
किसन ने अपनी गरदन से उसकी बाँहों को ढीला किया और अपनी भीगी आस्तीन से मुँह पोंछकर धीरे से कहा, "शायद तुम्हारी माँ अब भी जाग रही है।"
किसन की नाक को जोरों से खींचकर सत्या अपने घर की ओर दौड़ गयी। दूसरे क्षण किसन भी अपने घर की ओर चल पड़ा। किसन की अन्धी चाल के लिए रास्ता वहाँ से सीधा था।

बीस

कुन्दन के घर में हिन्दी की पढ़ाई होती है, रामायण और आल्हा गाये जाते हैं तथा बैठकें लगती हैं—इस बात का पता ठेकेदारों को चल गया था। कुन्दन को चेतावनी देने के बाद उस पर कड़ी नजर रखी जा रही थी। यही कारण था कि पिछली बैठक उस समय लगी थी जब मूसलधार वर्षा हो रही थी। लोगों के बीच दो घण्टों की जो बातचीत हुई वह मदन और सिताऊ के बीच हुई थी। जब दूसरी कोठियों में पहुँचकर

सभी लोगों को सजग और संगठित करने की बात चली तो किसन खुद जाने को तैयार हो गया था। इस पर कई लोगों ने एकसाथ आपत्ति की थी। सभी ने यही कहा था कि किसन को यहीं रहकर सभी कुछ करना है। इसके बाद सोनालाल खड़ा हो गया था। सोनालाल को किस तरह दूसरी कोठियों में प्रवेश करके काम करना था यह सभी कुछ उसे बताने की जिम्मेवारी कुन्दन ने अपने ऊपर ले ली थी।

उस रात पौ फटने तक लोग आल्हा गाते रहे। पानी भी जी भरकर बरसता रहा। उस रात किसन की हर बात को गम्भीरता के साथ सुना और समझा गया था। भीतर के भय और झिझक के बावजूद उस रात संकल्प लिये गये। पहली बार एक मकसद के लिए लोग तैयार दीखे। लोगों के ध्यान को अपनी आँखों में बाँधकर किसन ने कहा था, "एक न एक दिन तो हमें इन सभी अनर्थों के विरुद्ध अपनी छाती को सामने करना ही है।……वह दिन आज ही क्यों न हो?"

सभी के बीच इस प्रश्न की प्रतिध्वनि हुई थी। काफी देर तक उसकी अनुगूंज घर के भीतर होती रह गयी थी। उस अनुगूंज के भीतर लोग उस समय तक जकड़े रहे जब तक कि कोठी के रखवार की आवाज की गूंज पूरी बस्ती में न फैल गयी।

"फजीर होवे के बा। काम पर पहुँचे के तैयारी में लग जावो……फजीर होवे के बा……।"

उस धुंधलके में सभी घरों से चिराग टिमटिमा उठे थे। बरतनों की खनक-झनक शुरू हो गयी थी।

हाथ में पीतल का लोटा थामे सोनालाल मैदान को चल पड़ा। उसकी पहली मंजिल थी आस्वानेत कोठी, जहाँ उसका चचेरा भाई जमीन से पत्थर निकालकर उसे खेतों में परिवर्तित करने में लगा हुआ था। इलाके की वह सबसे बड़ी बस्ती थी, पूरे तीन सौ मजदूरों की। अपने भीतर भय और साहस लिये वह पहाड़ी को पार कर गया।

रघुसिंह को जब रात की बैठक के निर्णय का पता चला तो वह किसन पर बरस पड़ा, यह कहते हुए कि उसके समय में परिस्थिति इनसे भी नाजुक थी। एक ही देगची में चावल पकता था और हर मजदूर के सामने कलछी-भर फेंक दिया जाता था। कपड़े की जगह कई वर्ष बोरे पर दिन गुजारे गये थे। आँखों के सामने घर की औरतों की इज्जत लूट ली जाती थी। उन सभी परिस्थितियों को हम झेल आये थे। आज जब स्थिति में काफी सुधार आ गया था तब इस तरह का विद्रोह करना अपने भविष्य को माटी में मिलाना था। वह यह कहकर आज के नौजवानों को कोसता रहा कि इन गरम खूनवालों के भीतर सबूरी नाम की कोई भी चीज नहीं थी। उनमें न सन्तोष था, न सहने की हिम्मत। अन्त में पूरी गम्भीरता के साथ उसने किसन से पूछा, "तुम लोगन हमनी के समय में होतस त का करके रहतस?"

किसन अपने बाप की बातों को चुपचाप सुनता रहा। उससे तर्क करना उसके क्रोध को और भी बढ़ाना था। अगर किसन को हैरत थी तो इस बात की कि उसके

बार का यह आक्रोश किसी विशेष कारण के लिए बरसों नहीं था। ऐसा होने पर कम-से-कम बेकार होने से तो बच जाता। लेकिन किसन के अपने भीतर का आक्रोश भी बेकार था। वह भी तो उसी पुरानी बेचारगी की स्थिति में था। निहत्था वह भी था। वह यह भी जानता था और इन सभी के विरुद्ध उसका विद्रोह भी सीलेपन से मुक्त नहीं था।

सोनालाल की माँ को जब मालूम हुआ कि उसका बेटा दूसरी कोठी में मजदूरों को सजग और संगठित करने पहुँचा है तो वह भय से काँप उठी। सीधे किसन के घर पहुँचकर उसने अपने बेटे के बारे में पूछताछ शुरू कर दी। सोनालाल की माँ की उपस्थिति में ही रघुसिंह किसन को बुरा-भला कहता रहा। सोनालाल की माँ को रोते पाकर किसन की माँ भी अपने बेटे पर बरस पड़ी। रघुसिंह के एक लड़का और दो लड़कियाँ थीं। इन तीनों से पहले भी उसके यहाँ दो बच्चे जन्मे थे, पर कुछ ही दिन जीकर दोनों ही मर गये थे। गाँव की कई औरतों ने एकसाथ कहा था, "रघुसिंह की बहुरिया, तुम्हारे को बच्चा नहीं सहता।"

इसीलिए जब तीसरी बार किसन का जन्म हुआ था तो सोनालाल की माँ ने आगे आकर अपने खूँटे से एक पैसा निकाला था और रघुसिंह की पत्नी के हाथ में रखकर बच्चे को अपनी गोद में ले लिया था। इसी तरह बारी-बारी से उसने किसन की दोनों बहनों को भी खरीद लिया था और तीनों बच्चों के जीवित रह जाने का यही कारण समझा जाता था। रघुसिंह के बच्चे सोनालाल की माँ को भी 'माँ' कहते थे। तीनों बच्चों ने सबसे पहले उसी का दूध पिया था।

सोनालाल की माँ को रोते पाकर किसन ने उससे धीरे से कहा, "तुम सोनालाल की चिन्ता नहीं करो माँ ! वह एक बहुत बड़े काम के लिए उधर गया है। काम पूरा होते ही लौट आयेगा।"

किसन नहीं चाहता था कि यह बात फैले। उसके फैलने से सोनालाल संकट में तो पड़ेगा ही, उसके साथ-साथ काम बनने के बदले और भी बिगड़ जायेगा। दूसरे दिन शाम के वक्त नदी किनारे अकेले होने पर किसन ने अपने-आपसे बातें करते हुए कहा कि सोनालाल की जगह उसे खुद जाकर दूसरी कोठियों के मजदूरों से मिलना चाहिए था। पर उसकी अनुपस्थिति पर बहुत जल्दी सन्देह हो जाता। वह अपनी कोठी से बाहर कभी नहीं गया था, जबकि सोनालाल का किसी बहाने इधर-उधर जाना होता ही रहता था। इस लिहाज से उसके बारे में सन्देह की कम सम्भावना थी। इन कारणों के बावजूद किसन को प्रतीत होता रहा कि निर्भयता का उसमें अभाव था अन्यथा इस खतरे को उसे अपने सिर पर लेना चाहिए था।

नदी की ओर जाते हुए सरदार के खेत के पासवाली पगडण्डी पर उसे सत्या मिल गयी थी। उसके हाथ में हरी मकई थी। उसने किसन से पूछा था, "भुनी हुई मकई खाओगे किसू ?"

"नहीं।"

"देखती हूँ तुम खाये बिना कैसे आगे बढ़ते हो !"

कुछ ही दूरी पर सत्या की माँ सूखी लकड़ियों के अंगारे पर मकई भून रही थी। उसके पास तक पहुँचकर सत्या एक मकई उठा लायी थी। किसन के हाथ में जबरदस्ती थमाती हुई बोली थी, "एकदम सोंधी है।"

"मैं नहीं खाऊँगा।"

"नदी की ओर जा रहे हो न ?"

"हाँ।"

"तो उसी में फेंक देना।"

वह एक दूसरी बात थी जिसे सत्या ने कहा था और जो इस समय उसके कान में बज रही थी, "किसू, लोग कहते हैं तुम बड़े साहसी हो।"

वह व्यंग्य नहीं था, लेकिन इस समय वह उसे व्यंग्य-सा प्रतीत हो रहा था। उसने मन-ही-मन कई बार प्रश्न किया—क्या मैं सचमुच साहसी हूँ ? अगर सत्या ने व्यंग्य न किया हो तब तो। नहीं, वह व्यंग्य नहीं था। और भी कई अवसरों पर कई लोगों ने इस तरह की बात कही है। लेकिन मैंने तो इसका अब तक कोई भी प्रमाण नहीं दिया। क्या वक्त-बेवक्त नदी की ओर आ जाने से कोई साहसी बन जाता है ? बस्ती में गोसाँईजी सबसे अधिक पढ़े-लिखे आदमी थे। किसन एक बार साहस शब्द का अर्थ उनसे पूछकर देखना चाहता था। हो सकता है कि उसके दो अर्थ हों। लोग उसे उस दूसरे अर्थ से पुकारते होंगे जो उसे मालूम नहीं।

सत्या की दी हुई मक्की अब भी उसके हाथ में थी। सत्या ने उसे और भी कई अवसरों पर चीजें दी थीं। किसन उन चीजों को बस्ती के बच्चों में बाँट देता। मक्की का क्या करे ? रात होने को थी। मक्की की सोंधी गन्ध में प्रलोभन था। मक्की में सत्या की याद थी। सत्या की गन्ध थी। किसन को भूख लग आयी थी, लेकिन उसे मक्की खाना नहीं था, कम-से-कम अपने इस संकल्प से वह बहुत अच्छी तरह अवगत था।

एक बार सत्या उसका हाथ थामे उसे मकई के खेत के भीतर घसीटे चली गयी थी। वह खेत किसन को काँटों की झाड़ी-सी लगी। वह खेत रामजी सरदार को रेमों मालिक की ओर से भेंट में मिला था। वह वफादारी की भेंट थी। पुष्पा की माँ कहती कि भोले-भाले मजदूरों का कलपना पाला बनकर उस खेत में गिरेगा। उसका कहना हर वर्ष गलत साबित होकर रह जाता। सरदार की फसल हर साल अच्छी होती। कोठी के काम के बाद वह बारी-बारी से सभी मजदूरों से उस खेत में काम करवा लेता था। वह केवल किसन था जिसने उस खेत में कभी भी काम नहीं किया था।

तीन दिन बाद। कड़कती धूप में। ईख की कटाई के वक्त।

किसन ने सुना—सोनालाल पकड़ा गया।

पूरी खबर उसे काम से लौटते समय रास्ते में मिली।

दूसरी कोठी में मजदूरों को सचेत करते हुए सोनालाल पकड़ा गया था। दूसरी

कोठीवाले सरदार ने उसके हाथ-पाँव बँधवाकर उसे सँगड़वा साहब के यहाँ भिजवा दिया था। सँगड़वा साहब ने उसके शरीर के कपड़े उतरवाकर उसकी देह को ईख के रस से चप-चप करवाकर कड़कती धूप में पेड़ से बँधवा दिया था। जिस समय मजदूरों की नजर उस पर पड़ी थी, उसका शरीर लाल चीटियों से खदबद भरा हुआ था। पीड़ा से चिल्लाते-चिल्लाते वह बेसुध हो गया था। उसके पास फटकने की इजाजत किसी को नहीं थी। सँगड़वा साहब के दोनों कुत्ते उसके इर्दगिर्द घूमने को छोड़ दिये गये थे। बस्ती का शायद ही कोई ऐसा मजदूर था जिसका इन कुत्तों से पाला न पड़ा हो। कइयों की बोटी-बोटी नुच जाने से बची थी। दिल दहला देनेवाली वह कड़वी यादगार आज भी कई लोगों के भीतर ताजा थी।

किसन सीधे सँगड़वा साहब की कोठी पर पहुँचा। मालगासी पहरेदार ने डाँटते हुए पूछा, "कोन तो पे आले ?"

"मुझे मालिक से मिलना है।"

"मालिक को तुमसे मिलना नहीं है।"

"बहुत जरूरी काम है।"

किसी तरह वह सँगड़वा साहब के सामने पहुँचकर रहा, "सोनालाल को छोड़ दिया जाये साहब !"

"तुम्हारे कहने से हमें और क्या-क्या करना है ?"

दूसरे ही क्षण मालगासी पहरेदार ने अपनी पूरी ताकत के साथ किसन को ठेलते हुए फाटक से बाहर कर दिया था।

बस्ती को लौटते हुए रास्ते में फिर सत्या मिल गयी थी और किसन देर से घर पहुँचा।

सत्या कई बार किसन से कह चुकी थी कि अगर वह चाहे तो उसे कारखाने में काम मिल सकता था। किसन ने कभी नहीं चाहा था। उसके न चाहने के कई कारण थे। किसी भी हालत में वह सत्या और रामजी सरदार का एहसानमन्द होना नहीं चाहता था। सिफारिश के साथ वह कहीं पहुँचे, यह बात भी उसे पसन्द नहीं थी। और ईख के कारखाने में कई संकटकालीन स्थितियों में वह काम भी कर चुका था। वहाँ के सभी अच्छे काम मालगासी करते थे। वहाँ जो भारतीय मजदूर थे, वे तो वहाँ हाड़-माँस के कल की तरह लगाये गये थे। कोल्हू के बैल और उनमें कोई अन्तर था ही नहीं। उन लोगों से किसन ने कई बार पूछा था कि वहाँ के सभी अच्छे कामों पर केवल क्रिओल क्यों थे। इसके उत्तर में उसे हर बार यही कहा जाता—क्योंकि वे लोग भारतीय नहीं। यह उत्तर तेजाब छिड़कनेवाला था। उसकी जलन से किसन भीतर-ही-भीतर कराहकर रह जाता।

सभी योग्यता होने पर भी भारतीय लोगों को कोई भी ऐसा काम नहीं दिया जाता जो बेहतर था और जिसपर गोरों और मालगासियों का एकाधिकार-सा था। सबसे अच्छे काम गोरों के लिए होते थे, कुछ बेहतर काम उनके होते जो न तो गोरे थे

"देखती हूँ तुम खाये बिना कैसे आगे बढ़ते हो !"

कुछ ही दूरी पर सत्या की माँ सूखी लकड़ियों के अंगारे पर मकई भून रही थी। उसके पास तक पहुँचकर सत्या एक मकई उठा लायी थी। किसन के हाथ में जबरदस्ती थमाती हुई बोली थी, "एकदम सोंधी है।"

"मैं नहीं खाऊँगा।"

"नदी की ओर जा रहे हो न ?"

"हाँ।"

"तो उसी में फेंक देना।"

वह एक दूसरी बात थी जिसे सत्या ने कहा था और जो इस समय उसके कान में बज रही थी, "किसू, लोग कहते हैं तुम बड़े साहसी हो।"

वह व्यंग्य नहीं था, लेकिन इस समय वह उसे व्यंग्य-सा प्रतीत हो रहा था। उसने मन-ही-मन कई बार प्रश्न किया—क्या मैं सचमुच साहसी हूँ ? अगर सत्या ने व्यंग्य न किया हो तब तो। नहीं, वह व्यंग्य नहीं था। और भी कई अवसरों पर कई लोगों ने इस तरह की बात कही है। लेकिन मैंने तो इसका अब तक कोई भी प्रमाण नहीं दिया। क्या वक्त-बेवक्त नदी की ओर आ जाने से कोई साहसी बन जाता है ? बस्ती में गोसाईंजी सबसे अधिक पढ़े-लिखे आदमी थे। किसन एक बार साहस शब्द का अर्थ उनसे पूछकर देखना चाहता था। हो सकता है कि उसके दो अर्थ हों। लोग उसे उस दूसरे अर्थ से पुकारते होंगे जो उसे मालूम नहीं।

सत्या की दी हुई मक्की अब भी उसके हाथ में थी। सत्या ने उसे और भी कई अवसरों पर चीजें दी थीं। किसन उन चीजों को बस्ती के बच्चों में बाँट देता। मक्की का क्या करे ? रात होने को थी। मक्की की सोंधी गन्ध में प्रलोभन था। मक्की में सत्या की याद थी। सत्या की गन्ध थी। किसन को भूख लग आयी थी, लेकिन उसे मक्की खाना नहीं था, कम-से-कम अपने इस संकल्प से वह बहुत अच्छी तरह अवगत था।

एक बार सत्या उसका हाथ थामे उसे मकई के खेत के भीतर घसीटे चली गयी थी। वह खेत किसन को काँटों की झाड़ी-सी लगी। वह खेत रामजी सरदार को रेमों मालिक की ओर से भेंट में मिला था। वह वफादारी की भेंट थी। पुष्पा की माँ कहती कि भोले-भाले मजदूरों का कलपना पाला बनकर उस खेत में गिरेगा। उसका कहना हर वर्ष गलत साबित होकर रह जाता। सरदार की फसल हर साल अच्छी होती। कोठी के काम के बाद वह बारी-बारी से सभी मजदूरों से उस खेत में काम करवा लेता था। वह केवल किसन था जिसने उस खेत में कभी भी काम नहीं किया था।

तीन दिन बाद। कड़कती धूप में। ईख की कटाई के वक्त।

किसन ने सुना—सोनालाल पकड़ा गया।

पूरी खबर उसे काम से लौटते समय रास्ते में मिली।

दूसरी कोठी में मजदूरों को सचेत करते हुए सोनालाल पकड़ा गया था। दूसरी

कोठीवाले सरदार ने उसके हाथ-पाँव बँधवाकर उसे लँगड़वा साहब के यहाँ भिजवा दिया था। लँगड़वा साहब ने उसके शरीर के कपड़े उतरवाकर उसकी देह को ईख के रस से चप-चप करवाकर कड़कती धूप में पेड़ से बँधवा दिया था। जिस समय मजदूरों की नजर उस पर पड़ी थी, उसका शरीर लाल चींटियों से खदखद भरा हुआ था। पीड़ा से चिल्लाते-चिल्लाते वह बेसुध हो गया था। उसके पास फटकने की इजाजत किसी को नहीं थी। लँगड़वा साहब के दोनों कुत्ते उसके इर्दगिर्द घूमने को छोड़ दिये गये थे। बस्ती का शायद ही कोई ऐसा मजदूर था जिसका इन कुत्तों से पाला न पड़ा हो। कइयों की बोटी-बोटी नुच जाने से बची थी। दिल दहला देनेवाली वह कड़वी यादगार आज भी कई लोगों के भीतर ताजा थी।

किसन सीधे लँगड़वा साहब की कोठी पर पहुँचा। मालगासी पहरेदार ने डाँटते हुए पूछा, "कौन तो पे आले ?"

"मुझे मालिक से मिलना है।"

"मालिक को तुमसे मिलना नहीं है।"

"बहुत जरूरी काम है।"

किसी तरह वह लँगड़वा साहब के सामने पहुँचकर रहा, "सोनालाल को छोड़ दिया जाये साहब !"

"तुम्हारे कहने से हमें और क्या-क्या करना है ?"

दूसरे ही क्षण मालगासी पहरेदार ने अपनी पूरी ताकत के साथ किसन को ठेलते हुए फाटक से बाहर कर दिया था।

बस्ती को लौटते हुए रास्ते में फिर मत्या मिल गयी थी और किसन देर से घर पहुँचा।

मत्या कई बार किसन से कह चुकी थी कि अगर वह चाहे तो उसे कारखाने में काम मिल सकता था। किसन ने कभी नहीं चाहा था। उसके न चाहने के कई कारण थे। किसी भी हालत में वह मत्या और रामजी सरदार का एहसानमन्द होना नहीं चाहता था। सिफारिश के साथ वह कहीं पहुँचे, यह बात भी उसे पसन्द नहीं थी। और ईख के कारखाने में कई संकटकालीन स्थितियों में वह काम भी कर चुका था। वहाँ के सभी अच्छे काम मालगासी करते थे। वहाँ जो भारतीय मजदूर थे, वे तो वहाँ हाड़-माँस के यन्त्र की तरह लगाये गये थे। कोल्हू के बैल और उनमें कोई अन्तर था ही नहीं। उन लोगों से किसन ने कई बार पूछा था कि वहाँ के सभी अच्छे कामों पर केवल [illegible] क्यों थे। इसके उत्तर में उसे हर बार यही कहा जाता—क्योंकि वे [illegible] [illegible] नहीं। यह उत्तर हैरान छिड़कनेवाला था। उनकी [illegible] से [illegible] [illegible] [illegible] रह जाता।

सभी योग्यता होने पर भी भारतीय लोगों को कोई भी [illegible] काम नहीं [illegible] जाता जो बेहतर था और [illegible] गोरों और मालगासियों का [illegible] था। सबसे अच्छे काम गोरों के लिए होते थे, कुछ बेहतर काम उनके [illegible] [illegible] [illegible]

और न ही भारतीय। अपने-आपको सान्त्वना देने के लिए अगर भारतीयों के पास कुछ था तो वह यह कि काम, काम होता है। उसके लिए बदतर और बेहतर का प्रश्न ही क्यों ?

देवकरन गोसाँई अब नहीं रहा। वह कहा करता था कि इस देश में सबसे अधिक काम करनेवाली हमारी जाति है। एक दिन हमारी ही जाति के हाथ में इस राज्य की बागडोर होगी। यही कहते-कहते देवकरन गोसाँई मरा था। कभी अकेले बैठे-बैठे किसन सोचा करता। इस देश में मेरे ही लोग जंगल काटते हैं। चट्टानों को चीरते हैं। पत्थरों को हटाकर जमीन वे ही लोग जोतते हैं। बोआई वे ही करते हैं। मेरे ही लोग पौधों को सींचते हैं, खाद देते हैं। उसकी रखवाली करनेवाले भी वे ही लोग होते हैं। मेरे ही लोग फसल काटते हैं, जामुनी ईखों को कारखाने तक पहुँचाते हैं। रस वे ही गाड़ते हैं। शक्कर वे ही बनाते हैं, लेकिन शक्कर कोई और खा लेता है। ऐसा क्यों ? उस शक्कर में कौन-सा जादू था जिसे केवल छूकर कुछ लोग समृद्ध थे ? कौन बताये ?

पहले ही कट गये गन्ने के अंकुर जहाँ-तहाँ घुटनों तक आ गये थे। सत्या को किसन ने दूर ही से देख लिया था। उसके पास आ जाने पर किसन उसके गले का हार और कान के कनफूलों को गौर से देखता रहा। उसे लगा कि एक बार फिर रामजी भगत ने भारत से नयी पहुँची हुई किसी औरत के गहनों को यह कहते हुए जब्त कर लिया होगा कि यहाँ किसी को गहने पहनने का अधिकार नहीं है। किसन को अच्छी तरह याद है कि उसकी आँखों के सामने जब रूपा के गहने उतारे गये थे, उस समय सरदार ने यह दलील रखी थी कि गहनों का बोझ आदमी को आलसी बना जाता है। खेतों में काम करने के लिए आलसियों की नहीं, मेहनतकशों की आवश्यकता होती है। किसन सत्या को देखता रहा। अपने गहनों को अधिक चमकाने के लिए वह मुस्कुराती रही। किसन ने मन-ही-मन तर्क किया, फिर मन-ही-मन मुस्कुराकर रह गया। सत्या इन खेतों में काम करने लिए थोड़े ही थी ! वह तो खेतों की सुन्दरता थी।

सत्या चुपचाप खड़ी रही। वह अपने अनपूछे प्रश्नों के उत्तर की प्रतीक्षा में रही। किसन ने उत्तर कुछ देर से दिया, "बहुत सुन्दर लग रही हो आज !"

उत्तर पाकर सत्या की पलकें झपकीं। उसके चेहरे पर नया रंग आया और वह किसन के एकदम पास आ गयी। किसन को लगा कि सत्या ने आसपास के सभी जंगली फूलों को निचोड़कर उनके रंग और गन्ध को अपने चेहरे पर पोत लिया था।

कल शाम जब किसन पुष्पा की बगल में बैठा था, उस वक्त हवा के साथ किसी जंगली फूल की गन्ध आ गयी थी। उसी के साथ किसन को सत्या की याद आ गयी थी। जो उष्णता उस सुगन्ध में थी, वही सत्या की याद में भी थी। पुष्पा की आँखों में झाँकते हुए किसन उसे बहुत सुन्दर पाता था, लेकिन कभी-कभार सत्या के शारीरिक लावण्य में जो आकर्षण होता वह उसे चुम्बक की तरह अपने पास घसीटकर ही रहता।

हाँफती हुई सत्या उसे और भी आकर्षक प्रतीत हुई। उसकी साँसों को महसूसते

हुए किसन ने कहा, "आज बहुत सुन्दर लग रही हो।"

"नजर मत लगाना, मेरी माँ को ओछना पड़ जायेगा।"

यह कहकर सत्या दौड़ गयी। जटाओं को थामे दोनों एक-दूसरे को देखते रहे। बोलने की जरूरत किसी ने नहीं समझी। घने बरगद के नीचे अंधेरा पहले ही आ गया था जिसमें सत्या की आंखों की यह चीज और भी चमक उठी थी। नदी की सभी तरंगों को किसन ने अपने भीतर उफनते पाया। वह सत्या के कान में गुनगुनाया :

"सरदार की बेटी गुइँल खेलेला। भर माँग सेंदूर भरतार खोजेला।"

सत्या नाराज नहीं हुई।

कुछ देर बाद।

जब अंधेरा और भी गहन हो गया था। हरी दूब पर लेटे हुए दोनों शान्त थे। दोनों की सांसों में शिथिलता थी।

मादक स्वर में सत्या ने धीरे से कहा, "मैं फिर से कहती हूँ, तुम चाहो तो मैं तुम्हारे लिए कारखाने में नौकरी का प्रबन्ध करा दूँ।"

"धूप में मैं ज्यादा सांवला होने लगा हूं न ?"

"मैं इसलिए नहीं कह रही।"

"तो फिर ?"

"कारखाने में काम करने से तुम कुछ तो भिन्न हो पाओगे।"

"मैं भिन्न होना नहीं चाहता हूँ सत्या !"

"कारखाने का काम उतना कठिन भी नहीं।"

"मैं सहज और आसान काम पसन्द भी तो नहीं करता।"

"चाहो तो मालिक की कोठी में . ।"

"वह तो मरकर भी नहीं करूँगा।"

"आखिर क्यों ?"

"कारण तो मैं भी नहीं जानता।"

"तुम हठी बहुत हो किसन।"

"छोड़ो इन बातों को, अब हमें चलना चाहिए।"

वह खड़ा होने लगा। सत्या ने उसका हाथ पकड़ लिया, "तुम मेरे बाप से कब बात करोगे ?"

"मैं क्या बात करूँगा ?"

"अपने बाप से तो करवा सकोगे।"

"तुम्हारे बाप की एक बात कभी-कभी मुझे बिल्कुल अच्छी नहीं लगती है, पर कभी तो वही बात बहुत जँचने लगती है।"

"कौन-सी बात ?"

"उसका बात-बात पर यह कहना कि हड़वड़ाल से गूलर ना पकेला।"

"मैं जानती थी तुम यही कहोगे।"

मजदूरों को खोखले आश्वासन देने के लिए सरदार के पास यही वैदिक वाक्य था। वह यह कभी नहीं कहता कि तुम लोगों की स्थिति कभी नहीं सुधरेगी। यह उसकी अपनी नीति के विरुद्ध होता। वर्षों से वह यही कहते आ रहा था—सबूरी करो··· हड़बड़ाल से गूलर ना पकेला।

बस्ती में लौटने पर किसन ने लोगों को चबूतरे पर पाया। लोगों का गाना-बजाना पराकाष्ठा पर था। पुष्पा अपनी ओरियानी के धुंधलके में अकेली खड़ी थी। बस्ती में पहुँचने से पहले किसन ने चाहा था कि एक बार फिर नदी से नहा आये, पर सत्या ने उसे ऐसा करने नहीं दिया था। वह नहीं चाहती थी कि उसके अपने शरीर की गन्ध किसन के शरीर से इतनी जल्दी घुल जाये। पुष्पा की ओर बिना देखे किसन अपने घर को बढ़ गया।

बरतन माँजने के पास की बाल्टी में बहुत कम पानी था। किसन जब उससे पांव धोने लगा तो घर के भीतर से उसकी बहन ने कहा, "सुबह बरतन धोने हैं, सभी पानी उछाल न देना।"

चौखट के पास रखे बोरे के टुकड़े से किसन ने पांव पोंछे। हाथों को आस्तीन से पहले ही पोंछ चुका था। ओरियानी के पास के पत्थर पर वह बैठ गया। उसकी बहन ने दोबारा आवाज दी, "भात नहीं खाओगे?"

"बाद में खाऊँगा।"

"मुझे नींद आ रही है।"

"तुम सो जाओ, मैं खुद निकाल लूंगा।"

अँधेरे में बैठा हुआ वह उधर से आनेवाले गाने को सुनता रहा। कुछ देर गुनगुनाकर वह चुप हो गया। आकाश की ओर आँखें उठ गयीं। तारे कम थे, क्षीण थे। पत्ता तक नहीं हिल रहा था। कारखाने से उठता हुआ धुआं सामने के वातावरण को धुआंधार और बोझिल किये हुए था। दिन की कड़कती धूप की गरमी को धरती अब भी सँजोये हुए थी। किसन को पुष्पा की याद आयी, पर टिक न सकी। सत्या के बारे में सोचने से किसन अपने को रोक नहीं पा रहा था। कशमकश! उसकी वह गन्ध अब भी उसके इदगिर्द थी।

अपनी जगह से उठकर किसन आगे बढ़ गया। वह चबूतरे की विपरीत दिशा को चल पड़ा था। उधर से आती हुई ध्वनि में जो उल्लास था, वह क्षणिक था। मिथ्या था। वह सभी कुछ अपने-आपको छलना था। अपनी निर्बलता को छिपाना था। इस परिपाटी को जीते हुए किसन ऊब गया था। ऊब जाने के बाद भी जब सामने बेबसी खड़ी नजर आ जाये तो उस ऊब को ही जीवन समझ लेना कितना स्वाभाविक हो जाता है। उसने कई अवसरों पर स्वाभाविकता को भी खण्डित करना चाहा था, पर······।

पश्चिम की ऊंची दीवार के किनारे-किनारे किसन चलता रहा। दीवार ऊँची थी, पर कमज़ोर थी। रस्सी टूटी हुई थी। लकड़ियां सड़ी हुई थीं। छूने से दीवार ढह सकती थी, फिर भी वह खड़ी-की-खड़ी थी। न जाने कब तक खड़ी रहेगी। उस सड़ी

हुई दीवार पर अँगुली रखने की किसी ने कभी हिम्मत नहीं की।

इस विडम्बना को कौन मिटाये ?

किसन सोचने लगता—क्या यह दीवार बनी रहेगी ? वह तूफान नहीं आयेगा जिसकी उसे प्रतीक्षा थी ? पर जिस दीवार को एक छोटी-सी हवा गिरा सकती थी उसमें वह हवा कब तक कतर-कर निकलती रहेगी ? वह छोटी-सी हवा ?

इन्हीं प्रश्नों के साथ किसन घर की ओर लौट पड़ा। उसकी पीठ पर दासता का जो भारी-भरकम बोझ था, वह उसकी आत्मा तक पर हावी हो गया था।

कुछ लोगों से यह कहते सुना गया कि अब दासता के कानून में संशोधन किया गया है और जो लोग भारत लौटना चाहते हैं, लौट सकते हैं तो फिर क्यों इस नर्क से छुट्टी न पा ली जाये। कई दिनों तक यह विचार बहस का विषय बना रहा। निर्धारित के मुताबिक कुछ लोगों को बहुत पहले लौट जाना चाहिए था, पर चाहकर भी अपने देश को लौटना होता तब भी यह असम्भव था। किसन इस प्रस्ताव के विरुद्ध बोलता रहा। शुरू से अन्त तक वह सभी नौजवानों से यही माँग करता रहा कि उनका जन्म इस मिट्टी में हुआ है, उन्हें यहीं मरना होगा। सभी लोग उसकी यह बात मानने को तैयार नहीं थे। कोई चिल्ला उठा था कि नर्क को अपना मान लेने से क्या होता है ! किसन नहीं चाहता कि नर्क से भागकर नर्क को नर्क ही छोड़ दिया जाये। उसे परिवर्तित कर जाने का किसन को पूरा विश्वास था। पिछले दिन की बैठक में उसका आखिरी वाक्य था, "हमारे बाद के लोगों के लिए कम-से-कम यह नर्क न रहे जो आज हमारे लिए है।"

कई दिनों की लगातार बैठक के बाद सभी इसी निष्कर्ष पर पहुँचकर रहे कि जिस माटी पर उन लोगों का खून-पसीना बह रहा हो, उसे परायी धरती नहीं समझा जा सकता। वे अगर उस धरती को समृद्धि देने में लगे हुए थे तो कम-से-कम उसे अपना कहने के हकदार भी तो थे। और वे किसन ही के शब्द थे कि कठिन-से-कठिन स्थिति को झेलकर भी वे इस धरती को अपना समझने के आत्मगौरव को अनुभव करें।

सोनालाल जब अपने बन्धन से छूटकर मुड़िया पहाड़ पर जा छिपा था तो किसन ने अकेले उसकी तलाश में पहाड़ की चढ़ाई शुरू की थी। बड़ी कठिनाई से वह सोनालाल तक पहुँच पाया था। पहाड़ की चोटी पर से नीचे की लहलहाती हरियाली की ओर संकेत करते हुए उसने सोनालाल की हताश आँखों में आशा की नवकिरणें चमकायी थीं, "देख रहे हो नीचे की यह फैली हुई हरियाली ! इस छोर से उस छोर तक जो लहलहाते खेत हैं, उन्हें फिर से जंगल बनने को कैसे छोड़ दिया जाये ? इन्हें हमने सँवारा है। हमारी तरह हजारों लोग अलग-अलग टुकड़ों में अलग-अलग दिशाओं में इस काम में लगे हुए हैं कि यह जंगल खेतों में परिवर्तित हो जाये। कुछ लोग इनसे भी अधिक यातनाओं को झेलते हुए इस प्रण को पूरा करने में लगे हुए हैं। हमारे बाद जो लोग आयेंगे, कम-से-कम उनके लिए तो यह श्मशान न प्रमाणित हो, इसीके लिए हमें अपने संघर्ष को जारी रखना है।"

दोनों ने पेड़ से जामुन तोड़कर खाये थे। सोनालाल ने इस बीच कई प्रश्न किये थे और किसन ने कई के उत्तर दिये थे, कई के उत्तर में कई प्रश्न कर बैठा था और जब उन प्रश्नों के उत्तर देने में सोनालाल ने अपने को असमर्थ पाया तो आँखें झुका ली थीं। फिर तो दोनों एक-दूसरे के हाथ थामे नीचे उतरने लगे थे। उतरते-उतरते किसन ने कहा था, "देखते हो सोना, यह उतरना चढ़ने से भी कितना कठिन होता है।"

अपने साथ वह जो कपड़ा ले गया था, उसे सोनालाल के शरीर पर अपने ही हाथों लपेट दिया था। एक बात, जिससे उसे आश्चर्य हुआ था, सोनालाल से पूछना चाहकर उसने नहीं पूछा। यातना से उतना अधिक निर्बल हो जानेवाला सोनालाल पहाड़ की चोटी तक कैसे पहुँच सका था? अगर यह सम्भव था तो आगे की लड़ाई भी असम्भव नहीं थी। सभी लोग चकनाचूर-जैसी हालत में थे, फिर भी उनका जो आत्मविश्वास था वह थका हुआ नहीं था।

बैठक में किसन ने यह भी कहा था कि जब इतनी दारुण यातना को सहकर इतने दिनों का भूखा आदमी मुड़िया पर्वत की चोटी पर पहुँच सकता है तो कोई कारण नहीं कि उसके अपने अधिकारों की लड़ाई को लड़ा न जा सके।

शाम को सोनालाल के साथ नदी की ओर जाते हुए किसन को लग रहा था कि सोनालाल अब भी डरा हुआ था। भीतर से तो और भी बेहद। जिस पगडण्डी से दोनों चल रहे थे, उसके दोनों ओर पेड़ों की खौफनाक आकृतियाँ थीं। ईख के कटे हुए खेत पीछे छूट चुके थे। तैयार मक्की के खेत अभी कुछ और आगे तक फैले हुए थे। पेड़ों में आबनूस के पेड़ सबसे ऊँचे थे। सूरज डूबा नहीं था, पर पेड़ों के कारण वह अदृश्य था। हवा में अब भी उमस थी। सोनालाल के चेहरे पर पसीने की बूँदें ताजा थीं। किसन उससे बातें करके उसके भीतर के भय को दूर करना चाहता था। रास्ते-भर वह उपाय सोचता रहा। सोनालाल की वह पहलेवाली चंचलता गायब थी। उसकी आँखों की वह स्थिरता और चेहरे का गम्भीर्य अपने-आपमें भयावह था।

नदी की उस कलकल ध्वनि ने किसन की उमस को कुछ कम किया। जेहन का वह कशमकश ठण्डक पाकर खत्म हुआ। दोनों चट्टान पर बैठ गये। पैरों के अँगूठों को छूकर बहते पानी को अँजुली में उठाकर किसन ने चाहा कि उस शीतलता को सोनालाल भी महसूस करे। उसने धीरे-से कहा, "देखो तो पानी कितना ठण्डा है!"

"यान्त्रिकता के साथ सोनालाल ने भी तरंगों को थपकियाँ दीं। उसकी आँखों की स्थिरता बनी रही। चेहरा प्रतिक्रियाहीन रहा। ठण्ड का उसके ऊपर कोई असर नहीं था। किसन ने अंगुली में दोबारा पानी लिया और झटके के साथ उसे सोनालाल के चेहरे पर दे मारा। सोनालाल चिहुँक उठा। उसकी तन्द्रा टूटी। चेहरे पर के पानी के छींटों को दोनों हाथों से पोंछकर उसने आसपास के झुरमुटों की ओर नजर दौड़ायी। धीरे से पूछा, "यह कैसी आवाज थी?"

किसन को आवाज नहीं सुनायी पड़ी थी। उसने सोचा, सोनालाल को वहम हुआ है। वह चुप रहा। पर तभी एकाएक बगल की झाड़ी से कोई निकला और दोनों के

सामने आ खड़ा हुआ। किसन उसे नहीं पहचानता था, पर सोनालाल उसे जानता था। वह उसी बस्ती का था जहाँ सोनालाल को भेजा गया था।

उसे देखकर दोनों खड़े हो गये थे। सोनालाल के मुंह से आवाज निकलकर रही, "कैसे आ गये तुम इधर?"

बिना कुछ कहे वह आदमी चट्टान पर बैठ गया। अँजुली से पानी लेकर उसने मुंह पर छींटे दिये। उन छींटों पर जीभ फेरने के बाद उसने कहा, "तुम्हीं से मिलने आया हूँ। मुखियाजी ने भेजा है।"

सोनालाल ने किसन की ओर देखा। उसकी आँखों का वह भय ओझल था। उसके स्थान पर जिज्ञासा की झलक थी। अपनी आँखों की उसी झलक के साथ उसने दोबारा आगन्तुक की ओर देखा। उस आदमी ने सोनालाल के उस मौन प्रश्न को समझकर बोलना शुरू किया, "उन्होंने कहा है कि हमारी पूरी बस्ती तुम्हारे साथ है। हमारे यहाँ से कुछ लोग दूसरी जगहों को जा चुके हैं। आसपास की सभी बस्तियाँ साथ रहेंगी। उन्होंने तुम लोगों को इसका आश्वासन दिया है। जिस व्यक्ति का नाम तुमने बताया था, उसे एक बार मुखियाजी से मिलाना होगा।"

उसके चुप होते ही सोनालाल ने फिर से किसन की ओर देखा। दोनों की आँखों में हौसले की चमक आ गयी थी। सोनालाल ने किसन के कन्धे पर हाथ रखते हुए दूसरी कोठी के आदमी से कहा, "यही है वह आदमी।"

"ठीक है, तुम लोगों की ओर से क्या नयी बात होगी, उसकी सूचना हमें पहुँच जानी चाहिए। मैं तुमसे मिलने बस्ती में पहुँचा था। बताया गया कि तुम इधर हो। मेरा काम पूरा हो गया, अब मैं चलता हूँ।"

"कुछ ठहरकर आराम तो कर लो।"

"रात में मुझे मक्ई के खेत की रखवाली करनी है। उधर बन्दरों का काफी उत्पात है।"

"तुम्हें इधर आते किसी सरदार ने देखा तो नहीं?"

"मैं जंगल-जंगल आया हूँ।"

उसे छोड़ने के लिए किसन और सोनालाल पीपल के पेड़ तक पहुँचे। इस पेड़ के बारे में कई कहानियाँ थीं। बस्ती का वह सबसे वृद्ध सुमिरन महतो, जो अब नहीं रहा, कहता था कि इस द्वीप में सबसे पहले बौद्ध पहुँचे थे। उन्होंने ही हर ठौर पर पीपल के पेड़ लगा दिये थे। सुमिरन महतो खुद बौद्ध था। बात-बात पर कहता था, हमें दूसरों के हित के लिए चलते ही जाना है" कभी रुकना नहीं है। किसन का अपना बाप वैष्णव था। वह सुमिरन महतो को नास्तिक कहता, पर किसन को सुमिरन महतो की बातें अच्छी लगती थीं। वह बड़े ध्यान से उन बातों को सुना करता था। सुमिरन महतो बहुत अच्छा कलाकार था। उसने दीवारों पर भगवान बुद्ध के कई चित्र बनाये थे। सभी के नीचे उसने अपना वही प्रिय वाक्य लिखा था। एक दिन सरदारों ने उन दीवारों को ढाह दिया था। लिखावटों और चित्रों को लेकर वे निरक्षर

दिया था।

उस दिन किसन सबसे ज्यादा नाराज था। उसने चाहा था कि सभी दीवारों पर वह लिख दे कि अनर्थों का अन्त हो। उसकी अपनी दीवार पर जो 'हरि ओम्' लिखा हुआ था, उस पर भी गोवर लिपवा दिया गया था। किसी का कहीं भी हिन्दी का कोई अक्षर लिखना मना था। इस बात का उल्लंघन करने पर गौतम की नंगी पीठ पर कई कोड़े लग चुके थे।

दाऊद के सर की टोपी जब्त कर ली गयी थी। अपने आक्रोश को मिटाने के लिए किसन पहाड़ के पत्थरों और नदी के पास की चट्टानों पर लिखता फिरता था। उसके मन में जो भी आता वह लिख देता। वह नदी की जिस चट्टान पर वैठता, उसके ऊपर भी उसने यह लिख छोड़ा था, "हमारे परिश्रम का आदर हो।"

इस वाक्य से नदी की फेनिल लहरें टकराती रहती थीं।

उस व्यक्ति को आगे के लिए छोड़ते हुए किसन ने कहा, "मुखियाजी को कह देना, मैं उनसे वहुत जल्द मिल रहा हूँ।"

सोनालाल के कन्धे पर हाथ रखे किसन इस तरह चलता रहा जैसे कि जीवन में पहली वार वह किसी निर्धारित मंजिल की ओर बढ़ रहा हो। ईख के खेतों के वीच की पतली पगडण्डी धीरे-धीरे खुलती हुई वस्ती तक विस्तार पा गयी थी। उस पर तैरती हुई चांदनी किसन के हौसले को भी चमकाती-सी प्रतीत हुई। दोनों चुपचाप छोटे कदमों के साथ घर को लौटने लगे थे। एक नेवला रास्ता काटते हुए एक खेत से दूसरे खेत के भीतर घुस गया। आकाश साफ होने के कारण चांदनी इतनी स्पष्ट थी कि सरदार के खेत की तैयार मक्कियां पत्तों के वीच से झांकती नजर आ रही थीं। वरगद के नीचे के कुएं से मेढकों की टरटराहट जोर पकड़ती जा रही थी। वर्षा की सम्भावना से किसन को जो भोली-भाली खुशी हासिल हो जाती थी, वह इस समय नहीं हुई। उसे उस क्षणिक खोखलेपन का पता लग गया था। वर्षा अगर सचमुच खुशी लाती है तो किसन जैसे लोगों के लिए थोड़े ही लाती है! वह तो सीमित होती है, उन मुट्ठी-भर लोगों के लिए जिनकी फसल दुगुनी हो जाती है। इसके वदले में किसन और उसके साथियों को तो कभी भूल से भी एक दोना ज्यादा चावल नहीं मिला। अलवत्ता सुखारी का कुछ असर उन लोगों पर जरूर होता था। महीने में दो आने काट लिये जाते थे।

चांदनी में चमकती हुई मक्की की हरियाली से पहली वार किसन को चिढ़-सी हुई। मन में एक ख्याल कौंध गया। खेत को उजाड़ दिया जाये। उसका यह खुदगर्ज विद्रोह क्षणिक रहा। उसे अपने-आप पर हँसी आ गयी। चलते-चलते एक पौधे से उसने मक्की की जो लम्बी पत्ती तोड़ ली थी, वह इस समय भी उसके हाथ में थी। उसकी हरियाली गन्ध में वीते दिनों की कई यादें थीं। वर्षा वीत जायेगी, ये यादें घाटी में तैरती रहेंगी।

इक्कीस

वर्षों बीत जाने के बाद भी वह इमली का पेड़ वैसा ही था। इमली के पत्ते पीले होते रहे, झड़ते रहे और हरे होते रहे। ऐसा कई बार हुआ। कई बार कुन्दन आदमी और पेड़ों की जवानी के अन्तर को सोचता रहा। इमली का पेड़ उस प्रथम घड़ी से सभी कुछ देखता हुआ आज भी जवान था। आज भी उसमें फूल आये थे कल के फलों के लिए। इस पेड़ ने इतिहास को जीया है। कल भी गवाह रहेगा। इसकी डालियों में आज भी रस्सी के वे टुकड़े गाँठ लिये हुए थे। कुन्दन सोचता कि अगर सौ वर्ष बाद का आदमी प्रश्न करना जानेगा तो उसे यह पेड़ इतिहास के वे सारे उत्तर दे सकेगा जो सम्भवतः कहीं और न मिलें।

उस दिन इस पेड़ की चीख प्रलय तक को आमन्त्रित कर गयी थी। इमली के पेड़ से लटका सोनित दम तोड़ रहा था। उस दिन भीड़ का वह आक्रोश, वह कोलाहल हमेशा से अधिक भयावह था। लोग कुल्हाड़ी लिये दौड़ पड़े थे।

"इस हत्यारे पेड़ को टुकड़े-टुकड़े कर दिया जाये!"

"नहीं!" किसन ने चीखकर लोगों को रोका था, "इतिहास को मत काट डालो।"

लोग अपने-अपने स्थान पर रुक गये थे। किसन की बातें हमेशा मानी गयी थीं। उस दिन भी मान ली गयी थी। धीरे-धीरे कोलाहल कम हुआ था। किसन ने लोगों को समझाया था, "इस पेड़ को हमारे बाद भी खड़ा रहना है। यह इतिहास का साक्षी होगा।"

लोग धीरे-धीरे बस्ती को लौटने लगे थे। कुछ लोग अन्तिम घड़ी तक पेड़ के इर्द-गिर्द खड़े रह गये थे। पेड़ में सोनित की लाश लटक रही थी। बारह सिपाही उसकी रखवाली कर रहे थे।

थकी-मांदी भीड़ से आखिरी बार वह एक लड़खड़ाती-सी आवाज आयी थी:

"लाश को लौटा दो दाह-क्रिया के लिए।"

मालिक का आदेश था:

"तुम बारह रखवारों को अपनी जान भी देनी पड़ जाये तो कोई हर्ज नहीं, लेकिन यह लाश पेड़ से उतरने न पाये।"

कुन्दन चुप था। किसन भी चुप था। उसे पता था कि आवाजों से सोनित का फन्दा टूट नहीं सकता। बन्दूक की दो-दो गोलियों से चौबीस लाशों के बाद ही शायद ऐसा सम्भव होगा। इसलिए बहुत कम अवसरों की तरह वह चुप था। अपने स्थान पर खड़े-खड़े उसने सोनित की साँसों को बंधता महसूसा था। उस एक-एक क्षण को उसने घूंट निगल-निगलकर झेला था। लोगों ने कुछ दूरी पर लकड़ियाँ जुटाकर आग जला ली थी। कुन्दन को ठण्ड नहीं लग रही थी। वह आग के आगे था। लपटों के प्रकाश में सोनित का नंगा शरीर पेड़ से झूल रहा था।

उन उठती लपटों की गति से उसकी झुकी गरदन के बावजूद उसके जीवित होने का भ्रम हो रहा था। यह जानते हुए भी कि सभी कुछ समाप्त हो चुका था, कुन्दन की यह चाह अब तक भीतर-ही-भीतर जीवित थी कि वह सोनित को नीचे उतारकर अपने हाथों अन्तिम बार जल पिलाये।

धधकती आग की झिलमिलाती रोशनी में सोनित का शरीर सोने-सा लग रहा था। वह दृश्य कुन्दन को करारा व्यंग्य-सा प्रतीत हुआ था। सोने की तलाश में आये हुए लोगों की लाशें सोने-सी लग रही थीं। कुन्दन की पलकें झपकना भूल गयी थीं। उसके भीतर का तनाव अब तक पिघलकर बह गया था। एक किओल सिपाही ने बन्दूक की नली से शव को झुला दिया। अपने पास खड़े किसन से कुन्दन ने धीरे-से कहा था, "अब वह सभी पीड़न से मुक्त हो गया है।"

किसन ने कुन्दन से पूछा था, "देवननन् चाचा ! कितने आदमियों को इस तरह झूलते देखा है ?"

कुन्दन ने कोई उत्तर नहीं दिया। उसकी आँखें अतीत के कई दृश्यों से भर आयी थीं। आँसुओं के साथ उसने एक-एक दृश्य को टपक जाने दिया। यह धरती की थाती थी। एक दिन जमीन उस कहानी को उगलेगी और......। इससे आगे वह सोचना नहीं चाहता था। इससे आगे की पीढ़ी इस बात को सोचेगी। कुन्दन अब बस्ती-भर की इस आगेवाली पीढ़ी का चाचा था। परामर्श के लिए ये नये लोग जब उसके पास पहुँचते, उस समय कुन्दन के सामने अँधेरा-ही-अँधेरा होता। उस अँधेरे की ओर इशारा करके वह कहता, "हर नयी पीढ़ी समय के साथ पुरानी होती जाती है। पुरानी होने से पहले वह अगर उस गहन अँधेरे के बीच अपना रास्ता ढूँढ निकाले तब तो उस आनेवाली दूसरी पीढ़ी की मंजिल भी साफ दिखायी पड़ने लगेगी अन्यथा उसकी दशा हमारी-जैसी हो जाती है। हम न देख पाते हैं, न बता पाते हैं।"

वह एक ही सीख देता था, वह भी चिड़चिड़ाहट-भरे स्वर में, "तुम कभी भी इन लोगों पर विश्वास मत करना। शोषण करनेवाले अपना वचन कभी नहीं निभाते।"

उस वचन को आज बीस दिन होने को थे। इस बीच वचनों को बीस बार से अधिक तोड़ा गया था। सरकार के हस्तक्षेप के बावजूद स्थिति प्रायः वही थी। विशेष आयोग और मजदूरों के रक्षकों की कई अपीलों का कभी-कभार कोई असर हुआ भी था तो क्षणिक। दूसरे दिन मजदूरों की हालत और भी बिगड़ी होती। सम्बन्धित अधिकारियों तक फरियाद पहुँचाने ही का तो यह फल था कि सोनित को इमली के पेड़ से झुला दिया गया था।

कभी तो सभी कुछ विचित्र लगता। एक लाश की रखवाली सात दिन तक ? रखवार कपड़े के टुकड़ों से नाक बाँधे पहरा देते रह जायेंगे। मक्खियाँ भिनभिनायेंगी। उभरी हुई हड्डियोंवाले कुत्ते चक्कर काटते रहेंगे।

कुछ लोग बताते थे कि ऐसा जानबूझकर बीमारियाँ फैलाने के लिए किया जाता था। पिछली बार जब बीमारी फैली थी तो बस्ती उजड़ते-उजड़ते बची थी।

पर भी अगर रेगा के गांव के बैद के यहाँ से जड़ी-बूटियाँ नहीं आतीं तो बस्ती का बचना सम्भव ही न होता।

न चाहते हुए भी अतीत की यादों से जूझना ही पड़ता है। कुन्दन के न चाहते हुए भी कई चीजें होती रही हैं।

कुन्दन के पास खबर लेकर जीतुआ सरदार आया था। आदेश सुनने के बाद कुन्दन ने पूछा था, "तुम्हें मालूम है उन्होंने क्यों बुलाया है मुझे ?"

प्रश्न कर चुकने के बाद कुन्दन को ध्यान आया कि जीतुआ कारण जानते हुए भी नहीं बतायेगा। यही वह जीतुआ है जिसने अपने हाथों से दो मजदूरों को रेल की पटरी से बांधकर रेल को हरी झण्डी दिखा दी थी। वह सभी कुछ नयी पटरियाँ बिछाये जाने की खुशी में हुआ था। अपने समय में इसी जीतुआ के बाप ने ईंट के नये कारखाने के लिए गांव के सबसे छोटे बच्चे को कारखाने की नींव के नीचे अपने हाथों दबाया था। कुन्दन ने दूसरा सवाल नहीं किया था।

वह मालिक के बँगले पर पहुँचा था। पीछे की कई यादों को वह अपने साथ लिये हुए आया था। मालिक ने उसी क्षण बात छेड़ दी, "हम तुम्हें खुश करना चाहते हैं। तुम्हारे मित्र का क्या नाम है ? जीतुआ कहता है कि किसन बहुत ही मेहनती लड़का है, हम उसे सरदार बनाना चाहते हैं। हमारी कोठी का वह सबसे जवान सरदार होगा।"

"मालिक, जो काम जिसको आये वही उसे सौंपना चाहिए।"

"तुम्हारा मतलब ?"

"मेरा मित्र मजदूर है। उसने मजदूरी सीखी है। इसी काम को वह बहुत अच्छे ढंग से कर सकता है।"

"तुम्हारी इन बातों का मतलब यह समझूँ कि तुम इसे·····।"

"आप गलत न समझें। मैं तो बस योग्यता और अयोग्यता की बात कर रहा था। अच्छा होता अगर किसन से ही बात करके देखते।"

"इसका मतलब है कि तुम्हें बुलाकर हमने भूल की ?"

"नहीं, मेरा यह मतलब नहीं। किसन अपने बारे में खुद निर्णय ले सकता है।"

"ठीक है, मंगल को इसी समय उसे मेरे यहाँ भेज देना।" कुन्दन को आज्ञा स्वीकारने का अवसर दिये बिना ही मालिक बँगले के भीतर चला गया था।

"तुम जा सकते हो।" यह कड़कता हुआ स्वर जीतुआ सरदार का था।

बाईस

नदी बैठक एक ऐसी जगह पर थी जहाँ एक ओर आवनूस के पेड़ का जंगल था और दूसरी ओर विस्तृत मैदान जहाँ शाम के वक्त बस्ती के बच्चे गुल्ली-डण्डा खेलते

मिल जाते। नदी से छूटकर एक छोटा-सा नाला इधर से वह निकलता था जो कुछ ही दूरी पर जाकर दलदल में फैल गया था। दलदल के ठीक आगे था वह स्थान जहाँ की सुरमई चट्टान पर पूर्वीय हवा अपनी सारी ठण्डक को लिये हुए गुजरती। यह जगह ऊँचाई पर होने के कारण यहाँ से मैदान के उस पार के पहाड़ी दृश्य बहुत ही सुन्दर लगते। अपने संकुचित संसार की खिड़की से कुन्दन सामने के विस्तृत संसार को देखा करता और पूछा करता अपने-आपसे कि आखिर उसके अपने संसार के लोगों का संसार इतना मुक्त और इतना फैला हुआ कब होगा—होगा भी या नहीं ? पिछली बार बस्ती में दमोदर साव आये थे तो अपने साथ छोटी-मोटी नयी पुस्तकें और अखबार भी लाये थे। उन पुस्तकों और अखबारों को पढ़कर कुन्दन को ऐसा लगा था कि यहाँ से बाहर का संसार एकदम भिन्न संसार था। आँखें खुली होने पर वह उस विस्तृत संसार का अन्दाजा नहीं लगा पाता। आँखें खुली रहने पर उसके सामने अपनी संकुचित दुनिया होती—अँधेरे से ग्रस्त दुनिया। वह आँखें बन्द करके ही उस फैली हुई दुनिया को देख पाता था। आँखें बन्द करके ही वह उस उजाले को देख सकता था। रोशनी से जगमगाता हुआ संसार अभी तक उसका नहीं हुआ था—आनेवाली पीढ़ी का भी नहीं होगा—उसके आगे, आगे की पीढ़ी का भी नहीं ? नहीं होने की वजह क्या थी ? कोठीवाले गोरों और मजदूरों के बीच का जमीन-आसमान का अन्तर ? इस अन्तर को खींचकर और भी अधिक फैलाया जा रहा था। मजदूरों के पास वह शक्ति क्या कभी नहीं आयेगी जिससे इस फासले को कम किया जा सके ?

किसन की तरह कुन्दन भी प्रश्नों के साथ जीने लगा। उसकी हर साँस में प्रश्न था। बेशुमार प्रश्नों के बीच वह अकुला उठता। ये सारे प्रश्न बिना उत्तरों के थे। कब तक ? यह 'कब तक' उसकी साँस के साथ गुँथा हुआ था। इन्हीं दो शब्दों के पीछे उसका सारा जीवन, सारी शक्ति चली गयी थी। घटाटोप अँधेरे में वह प्रश्नों के उत्तर ढूँढ़ता रहा। इस तरह उत्तर ढूँढने का वह तरीका कितना गलत था ! वह यह नहीं चाहता था कि कल के नये लोग भी उसी गलत तरीके को अपनाकर इस अँधेरे में बन्द रहें। जीवन में उत्तर अनिवार्य होता है। बिना उत्तर का जीवन प्रश्नों के भारी बोझ से लुढ़का रहता है। कुछ लोग अगर उससे भिन्न थे तो अच्छा ही था। कम-से-कम वे प्रश्नों को गींज-गींजकर जीवन-भर रेंगते तो न रहेंगे ! खोखली उम्मीदों और झूठे आश्वासनों के साथ तो न जीयेंगे ! निहत्थेपन और बेचारगी की वह स्थिति ! वह लिजलिजापन ! वह मिला हुआ आक्रोश ! ये सारी बातें नपुंसक जीवन को और भी नामर्दी की स्थिति में ढकेल देती हैं। बेदम, असमर्थ अस्तित्व !

वह किसन पर अपना कोई विचार नहीं लादना चाहता था। उसे न कोई सीख देना चाहता था, न सुझाव। उसके अपने पास जो भी हथियार थे, सभी जंग लगे हुए बिना धार के। उसकी एक ही बड़ी चिन्ता थी अब—कि किसन अपने निजी ढंग से इस लड़ाई को लड़े। स्थिति को खुद महसूसे और उसे बेहतर बनाने का उपाय सोचे। बस्तीवालों की बेपरवाही कभी कुन्दन की चिन्ता का कारण बन जाती। वह उन दिनों

के बारे में सोचने लग जाता जब वह इस उम्र का था। उसे नहीं लगता कि उस समय उसमें इतनी लापरवाही रही होगी।

शाम के उस धुंधलके में दूर तक के फैले दृश्यों पर आँखें गड़ाये कुन्दन ने किसन से कहा, "बड़े मालिक के यहाँ से कल बुलावा आया था।"

कुन्दन के चेहरे के गाम्भीर्य से किसन ने अनुमान लगा लिया था कि कोई गम्भीर बात होनेवाली है। रास्ते-भर वह अधीरता के साथ चलता आया था। उसी अधीरता के साथ वह उस बात को जानने के लिए चुप रहा।

"जो बातें हुईं वे नयी नहीं थी।"

अपनी बेसब्री को थामे वह सुनता रहा।

"पहले भी एकाध बार इस तरह की बातें हो चुकी हैं। पर पहले···खैर, छोड़ो पहले की बात। साहब चाहता है कि तुम्हें सरदार नियुक्त कर दे।"

बेसब्री ने हैरत में बदलकर पूछा, "मुझे ?"

"हाँ।"

दो मैनाएँ आगे-पीछे उड़ती हुई एकदम नीचे से निकल गयीं। उनके पंखों की फड़फड़ाहट से किसन की आँखों के भाव में हल्का-सा परिवर्तन आया। इस बार अपने स्वर से हैरत को कम करते हुए उसने कहा, "मेरी समझ में तो नहीं आता कि आखिर इतने लोगों के होते हुए मुझे ही क्यों···"

कुन्दन ने उसके इस वाक्य को पूरा नहीं होने दिया, "हो सकता है कि कुछ और लोगों के सामने भी यह प्रस्ताव आया हो।"

"किसी ने नहीं माना ?"

"लगता तो ऐसा ही है।"

"एक बात अजीब लग रही है।"

"कौन-सी ?"

"वे मालिक तो जबरदस्ती किसी-न-किसी को सरदार बना सकते थे, तो फिर वे प्रस्ताव करते क्यों फिर रहे हैं ?"

"शर्तें जो हुआ करती हैं।"

दोनों मैनाएँ चक्कर काटकर फिर उसी पहलेवाली दिशा को उड़ गयीं।

"तुमने क्या कहा चाचा ?"

"मैं क्या कहता ?"

"इनकार कर दिया ?"

"तुम्हें खुद वहाँ भेजने की बात कर रहा हूँ।"

"कब ?"

"कल।"

"वहाँ जाकर क्या कहना होगा ?"

"यह तो तुम जानोगे।"

"मैं ?"

"हाँ तुम। सरदार का ओहदा बहुत बड़ा ओहदा होता है।"

"यह तुम कह रहे हो चाचा ?"

"तुम भी यही कहोगे क्या ?"

कोई घण्टे-भर वहाँ बैठे रहने के बाद दोनों बस्ती की ओर लौट पड़े। किसन की चाल में बोझिल मस्तिष्क का प्रभाव था। वातावरण धीरे-धीरे स्याह हो रहा था। ईख के खेतों के बीच की पगडण्डी संकुचित लग रही थी। बस्ती पास आ जाने पर किसी प्यासे बच्चे के रोने की आवाज आयी। कुन्दन से दो अंगुल ऊँचा होने के कारण किसन को फाटक से भीतर जाने के लिए झुकना पड़ा। कुन्दन पीछे था। इस फाटक से उसका लाखों बार आना-जाना हुआ था, पर झुकने की नौबत नहीं आयी थी। वह नाटा नहीं था, किसन कुछ अधिक लम्बा था।

बैठक को लौटते हुए कुन्दन ने इतना कहा, "कुत्ते के मुँह में हड्डी इसलिए डाल दी जाती है ताकि वह भौंकना बन्द कर दे।"

तेईस

पुष्पा कुएँ पर पानी के लिए गयी हुई थी। बहुत देर से फुलवन्ती पगडण्डी की ओर आँखें किये हुए थी। सामने की यह पगडण्डी हर समय उसके लिए निराशा लिये होती। बहुत देर बाद कुन्दन लौटता दिखायी पड़ा। उसने अपनी कुदाली को कन्धे से उतारा ही था कि फुलवन्ती ने कहा, "देवनन्‌ भैया, अपन को एक बात पूछनी है।"

कुन्दन बिना कुछ कहे उसके पास आकर चबूतरे पर बैठ गया। थकान से उसका चेहरा छोटा दीख रहा था। अपने हाथों की मिट्टी को अंगुलियों से मलकर छुड़ाते हुए उसने फुलवन्ती की ओर देखा। फुलवन्ती जिस प्रश्न के साथ तीन दिन से तैयार थी, आखिर उसे पूछके रही।

"भैया ! ऊ तोहरा मिलल रहल ना ?"

"कौन ?"

फुलवन्ती प्रश्न के लिए तैयार नहीं थी, इसीलिए उत्तर देने में उसे देर हुई, "पुष्पा के बाप।"

कुन्दन ने भी बात समझने के लिए कुछ समय लिया, फुलवन्ती के चेहरे का यह विचित्र भाव देखा और उसके उत्तर को प्रश्न में बदल दिया, "पुष्पा के बाप ?"

"हव धोती...।" वह अपनी बात पूरी न कर सकी।

कुन्दन ने एक झटका-सा अनुभव किया। चारदीवारी के वे दृश्य अनायास आँखों के सामने दौड़ गये। मंगरू की कई बातें याद आयीं। वर्तमान से कटकर वह बीते हुए उन क्षणों में खो गया, जिनसे वह भाग आया था। उसे इतने बड़े संयोग की उम्मीद

नहीं थी और फिर चारदीवारी के सभी क्षणों से तो उसने अपने को काट लिया था। मगरू की याद के साथ-साथ सभी यादों को उसने मिट जाने दिया था। कुन्दन तो चार-दीवारी के भीतर छूट गया था। वह तो अब देवननन्द था ···· पर एकाएक यह बिजली कैसे कौंध गयी ! वह एक बार फिर कुन्दन कैसे हो गया था ? कुन्दन के वे पिछले क्षण उसकी धमनियों में फिर से ताजे कैसे हो गये ? उसके कानों में फूलवन्ती की भर्रायी हुई आवाज आयी, "भैया !"

एक खुदगर्ज ख्याल से कुन्दन कांप-सा गया—फूलवन्ती का यह जान लेना कि मैं कैद से भाग आया हूँ, कहाँ तक मेरे रहस्य को रहस्य रहने देगा ?

फूलवन्ती के इस प्रश्न ने कुन्दन के खुदगर्ज ख्याल को झकझोर दिया। उसका यह प्रश्न उसके कानों में गूंजता रहा। उस गूंज की कई अनुध्वनियाँ उसके हृदय और कानों के बीच के तारों में होती रहीं—यह कैसा है ? मगरू कहाँ कैसा है ? कैसा है वह ?

भीतर-ही-भीतर के लम्बे तर्क के बाद कुन्दन ने अन्त में यही तय किया कि चार-दीवारी के भीतर की सच्चाई उसकी अपनी सच्चाई थी। वहाँ की यन्त्रणा और वेदना को उसे किसी से बांटना नहीं था। झूठ अगर आदमी को पीड़न के बीच भी एक स्थायी आनन्द दे जाये तो उसमें हर्ज ही क्या था ! दुख के बीच सच्चाई का एक दूसरा दुख जोड़ देने से तो उसने इसी को बेहतर समझा कि झूठ का आनन्द वर्तमान की पीड़ा को मिटा सके। झूठ पर पश्चाताप नहीं हुआ—और फिर चारदीवारी से बाहर तो हर हालत में आदमी अच्छा ही होगा। उसका यह झूठ उतना बड़ा झूठ भी तो नहीं था। मगरू चारदीवारी के भीतर नहीं था। यह सच्चाई थी ··· और यह भी झूठ नहीं था कि वह उस नर्क में पीड़ित नहीं था।

रात कुन्दन के लिए तनाव से भरपूर रही। उसने अपने-आपको भावुकता से काटकर किसी उद्देश्य के लिए कठोर बनाया था, पर वही भावुकता एकाएक उसे जकड़ गयी थी। फूलवन्ती और पुष्पा पर तरस आता रहा। और जब उसने अपने को उससे बचाना चाहा तो हरबंसिया की अनचाही याद उसे चुभ उठी। अपने भीतर की बची-खुची भावुकता को मारकर ही उसने उस दिन ईख के खेत की तन्हाई में हरबंसिया को अपने पास से खदेड़ दिया था। वह संवेदना अभी उसके भीतर मरी नहीं थी। उसका रूप चाहे कुछ भी हो, पर वह जीवित थी। वह भीतर-ही-भीतर चाहता रहा कि अगर पुष्पा इस समय सामने आ जाती तो वह एक बार जोर से 'बेटी' चिल्लाकर उसे अपने गले से लगा लेता। मगरू की बेटी उसके लिए किसी पराये की नहीं हो सकती। कैद में मगरू और वह एक जीव की तरह थे। कई दारुण दण्डों को दोनों ने एक साथ झेला था।

रात गहरी नींद में अचेत थी। बाहर एक हल्की बारिश शुरू हो गयी थी। कोई दूसरा अवसर होता तो उसका यह कराहता संगीत कुन्दन के लिए लोरी बन जाता। लोरियों की वह अधमिटी यादें, जो अब भी उसके भीतर थी। वे उसके लिए नहीं गायी जाती थी, फिर भी वे उसके भी काम आ जाती। उस समय वह पांच वर्ष

पार कर चुका था। पड़ोस के नाते में वह उसकी भौजी लगती थी जो अपने सुरीले स्वर से अपने बच्चे को सुलाया करती थी। कई अवसरों पर कुन्दन भी उन गीतों को सुनता हुआ जँभाई लेने लग जाता।

उन दूर हो गये क्षणों के बाद वह हल्की बारिश का संगीत ही होता जो उसकी आँखों को थपकियाँ दे जाता। लेकिन ऐसा हमेशा नहीं होता। आज भी नहीं हुआ। मन-ही-मन बाहर के माहौल का ख्याल करता हुआ वह करवटें लेता रहा। हरखसिया रेमों साहब की रखैल थी, इस बात का उसे हमेशा दुख हुआ था। वह अपने-आपसे पूछता रह जाता कि आखिर उसे रेमों साहब की रखैल बनने की क्या आवश्यकता थी! खुद हरखसिया से इसका उत्तर जानने का साहस उसे कभी नहीं हुआ।

बस्ती के लोगों को यह बात उतनी नहीं खटकती थी, क्योंकि कई अवसरों पर हरखसिया लोगों को रेमों साहब से मिलवाकर उनकी सजाओं को कम करवा चुकी थी। कुन्दन को यह बात भी पसन्द नहीं थी। रियायत से उसे घृणा थी। वह भी शोषक की रियायत से!

कुछ देर के लिए जंगली कीड़ों का संगीत भी बन्द हो गया था। बारिश भी थम गयी थी। मृत्यु का-सा सन्नाटा अँधेरे को और भी भयावह बना गया था। अपनी पलकों को जबरदस्ती बन्द किये कुन्दन ने अपने को अँधेरे से बचाने का प्रयत्न किया। इधर पहली बार उसे बस्ती का अँधेरा चारदीवारी के अँधेरे की याद दिला गया था। उस दर्दनाक अँधेरे को दोबारा न देखने के लिए वह आँखें मूँदे रहा। उस वक्त तक आँखों को कसे रहा, जब तक कि उसके भीतर का तनाव टूटकर ढीला न हो गया।

उसकी नींद देर से टूटी। सूरज के उदय होने को कुछ क्षण बाकी थे। किसन ने उसे झकझोरकर उठाते हुए कहा था, "आज कोड़े खाकर रहेंगे।"

वह जल्दी से उठा। हाथ-मुँह सँवारकर कुदाली उठायी और समय के ख्याल से भयभीत मौलिक कार्यों से निवृत्त हुए बिना ही वह बाहर निकल गया। पगडण्डी पर दोनों अकेले थे। खेतों में काम शुरू हुए काफी समय हो गया होगा। कुन्दन ने पूछा, "जगाने की बारी किसकी थी?"

"मथुरा की।"

"लगता है, आवाज देने के बदले वह दरवाजों के पास से बुदबुदाकर निकल गया होगा।"

"तुम तो घोड़े बेचकर सोये थे।"

झपटते हुए दोनों उस स्थान पर पहुँचे जहाँ बोआई हो रही थी। दोनों पर सबसे पहले रामजी सरदार की नजर पड़ी। वह अपनी जगह से चिल्ला पड़ा, "अभी आ रहे हो?"

दोनों चुपचाप अपने-अपने कामों में लग जाने के लिए आगे बढ़े कि तभी रामजी सरदार दोनों के आगे आ खड़ा हुआ। इस बार उसका चिल्लाना और भी जोर का रहा, "तुम दोनों यहाँ के लाट साहब हो क्या?"

इतने में दो तरफ से दो मालगासी सरदार भी सामने आ गये। एक ने आगे बढ़कर रामजी सरदार के हाथ से उसकी लाठी ले ली। किसन चिल्ला उठा, "खबरदार, अगर यह लाठी हममें से किसी एक की पीठ पर पड़ी तो !"

तीनों सरदार स्तब्ध रह गये।

अपने-अपने कामों में लगे हुए मजदूर अपने-अपने स्थान पर तनकर खड़े हो गये। ऐसा पहली बार हुआ था। सरदारों ने एक-दूसरे को देखा। बात समझ से बाहर की थी। फिर भी एक सरदार ने कदम आगे बढ़ाने की हिम्मत की, "की तो फिर कोई सा ?"

किसन ने उसी पहलेवाले स्वर में कहा, "मैंने जो कुछ कहा वह तुम्हारी समझ में आ गया है, अगर नहीं आया है तो फिर से सुन लो। हम जानते हैं कि हम देर से पहुँचे हैं, लेकिन ऐसा हमेशा नहीं होगा। हम दोनों अपनी इस भूल को सुधारने के लिए तैयार हैं। शाम को हम कुछ अधिक देर तक काम करके इसको पूरा कर देंगे।"

हाथ में लाठी लिये हुए सरदार दो कदम आगे बढ़ा। सभी मजदूर भी एक ही साथ हिले। वे भी दो कदम आगे आये। सरदार ठिठक गया। उसने अपने चारों ओर देखा। लोगों की आँखें उसी पर जमी हुई थीं। उसने दोबारा कदम उठाना चाहा, पर तभी उसे लगा कि उसके कदम के साथ-साथ सभी मजदूरों के भी कदम उठेंगे। वह चुपचाप खड़ा रहा। उसके साथ-साथ और सरदार भी जमीन से चिपके रहे।

एक लम्बी स्थिरता और खामोशी के बाद ··

किसन आगे बढ़ा। उसके साथ-साथ कुन्दन भी। सूरज की प्रथम किरणों ने धरती को स्पर्श किया।

तीनों सरदार अपनी जगह पर खड़े रहे। किसन और कुन्दन ने जब तक काम शुरू नहीं किया, तब तक कोई भी मजदूर अपनी जगह से नहीं हिला। कुछ देर बाद जब सभी अपने-अपने काम में जुट गये तो तीनों सरदार एकसाथ कदम उठाते हुए आगे बढ़ गये। कुछ दूरी पर से किसी मजदूर ने गाने के पहले स्वर को शुरू किया, फिर तो दो-तीन आवाजें एकसाथ मिल गयीं.

रतिया भयानक बीत गयल भैया
टूट गयल नींदवा हमारी हो भैया
अगेवा बढ़न को हो गयल फजीरवा
आगे बढ़न को औरी बढ़न को।

पहाड़ी के नीचे दूर तक फैले उन खेतों में यह पहला अवसर था जब मजदूरों के स्वर स्वच्छन्दता के साथ बाहर आकर वातावरण में गूंज सके। पहली बार हवा और लोगों की साँसें भय से मुक्त थीं। पर यह मुक्ति एक सम्पूर्ण मुक्ति नहीं थी, क्योंकि आतंक अब भी उन हृदयों में थी, उन लोगों में थी। लोगों से यह बात नहीं भूली जा सकी कि कुछ ही देर बाद मालिक पहुँच जायेगा और ·····

यह केवल किसन था जिसे परिणाम की कोई विशेष चिन्ता नहीं थी।

उसने सरदारी करने से इन्कार करके अपने को बहुत दिलेर साबित किया था। सूरज बादलों के पीछे था।

सूरज पूरब के घने पेड़ों की दीवार के ऊपर आ गया था जब रेमों साहब की बग्गी पहाड़ी के मोड़ पर दिखायी पड़ी। सूरज का एक टुकड़ा पहाड़ पर गिरकर काँच की तरह चकनाचूर हो गया था और उस टुकड़े के अनुटुकड़े खेतों में लुढ़क आये थे। हरियाली झुलस रही थी। तीनों सरदार, जो अब तक चुप्पी साधे हुए थे, घोड़े-गाड़ी को देखते ही फिर से तन गये। गाड़ी जैसे-जैसे पास आती गयी, उनके स्वर भी ऊपर को उठते गये। इक्के से उतरते-उतरते रेमों साहब को सभी बातें मालूम हो गयीं। सभी कुछ सुन चुकने के बाद भी उसे शान्त पाकर मजदूरों को जो हैरानी हुई, वह लम्बे समय तक नहीं टिक सकी। अपने सरदारों के कानों में मालिक ने कुछ कहा और देखने-ही-देखते तीनों आदमी जामुन के पेड़ की ओर बढ़ गये जिस पर मजदूरों के भात की टोकरियाँ टँगी हुई थीं। मालिक भी अपने दोनों कुत्तों के साथ उधर को बढ़ गया। सभी मजदूरों को बात समझ में आती, इससे पहले पेड़ से सभी टोकरियाँ उतारकर उसके भीतर के बरतनों को दोनों कुत्तों के सामने उड़ेल दिया गया। कुत्ते खाने को टूट पड़े। किसन ने दौड़कर चट्टान पर खड़ा होते हुए चाहा कि मजदूरों से इस अनर्थ के विरुद्ध आगे आने को कहे कि उससे पहले रेमों साहब का गर्जन हवा में गूँज उठा, "आतांस्यों। ने प्रोनोंस पा एँ मो·····।"

किसन अभी सोच ही रहा था कि धमकी की परवाह करे या न करे, कि तभी कुन्दन ने उसके पास पहुँचकर धीरे से कहा, "कोई भी शब्द मुँह से मत निकालो। अनर्थ हो जायेगा।"

रेमों का चिल्लाना बन्द नहीं हुआ था, "अगर तुम लोग इसी क्षण काम में नहीं जुट जाते हो तो तुम्हारे हिस्से के सभी चावल-दाल को बाड़े के सुअरों के सामने डाल दिया जायेगा।"

कुछ देर तक सभी मजदूर अपने-अपने स्थान पर उसी तरह खड़े रहे। कोई टस-से-मस नहीं हुआ, जब तक कि कुन्दन ने सभी को काम में लग जाने का आदेश न दिया। काम जब स्वाभाविक रूप से होने लगा तो रेमों साहब ने किसन और कुन्दन को नदीकिनारे के इमली के पेड़ के पास तलब किया।

"मैंने तुम दोनों को दाद देने के लिए यहाँ बुलाया है।"

कहते हुए रेमों साहब ने एक ही लगे दोनों के गालों पर दो थप्पर जमा दिये। कुन्दन चुपचाप खड़ा रहा। किसन भीतर-ही-भीतर खौलकर रह गया। इससे पहले रेमों साहब ने साफ शब्दों में कह दिया था—एक और हरकत का नतीजा होगा कि सभी मजदूरों को अपने चावल-दाल से हाथ धोने पड़ जायेंगे।

"तुम लोगों का इरादा क्या है?"

किसन ने उत्तर भोजपुरी में दिया, "हमारे साथ आदमी जैसा बर्ताव किया जाये।"

"पार्दं मोंदि ! फ्रेंच में बोलो। तुम्हारी जंगली भाषा मेरी समझ में नहीं आती है।"

"हमें भी तुम्हारी भाषा नहीं आती।" किसन बोला।

"केसके वो दी ?"

इतने में कुन्दन बीच में आ गया। उसने तुरन्त अपनी टूटी-फूटी फ्रेंच में बात शुरू की, "साहब ! आखिर हमारा क्या दोष था ? जब से यहाँ काम करते हैं, हमेशा हमने समय पर काम शुरू किया है। एक दिन कुछ देर हो जाना स्वाभाविक है......"

"फेर्मे ता गेल। क्या स्वाभाविक होता है क्या नहीं, यह तुम मुझे नहीं बताओगे। मैं सिर्फ यह जानना चाहता हूँ कि तुम लोगों का इरादा क्या है ?"

"यह आपको बताया जा चुका था।"

रेमों साहब अपनी सारी ताकत के साथ गरज उठा, "मैं तुमसे सुनना चाहता हूँ।"

"हमारा इरादा अब वह नहीं रहा जो पहले था।"

"पहले क्या था ?"

"पहले सभी कुछ चुपचाप सह लेना हमारा प्रण था।"

"फ्रेंच में बोलो।"

"अब हद हो गयी। अब हमारा एक ही इरादा है, आप लोग यह जान लें कि हम लोग भी आदमी हैं और आदमी के साथ आदमी की तरह पेश आना चाहिए।"

"यह तुम किनसे कह रहे हो ?"

"जो अपने को आदमी और हमें कुत्तों से बदतर समझता हो, उससे।"

कुन्दन फिर से बीच में आ गया, "किसन, चुप तो रहो।"

रेमों साहब का रंग गरमी के कारण पहले ही से लाल था। वह और भी लाल हो गया था।

"तुम इसका नतीजा जानते हो ?"

"आप बतायें तो सही।"

"जीवन-भर के लिए कैद में ठूँस दिये जाओगे।"

"बस ?"

"फिर ये तुम्हारे खेत दोबारा श्मशान हो जायेंगे।"

"फेर्मे सा मालाबार।"

कुन्दन ने किसन के मुँह पर हाथ रख दिया, "किसन, इस तरह कुछ भी बनने का नहीं।"

अपने मुँह के पसीने को पोंछते हुए रेमों साहब ने कहा, "तुम दोनों को मेरे सरदारों से माफी माँगनी होगी।"

इस बार कुन्दन ने प्रश्न किया, "माफी क्यों ?"

"तो फिर सजा ही चाहते हो ?" रेमों साहब ने इस प्रश्न को जितने धीमे स्वर

में किया, वह उतना ही बड़ा गजन-सा प्रतीत हुआ। किसन ने उसकी आवाज़ के ऊपर कहा, "हम माफी नहीं माँगेंगे।"

रेमों साहब के चेहरे पर जो मुस्कान आयी वह नकली थी, फिर भी उससे उसके भीतर के वे अकस्मात के भय और आश्चर्य ऊपर न आ सके। उसके हाथ का कोड़ा जिस तेजी से ऊपर को उठ गया था, उसी तेजी से नीचे आ गया। हैरानी के साथ वह स्तब्ध खड़ा रहा। सूरज को पश्चिम से उगते पाकर भी उसे हैरत नहीं होती। उसे जितना आश्चर्य किसन के उस अकस्मात साहस से हुआ था, उतना ही अपने हाथ के बोझिल कोड़े पर भी हुआ। पहली बार किसी कुली के सामने इस तरह उसके हाथ का कोड़ा उसकी मुट्ठी में जम-सा गया था। पहली बार······।

अपने माथे से पसीने की मोटी धाराओं को पोंछकर रेमों साहब बग्गी की ओर बढ़ गया। कोचवान उससे पहले अपनी जगह ले चुका था। रेमों साहब ने अपने सरदारों की ओर देखा, बस इतना कहकर कोचवान से गाड़ी आगे बढ़ाने को कहा, "इन दोनों आदमियों को इसी वक्त मेरी कोठी पर पहुँचने को कहा जाये।"

बग्गी के जाते ही सरदारों में जो सबसे तगड़ा था, आगे आया। किसन और कुन्दन के आगे खड़ा होकर उसने धीरे से कहा, "तुम दोनों को इसी वक्त कोठी पर पहुँचना है।"

इस बीच सभी मजदूर अपने-अपने स्थानों से आगे आ चुके थे। सरदारों की नजर जब बग्गी की ओर मुड़ी, उस समय वह आँखों से ओझल हो गयी थी। अपने तथा सरदारों को सभी मजदूरों की घिरावट में पाकर किसन ने कहा, "तुम लोग अपने-अपने काम में लग जाओ।"

सोनालाल और दो कदम आगे बढ़ आया, "तुम दोनों को अकेले नहीं जाने दिया जायेगा।"

"हाँ! हम भी तुम्हारे साथ चलेंगे।"

"नहीं!" किसन चिल्ला उठा।

"तो फिर तुम दोनों भी नहीं जाओगे।"

"न जाने का परिणाम जानते हो?"

"देखा जायेगा!"

किसन ने सोनालाल के कन्धे पर हाथ रख दिया, "चलो, तुम लोग अपने काम में लग जाओ।"

"यह पहला अवसर है कि सभी लोग आगे आ सके हैं। क्या इनको रोकना ठीक होगा?"

इसका उत्तर मिलता तब तक कुन्दन बोल चुका [illegible] का एकसाथ खड़े होना ही जरूरी है, लेकिन यह होना चाहिए ठीक समय [illegible] समय से थोड़ा-सा भी आगे या पीछे हुआ तो लम्बी [illegible] के बल पर बोल रहा हूँ।"

"हम यह नहीं मानते कि हम समय से आगे या पीछे हैं।"

"इसका पता तो आवेश के कम होने पर ही लग सकता है।"

"यह आवेश बहुत कठिनाई से मिला है हमें।"

"सोनालाल ठीक कह रहा है। अगर कुछ होना है तो इसी आवेश में होगा।"

"नहीं बाबा! मात्र संवेदना से यह काम नहीं होगा। तुम लोग काम करते हुए हमारी प्रतीक्षा करो। हम कोठी से हो आते हैं। मुझे पूरा विश्वास है कि उधर से कोई भी ऐसी हरकत नहीं होगी जिसके कारण·····।"

"यही अवसर है हमें अपनी नामर्दी को तजकर आगे आने का।"

"हाँ, किसन, तुम हमें रोककर हमारे लिए पश्चाताप की स्थिति मत पैदा करो।"

अपने दोनों हाथों को ऊपर करके सभी को शान्त करने के प्रयास में कुन्दन बोला, "देखो! तुम सभी से हम केवल दो घण्टे माँग रहे हैं। अगर दो घण्टों में हम नहीं लौटे तो फिर तुम सभी कोठी पर पहुँच सकते हो। लेकिन इस बीच तुम सभी को अपने-अपने कामों में लगे रहना है।"

मजदूरों के बीच फुसफुसाहट हुई, "देवनन्दन ठीक कहता था।"

जब तक सभी लोग अपने काम में जुट नहीं गये, किसन और कुन्दन वहीं खड़े रहे। सभी को काम में लगाकर ही दोनों ने कोठी का रास्ता लिया। भीतर से आशंकित होते हुए भी दोनों ने अपनी आशंका को एक-दूसरे पर प्रकट नहीं किया। कोठी के दोनों रखवारों के साथ किसन और कुन्दन रेमों साहब के सामने पहुँचे। रेमों साहब की आँखें उस समय भी लाल थीं, पर उनकी बगल की कुर्सी पर बैठे बड़े साहब का चेहरा शान्त था। उसी शान्त मुद्रा में उसने कोठी के सिपाही को आवाज़ देकर सामने बुलाया और बड़े ही शान्त स्वर में कहा, "दोनों की कमीज़ उतारकर बीस-बीस कोड़े लगाओ।"

निर्धारित समय से पहले दोनों फिर मजदूरों के बीच वापस आ गये।

दोनों के चेहरों पर मुस्कान थी। यह पहला अवसर था कि कोठी से कोई मुस्कान के साथ लौटा हो।

रात में जब दोनों व्यक्ति एक-दूसरे की पीठ पर मरहम लगाने बैठे, उस समय कुन्दन के घर के भीतर उन दोनों के सिवाय तीसरा कोई नहीं था। अपनी ही मुट्ठियों में बंद बेचारगी की स्थिति से जूझते हुए कल की अनिश्चित सुबह के लिए दोनों दो घण्टे की नींद में खो गये और·····उसी पिसी-पिटी सुबह की अगवानी के लिए उमस-भरी रात आगे को बढ़ गयी।

चौबीस

उमस लिये हुई रात। घटाटोप के कारण रास्ते की दुर्गमता। थकान से बोझिल आँखें और भीतर आशंकाएँ। सोनालाल साथ न होता तो अब तक किसन उस गहन अँधेरे

में खो गया होता। एक लम्बी चिपचिपाहट से क्षणिक राहत पाते हुए सोनालाल ने ऊपर के तारेरहित आकाश की ओर देखा। नदी पार करने के बाद ठौर पर पहुँच आने की जो उम्मीद बँधी थी, वह जाने लगी। वह खुद भटक गया था, यह जताने की उसकी हिम्मत नहीं हो रही थी। जब किसन ने पूछा कि अभी और कितनी देर चलना है तो वह खड़ा हो गया।

"क्यों, क्या हुआ ?"

"मुझे लगता है, हमने गलत रास्ता ले लिया।"

"अब क्या किया जाये ?"

बिना कुछ कहे बगल के पेड़ को टटोलते हुए सोनालाल ऊपर चढ़ा। चारों ओर देखा। कुछ टिमटिमाते दीये दक्षिण की ओर दिखायी पड़े। उसे अपनी भूल मालूम हो गयी। पहाड़ी के पास उसने गलत पगडण्डी ले ली थी, इसीलिए बस्ती की बगल से होते हुए वे लोग दूसरी ओर पहुँच गये थे। आबनूस के लम्बे घने पेड़ों के कारण उधर की रोशनी दिखायी नहीं पड़ी थी। पेड़ से उतरते हुए उसने कहा, "हम बस्ती से आगे आ गये हैं।"

"यह कैसे हुआ ?"

"थोड़ा पीछे चलकर दक्षिण की ओर मुड़कर देखना होगा।"

दोनों पीछे चलकर दक्षिण की ओर बढ़ गये।

दोनों चुपचाप चल पड़े। सोनालाल को लगा, अच्छा ही हुआ था। इस दूसरी बस्ती के भीतर जाने से डर जाता रहा। पिछली बार चाँदनी रात थी। और सामने से आते हुए दोनों रखवार की बन्दूक के आगे आते-आते बच गये थे। उस दिन दोनों को वहाँ से पीछे लौट जाना पड़ा था। झाड़ियों से होते हुए दोनों किसी तरह बस्ती तक पहुँचे। सिर तक ऊँची राफ़िया की दीवार को फाँदकर दोनों भीतर पहुँचे।

सोनालाल ने धीरे से कहा, "कुत्तों से बचना है।"

अपने सामने के प्रकाश को लक्ष्य करके दोनों बढ़ते रहे। सोनालाल को विश्वास था कि लोग अब भी प्रतीक्षा कर रहे होंगे। वह आगे-आगे था। कुटिया के भीतर से आती आवाज को सुनकर दोनों खड़े हो गये। किवाड़ के पास मुँह ले लाकर उसने पुकारा, "मौसाजी, दरवाजा खोलना।"

भीतर से आवाज़ आयी, "के ह ?"

"हम हैं किसन भैया के साथ।"

"खोल दे सोहना।" भीतर की इस आवाज के साथ दरवाजा खुला और दोनों भीतर पहुँचे।

कोने में मिट्टी का चिराग था। उसके मद्धिम प्रकाश में कोई बीस व्यक्ति बैठे हुए थे। सभी के चेहरे पर वही रंग था—वही समस्या के हल ढूँढ़ते हुए थक जाने के बाद का रंग। किसन और सोनालाल को बड़े आदर के साथ बैठाया गया। परिचय के बाद बात शुरू हुई। मुखिया के नाते लछमनसिंह ने सबसे पहले किसन से कुछ प्रश्न

दिये। दोनों व्यक्तियों के यहाँ पहुँचने से पहले से सारे प्रश्न लछमनसिंह ने किये गये थे। एक-एक प्रश्न के विस्तृत उत्तर से किसन ने अब तक की तय सभी बातें सामने रख दीं। लेकिन सभी बातें उतनी आसान नहीं थीं कि एक ही बार में सरलता के साथ सभी की समझ में आ जातीं। बैठक के अन्त तक प्रश्न होते रहे। किसन उत्तर देता रहा। बाहर की हवेली से मुर्गों की पहली बांग आ चुकी थी जब लछमनसिंह ने सभा विसर्जित की। किसन की सभी बातों पर अपनी सहमति देते हुए उसने कहा, "किसन बेटे, बस शाम को नौकरी से छूटते ही अगर तुम मेरे घर आ जाओ तो हम कुछ अधिक बात कर सकेंगे।"

"उस समय तो रखवारों से आँख बचाकर भीतर आना कठिन होगा।"

"तुम इधर की चिन्ता मत करियो। हम सँभाल लेंगे।"

इस पर पीछे से किसी ने कहा, "मैं पहले ही से बरगद के गाछ के पास रहूँगा।"

"ठीक है, मैं आ जाऊँगा।"

"पीछे से कहनेवाला वह आदमी वहाँ सभी लोगों से जवान था। दोनों को दीवार के उस पार तक छोड़ने के लिए वह साथ हो गया। रास्ते में उसने किसन को बताया, "*मुखियाजी की बातों से सभी लोग सहमत नहीं हैं। पर जितने जवान लोग* हैं वे तो जी-जान से साथ हैं।"

"बस, यही काफी है।"

"इन बातों को लेकर कुछ घरों में अनबन है।"

"उसके लिए तुम चिन्ता मत करो, सब ठीक हो जायेगा।"

"कल से हमारे दो मित्र मुखिया पहाड़ के उस दूसरी ओर की बस्ती में गये हैं।"

"उनके लौटते ही हम उनसे मिलना चाहेंगे।"

"यह मेरे ऊपर छोड़ जाओ।"

अभी दोनों अपनी बस्ती से बाहर ही थे कि एक-एक करके घरों के चिराग जल उठे थे। पास पहुँचते-पहुँचते भात पकाने के लिए पहले ही से उठ गयी औरतों की आवाजें भी बरतनों की खनक के साथ सुनायी पड़ने लगी थीं। सोनालाल को घर भेज-कर किसन मुनिया के घर के सामने रुक गया। उसने आवाज दी। मुनिया बाहर आ गयी। उसके एक हाथ में चिराग था, दूसरे में चावल के लिए अदहन। किसन को देखते ही उसने कहा, "तुम हो भैया, भीतर जाओ।"

"नहीं मुनिया, मुझे काम पर जाने में देर हो जायेगी। चाचाजी की क्या हालत है?"

मुनिया ने कोई उत्तर नहीं दिया। स्पष्ट था कि मुनिया के बाप की हालत बिल्कुल नहीं सुधर सकी थी। तीन महीने से भी ज्यादा होने को थे, जब से वह चारपाई पर था। इन तीन महीनों के भीतर लोगों की ओर से बार-बार माँग करने पर भी कोई डाक्टर नहीं भेजा गया। पिछले तीन दिनों से किसन लगातार सरदारों और साहबों से मिलता रहा है, ताकि एक डाक्टर का इधर आना हो सके। हर बार उसे

यही उत्तर दिया जाता था कि मामूली बीमारी के लिए जड़ी-बूटी होती है, डाक्टर नहीं। पण्डितजी अपनी जानकरी की सभी जड़ी-बूटियों से काम ले चुका था। अन्त में उसने सिर हिलाते हुए कह ही दिया था कि इस बीमारी की दवा उसके पास नहीं थी।

भीतर के झिलमिलाते अँजोरे में किसन ने मुनिया के बाप की ओर देखा। पूरी निर्जीवता के साथ वह खाट पर पड़ा हुआ था। शरीर के नाम पर वह चमड़ों और हड्डियों में सिमटा हुआ एक गट्ठर-सा था। छप्पर की ओर उसकी एकदम खाली आँखें अपलक थीं। उसका रंग और भी झाँवर हो चला था। सुनुआ को उसकी बगल में होना चाहिए था, पर वह अपनी कमायी हुई आधी चावल-दाल यहाँ छोड़कर दूसरी आधी के साथ बस्ती के दूसरे छोर पर मार्सेलिन के यहाँ रातें बिता लेता था। मुनिया को आज फिर वही खोखली सान्त्वना देने के बाद किसन घर पहुँचा।

घर पर उसके बाप को भी जोरों का बुखार था। उसके सिरहाने पहुँचकर किसन ने उसके ललाट पर हाथ रखकर पूछा, "बुखार कुछ कम है न?"

रघुसिंह ने उसके प्रश्न का उत्तर नहीं दिया। अपने बेटे को कुछ देर तक एक-टक देखते रहने के बाद उसने धीरे से पूछा, "रात-भर तुम कहाँ रहे?"

किसन चुप रहा।

"तू जो कुछ कर रहल बारे उससे अपने के जोखिम में डाल के रहबे......।"

किसन ने अपने हाथ को धीरे से उसके मुँह पर रख दिया। उसके बाप की साँसें कुछ अधिक ही गरम थीं।

अपनी माँ को यह बताकर कि शाम को वह देर से लौटेगा, किसन ने सन के बोरे को कन्धे पर रखा। भात की टोकरी और कुदाली उठायी। नौकरी को चल पड़ा। रास्ते में कुन्दन ने बताया कि पुप्पा की माँ को भी बुखार था। बस्ती के कोई सात-आठ व्यक्ति बीमार थे। एक आशंका से किसन काँप गया। तीन वर्ष पहले ही की तो बात थी—इसी तरह एक के बाद दूसरा, फिर तीसरा और गाँव के पचास-साठ व्यक्ति एक ही साथ बीमार पड़े थे। दूसरी बस्तियों का भी वही हाल था। देखते-ही-देखते उसकी अपनी बस्ती के बाईस आदमी एक ही सप्ताह के भीतर मर गये थे।

उन लाशों को वे लोग जला भी नहीं सके थे। बिना किसी किरिया-करम के उन लाशों को गाड़ी में लादकर जंगल के भीतर एक ही गड्ढे में गाड़ दिया गया था। वह खौफनाक दृश्य किसन के दिमाग में रेंग गया। उस बीभत्सता को भीतर-ही-भीतर अनुभव करते हुए वह काम में जुटा रहा। साहब देर से पहुँचा। किसन अपनी कुदाली को थामे उसके पास पहुँचा। उसे अपने पास आते देख रेमों साहब दूर ही से चिल्ला पड़ा, "ऊ वा ची?"

आवाज़ सुनकर दो सरदार सामने आकर खड़े हो गये।

अपने कन्धे से कुदाली को उतारकर नीचे रखते हुए किसन आगे बढ़ा, "मुझे आपसे जरूरी बात करनी है।"

"मेरे पास समय नहीं है।"

"बस्ती में बीमारी फैलती जा रही है।"

"मैं क्या करूँ?"

"हमें दवा और डाक्टर चाहिए।"

"जरूरत समझी जाने पर दवाइयाँ भेज दी जायेंगी।"

"मौत के बाद?"

दोनों सरदारों ने आगे बढ़कर किसन की बाँहों को दोनों तरफ से जकड़ लिया।

रेमों साहब बग्घी की ओर बढ़ गया। जब तक बग्घी सामने की पगडण्डी से होती हुई आँखों के सामने से ओझल नहीं हो गयी, सरदारों ने किसन को उसी तरह पकड़े रखा। सभी मजदूर ऊँची मुँडेर के उस पार अपने-अपने कार्यों में लगे हुए थे। किसन पर लोगों की नजर उस समय पड़ी, जब हाथ में कुदाली थामे वह सामने से गुजरकर अपने ठौर पर पहुँचा।

एक बार वह अपने लोगों को भेड़-बकरियों की तरह मरते देख चुका था। पूरे देश में उस समय एक सप्ताह के भीतर सैकड़ों लोग मरे थे। एक-एक गाड़ी में पचासों लाशें लादी गयी थीं। पचासों व्यक्तियों को एक-एक गड्ढे में फेंक दिया गया था। एक बार किसन ने मालिक के मरे हुए कुत्ते को गड्ढे में गाड़ा था। वह इस आशंका से तिल-मिला उठा कि उसी तरह उसके अपने लोगों को भी गड्ढों के हवाले कर दिया जायेगा। नहीं। उसने अपने ख्यालों को पूरी शक्ति के साथ रोक लिया। ऐसा नहीं हो सकता। मौसम के परिवर्तन के कारण लोगों को साधारण बीमारी हुई थी। पण्डितजी की जड़ी-बूटियों से सभी कुछ ठीक हो जायेगा।

हर कुदाली के साथ वह अपने को यही सान्त्वना देता रहा।

उस बस्ती के घर किसन की बस्ती के घरों की तरह दो कतारों में न होकर गोलाकार थे। बीच का खुला हुआ भाग अधिक विस्तृत था। पूर्व की पर्वतमालाओं के कारण यह बस्ती बहुत ही सुरक्षित और एक अलग ही दुनिया-सी लगती थी। बीच में पीपल का पेड़ था। उसी के नीचे कुआँ था।

जिस वक्त किसन वहाँ पहुँचा, अँधेरा छाने लगा था। उसे लिये बस्ती का आदमी सीधे मदनसिंह के घर पहुँचा। वही रावेनाल की दीवारों के बीच की कोठरी। ऊपर पतले बाँसों के सहारे ईख के सूखे पत्तों का छाजन। सन के बोरे और वाक्वा के पत्तों की चटाई से घर दो भागों में विभाजित किया गया था। पूरब की ओर के रावेनाल की दीवार पर राम-रावण-युद्ध की एक तस्वीर थी। कोठरी के दूसरे भाग से पीढ़ा लाकर किसन के सामने रखते हुए मदनसिंह ने पास ही की चटाई पर जगह ली। साथ में आनेवाला बलराम भी उसी चटाई पर बैठ गया।

बात शुरू हुई दिन में घटी एक घटना से।

मन्नू को दो दिन कटघरे में बन्द रखने के बाद छोड़ा गया था। पीठ पर कमीज न होने के कारण वह कोड़े के निशानों के साथ वहाँ से लौटा था। अपने साथ नीले रंग का लहँगा और सफेद धोती ले आया था। किसी ने उससे नहीं पूछा था कि इन

कपड़ों का क्या होगा। बस्तीवालों को उस तरह के कपड़े देखने के अवसर पहले भी कई बार मिल चुके थे। जुबेदा, भगवतिया, तांगेची—ये सभी लड़कियां उन कीमती कपड़ों को पहनकर साहब की कोठी पर जा चुकी थीं। लछमनसिंह चाहकर भी उन लड़कियों को नहीं रोक सका था। सातों लड़कियों को अपनी आंखों से उसने घसीटे जाते देखा था। उनमें से दो-तीन के आंसुओं को वह जरूर पोंछ सका था। आज रात नन्दू की लड़की के जाने की बारी थी। नन्दू उसके पांवों पर गिरकर चिल्ला उठा था, "लछमन भैया ! हम अपन बच्ची के खातिर कफन न ले अयती त जास्ती अच्छा रहत।"

बार-बार दुहाई देते हुए भी नन्दू जानता था कि रेखा को वहां जाने से रोकना असम्भव था। ऐसा वह अपने प्राण देकर भी नहीं कर सकता था। उसकी पत्नी को मरे अभी कठिनाई से छः महीने हुए होंगे। उसके शोक में खेतों में काम करते-करते वह बेहोश हो गया था। सरदारों ने उसकी बेहोशी को स्वांग बताकर उसे उठाकर मुंडेर पर ढकेल दिया था। और जब उसका एक पांव जाता रहा तो उसे कोठी की नौकरी से हटा दिया था। कई दिन उसके घर चूल्हा नहीं जला था। लोगों के एहसान के बोझ से दबकर जीते-जीते वह ऊब गया था। जिस दिन मालिक के सुरक्षित खेत से उसने मकई चुरायी थी, उसका एक पांव बेकार न होता तो वह पकड़ा नहीं जाता। पीठ पर कोड़े की पहली मार से वह चिल्ला उठा था। दर्द से नहीं बल्कि अपने भीतर के सीले आक्रोश को उसने बाहर आ जाने दिया था।

"क्या चुराने के अलावा कोई दूसरा चारा था मेरे सामने ?"

कोड़े की बौछार से उसकी इस आवाज़ को दबा दिया गया था।

भगवती और तांगेची ने आत्महत्या कर ली थी। दो और लड़कियों ने अपने को नदी की बहती धारा के साथ बह जाने दिया था। इन लड़कियों में से एक की लाश को नन्दू खुद नदी से बाहर निकाल लाया था। किसन के यहां पहुंचने से कुछ ही देर पहले नन्दू इस घर में बच्चों की तरह सिसकियां ले-लेकर उन तमाम बातों को याद कर रहा था। उसकी अपनी पत्नी पर भी साहब की आंखें थीं। उसकी पत्नी बस्ती की सबसे सुन्दर स्त्री थी। जितनी सुन्दर थी, उतनी ही साहसी भी थी। पूरी निर्भयता से उसने साहब की पहली हरकत पर उसे अपनी ओर ताकने से हमेशा के लिए रोक दिया था। रेखा ने उसका रूप अवश्य पाया था, पर शायद वह हिम्मत उसमें नहीं थी।

जिस समय मुखिया के साथ किसन नन्दू के घर पहुंचा, दोनों बाप-बेटी एक-दूसरे से लिपटे रो रहे थे। जिस रेखा को किसन ने पहली बार देखा, वह आंखों में आंसुओं की नदियां लिये हुए थी। रेखा की आंखों में जो चीज थी उससे किसन को लगा कि उसकी रक्षा के लिए एक पूरी बस्ती अपने को निछावर कर जाने से नहीं झिझकेगी। अपने बाप से छूटकर रेखा लछमनसिंह के पांवों पर आ गयी।

एक लम्बी चुप्पी रही। सिसकियां भी बन्द थीं। अपने गाल पर आ गये आंसुओं को पोंछते हुए नन्दू ने कहा, "कोठी से लोग आते ही होंगे।"

मरें।"

वह सिर धुनने लगा। किसन ने आगे बढ़कर उसके हाथों को सिर से अलग किया। घर के सामने कई लोग जमा हो गये थे। कुछ लोगों ने भीतर तक प्रवेश पा लिया था। फाटक की ओर से दौड़ते हुए किसी की आवाज आयी, "गाड़ी आ रही है।"

"नहीं......नहीं।" नन्दू अपनी कोठरी के भीतर इधर-से-उधर पागल की तरह घूमने लगा। लछमनसिंह आगे बढ़ा। उसने रेखा के सिर पर हाथ रखा, "चलो बेटी, तुम मेरे यहां चलो।"

नन्दू बीच कोठरी में रुक गया। रेखा के साथ आगे बढ़ते हुए लछमनसिंह ने कहा, "नन्दू, रेखा मेरे जिम्मे है। तुम यहां से भाग जाओ।"

"सच ! रेखा को आप छिपा लेब ?"

"हां, पर तुम जितनी जल्दी हो सके, यहां से निकल जाओ नहीं तो......।"

"नहीं तो हमके कुत्ता से नोचवा देवल जाय। इहे न ? एकर चिन्ता नाही।"

रेखा अपने बाप के पैरों पर गिर पड़ी। लछमनसिंह ने उसे उठाते हुए आदेश के स्वर में कहा, "चलो, नहीं तो देर हो जायेगी।"

भीड़ ने जल्दी से रास्ता बना दिया।

रेखा का हाथ थामे लछमनसिंह लम्बे कदमों के साथ अपने घर की ओर बढ़ गया। किसन उसके पीछे हो लिया। जाते-जाते लछमनसिंह भीड़ को बिखर जाने का आदेश दे गया। नन्दू अपने दरवाजे पर खड़े लोगों को जाते देखता रहा। दूर से आती हुई गाड़ी की आवाज पास आती गयी। भीड़ के एक-दो पिछड़े व्यक्तियों ने नन्दू को वहां से भाग जाने को कहा। नन्दू अपने स्थान पर खम्बे की तरह खड़ा रहा। वह अकेला रह गया। बाहर अंधेरा पूरी तरह छा चुका था।

उधर अपने घर के भीतर पहुंचकर लछमनसिंह घर के दूसरे भाग से एक बोरा उठा लाया। रेखा के सिर पर रखकर वह किसन की ओर मुड़ा, "किसन, यहां से हमारा पहला काम शुरू होता है। मैं रेखा को तुम्हारे हवाले कर रहा हूं। मैं खुद तुम्हें घिरावट से बाहर छोड़ने चल रहा हूं। वहां से आगे सभी कुछ तुम्हारे ऊपर छोड़ दूंगा। मैं सोचता हूं, यहां से हम दोनों की बस्तियां आगे के कदमों के लिए एकसाथ जुड़ गयीं। तुम हमारी इस इज्जत की रक्षा करोगे, बाकी हर मोड़ पर हम तुम्हारे साथ होंगे। कहो, तैयार हो ?"

"मैं तैयार हूं।"

"तो फिर चलो। पीछे के रास्ते से चलो।"

प्रकृति ने पहली बार इन लोगों का साथ दिया था। आकाश पर काली बदली छा जाने के कारण अंधेरा गहन था। उस गहरे अंधेरे में तीनों व्यक्ति बाहर निकलकर आगे को बढ़ने लगे। कुछ ही देर बाद राफिया की दीवार के पास पहुंचकर लछमनसिंह रुक गया।

"किसन, यहाँ से तुम दोनों को अकेले आगे बढ़ना है।"

रेखा सिसकती हुई लछमनसिंह के पाँवों पर गिर पड़ी। किसन ने पहली बार उसके उस करुण स्वर को सुना, "चाचा, मेरे बाबा का ध्यान रखना!"

"तुम अपना ध्यान रखना। जल्दी करो, तुम लोग दीवार पार हो जाओ।"

रेखा को सहारा देकर किसन ने उसे दीवार पार करवायी।

लछमनसिंह एक क्षण के लिए वहीं खड़ा रहा। जब दोनों झाड़ियों दीवार के पीछे के अँधेरे में विलीन हो गये तो उसने आत्मशान्ति की लम्बी साँस ली और घर की ओर लौट पड़ा।

उधर दीवार के उस पार उस घटाटोप अँधेरी रात में वे दोनों गिरते-उठते, दौड़ते रहे।

स्याही में डूबी हुई रात! जंगली कीड़ों की हर आवाज के साथ दोनों के भीतर का भय बढ़ जाता। उनके कदम रुक जाते। साँसों को रोके वे क्षण-भर को ठिठके रहते और फिर एक-दूसरे की धड़कनों को सुनकर कुछ आश्वासन पा जाते। उस स्याही-भरी रात को टटोलते हुए दोनों इतनी दूर निकल आये थे जहाँ से कुत्तों के भौंकने की आवाजें पीछे छूट चुकी थीं। आगे का अँधेरा और भी गहरा था। किसन रेखा के एकदम पास-पास चल रहा था, उसे गिरने से बचाता हुआ।

किसन उस जिम्मेदारी को महसूस रहा था। यह बहुत बड़ी जिम्मेदारी थी। रेखा कुछ भी थी, जिस हालत में उसे सौंपी गयी थी, वह एक पूरे गाँव की इज्जत और कीमत के रूप में।

गुलाम मजदूरों की बस्ती की वह इज्जत, वह कीमत। उस कीमत को बगल में थामता हुआ किसन अपने भीतर अगाध साहस पाने लगा था। उसे लग रहा था कि एक बस्ती के सभी लोग उसके साथ चल रहे थे। उन सभी लोगों की रक्षा का पूरा दायित्व था उसके ऊपर। अपने भीतर के भय पर विजय पा चुकने के बाद उसने रेखा से पूछा, "तुम्हें डर लग रहा है?"

रेखा ने प्रश्न का कोई उत्तर नहीं दिया।

किसन कहाँ जा रहा था, इसका ध्यान उसे बहुत कम था। बस, एक ख्याल से वह आगे बढ़ रहा था। और वह था जल्द-से-जल्द रेखा की बस्ती से दूर हो जाना। वह दूर आ चुका था, फिर भी उसे विश्वास नहीं हो रहा था।

उस गहन अँधेरे में आगे की ओर सरसराहट हुई। वे कुछ जानवर थे जो बड़ी तेज रफ्तार के साथ भागे निकल गये। दोनों सिहर गये। किसन के मुँह से निकला, "हिरनों का झुण्ड है।"

उस स्याह माहौल में हाथ को हाथ नहीं सूझ रहा था। जिस तेजी से जानवर भागे थे, वह रफ्तार केवल हिरणों की हो सकती थी। जंगल में जंगली सुअर भी होते हैं पर वे हिरण ही थे, इसका किसन को विश्वास हो चला था। एक बार नदी के पास उसे हिरन का एक छोटा-सा बच्चा दिखायी पड़ा था। उसे पकड़ने की चाह लिये किसन

मरें।"

वह सिर धुनने लगा। किसन ने आगे बढ़कर उसके हाथों को सिर से अलग किया। घर के सामने कई लोग जमा हो गये थे। कुछ लोगों ने भीतर तक प्रवेश पा लिया था। फाटक की ओर से दौड़ते हुए किसी की आवाज़ आयी, "गाड़ी आ रही है।"

"नहीं·····नहीं।" नन्दू अपनी कोठरी के भीतर इधर-से-उधर पागल की तरह घूमने लगा। लछमनसिंह आगे बढ़ा। उसने रेखा के सिर पर हाथ रखा, "चलो बेटी, तुम मेरे यहाँ चलो।"

नन्दू बीच कोठरी में रुक गया। रेखा के साथ आगे बढ़ते हुए लछमनसिंह ने कहा, "नन्दू, रेखा मेरे जिम्मे है। तुम यहाँ से भाग जाओ।"

"सच ! रेखा को आप छिपा लेब ?"

"हाँ, पर तुम जितनी जल्दी हो सके, यहाँ से निकल जाओ नहीं तो·····।"

"नहीं तो हमके कुत्ता से नोचवा देवल जाय। इहे न ? एकर चिन्ता नाहीं।"

रेखा अपने बाप के पैरों पर गिर पड़ी। लछमनसिंह ने उसे उठाते हुए आदेश के स्वर में कहा, "चलो, नहीं तो देर हो जायेगी।"

भीड़ ने जल्दी से रास्ता बना दिया।

रेखा का हाथ थामे लछमनसिंह लम्बे कदमों के साथ अपने घर की ओर बढ़ गया। किसन उसके पीछे हो लिया। जाते-जाते लछमनसिंह भीड़ को बिखर जाने का आदेश दे गया। नन्दू अपने दरवाज़े पर खड़े लोगों को जाते देखता रहा। दूर से आती हुई गाड़ी की आवाज़ पास आती गयी। भीड़ के एक-दो पिछड़े व्यक्तियों ने नन्दू को वहाँ से भाग जाने को कहा। नन्दू अपने स्थान पर खम्बे की तरह खड़ा रहा। वह अकेला रह गया। बाहर अँधेरा पूरी तरह छा चुका था।

उधर अपने घर के भीतर पहुँचकर लछमनसिंह घर के दूसरे भाग से एक बोरा उठा लाया। रेखा के सिर पर रखकर वह किसन की ओर मुड़ा, "किसन, यहाँ से हमारा पहला काम शुरू होता है। मैं रेखा को तुम्हारे हवाले कर रहा हूँ। मैं खुद तुम्हें घिरावट से बाहर छोड़ने चल रहा हूँ। वहाँ से आगे सभी कुछ तुम्हारे ऊपर छोड़ दूँगा। मैं सोचता हूँ, यहाँ से हम दोनों की बस्तियाँ आगे के कदमों के लिए एकसाथ जुड़ गयीं। तुम हमारी इस इज्जत की रक्षा करोगे, बाकी हर मोड़ पर हम तुम्हारे साथ होंगे। कहो, तैयार हो ?"

"मैं तैयार हूँ।"

"तो फिर चलो। पीछे के रास्ते से चलो।"

प्रकृति ने पहली बार इन लोगों का साथ दिया था। आकाश पर काली बदली छा जाने के कारण अँधेरा गहन था। उस गहरे अँधेरे में तीनों व्यक्ति बाहर निकलकर आगे को बढ़ने लगे। कुछ ही देर बाद राफिया की दीवार के पास पहुँचकर लछमनसिंह रुक गया।

"किसन, यहाँ से तुम दोनों को अकेले आगे बढ़ना है।"

रेखा सिसकती हुई लछमनसिंह के पाँवों पर गिर पड़ी। किसन ने पहली बार उसके उस करुण स्वर को सुना, "मौसा, मेरे बाबा का ख्याल रखना!"

"तुम अपना ध्यान रखना। जल्दी करो, तुम लोग दीवार पार हो जाओ।"

रेखा को सहारा देकर किसन ने उसे दीवार पार करवायी।

लछमनसिंह एक क्षण के लिए वहाँ रुका रहा। जब दोनो आकृतियाँ दीवार के पीछे के अँधेरे मे विलीन हो गयीं तो उसने आत्मशान्ति की लम्बी साँस ली और घर की ओर लौट पड़ा।

उधर दीवार के उस पार उस घटाटोप अँधेरी रात में वे दोनो गिरते-उठते, दौड़ते रहे।

स्याही मे डूबी हुई रात! जंगली कीड़ों की हर आवाज के साथ दोनों के भीतर का भय बढ़ जाता। उनके कदम रुक जाते। साँसों को रोके वे क्षण-भर को ठिठके रहते और फिर एक-दूसरे की धड़कनों को सुनकर मूक आश्वासन पा जाते। उस स्याही-भरी रात को टटोलते हुए दोनो इतनी दूर निकल आये थे जहाँ से कुत्तो के भौंकने की आवाजें पीछे छूट चुकी थीं। आगे का अँधेरा और भी गहरा था। किसन रेखा के एकदम पास-पास चल रहा था, उसे गिरने से बचाता हुआ।

किसन उस जिम्मेवारी को महसूस रहा था। वह बहुत बड़ी जिम्मेवारी थी। रेखा कुछ भी थी, जिस हालत में उसे सौंपी गयी थी, वह एक पूरे गाँव की इज्जत और कीमत के रूप में।

गुलाम मजदूरों की बस्ती की वह इज्जत, वह कीमत। उस कीमत की बगल में चलता हुआ किसन अपने भीतर अगाध साहस पाने लगा था। उसे लग रहा था कि एक बस्ती के सभी लोग उसके साथ चल रहे थे। उन सभी लोगों की रक्षा का पूरा दायित्व था उसके ऊपर। अपने भीतर के भय पर विजय पा चुकने के बाद उसने रेखा से पूछा, "तुम्हें डर लग रहा है?"

रेखा ने प्रश्न का कोई उत्तर नहीं दिया।

किसन कहाँ जा रहा था, इसका ख्याल उसे बहुत कम था। बस, एक ख्याल से वह आगे बढ़ रहा था। और वह था जल्द-से-जल्द रेखा की बस्ती से दूर हो जाना। वह दूर आ चुका था, फिर भी उसे विश्वास नहीं हो रहा था।

उस गहन अँधेरे मे आगे की ओर खरखराहट हुई। वे कुछ जानवर थे जो बड़ी तेज रफ्तार के साथ आगे निकल गये। दोनों सिहर गये। किसन के मुँह से निकला, "हिरणों का झुण्ड है।"

उस स्याह माहौल में हाथ को हाथ नहीं सूझ रहा था। जिस तेजी से जानवर भागे थे, वह रफ्तार केवल हिरणों की हो सकती थी। जंगल में जंगली सुअर भी होते हैं पर वे हिरण ही थे, इसका किसन को विश्वास हो चला था। एक बार नदी के पास उसे हिरण का एक छोटा-सा बच्चा दिखायी पड़ा था। उसे पकड़ने की चाह लिये किसन

मरें।"

वह सिर धुनने लगा। किसन ने आगे बढ़कर उसके हाथों को सिर से अलग किया। घर के सामने कई लोग जमा हो गये थे। कुछ लोगों ने भीतर तक प्रवेश पा लिया था। फाटक की ओर से दौड़ते हुए किसी की आवाज़ आयी, "गाड़ी आ रही है।"

"नहीं......नहीं।" नन्दू अपनी कोठरी के भीतर इधर-से-उधर पागल की तरह घूमने लगा। लछमनसिंह आगे बढ़ा। उसने रेखा के सिर पर हाथ रखा, "चलो बेटी, तुम मेरे यहां चलो।"

नन्दू बीच कोठरी में रुक गया। रेखा के साथ आगे बढ़ते हुए लछमनसिंह ने कहा, "नन्दू, रेखा मेरे जिम्मे है। तुम यहाँ से भाग जाओ।"

"सच ! रेखा को आप छिपा लेब ?"

"हाँ, पर तुम जितनी जल्दी हो सके, यहाँ से निकल जाओ नहीं तो......।"

"नहीं तो हमके कुत्ता से नोचवा देवल जाय। इहे न ? एकर चिन्ता नाही।"

रेखा अपने बाप के पैरों पर गिर पड़ी। लछमनसिंह ने उसे उठाते हुए आदेश के स्वर में कहा, "चलो, नहीं तो देर हो जायेगी।"

भीड़ ने जल्दी से रास्ता बना दिया।

रेखा का हाथ थामे लछमनसिंह लम्बे कदमों के साथ अपने घर की ओर बढ़ गया। किसन उसके पीछे हो लिया। जाते-जाते लछमनसिंह भीड़ को बिखर जाने का आदेश दे गया। नन्दू अपने दरवाजे पर खड़े लोगों को जाते देखता रहा। दूर से आती हुई गाड़ी की आवाज़ पास आती गयी। भीड़ के एक-दो पिछड़े व्यक्तियों ने नन्दू को वहाँ से भाग जाने को कहा। नन्दू अपने स्थान पर खम्बे की तरह खड़ा रहा। वह अकेला रह गया। बाहर अँधेरा पूरी तरह छा चुका था।

उधर अपने घर के भीतर पहुँचकर लछमनसिंह घर के दूसरे भाग से एक बोरा उठा लाया। रेखा के सिर पर रखकर वह किसन की ओर मुड़ा, "किसन, यहाँ से हमारा पहला काम शुरू होता है। मैं रेखा को तुम्हारे हवाले कर रहा हूँ। मैं खुद तुम्हें घिरावट से बाहर छोड़ने चल रहा हूँ। वहाँ से आगे सभी कुछ तुम्हारे ऊपर छोड़ दूंगा। मैं सोचता हूँ, यहाँ से हम दोनों की बस्तियाँ आगे के कदमों के लिए एकसाथ जुड़ गयीं। तुम हमारी इस इज्जत की रक्षा करोगे, बाकी हर मोड़ पर हम तुम्हारे साथ होंगे। कहो, तैयार हो ?"

"मैं तैयार हूँ।"

"तो फिर चलो। पीछे के रास्ते से चलो।"

प्रकृति ने पहली बार इन लोगों का साथ दिया था। आकाश पर काली बदली छा जाने के कारण अँधेरा गहन था। उस गहरे अँधेरे में तीनों व्यक्ति बाहर निकलकर आगे को बढ़ने लगे। कुछ ही देर बाद राफिया की दीवार के पास पहुँचकर लछमनसिंह रुक गया।

बीच का अन्तर भी कम हो जायेगा, ऐसी सम्भावना बहुत कम है।

बोझिल रात। झींगुरों की झनझनाहट। थके कदम। बेजार आँखें। दोनों फिर बैठे। फिर थोड़ा आराम हुआ। शीत की बूँदें टपकीं। किसन ने कहा, "सरदी लग जायेगी।"

दोनों पेड़ के नीचे रुके रहे। बूँदें समाप्त हुई और दोनों फिर चल पड़े। किसन की बस्ती उस गहरे अँधेरे में विलीन थी। उस तरह अन्धाधुन्ध चलते रहने के बाद उसे यात्रा तप-सी लग रही थी। बस्ती के कहीं पास ही होने का ख्याल आया, पर उस स्याह माहौल में कोई भी चीज सामने नहीं थी जिससे ख्याल को निर्धारित किया जा सकता था। उधर से एक झिलमिलाते चिराग के दीख जाने की देर थी, फिर तो अपने को पहुँचे ही समझा जा सकता था।

इस वक्त कुन्दन की कई बातें उसे याद आ रही थीं।

ऐसा भी होता रहता है किसन, कि आदमी अपनी मंजिल के पास ही चक्कर काटता रहे और मंजिल पहचानी न जा सके। इस तरह का कुहासा कभी दिन-दहाड़े भी हुआ करता है।

"तो फिर देवनन्दन् चाचा, ऐसी हालत में आदमी क्या करे?"

"कैद में भी हम अँधेरे की आँखों से अँधेरे को देखते थे।"

उस समय कुन्दन की उस बात पर किसन ने आँखें बन्द कर ली थीं और जो दृश्य उसकी आँखों के सामने झिलमिलाया था वह था—मजदूरों का कई कतारों में आगे बढ़कर मालिक की हवेली को घेर लेना। फिर सिपाहियों का उस दूसरी ओर से आगे आकर बन्दूकें ताने खड़े हो जाना। मजदूरों का एक क्षण ठिठककर फिर आगे बढ़ना और उधर से दनादन गोलियों का चलना और मजदूरों का तितर-बितर हो जाना।

उस दृश्य से काँपकर किसन ने अँधेरे की आँखें बन्द कर ली थीं। आँखें खुलने पर सामने अँधेरा। सभी कुछ अदृश्य था। कुन्दन बोला था, "ये ईख के कारखाने मानों दिन मानों रात चलते हैं।"

किसन ने सिर हिलाकर हामी भर दी थी।

"हम मानों दिन मानो रात ईख काटते रहते हैं।"

किसन ने सिर हिलाकर हामी भर दी थी।

"मानो दिन मानो रात हम खून-पसीना एक करके शक्कर पैदा करते रहते हैं।"

किसन ने सिर हिलाकर हामी भर दी थी।

"चीनी मीठी होती है।"

"होती है।"

"फिर भी ····"

वह चुप हो गया था। किसन ने अपनी थकी आँखों में प्रश्न लिये उसकी ओर

देखा था। उसने एक अस्वाभाविक हँसी हँस दी थी, "सातों दिन हमें कड़वाहट की बूँदें मिलती रहती हैं।"

उस रात किसन आवेश में घर लौटा था। कुन्दन की एक-एक बात को अपनी माँ के सामने रखता हुआ वह चिल्लाता रह गया था। उसकी माँ कुछ नहीं समझ पायी थी। जब किसन के सिर का दर्द अधिक बढ़ गया था तो उसकी माँ ने नदी से कच्चू का पता मँगवाकर गरम तेल के लेप के साथ उसे किसन के सिर पर बाँध दिया था।

एक बात उसकी समझ में जरूर आ गयी थी, इसलिए न चाहती हुई भी किसन को समझाने के ख्याल से उसने मालिकों के पक्ष में कहा था, "दुधिया गाय के दूगो लतवो भला।"

किसन और भी भड़क उठा था, "दुधिया वे नहीं हम हैं। लात उन्हें मिलनी चाहिए।"

उसकी माँ नीचे से ऊपर तक काँप गयी थी। उसने मुँह पर हाथ रख लिया था।

यह उस दिन की घटना थी जब बैठक में किसन को बोलने नहीं दिया गया था। अपनी माँ के सामने सभी बातों को उगल देने पर उसे राहत मिली थी। उसके सिर का दर्द कम हुआ था। उसी दिन उसने अपने से पूछा था—गन्ने रोज काटे जाते हैं। कारखाने रोज चलते हैं।......एक दिन गन्ना न कटे, कारखाना न चले तो?......एक दिन! दो दिन......तीन दिन......वह न हो जो मालिक चाहता है तो क्या हो जायेगा?

उत्तर उसे ही देना था—गोलियाँ चल जायेंगी हमारे ऊपर? ऐसा करके तो देखा जाये!

उस गहरे अँधेरे में रेखा एक बार फिर पीछे छूट चुकी थी। काली बदलियों के धीरे-धीरे हट जाने से अँधेरे की गहराई कुछ कम होती गयी थी। रुककर उसने पीछे की ओर देखा, रेखा की धुँधली आकृति कुछ कदमों पर दिखायी पड़ी। किसन उसके पास पहुँचा। भूलकर कि प्रश्न का उत्तर नहीं होता, उसने पूछा, "क्या बात हुई रेखा?"

रेखा चलने लगी। किसन को लगा कि उसने प्रश्न करके रेखा को चलने का आदेश दिया हो। अँधेरा बहुत ही धीरे-धीरे कम हो रहा था। सुबह काफी दूर थी, फिर भी सामने की चीजें कुछ-कुछ स्पष्ट होने लगी थीं।

धीरे-धीरे सुबह होकर रही। उजाला बढ़ता गया। उजाले में दोनों का आगे बढ़ना खतरे से भरा था। किसन इस विडम्बना पर हँस ही तो सकता था। उनकी नजर घोड़ों पर आते हुए दो गोरों पर पड़ी। दोनों झाड़ी में छुप गये।

एक झाड़ी से दूसरी झाड़ी में छिपते हुए दोनों ने किसी तरह दिन को बीतने दिया। वह दिन जो रात से भी खतरनाक था!

दिन किसी तरह ढल पाया। दोनों ने फिर से दौड़ना आरम्भ किया। रेखा की सारी हिम्मत जवाब दे चुकी थी। उसके पाँव शक्तिहीन-से होने लगे थे। अपनी साँसों में दर्द महसूसती हुई भी वह दौड़ती ही रही। दोनों उसी मुड़िया पहाड़ की तराई तक पहुँच आये थे जिसके बारे में रोचक कहानी सुनकर रेखा उसे देखने को अधीर थी। पीछे अब भी कुत्तों की आवाज़ें थीं। पहाड़ को देखे बिना वे उस पर चढ़ने लगे। शरीर के लथपथ पसीने में एक हल्की ठण्डक को महसूसते हुए वे भागते रहे। इस दौड़ की शुरुआत में दो-तीन जगहों पर ठिठककर किसन अपने-आपसे प्रश्न कर बैठा—यह भागना क्यों ? न भागने का मतलब था कुत्तों द्वारा नोचे जाना और बन्दूक की गोली से बिंध जाना। इतनी आसान मौत के लिए वह रुक नहीं सकता था। इसीलिए उसने भागना ही ठीक समझा। दूसरी बार ठिठककर उसने अपने-आपसे से पूछा था—यह भागना अपने-आपसे भागना तो नहीं ? आदमी आखिर उस उमूल से क्यों चिपका रहे जो बेदम हो गया हो····· जो आदमी को लेकर डूब जाये ?

झाड़ियों के पीछे की एक चट्टान पर पहुँचकर किसन ने नीचे की ओर झाँका। नीचे धुँधलापन था। आकृतियाँ ओझल थीं, पर आवाज़ों की भनक अब भी थी। सूरज धीरे-धीरे नीचे को उतरता ही गया। क्षितिज को आग-सी लग गयी थी। अंगारे का वह रंग दूर तक फैलता जा रहा था। दोनों एक ऐसे स्थान पर आ गये थे जहाँ से चारों ओर का समुद्र दीखने लगा था। बस, जहाँ-तहाँ पहाड़ों की दीवारें थीं। क्षितिज धधकता गया। वह धधक बाँझ धधक थी। किसन जानता है कि आज तक उस धधक ने कुछ भी नहीं जनाया था। उसके अपने भीतर की धधक भी वैसी ही थी। एकदम सीली-सी। पश्चिम का समुद्र जलता दीख रहा था।

दोनों चढ़ते गये। पश्चिम के अंगारे का रंग मिटता गया। कोयले की-सी स्याही धीरे-धीरे गाढ़ी होती गयी। वे टटोलते हुए आगे बढ़ते रहे। छोटे-मोटे जंगली जीव उनके पाँवों से टकराकर भाग उठते और वे सिहर उठते। अभागा आकाश तो बिना चाँद का था ही, तारे भी ओझल थे। कुत्तों की आवाज़ें फिर आयीं। नीचे हिलती मशाल की रोशनी दिखायी पड़ी। उनका पीछा किया जाना अब भी बन्द नहीं हुआ था। किसन के मन में आया कि झाड़ी में चिपक जाये, पर कुत्तों का ख्याल आते ही वह दोनों हाथों से झाड़ियों के बीच रास्ता बनाने लगा। अब उससे दौड़ना नहीं हो रहा था। वह टटोल-टटोलकर रेंगता था। रेखा भी रेंगती रही।

झाड़ियाँ समाप्त हो गयी थीं। सामने चिकनी चट्टानें थीं, बारिश की फिसलन लिये हुए। अँधेरे में आगे की चढ़ाई असम्भव थी। किसन अपनी जगह पर पड़ा रहा, अपने ऊपर से चमगादड़ों को निकल जाते महसूसता रहा। नदी पार करते समय अँधेरा नहीं हुआ था। उसने सोचा था, नदी पार कर जाने पर वे बच जायेंगे।

अब आगे कुछ भी सोचने की शक्ति उसमें बाकी नहीं थी। पता नहीं, कुत्तों के

भौंकने की आवाज अब भी थी या नहीं ! उसके अपने कानों में बस अपने हाँफने की आवाज आ रही थी। उसका अंग-अंग जवाब दे रहा था। अब तो उसके लिए जो निर्धारित था, उसी की उसने कल्पना की—कुत्तों द्वारा नोचे जाना। क्रिओल सिपाहियों के हाथों की लबाका रस्सी, गोरे मालिक का कोड़ा और कैदखाने की चारदीवारी। एक क्षण के लिए अपनी साँसों को रोककर उसने कुत्तों की आवाजों को सुनना चाहा। अपने हाँफने की आवाज के अलावा जो दूसरी आवाज उसने सुनी, वह बारिश की थी। आवाज सुनने के बाद ही उसे अपने भीग जाने का ख्याल आया। उसके चेहरे पर की पसीने की चिपचिपाहट झंझावात से धुल गयी थी। खुले हुए मुँह को ऊपर करके उसने बारिश की बूंदों से प्यास बुझायी। क्षण-भर के लिए वह रेखा को भूल-सा गया था। रेखा के हाथ उसके कन्धों पर थे। उन दोनों हाथों को थामकर उसने रेखा को अपने एकदम पास ले लिया।

किसन को जिस बात का डर था, वही हुआ। जिस समय कुत्तों के झगड़ने की आवाज के कारण दोनों ने दिशा बदली थी, उसी समय किसन को अँधेरे की लपेट में अपनी विवशता का आभास हुआ था। काफी देर बाद दिखायी पड़ी थी वह टिमटिमाती रोशनी, जिसको लक्ष्य करके पास पहुँचने पर किसन को अपना सन्देह सच प्रतीत हुआ था। वह दूसरी बस्ती थी। उसने ठिठककर सोचा था—अगर यह वही बस्ती हुई जहाँ देवनन्दन् चाचा को पहुँचना था तो फिर पीछे का रास्ता लेना पड़ेगा। उसने उस बस्ती को वही मान लिया था।

दोनों पीछे की ओर मुड़ गये थे। किसन ने एक बार फिर रेखा को झूठा आश्वासन दिया था। पगडण्डी से छूटकर दोनों एक विस्तृत मैदान में पहुँच आये थे। यह जानकर कि रेखा एकदम थक गयी थी, किसन ने थोड़ा विश्राम करना चाहा था। पर रेखा आशंकित थी। उसे अब भी मालिक की गाड़ी और उसके लोगों के पहुँच जाने का डर था। अपनी सारी थकान के बावजूद रेखा उस सुरक्षित ठौर को पहुँचकर ही साँस लेना चाहती थी जहाँ के लिए उसे मुखिया का आदेश मिला था।

रेखा के साथ होने से किसन को स्थिर होकर कुछ सोचना और भी कठिन प्रतीत हो रहा था। एक तो वह इन इलाकों से परिचित भी नहीं था, उस पर रात का गहन अँधेरा। भय था। रेखा थी। और इन सभी के बीच किसन अस्थिर था। अकेला होता तो इतनी चिन्ता न होती। दोनों चलते रहे। धीरे-धीरे पौ फटने का आभास होने लगा था। अँधेरा कम होता जा रहा था। झाड़ियों के बीच के धुंधलके से होते हुए दोनों एक स्थान पर आ गये थे, जहाँ से सामने का वातावरण कुछ अधिक साफ था। समुद्र का गर्जन भी साफ सुनायी पड़ने लगा था और उसके साथ-साथ ही लोगों की आवाजें भी सुनायी पड़ीं।

पौ फटते ही दोनों ने ऊपर से नीचे के दृश्य को स्पष्ट देखा। वैसा दृश्य देखने का यह अवसर दोनों के लिए पहला था। अपने गाँव की नदी के सामने बैठे हुए किसन ने कई बार उस समुद्र के बारे में सोचा था जिसकी चर्चा उसका बाप किया करता था।

सामने के स्पष्ट हो गये दृश्य से किसन स्तब्ध-सा खड़ा रहा। इसी विशाल सागर को पार करके उसका बाप इस द्वीप को पहुँचा था। चट्टान की ऊँचाई से दोनों सामने की सभी चीजों को साफ देख रहे थे। समुद्रकिनारे सफेद पत्थरों की लम्बी दीवार थी। बीच में एक विस्तृत चबूतरा था, दायीं ओर एक कोठरी थी जिसके ठीक सामने कन्धे पर बन्दूक थामे एक सिपाही खड़ा था।

दो समुद्री पक्षी काँव-काँव करते हुए दोनों के ऊपर से चले गये। रेखा के मुँह से पहली बार शब्द निकले। उसने अपने भीतर के भय को दबाते हुए पूछा, "कहाँ आ गये हम ?"

"अब उजाला छाने लगा है, हम रास्ता ढूँढ़ निकालेंगे।"

उजाले में देखे और पकड़े जाने का जो डर था, उसे किसन ने व्यक्त नहीं किया। जहाज से होते हुए किनारे की बालू से लगा लकड़ी का एक पुल था जिससे कुलियों को उतारा जा रहा था। जो उतारे जा चुके थे, उन्हें एक लम्बी कतार में खड़ा कर दिया गया था। सभी के सामने छोटी-बड़ी गठरियाँ थीं। कतार के दोनों ओर सिपाही तैनात थे। बस्ती के बूढ़े लोगों से सुनी हुई बातों को किसन अपनी आँखों से देख रहा था। वे लोग भी इसी तरह कतार में खड़े हुए थे। उन लोगों के सामने भी कुलियों को खरीदने के लिए गोरे छत्रियों के नीचे हाथ में चाबुक लिये बैठे थे।

किसन को लगा, इस बार बहुत अधिक कुलियों को लाया गया था। उनमें लहँगे और साड़ियों में लिपटी औरतें भी थीं। एक-दो बच्चे भी नजर आये थे। कुछ मजदूर जहाज से माल उतारने में लगे हुए थे, कुछ मालिकों के घोड़ों की लगाम थामे खड़े थे। किसन ने सुन रखा था कि इस देश में हर दूसरे कदम पर समुद्र देखने को मिलता है। पहाड़ी और चट्टानों के ऊपर से उसने जिस समुद्र को देखा था वह उससे भिन्न था। दूर के उस समुद्र में न लहरें दिखती थीं, न ज्वारभाटे और न ही सुनने को यह नाद मिलता था। दिल दहला जानेवाली गरज को वह पहली बार सुन रहा था, फिर भी वह समुद्र से आकर्षित नहीं हो रहा था जिसे देखने की बहुत बड़ी इच्छा उसके भीतर थी।

उसका सारा ध्यान कुलियों की दयनीयता पर चिपका हुआ था। वह खबर एकदम झूठी थी कि अब भारत से कुलियों का आना बन्द हो गया था। बस्ती के सभी लोगों को वह जो खुशी हुई थी, उसकी कीमत इस समय किसन को भुगतनी पड़ रही थी। उसने स्वर्ग और नर्क की कहानियाँ सुन रखी थीं। सभी कुछ सामने था। स्वर्ग से ढकेले गये ये लोग इस समय नर्क के किनारे को छू रहे थे। दो सिपाहियों ने एक औरत को ढकेलकर पुल से नीचे गिरा दिया। उसी दूरी से भी किसन उस औरत की सिसकियों को सुनता-सा प्रतीत हुआ। उसकी आँखों का रोष दो बूँद आँसू में पिघलकर टपक गया।

उस दृश्य के सामने अधिक देर तक न रह सकने का एक दूसरा कारण यह भी था कि कभी भी किसी सिपाही की नजर ऊपर को उठ सकती थी, और दोनों का बच

निकलना तब कठिन हो जाता। हृदय से छू जानेवाले गर्म सलाखों के-से उस दृश्य से आँखें मिलाये रहना कठिन था। दोनों आगे बढ़ गये। रेखा के चेहरे पर थकान स्पष्ट थी। उसका वह गोरा चेहरा झाँवर पड़ गया था। आँखों में थकावट और नींद दोनों की खुमारी थी। झावे के जंगल से होते हुए दोनों एक टीले पर पहुँच आये थे। इस बीच सूरज भी पूरब के पेड़ों के ऊपर आ गया था। इधर-उधर से कुछ फल बटोरकर दोनों ने भूख मिटायी। किसन को विश्वास था कि हर हालत में सूरज डूबने से पहले वह अपनी बस्ती को ढूंढ़ निकालेगा।

रास्ते में किसन ने रेखा से कई प्रश्न किये, पर रेखा बहुत कम बोलनेवाली लड़की थी। एक झरने से दोनों ने पानी पिया। जंगली फूलों की भीनी-भीनी गन्ध के बीच सुस्ताने के बाद वे फिर चल पड़े। लोहे की झनझनाहट सुनकर झाड़ियों की आड़ में हो गये। कैदी रेल की पटरियाँ बिछाने में लगे हुए थे। दोनों को फिर से चक्कर काटकर पहाड़ी पार करनी पड़ी।

जिन खेतों में काम हो रहा था, उनसे अपने को दूर रखते हुए दोनों दुर्गम रास्तों से बढ़ते रहे। उस समय सूरज ठीक सिर के ऊपर आ गया था, जब किसन ने नारियल के पेड़ पर चढ़ना चाहा। रेखा को खुलकर बोलने का वह पहला अवसर था, "ऐसे समय पेड़ पर चढ़ना अच्छा नहीं होता।"

एक हाथ से नारियल के पेड़ को पकड़े किसन रेखा की ओर मुड़ पड़ा था। हँसते हुए उसने पूछा था, "इस समय पेड़ों पर भूत होते हैं न ?"

भोलेपन के साथ रेखा ने सिर हिलाकर हामी भर दी।

"मैं नहीं मानता।'

"सुग्रीव चाचा ऐसे ही समय पेड़ पर चढ़े थे और गिर पड़े थे।"

"भूतों ने ढकेल दिया होगा।"

यह कहकर किसन पेड़ पर चढ़ गया था। दो नारियल गिराने के बाद जब वह नीचे उतरा, उस समय उसकी आँखों में चमकती हुई खुशी थी।

"हम बस्ती के बहुत पास पहुँच गये हैं। ऊपर से मैंने वह पहाड़ी देखी जिसके पीछे हमें पहुँचना है।"

इस बात से रेखा का मुरझाया चेहरा भी खिल उठा।

किसन ने एक सूखी लकड़ी तोड़ी जिसके नुकीले भाग से कच्चे नारियलों में छेद करके एक पहले रेखा को दिया। दूसरे को खुद पीने के बाद दोनों नारियलों पर पत्थर पटककर उसने उन्हें फोड़ा। पतली गरियाँ खाने के बाद दोनों पहाड़ी की ओर चल पड़े। पहाड़ी को पार न करके उसका चक्कर काटकर जाना ही किसन ने सही समझा। ऊपर से होकर जाने पर सरदारों की नजर पड़ जाने का डर था। उम्मीद बँध जाने के कारण दोनों को अपनी थकान का कोई विशेष ख्याल नहीं रहा।

बस्ती जब सामने दिखायी पड़ने लगी तो रेखा ने पूछा, "साहब के सिपाही यहाँ भी पहुँच जायें तो ?"

"उन्हें संभालने के लिए एक पूरी बस्ती है। तुम इसकी चिन्ता क्यों करती हो?"

रेखा की चिन्ता दूर करने के लिए यह आश्वासन पर्याप्त नहीं था। तीसरी बार के लिए रेखा ने पूछा, "मेरे बापू का क्या होगा?"

"कहा न, उनका कोई बाल बाँका नहीं कर सकता।" जबकि किसन खुद आश्वस्त नहीं था।

नदी के पास पहुँचकर दोनों ने हाथ-मुँह धोये। रेखा के भीतर का डर अब भी पूरी तरह से गया नहीं था, पर उसके चेहरे का रंग लगभग सुधर गया था। आँखें एक बार फिर अपनी अथाह गहराई के साथ चमकने लगी थीं। इस दुर्गम यात्रा के दौरान पहली बार किसन को पुष्पा और सन्ध्या की याद आयी।

सूरज के ढलने में अभी समय था। बस्ती सुनसान थी। कुएँ पर केवल हमजा की माँ मिली। बस्ती में प्रवेश करते ही किसन के सामने उधेड़बुन की स्थिति आ गयी थी—रेखा को साथ लिये सीधे घर पहुँचे या उसे देवनन्दन के घर छोड़ आए? घर में उसके बाप की हालत न जाने कैसी होगी। एक रात बस्ती से दूर रहकर उसे ऐसा लग रहा था जैसे कोई लम्बी अवधि बीत गयी हो। उसका अन्तिम निर्णय रहा रेखा को लिये सीधे घर पहुँचना।

बस्ती की औरतों में कानाफूसी शुरू होती, इससे पहले किसन रेखा के साथ घर पहुँच गया। उसकी माँ और बहन दोनों घर के सामने ही मिल गयीं। एक ही साँस में किसन ने दोनों को पूरी कहानी बता दी। दूसरे कमरे से रघुसिंह की आवाज आयी.
"के ह किसन के माँ?"

आवाज से साफ जाहिर था कि उसकी हालत सुधरी थी। किसन के भीतर जो हल्का-सा भय था, वह इस खुशी से नहीं दबा। उसका बाप एक ही साँस में उससे कई प्रश्न कर बैठेगा। किसन को उन प्रश्नों की चिन्ता नहीं थी। वह एक-एक का उत्तर दे सकता था। लेकिन वे सभी प्रश्न रेखा के सामने किये जायें, यह बात किसन को पसन्द नहीं थी। रेखा को अपनी माँ और सन्ध्या के बीच छोड़कर वह सीधे अपने बाप तक पहुँचा। रघुसिंह खाट पर लेटा हुआ था। किसन के लिए उसकी उन सूनी आँखों में बेशुमार प्रश्न थे। उसे उन सभी प्रश्नों के उत्तर बारी-बारी से देने थे।

"दूसरी बस्ती के मुखिया से मिलने गया था।"

"......................।"

"रात में हम रास्ता भटक गये थे।"

"हम?"

"रेखा ? साथ आयी है।"

एक बात स्पष्ट थी। रघुसिंह नाराज़ नहीं था।

छब्बीस

बस्ती के जिन लोगों को किसन बीमार छोड़ गया था, उन सभी की हालत सुधरी हुई थी। किसन को जो अज्ञात आशंका हुई थी, वह धीरे-धीरे मिटने लगी थी। महामारी के ख्याल मात्र से ही उसका हृदय दहल गया था। पण्डितजी की जड़ी-बूटियाँ एक बार फिर महत्त्वपूर्ण काम कर गयी थीं। इस बात के आत्मसन्तोष के साथ शाम को किसन कुन्दन के घर पहुँचा। वह कुन्दन ही के यहाँ था कि उसके लौटने की खबर पाकर कई लोग उससे वहीं मिलने आ गये। सभी मजदूर खाली टोकरियों के साथ लौटे थे। इस सप्ताह चावल-दाल का वितरण नहीं हुआ। किसन ने कारण जानना चाहा, पर वह किसी को मालूम नहीं था।

रात में बैठक लगी। कुन्दन और सोनालाल ने पड़ोस के गाँवों में जो सम्पर्क स्थापित किये थे, उनका विवरण दिया। किसन ने अपनी बातें सुनायीं। रेखा की चर्चा की। सभी लोगों ने एक स्वर में उसकी रक्षा का दायित्व अपने ऊपर लिया। अन्त में कुन्दन ने स्थिति को सामने रखा। चावल-दाल का वितरण न होने के कारण कई घरों में चूल्हे नहीं जले थे। ऐसा पहले भी कई बार हो चुका था। लेकिन लोगों की हाँड़ियाँ एकदम खाली थीं, यह अवसर पहला था। इसका कारण यह था कि पिछले दो सप्ताह से उन्हें पूरा राशन नहीं मिल पा रहा था।

कुन्दन ने ही सभी लोगों को यह बताया कि कारखाने के पास की अनाज की दूसरी कोठरी अनाजों से भरी पड़ी है। अनाज होते हुए भी मजदूरों को भूखे रखने का कारण क्या हो सकता है ? इसके उत्तर में कई लोगों ने एकसाथ कहा कि यह उन लोगों का अपने ढंग का प्रतिशोध है। सबसे बाद में किसन ने अपनी बातें कहीं। उसके स्वर में तत्काल ठोस कदम उठाने का प्रण था। किसन की संवेदना का अनुमोदन न करनेवाला केवल कुन्दन था। वह पड़ोस के अपने जिम्मे की दोनों बस्तियों की स्थितियों का बहुत निकट से अध्ययन करके लौटा था। वह जानता था कि इसी तरह की घटनाएँ उधर भी होंगी। उसने चाहा कि कुछ क्षण प्रतीक्षा की जाये ताकि छः-सात बस्तियाँ एकसाथ इस जुल्म के खिलाफ खड़ी हो सकें।

पूरे घण्टे-भर कुन्दन के बोलते रहने के बाद लोगों को उसकी बात समझ में आयी। इसके बाद किसन ने भी यही चाहा कि जो पहला कदम उठे वह ठोस हो, डग-मगाता हुआ नहीं। स्थिति में महत्त्वपूर्ण परिवर्तन लाने का यही एकमात्र उपाय था। कुन्दन की इस बात को उसने भी सोचा था कि पहली ही बार अपनी सारी शक्ति के साथ खड़े हो जाने पर जुल्म के हाथ अपने-आप नीचे गिर जायेंगे। बैठक की समाप्ति

से पहले सभी लोगों ने हनुमानचालीसा का पाठ किया। सभी लोग जाने को खड़े हुए तो कुन्दन ने किसन से कहा, "तुम थोड़ी देर के लिए ठहर जाओ।"

किसन फिर से वाकवा के सूखे पत्तों की चटाई पर बैठ गया। सभी लोगों के चले जाने के बाद कुन्दन किसन की बगल में आ बैठा। थोड़ी देर दोनों चुप रहे। कुन्दन ने जानना चाहा कि आज की बातों का लोगों पर कैसा प्रभाव पड़ा। किसन के अपने विचार में आज की बैठक अब तक की सभी बैठकों से अधिक सफल रही। कुछ देर तक बैठक की सभी बातों पर टिप्पणियाँ होती रहीं। इसके बाद कुन्दन ने वह बात छेड़ी जिसके लिए किसन को रोका था, "तुम पुष्पा से मिले ?"

"नहीं।"

"वह दुखी है।"

"दुखी है ?"

"हाँ।"

"पर किसलिए ?"

"रेखा के आने से। उसे कुछ भी न बताकर तुमने उसे और भी दुखी किया है।"

"यह तो अजीब बात हुई।"

"तुम उससे मिल तो लेते !"

"कोई वजह ?"

"वह सन्देह और ईर्ष्या से बच जाती।"

"सन्देह और ईर्ष्या कैसी ?"

"एक काम करना। सुबह काम पर जाने से पहले उससे मिल लेना।"

किसन जब घर लौटा, उस समय उसकी बहन और रेखा जाग रही थी। घर के दूसरे भाग में एक ही चटाई पर उसकी माँ के साथ दोनों लेटी हुई थी। किसन के आगमन का पता चल जाने पर दोनों को अपनी बात का विषय बदलते देर नहीं लगी। नींद की बेसुधी से पहले किसन जिस बात पर सबसे अधिक सोचता रह गया था, वह थी पुष्पा की ईर्ष्या।

सुबह जब किसन पुष्पा से मिला, वह ओखली में धान छाँट रही थी। चावल से चुन-चुनकर निकाले गये धान इस समय काम आ रहे थे। पुष्पा ने किसन के साथ उसी तरह बात की थी, जिस तरह हमेशा करती थी। किसन को कुन्दन की बात एकदम निराधार लगी। काफी लम्बे समय तक की बातचीत के दौरान जब पुष्पा ने रेखा की कोई चर्चा नहीं की तो किसन ने भी अपनी ओर से उस बारे में कुछ नहीं कहा।

रास्ते में दाऊद ने कुदाली को एक कन्धे से दूसरे तक पहुँचाते हुए किसन से कहा, "मैं सोचता हूँ कि जब इससे भी कठिन दिनों को हमने देखा है तो इसे भी देख लें। इससे भी बड़ी सजा हमने भुगती है तो फिर इसे भी चुपचाप भुगत लें।"

"कब तक ?"

"जब तक सहना नामुमकिन न हो जाये।"

"तुम्हारे छोटे भाई की क्या उम्र है इस वक्त ?"

"क्यों ?"

"बस पूछ रहा हूँ।"

"ढाई साल।"

"एक दिन वह बड़ा होगा। बड़ा होकर अपने चारों ओर देखेगा। यह जानने के लिए कि हम लोगों ने उसके लिए क्या छोड़ा है। जिस ढंग और तरीके से हमारे साथ पेश आया जाता है, क्या यही उसके लिए भी रहे ?"

इस प्रश्न का उत्तर दाऊद से नहीं बन पड़ा। आगे का रास्ता दोनों ने चुपचाप चलते रहकर काटा। खेत में पहुँचकर पता चला कि बोआई नहीं होनेवाली थी, क्योंकि इधर सप्ताह-भर वर्षा की कोई सम्भावना नहीं थी। सभी मजदूरों को जामुनवाले खेत में भेज दिया गया। पत्थरों को उलटकर मुंडेर बनानी थी। अपनी भुजाओं में तीन मजदूरों की ताकत लाकर एक-एक मजदूर पत्थर को उलटने लगे। कहीं कोई कराहता हुआ अपना काम पूरा करने में लगा हुआ था। कोई पत्थर को लुढ़काने में असफल रहने पर बांसों की बौछार से चिल्ला उठता। कोई एक हाथ से दूसरे हाथ का खून पोंछते हुए सामने के पत्थर को छाती से रोके रहता। दाऊद की ओर देखते हुए किसन ने हांफते हुए कहा, "क्यों दाऊद, यही जिन्दगी अपने छोटे भाई के लिए तैयार छोड़ना चाहते हो ?"

थकान से टूट-टूटकर धराशायी होते हुए किसन ने अपनी पीठ पर चाबुक के प्रहार को अनुभव किया। सड़ाक् एक ! सड़ाक् दो ! सड़ाक् तीन······

सूर्यास्त के समय जब क्षितिज का रंग फसल के लिए तैयार ईखों के रंग-सा लग रहा था, किसन ने बस्ती के उस प्रथम सुर से गाने की अन्तिम पंक्तियाँ सुनीं—

पहड़वा के अगवा भैया सब लोगन देखे
अगवा जो लगे हिरदयवा में भैया
ओके कोई ना देखे भैया कोई ना देखे।
चावल के खुदियन घर-घर बांटे
पर दुखवा जो बांटे तो कैसे ओ भैया······

रेखा किसन के ठीक सामने थी। सन्ध्या किसन की चोट पर मरहम लगा रही थी। रेखा चुपचाप खड़ी रही थी। उसकी पीठ पर लम्बे बाग ईख की लम्बी कतार की तरह थे। दूर तक फैले हुए हरे-भरे खेतों का यह विस्तार उन दोनों आंखों में बन्द-सा लग रहा था। बहुत धीरे-धीरे चलकर वह किसन के निकट पहुँची। झिझक-भरे स्वर में उसने धीरे से पूछा, "दर्द कुछ कम हुआ ?"

किसन ने सिर हिलाकर हामी भर दी।

रेखा उसी तरह खड़ी रही।

किसन की आंखों से विचलित-सी होकर उसने पूछा, "उधर का कोई हाल नहीं मिला अभी तक ?"

किसन ने तत्काल उत्तर नहीं दिया। मरहम के बाद वह खाट पर बैठा। रेखा के हाथ से कटोरा-भर पानी लेकर उसे एक ही साँस में पी गया।

"तुम्हें अपने बाप की बहुत अधिक चिन्ता है न ?"

खाली कटोरे के साथ उसके चले जाने के बाद किसन ने अपनी बहन की ओर देखा। गोया सन्ध्या से कोई प्रश्न कर बैठा हो जिसके उत्तर में सन्ध्या पहले मुस्करायी, फिर धीरे से बोली, "रेखा बहुत सुन्दर है न ?"

"मुझे बता रही हो या जानना चाह रही हो ?"

"तुमसे पूछ रही हूँ।"

"तुम खुद क्या सोचती हो ?"

सन्ध्या कुछ कह पाती कि तभी बाहर से उसकी माँ ने आवाज़ दी, "अभी तलक चिराग ना बरले बेटी ? देख लिहे अगारी चिराग मे तेल बा की नाही।"

किसन के प्रश्न का उत्तर दिये बिना सन्ध्या वहाँ से चली गयी।

किसन खाट पर पड़ा रहा। उसने धीरे से पलकें झुका लीं और ऐसा महसूस किया कि दूर के उस ऊँचे पहाड़ पर वह खड़ा है जिसकी आकृति मनुष्य-जैसी है। वहाँ से नीचे की किसी वस्तु को पहचानने का भरसक प्रयास कर रहा है। चक्कर आ जाने के डर से उसने आँखों को ऊपर उठा लेना चाहा, पर ऐसा सम्भव नहीं था।

किसन उसी तरह बैठा रहा। उसकी पलकें झुकी रहीं। बाहर से कुन्दन के पुकारने पर उसकी पलकें ऊपर उठीं। कुन्दन भीतर आया। वह गम्भीर था। उसका वह गाम्भीर्य अपने में प्रश्न लिये हुए था। पहले ही वाक्य में उसने कहा, "उधर सभी लोग तैयार हैं। सभी को हमारी प्रतीक्षा है।"

यह सुनते ही किसन खाट से नीचे उतर पड़ा। उधर भगत का स्वर भी ऊपर आ गया था—

न आटा न पाटा है
मैं का बेलूँ सजनी, मैं का बेलूँ !
तोर घर के आटा गीला होयले
मोर चूल्हा रोए जार-बेजार
·········सजनी मैं का बेलूँ !

सत्ताईस

अपने ही विचारों के साथ तर्क करते हुए किसन हताश स्थिति में हौसले को बढ़ाने का प्रयत्न करता रहता। परिस्थिति निराशाजनक थी, क्योंकि व्यथा के अन्त का कोई आसार नहीं दीखता। निराशा कभी-कभी पराकाष्ठा पर पहुँचकर सभी विचारों को शिथिल कर जाती। निर्जीवता आ जाती। सुनते आया था कि स्थिति को उसके बदतर

रूप में जीकर, उसकी सभी यन्त्रणाओं से जूझकर ही जीवन बनता है। कष्टों को हद तक जानकर ही आदमी आदमी बनता है। वैद्यजी कहते थे कि शास्त्रों में ऐसा ही कहा गया है। सभी लोगों से पूछ चुकने के बाद किसन अपने-आपसे पूछता कि कष्टों की हद क्या होती है! बस, इसी मोड़ पर किसन में अधीरता आ जाती। एक ओर वह उन दारुण दण्डों को हद तक सहने के लिए अपने में शक्ति और संकल्प जुटाता तो दूसरी ओर उसका यह प्रयास भी जारी रहता कि स्थिति को चकनाचूर कर दिया जाये। उसी स्थिति को जिसे सहते जाने का वह हौसला देता। रेखा ने उससे पूछा था, "ये दिन बदल जायेंगे, तुम्हें विश्वास है ?"

"मुझे विश्वास है।" किसन ने यह पूरे विश्वास के साथ नहीं कहा था। वह चौपड़ का दाँव खेल रहा था। दोनों सम्भावनाओं के साथ। हार और जीत के चक्कर में पड़नेवाला कोई भी आदमी खेल नहीं सकता। वैद्यजी बात की पुष्टि करते कि कुछ इसी तरह की बात पुस्तक में थी।

"इसमें खतरा बहुत अधिक है।" रेखा बोली थी।

"बिना खतरे का कोई खेल भी होता है क्या ?"

"थोड़ा-सा सन्तोष।"

"सामने का वह पहाड़ देखती हो ? सन्तोष कोई उससे सीखे। पर जानती हो रेखा, युगों के सन्तोष ने भी उसे कुछ नहीं दिया।"

"जिस लड़ाई में जीत की उम्मीद ही न हो, उसे लड़ने से क्या लाभ ?"

"मेरा उद्देश्य लड़ाई लड़ने से है।"

"बस ?"

"हाँ। बस इतना ही।"

"हारी हुई लड़ाई ?"

"तुमने बोलना कहाँ से सीखा है, रेखा ?"

रेखा चुप हो गयी थी। उसकी चुप्पी काफी लम्बी होती थी। वह लोगों को सुनती बहुत ध्यान से थी। सुनने की रौ में बोलना पसन्द नहीं करती थी। इसके बाद तो किसन ही बोलता रह गया था, वह सुनती रह गयी थी।

"हम लोगों को हवेली की इच्छा नहीं है। हमें अपने कुत्तों को दस मजदूरों का खाना एक बार में नहीं खिलाना है। अपने पाँवों के सही-सलामत होते तक हमें गाड़ियों और बग्गी की कोई जरूरत नहीं। अपने तन ढाँपने के लिए हमें उतने सारे भड़कीले कपड़े नहीं चाहिए। लेकिन इसका यह मतलब नहीं कि हम रौंदे जाने पर भी आह तक न भरें, पगड़ी उछाले जाने पर अपने हाथों को सिर तक भी न पहुँचायें! घी-मलाई न सही, पर चावल के साथ कीड़े भी तो नहीं माँगते ? पसीने की आखिरी बूँद देते हुए जब हममें हिचक नहीं तो हम जूतों और बाँसों की बौछार भी नहीं चाहते।"

रेखा को ये सारी बातें सुनाते हुए किसन आनन्द का अनुभव करता। रेखा

ही थी वह जो सम्भवतः उसकी बातों को समझ पाती थी।

उस दिन रेखा के साथ पहली बार समुद्र की सुन्दरता देखने के बाद किसन के भीतर समुद्र के प्रति एक जबरदस्त चाह-सी पैदा हो गयी थी। अकेले में वह कई बार अपने से कह चुका था—क्या इस संघर्ष के अन्त में इतनी स्वाधीनता होगी हमें कि हम स्वच्छन्दता के साथ समुद्री सौन्दर्य का आनन्द ले सकें ? उस एक ही दृश्य ने उसको मोह लिया था। उसकी चर्चा कुन्दन से करके उसने अपनी अधीरता को और भी बढ़ा लिया था, क्योंकि कुन्दन ने दूसरे समुद्रतटों के जो वर्णन उसके सामने किये थे, उनसे तो वह उन स्थानों को देखने के लिए और भी बेताब हो चला था। पहाड़ियों से दूर के वे दृश्य देखने से मन नहीं भर पाता था।

पिछली रात तनाव के कारण उसे नींद देर से आयी थी। इसलिए आज रात उसे सवेरे नींद आ गयी। सपने में वह रेखा के साथ समुद्री इलाकों में घूमता रहा। कहीं समुद्र शान्त था निर्जीव-सा। कहीं उसमें विद्रोह था। लहरें प्रलय को आमन्त्रित करती-सी प्रतीत होती थीं। ज्वार-भाटे प्रलयंकर थे। दूधिया फेनिल लहरें दोनों के पैरों का स्पर्श कर जातीं। सागर कहीं नीलापन लिये हुए था, कहीं हरापन। कहीं ये ही दो रंग भिन्न-भिन्न रंगों-से लग रहे थे। दोनों सामने के उगे हुए इन्द्रधनुष को पकड़ने के लिए दौड़ गये थे।

सुबह उसने रेखा को सपना सुनाया।

रेखा ने बड़े गौर से सुना और बड़ी ही गम्भीरता के साथ किसन से पूछा, "तुम्हें नहीं लगता कि तुम इन्द्रधनुष के पीछे दौड़ रहे हो ?"

"क्यों ?"

"बस, पूछ रही हूँ। इन्द्रधनुष को पकड़ना असम्भव होता है।"

"बात तो तभी हुई जब असम्भव काम को पूरा किया जा सके। तुम क्या सोचती हो, जबकि सपने की उस दौड़ में तुम भी मेरे साथ थी ?'

रेखा चुप रह गयी।

ईख के कारखाने का भोंपू चीखता रहा। दोनों उस आवाज की सनसनाहट को अपने में लिये रहे। सुबह की क्षणिक ठण्डी हवा बस्ती में सहमी हुई घूम रही थी। उस निर्मल उजाले में किसन रेखा को देखता रहा। वही सपनेवाली रेखा थी वह। बस, नाक में नकफूली नहीं थी। सपने में उसके कान झुमकों के बोझ लिये हुए थे, इस समय वे मुक्त थे। हाथ में न बाँक था, न जोसन-कटाऊ-चूरी। पैरों के वे झाँझ-पैंजन और भिजी बिछियाँ भी नहीं थीं, फिर भी वही सपनेवाली रेखा थी। थी वह हूबहू वही।

शाम को नौकरी से लौटते हुए बातों के दौरान किसन को मालूम हुआ कि कुछ लोगों ने चुपके से बस्ती छोड़ देने की बात सोच रखी थी। बस्तियों से दूर, बहुत दूर उन पहाड़ियों पर, जहाँ पर सुना जाता है कि मिट्टी लाल रंग की होती है, पहुँचकर वे यहाँ के दर्दनाक जीवन से अपने को काट लेना चाहते थे। दूसरी बस्ती के किले

व्यक्ति ने बताया था कि उधर लकड़ियों से कोयले प्राप्त कर उसके सहारे इस जीवन से बेहतर जीवन जिया जा सकता है।

किसन ने लोगों को धिक्कारा, "डरपोक हो तुम सभी !"

उस रात मजदूरों के बीच बहुत लम्बी बहस हुई। बातें बैठक में न होकर चबूतरे के ईद-गिर्द हुई। उस वक्त रेखा भी बोली और बहुत ही ओजपूर्ण स्वर में बोली। सभी अवाक थे। किसन ज्यादा हैरान था। वह बहुत अधिक खुश भी था। उसने पहले ही रेखा को सबसे भिन्न माना था। अब उसे उस भिन्नता का विश्वास हो चला। वह बस्ती की सभी लड़कियों से अलग थी, उसका वह स्वर भी अलग रहा।

"आज हम बहुत दूर भाग सकते हैं। हो सकता है कि कल वहाँ से भी भागना पड़े। इस तरह हम जीवन-भर भागते रहेंगे। चैन और शान्ति न हमारे लिए रहेगी, न ही इन छोटे बच्चों के लिए। पच्चीस-तीस वर्ष की इस जिन्दगी में आज पहली बार हालत को बदलने का ख्याल हममें पैदा हुआ है। इस ख्याल को पूरा करने की पूरी कोशिश क्यों न एक बार की जाये ?"

यह प्रश्न एकदम भिन्न ढंग से किया गया था। लोगों के बीच लम्बा सन्नाटा रहा। फिर फुसफुसाहट शुरू हुई। ढपली को सेंका नहीं गया।

बहस कुछ देर और चली, अन्त में बस्ती छोड़ भागने के इरादे को छोड़ना पड़ा। आधी रात को घर लौटने पर किसन में नयी उमंगें थीं। बिस्तर पर पड़े छाजन के एक छेद से उसने आकाश में एक नया तारा ढूंढ निकाला। वह झिलमिलाता तारा न होकर एक दीप्त तारा था। उससे किरणें-सी फूट रही थीं। खुशी के भी कुछ अधिक होने पर आदमी को नींद नहीं आती। किसन करवटें लेता रहा। उस लड़ाई में अब उसका साथी एकमात्र देवनन्दन् चाचा नहीं था। अब रेखा भी आ मिली थी। उसका विश्वास दृढ़ हो चला। अब उसे कोई नहीं हरा सकता था। उस दूसरी ओर उसकी बहन और रेखा भी अब तक जाग रही थी।

नींद के आगमन से जब किसन के ख्याल कुछ अस्तव्यस्त होने लगे, उस समय उसके भीतर एक इच्छा-सी जागी। कल के सपने की पुनरावृत्ति। नींद की पूरी बेसुधी उसे आ जाती, इस बीच उसे कई अनु-सपने आये और बिखरते रहे, पर उन सपनों में एक भी वह नहीं रहा जिसकी चाह उसके भीतर थी।

दिन में कुन्दन ने उसे अपने ढंग से आगाह करते हुए कहा था, "किसन यह पहली लड़ाई है, हमें अपनी शक्ति को बँटने नहीं देना है।"

न जाने क्यों देवनन्दन् चाचा ने ऐसा कहा था, लेकिन किसन को ऐसा लगा था कि उसका संकेत रेखा की ओर था। अभियुक्त की तरह वह भी प्रश्न कर बैठा था, "पर चाचा, हमारी शक्ति क्यों बँटने लगी ?"

"यही तो कह रहा हूँ कि न बँटे तो अच्छा है। हमें अपने सारे ध्यान को एक ही स्थान पर केन्द्रित करना है।"

कुन्दन की सभी बातें किसन की समझ में नहीं आयी थीं, इसलिए ईख के पौधों

के बीच ने सूखे पत्तों की मुंडेर पर चढ़ाते हुए वह मन-ही-मन सोचता रह गया था—अगर यह लड़ाई हम हार गये तो ?

यह अपने-आपमें बात कर रहा था :

हारने का कारण ?

कोई भी कारण हो सकता है।

नहीं, कोई कारण नहीं हो सकता।

यह रेमों साहब का गर्जन था जिससे किसन के अगले प्रश्न की भ्रूणहत्या हो गयी। पालकी ढोनेवाला अगला व्यक्ति चोट खाकर लुढ़क गया था। पालकी नीचे आ गयी थी। अपने को सँभालते हुए रेमों साहब पालकी से बाहर हुआ था और उसी क्षण उसने जमीन पर पड़े हुए कहार पर चाबुक बरसानी शुरू कर दी थी। चाबुक की 'स्वोक्-स्वोक्' आवाज से हवा और भी गर्म हो गयी थी। कहार की आह तक किसी ने नहीं सुनी। रेमों साहब के हाथ के थक जाने पर बगल में आ खड़े हुए रामजी सरदार ने कहार को लात से पीठ के सहारे उलट दिया था। वह निश्चल था। एक दूसरे मानगामी सरदार ने उसे पेट के सहारे कर दिया था। ऐसा कर चुकने के बाद मान-गामी सरदार ने रेमों साहब की ओर देखा था, "लो फ़ीन मोर !"

रामजी सरदार के मुँह से भी निकला था, "हाँ साहब, यह मर गया है।"

किसन की नींद में अगर किसी चीज की पुनरावृत्ति हुई तो वह पिछली रात के सपने की नहीं, बल्कि दिन की उस घटना की।

अट्ठाईस

सात बस्तियों ने एकसाथ कदम उठाये।

खेतों में श्मशान-जैसा सन्नाटा छाया रहा। पीपल के नीचे लछमनसिंह ने अपने सभी आदमियों के बीच कहा कि छिनल बकरी भागे न पाये। समुद्री इलाके की बस्ती में रामोतार महतो ने बस्ती के सभी मजदूरों को समुद्रकिनारे इकट्ठा किया। बड़े ही ओजपूर्ण शब्दों में उसने कहा, "सोनरवा के सौ, लोहरवा के एक।" मुखराम गाय ने भी अपने लोगों से यही कहा कि "इइ तीता ईख एक ही धार में काट फेंके के होय।" किसन की बस्ती के लोग नदी के पास इकट्ठे हुए थे। पहले वाक्य कुन्दन के थे—"आज का समय हम सबन के लिए जामवन्त है। जिस तरह जामवन्त ने हनुमानजी को उनकी शक्ति की जानकारी दी थी, उसी तरह आज का समय हम सबन को, हमारी शक्ति को ललकार रहा है। सात बस्तियों की ताकत है। सात बस्तियों की ताकत है हमारे साथ ....."

सूरज अभी अच्छी तरह से ऊपर नहीं पहुँचा था जब कोठी के दो सरदार साहब की धमकियाँ सुनाने पहुँचे। सुनी अनसुनी रही। सरदार दोबारा आये। लोग

चट्टानों पर बैठे रामायण की चौपाइयाँ गाते रहे।

सात बस्तियों के लोग सात स्थानों पर एक ही निर्णय के साथ रामायण गाते रहे। शाम को सूरज के डूबने से पहले मालिक की पालकी नदीकिनारे पहुँची। साथ में चार सिपाही थे। उसने बात धमकी से शुरू की और उसे समाप्त किया विनय में—"तुम लोग एक-दो आदमियों के बहकावे में आकर अपना भविष्य बिगाड़ रहे हो।" किसन को जोर से हँसी आ गयी। उसने मन-ही-मन कहा—कौन-सा भविष्य? वह जो जन्म लेने से पहले चिता पर चढ़ गया हो?

पालकी लौट गयी। सूरज भी डूब गया। और सभी मजदूर भी बस्ती को लौट आये। हर बस्ती में दूसरी बस्ती से सन्देशवाहक भेजा गया। हर स्थान पर दूसरे दिन के लिए भी वही संकल्प था। सातों बस्तियों में अनाज के बरतन खाली पड़े थे। हर बस्ती से तीन-तीन आदमियों को जंगल में भेज दिया गया था, फल और कन्द बटोर लाने के लिए।

दूसरे दिन भी खेतों में मक्खियाँ नहीं भिनकीं। उसी उत्साह के साथ सातों स्थानों पर लोगों के जुटाव हुए। सिपाही और सरदार तीन बार आये और चले गये। रात में सातों कोठियों के मालिकों की बैठक एक स्थान पर हुई।

तीसरे दिन भी खेतों में सूनापन रहा। मूसलाधार वर्षा हुई, लोग अपने-अपने स्थानों पर पेड़ों की आड़ में बैठे रहे। मालिकों की दूसरी बैठक हुई। इसी वर्षा की प्रतीक्षा थी। घनघोर घटा अब भी छायी हुई थी। पूरे सप्ताह वर्षा की सम्भावना थी। बोआई के लिए इससे अच्छा अवसर शायद ही कभी मिले।

शाम के धुँधलके में सातों बस्तियों के प्रतिनिधियों के समुद्री इलाके की कोठी में जुटने का प्रबन्ध हुआ। दूर की बस्तियों के लिए बैलगाड़ी भेजी गयी। यह पहली बार हुआ था। उस भव्य कोठी के बरामदे में मालिकों और प्रतिनिधियों की बैठक हुई। यह भी पहली बार। बारी-बारी से सभी गोरों ने बात की, लेकिन सभी प्रतिनिधियों की ओर से केवल किसन बोल रहा था। मालिकों ने जब पाया कि न तो ऊँची आवाज़ से वे लोग दहल रहे थे और न ही धमकियों की उन्हें परवाह थी, तब क्षण-भर के लिए सभी मालिक उठे। भीतर गये। थोड़ी देर बाद हाथों में अंगूरी शराब के पात्रों के साथ लौट आये। एक लम्बी खामोशी के बाद रेमों साहब ने बात शुरू की।

"ठीक है, हम सुनें कि तुम लोगों की माँगें क्या हैं।"

खड़े-खड़े किसन के पाँव थक गये थे। उसने धीमे से पूछा, "हम बैठ सकते हैं?"

मालिकों ने एक-दूसरे को देखा। रेमों साहब ने सिर हिलाकर इजाज़त दे दी। सातों व्यक्ति भूमि पर बैठ गये। किसन ने अपने साथियों के साथ भोजपुरी में एक क्षण के लिए बातें की, फिर साहबों की ओर देखते हुए क्रिओली में कहा, "हमारी पहली माँग यह है कि हमें आदमी समझा जाये। बैल नहीं। हमारी मेहनत के बाद अगर हमारी पीठ नहीं थपथपायी जा सकती तो बदले में बाँसों की बौछार भी हमें नहीं चाहिए।

इसका आश्वासन हमें बहुत पहले भी दिया गया था। पर वह आश्वासन झूठा रहा। मैं सातों कोठियों के मजदूरों की ओर से बोल रहा हूँ। हमने प्रण कर लिया है कि भूखे मर जायेंगे, पर बाँसों की मार खाने को तैयार नहीं होंगे।"

"ठीक है, तुम्हारी दूसरी माँग क्या है?"

"पहले इसे स्वीकार किया जाये।"

"पहले तुम अपनी सभी माँगें सामने रख लो।" बगल के सबसे मोटे गोरे ने कहा।

"दूसरी बात यह है कि हम बस्तियों के भीतर कैदियों की तरह नहीं रह सकते। हमें उस घिरावट से बाहर आने-जाने की स्वतन्त्रता हो।"

"बस?"

"नहीं। हम लोग सात व्यक्ति सात माँगों के साथ आये हैं।"

"तीसरी कहो।"

"हम स्वतन्त्र रूप से अपनी पंचायत और बैठक लगा सकें। पूजा-पाठ कर सकें।"

"वो तो तुम लोग लगाते ही हो, तभी तो आज......।"

"चोरी-चुपके लगाते हैं। हमारी चौथी माँग यह है कि हम अनाज और डाक्टर से वंचित नहीं रहना चाहते।"

मोटे गोरे ने अपने मोटे स्वर में तपाक से कहा, "मेरी कोठी में कोई भी डाक्टर और अनाज का मुहताज नहीं है।"

"हम एक कोठी की बात लेकर आपके सामने नहीं आये हैं। हमारी माँगें अगर पूरी नहीं हुई तो कल सात की जगह सत्तर बस्तियाँ यहाँ खड़ी दिखायी पड़ेंगी।"

"धमकी दे रहे हो?"

"आगाह कर रहा हूँ। पाँचवीं बात भी सुन लीजिए। हमारी बहनों और बहू-बेटियों का आदर होना चाहिए। पिछले महीने एक बस्ती में चार लड़कियों ने आत्महत्या कर ली थी।"

"तुम लोग यह चाहते हो कि हम उन लड़कियों को आत्महत्या करने से रोकते फिरें?"

"उन्हें विवश न करें। हम सभी की अन्तिम माँग यह है कि हमारे बच्चों को पढ़ने-लिखने का अवसर दिया जाये।"

"तो ये रहीं तुम्हारी सात माँगें?"

दूसरे गोरे ने पूछा, "और अगर ये माँगें पूरी नहीं की गयीं तो?"

"यह हम बता चुके।"

क्षण-भर की निस्तब्धता के बाद......

समुद्री इलाके के गोरे ने अपनी जगह से उठकर सातों व्यक्तियों को गौर से देखा, फिर अपने साथियों को। सभी को उसी के बोलने की प्रतीक्षा थी। मौन में

अस्तव्यस्त शब्दों में वह बोला, "उत्तर तुम्हें तीन दिन बाद मिलेगा।"

"हमें हाँ या ना का उत्तर इसी वक्त चाहिए।"

"कहा न, तीन दिन बाद उत्तर दिया जायेगा ?"

"तो हम तीन दिन बाद ही नौकरी पर लौटेंगे।

"एस्पेस दे बातार !" गोरा चिल्ला पड़ा।

किसन अपने स्थान पर खड़ा हो गया। उसके बाकी साथियों ने भी वैसा ही किया।

"हम यहाँ गाली सुनने नहीं आये हैं।"

अपने हाथ को तानकर अंगुली से रास्ता दिखाते हुए गोरे ने का, "फ़ू ले काँ !"

"ठीक है, हम जा रहे हैं। तीन दिन बाद उत्तर भिजवा देना।"

किसन अपने साथियों के साथ जाने को हुआ कि तभी मोटे गोरे ने उसे रोक लिया।

"देखो ! तुम लोग कल से काम तो शुरू कर दो। तुम्हारी मांगों पर विचार करने के लिए हमें तीन दिन तो चाहिए।"

बाहर अँधेरा गहन हो गया था। बादल गरज रहे थे। बिजली की चमक से वर्षा की मोटी धार दिखायी पड़ जाती थी। किसन ने बोरे की घोघी को सिर पर रखते हुए कहा, "तो फिर तीन दिन बाद ही काम शुरू होगा।"

"हम कल तुम्हारे अनाज भिजवा देते हैं।"

"तीन दिन बाद ही भिजवाइएगा।"

सातों व्यक्ति उस मूसलाधार वर्षा में निकल पड़े। बाकी सात के लिए भीतर की लम्बी मेज पर भोजन तैयार था।

कुछ ही देर चलने के बाद सातों व्यक्ति समुद्री इलाकेवाली बस्ती में आ पहुँचे। वहाँ के प्रतिनिधि के साथ सभी लोग मुखिया के घर पहुँचे। वहाँ उनके लिए मक्की भुनी जा रही थी। अपनी अपनी घोघी उतारकर खूंटी पर टाँगने के बाद वे सातों भीतर पहुँचे। बीच कोठरी में अँगीठी थी। मोटे-मोटे अंगारों पर की मकई की सोंधी गन्ध से कोठरी सुवासित थी। मुखिया के बालों का रंग ईख के फूल के रंग का था। उसने सातों व्यक्तियों को बड़े आदर से बिठाया। सभी को गरम मकई थमाने के बाद उसने बात शुरू की।

"हम लोगन की बातें मानल गईल की नाही ?"

किसन ने बस्ती के प्रतिनिधि की ओर देखा। बस्ती के प्रतिनिधि ने मकई के दानों की जुगाली-सी करते हुए कहा, "उ लोग के मानही के पड़ी चाचा !"

"मानही के पड़ी ? एकर मतलब ह कि अभी ना मानल गईल बा।"

किसन को बीच में बोलना पड़ा, "वे लोग तीन दिन बाद उत्तर देंगे।"

"तीन दिन बाद काहे ?"

किसी से उत्तर न पाकर मुखिया ने दूसरा प्रश्न किया, "तुम लोगन का करने

को सोचा है ?"

"बोआई नहीं होगी।"

"सो तो ठीक बाते पर तीन दिन के बाद भी ऊ लोगन हमनी के बात ना मनलक तब ?"

"बाप बोलकर मानेंगे। उनका सामना सात ही आदमियों से थोड़े है ? सात बस्तियों का सामना करना है उन्हें !"

"तुम सबन से थोड़ा पहले हियाँ धमरू सरदार आईल रहन। कहे लगल कि हमार बस्ती हय संकल्प से अपन के अलग कर देई त साहब हमें दो बीघा जमीन दान देई के तैयार बा। हम ओके बोलनीं, रामोनार महतो लोभ मे पड़े ओला जीव नाहीं।"

कुछ देर वहाँ और टिके रहने के बाद जब वर्षा कुछ थमी तो सभी ने अपनी-अपनी पोथी उठायी और वहाँ से अलग-अलग रास्ते को चल पड़े। वर्षा अब भी हो रही थी। बादल का गरजना बन्द था, पर बिजली रह-रहकर कौंध जाती थी। इस बार रास्ता न भूलने के पूरे विश्वास के साथ किसन ने आगे बढ़ना शुरू किया। देवननन् आधे रास्ते पर उसकी प्रतीक्षा कर रहा होगा।

उन्तीस

खेतों के सूनेपन का चौथा दिन था।

सूरज उदित होकर भी घने बादलों के पीछे छिपा ही रहा। रात की बरसात थमी हुई थी, पर मौसम साफ नहीं हुआ था। सुबह उमस लिये हुए थी। नदी की धारा में रफ्तार तेज थी। आसपास के ईख के पौधे नवजीवन-सा पाकर पहले से अधिक हरे दीखने लगे थे। वह हरापन नदीकिनारे जुटे हुए मजदूरों के चेहरों पर नहीं था। वह हरापन मालिकों के चेहरे पर भी सम्भव नहीं था, जिन्होंने अपने हिरण के शिकार को स्थगित कर दिया था। तड़के ही उनकी विशेष बैठक लगने को थी। वे भलीभाँति जानते थे कि उनके चेहरों का हरापन किस धुंधलके में अदृश्य था। ईखों की यह मुस्कान उनके अपने चेहरों की मुस्कान हो सकती है बशर्ते । पर उनकी अपनी प्रतिष्ठा के लिए समझौता उतना आसान नहीं था···और न ही उस मुस्कान को गवाँ जाना उन्हें गवारा था।···फिर वही द्विविधा।

किसन की उपस्थिति में मजदूरों ने रात मे जो तय किया था उस पर तुरन्त अमल करने की बात हुई। प्रस्ताव देवननन् का था, फिर भी वह अनुपस्थित था। उसकी अनुपस्थिति का कारण कुछ लोगों को मालूम था। उसकी गैरहाजिरी मे भी लोगों ने चाहा कि काम इसी क्षण शुरू हो जाना चाहिए। और फिर भीगे-भीगे माहौल मे जो चट्टानों पर बैठे रहने को न करके कुछ परिश्रम करने के लिए मचल भी तो रहा था। लकड़ी के लिए भी बहुत दूर जाना नहीं था। नदी की बगल के जगल से पेड़ काटे गये। कुछ

लोग पत्थर जुटाने में लग गये। नदी के पास ही पथरीली जमीन की सफाई भी शुरू हो गयी। लोगों को विश्वास था कि सभी लोग मिलकर प्रतिदिन दो घण्टे इधर काम कर लेंगे तो दो सप्ताह के भीतर उन लोगों का पहला स्वतन्त्र बैठका बनकर तैयार हो जायेगा।

एक-दो व्यक्तियों ने अपने इस डर को जाहिर भी किया कि कानूनी तौर से जमीन पर उन लोगों का कोई अधिकार नहीं था। उस पर बैठका बनाने से बाद में समस्या खड़ी हो सकती है। उत्तर में किसन ने कहा कि इस जमीन पर कोठीवालों का भी अधिकार नहीं था। जमीन सरकार की थी। अन्त में यही तय हुआ कि यह पहला बैठका बनकर रहेगा। बाद में सरकार को अर्जी लिखकर समस्या का हल निकाल लिया जायेगा। पण्डित को कानून की बातें थोड़ी-बहुत आती थीं। उसका आश्वासन पा चुकने के बाद फिर तो सभी लोगों ने यही तय कर लिया कि मजदूरों का पहला बैठका बनकर रहेगा। बाद में जो होगा देखा जायेगा। पण्डित ने यह भी कहा था कि मजदूरों का यह साहस एक ऐतिहासिक साहस था। उसकी निशानी जरूरी है।

उस भीगे माहौल में भी काम शुरू होते ही मजदूरों के शरीर पसीने से चमकने लगे। छाजन के लिए ईख के सूखे पत्ते बटोरकर मुठिया बांधने की जिम्मेवारी औरतों को सौंपी गयी। पत्ते भीगे होने के कारण मुठिया बांधने में काफी सुविधा थी। चार अलग दिशाओं से काम आरम्भ होने में तनिक भी देरी नहीं हुई। काम करते हुए भगत का गुनगुनाना जारी रहा—

तोहे का मिलेला ओ राजा
गरीबन के रोवा दुखवा के ?
खेतवा तोहर होवे
पसीना हमार बहे
फिर भी राजा
हमार तोहर साझा ना होवे
तोहे का मिलेला ओ राजा
हमार हकवा के मार के······

सूरज की अदृश्यता के कारण समय का सही ज्ञान किसी को नहीं था। पक्षियों का कलरव बन्द हो जाने से अनुमान यही किया जा रहा था कि कुछ ही देर में सूरज पूर्व के पेड़ों के ऊपर आ जायेगा। ईख का कारखाना भी बन्द था वरना उसका पहला घण्टा अब तक बज गया होता। किसन ने सोचा कि देवननन् जहाँ भी गया होगा अब तक तो उसे लौट आना चाहिए था। उसने सोनालाल को रोककर पूछा, "कहाँ गया है देवननन् चाचा ?"

सोनालाल ने किसन को चकित-सा देखा।

"तुम्हीं से तो पूछ रहा हूँ।"

थोड़ी देर के लिए सोनालाल चुप रहा, फिर बोला, "वह रामजी सरदार के पीछे गया है ?"

"किसलिए ?"

"सत्या ने अपने बाप को यह बता दिया था कि रेखा तुम्हारे घर में है।"

"फिर ?"

"फिर क्या ! सरदार दौड़ गया लछमनसिंह की बस्ती को। देवननन् चाचा ने यह बात सुनी और वह यह कहता हुआ उसके पीछे दौड़ गया कि देखूँ वह हरामखोर वहाँ के साहब से कैसे मिलता है।"

"तुम लोगों ने यह बात पहले क्यों नही बतायी ?"

"मैं तो सोच रहा था कि घर पर तुम्हें बात मालूम हो गयी होगी।"

कुछ थमकर किसन ने पूछा, "तुमने देवननन् चाचा को रोकने का प्रयत्न नहीं किया ?"

सोनालाल चुप रहा।

किसन एक दूसरी आशंका से ग्रस्त हो गया, फिर भी इन आशंकाओं से अधिक व्याकुल वह अपने भीतर की अधीरता से था। मालिकों की बैठक का पता उसे लग गया था। गास्तों कोठी में नौकर था। उसी ने बात बतायी थी। किसन को अब ऐसा लगने लगा था कि अपनी सफलता पर बहुत अधिक विश्वास करके उसने गलती की थी। उसे बहुत पहले जान लेना चाहिए था कि बाँसो की बौछार करनेवाले वे गोरे बाँसों की तरह लचकदार नही होते। उन्हे इतनी जल्दी मना लेने का उसका विश्वास निराधार प्रतीत होने लगा था। लगता था कि ये गोरे भारी-से-भारी हानि सहकर भी मजदूरों के हित मे आने को तैयार नही थे। आज चौथा दिन था। मजदूरों की दशा पहले ही से खराब थी। घर की हाँड़ियाँ भी तो खाली थीं। दूसरी बस्तियों से जो कुछ पहुँचा था, उससे तो बस दो दिन का गुजारा हो सकता था। इस समय कुन्दन भी पास नही था। मालिकों के निर्णय की प्रतीक्षा मे अधीर किसन अपने को बोझिल पा रहा था। वह केवल कुन्दन ही था जो पास रहकर उसके बोझ को हल्का कर पाता।

वर्षा फिर शुरू हो गयी।

पिछली रात गौतम, दाऊद और गोपाल के बीच एकाएक रामजी सरदार को लेकर बात छिड़ गयी थी। सबसे पहले गोपाल ने पूछा था, "तुम ही लोगन बताओ कि देखते-ही-देखते रामजी सरदार को ये सारी जमीन कहाँ से मिल गयी ?"

"इसे जानने के लिए पहाड़ पर चढ़ना होगा क्या ?" दाऊद ने झट से कहा था।

"तो हम सभी मानते हैं न कि हमारे हक को बेच-बेचकर बदले मे इसने ये सारी जमीन पायी है ?"

"लेकिन सभी की जानी हुई इस बात को तुम पूछ क्यों रहे हो ?"

एक क्षण चुप रहकर गोपाल ने आगे कहा था, "तो फिर बन्धु, इन बातो से यह

लोग पत्थर जुटाने में लग गये। नदी के पास ही पथरीली जमीन की सफाई भी शुरू हो गयी। लोगों को विश्वास था कि सभी लोग मिलकर प्रतिदिन दो घण्टे इधर काम कर लेंगे तो दो सप्ताह के भीतर उन लोगों का पहला स्वतन्त्र बैठका बनकर तैयार हो जायेगा।

एक-दो व्यक्तियों ने अपने इस डर को जाहिर भी किया कि कानूनी तौर से जमीन पर उन लोगों का कोई अधिकार नहीं था। उस पर बैठका बनाने से बाद में समस्या खड़ी हो सकती है। उत्तर में किसन ने कहा कि इस जमीन पर कोठीवालों का भी अधिकार नहीं था। जमीन सरकार की थी। अन्त में यही तय हुआ कि यह पहला बैठका बनकर रहेगा। बाद में सरकार को अर्जी लिखकर समस्या का हल निकाल लिया जायेगा। पण्डित को कानून की बातें थोड़ी-बहुत आती थीं। उसका आश्वासन पा चुकने के बाद फिर तो सभी लोगों ने यही तय कर लिया कि मजदूरों का पहला बैठका बनकर रहेगा। बाद में जो होगा देखा जायेगा। पण्डित ने यह भी कहा था कि मजदूरों का यह साहस एक ऐतिहासिक साहस था। उसकी निशानी जरूरी है।

उस भीगे माहौल में भी काम शुरू होते ही मजदूरों के शरीर पसीने से चमकने लगे। छाजन के लिए ईख के सूखे पत्ते बटोरकर मुठिया बांधने की जिम्मेवारी औरतों को सौंपी गयी। पत्ते भीगे होने के कारण मुठिया बांधने में काफी सुविधा थी। चार अलग दिशाओं से काम आरम्भ होने में तनिक भी देरी नहीं हुई। काम करते हुए भगत का गुनगुनाना जारी रहा—

तोहे का मिलेला ओ राजा
गरीबन के रोवा दुखवा के ?
खेतवा तोहर होवे
पसीना हमार बहे
फिर भी राजा
हमार तोहर साझा ना होवे
तोहे का मिलेला ओ राजा
हमार हकवा के मार के······

सूरज की अदृश्यता के कारण समय का सही ज्ञान किसी को नहीं था। पक्षियों का कलरव बन्द हो जाने से अनुमान यही किया जा रहा था कि कुछ ही देर में सूरज पूर्व के पेड़ों के ऊपर आ जायेगा। ईख का कारखाना भी बन्द था वरना उसका पहला घण्टा अब तक बज गया होता। किसन ने सोचा कि देवननन् जहाँ भी गया होगा अब तक तो उसे लौट आना चाहिए था। उसने सोनालाल को रोककर पूछा, "कहाँ गया है देवननन् चाचा ?"

सोनालाल ने किसन को चकित-सा देखा।

"तुम्हीं से तो पूछ रहा हूँ।"

थोड़ी देर के लिए सोनालाल चुप रहा, फिर बोला, "वह रामजी सरदार के पीछे गया है ?"

"किसलिए ?"

"सत्या ने अपने बाप को यह बता दिया था कि रेखा तुम्हारे घर में है।"

"फिर ?"

"फिर क्या ! सरदार दौड़ गया लछमनसिंह की बस्ती को। देवननन् चाचा ने यह बात सुनी और वह यह कहता हुआ उसके पीछे दौड़ गया कि देखें वह हरामखोर वहाँ के साहब से कैसे मिलता है।"

"तुम लोगों ने यह बात पहले क्यों नहीं बतायी ?"

"मैं तो सोच रहा था कि घर पर तुम्हें बात मालूम हो गयी होगी।"

कुछ थमकर किसन ने पूछा, "तुमने देवननन् चाचा को रोकने का प्रयत्न नहीं किया ?"

सोनालाल चुप रहा।

किसन एक दूसरी आशंका से ग्रस्त हो गया, फिर भी इन आशंकाओं से अधिक व्याकुल वह अपने भीतर की अधीरता से था। मालिकों की बैठक का पता उसे लग गया था। मास्तो कोठी में नौकर था। उसी ने बात बतायी थी। किसन को अब ऐसा लगने लगा था कि अपनी सफलता पर बहुत अधिक विश्वास करके उसने गलती की थी। उसे बहुत पहले जान लेना चाहिए था कि बाँसों की बौछार करनेवाले वे गोरे बाँसों की तरह लचकदार नहीं होते। उन्हें इतनी जल्दी मना लेने का उसका विश्वास निराधार प्रतीत होने लगा था। लगता था कि ये गोरे भारी-से-भारी हानि सहकर भी मजदूरों के हित में आने को तैयार नहीं थे। आज चौथा दिन था। मजदूरों की दशा पहले ही से खराब थी। घर की हाँडियाँ भी तो खाली थीं। दूसरी बस्तियों से जो कुछ पहुँचा था, उससे तो बस दो दिन का गुजारा हो सकता था। इस समय कुन्दन भी पास नहीं था। मालिकों के निर्णय की प्रतीक्षा में अधीर किसन अपने को बोझिल पा रहा था। वह केवल कुन्दन ही था जो पास रहकर उसके बोझ को हल्का कर पाता।

वर्षा फिर शुरू हो गयी।

पिछली रात गौतम, दाऊद और गोपाल के बीच एकाएक रामजी सरदार को लेकर बात छिड़ गयी थी। सबसे पहले गोपाल ने पूछा था, "तुम ही लोगन बताओ कि देखते-ही-देखते रामजी सरदार को ये सारी जमीन कहाँ से मिल गयी ?"

"इसे जानने के लिए पहाड़ पर चढ़ना होगा क्या ?" दाऊद ने झट से कहा था।

"तो हम सभी मानते हैं न कि हमारे हक को बेच-बेचकर बदले में इसने ये सारी जमीन पायी है ?"

"लेकिन सभी की जानी हुई इस बात को तुम पूछ क्यों रहे हो ?"

एक क्षण चुप रहकर गोपाल ने आगे कहा था, "तो फिर बन्धु, इन बातों से यह

स्पष्ट है कि उसके खेत में आज जो कुछ भी है उन सभी में हमारे मारे गये हकों का अंश है।"

"वह तो है ही।"

"यह भी तो सच है न कि इस समय हम लोग अनाज के मुहताज हैं ?"

इस पर गौतम कह बैठा था, "अरे, तुम्हारी बात समझ में आ गयी।"

"बताओ तो सुनें।"

"तुम यही कहोगे कि जब रामजी सरदरवा के खेतों की चीजों में हमारे हकों के अंश हैं तो फिर हम लोगन को भूखे क्यों मरना है।"

"क्यों, क्या ख्याल है तुम्हारा ?" दाऊद की ओर देखते हुए गोपाल ने पूछा।

"सही बात तो कह रहे हो।"

"तो फिर धावा बोला जाये ?"

"क्यों नहीं ? मेरा बाप तो कहता है कि शैतान का धन कभी नहीं छोड़ना चाहिए।"

उसी रिमझिम रात में तीनों व्यक्ति दो बोरों के साथ रामजी सरदार के खेत की ओर बढ़ गये थे। बिनसहरा जब दोनों घर लौटे थे, उस समय एक बोरा मकई से से भरा हुआ था और दूसरा शक्करकन्द से।

हवा के कुछ तेज होने से वर्षा कुछ धीमी हुई थी। अवसर का लाभ उठाकर पुष्पा दो अन्य लड़कियों के साथ टोकरियों में मकई की लीटी और उबले हुए कन्द लिये हुए नदी के पास आ पहुँची। दोनों लड़कियों को मजदूरों के बीच छोड़कर पुष्पा कुछ आगे बढ़ गयी जहाँ किसन खम्भों के लिए गड्ढे कोड़ रहा था। अपने सर की टोकरी को पेड़ की आड़ में रखकर पुष्पा किसन के पास आ गयी। कमर सीधी करते हुए किसन ने कहा, "पानी बरस रहा है, तुम पेड़ की आड़ में क्यों नहीं चली जाती ?"

"तुमने सुना, घरबसिया क्या कह रही है ?"

"क्या कह रही है ?"

"कहती है, बहुत बड़ा तूफान आनेवाला है।"

"घरबसिया के कहने से ही सभी कुछ होता है क्या ?"

"कल शाम आसमान भी तो लाल था।"

"छोड़ो इस बात को, तुम आड़ में चलकर छिर जाओ।"

"भीगने में आनन्द आता है।"

किसन पेड़ के नीचे चला गया, पुष्पा भी उसके पीछे वहाँ पहुँच गयी।

"किसन ! तूफान आने से घर टूटते हैं......आशाएँ भी टूट जाती हैं न ?"

"देवननन् चाचा अभी तक नहीं लौटे ?"

पुष्पा ने टोकरी से मकई की लीटी निकालकर किसन की ओर बढ़ा दी। उसके हाथ ने लीटी लेने से पहले किसन ने अपने मैले हाथों को उसके सामने कर दिया। फिर दो कदम आगे बढ़कर उसने बरसात के पानी से हाथों को धोया। उन्हें धोती के छोर

से पोंछते हुए पीछे आ गया। पुष्पा के हाथ से रोटी और शकरकन्द का टुकड़ा लिया और उन्हें खाने लगा। बाकी लोग भी अलग-अलग पेड़ों के नीचे खाने में लगे हुए थे।

किसन ने खाते हुए पूछा, "तुम दुखी हो पुष्पा ?"

"घर में एक दाना भी नहीं इसलिए ?"

"इसलिए नहीं......।"

"तो फिर किस बात का दुख ?"

"तुम दुखी नहीं हो ?"

"नहीं तो।"

"इसकी मुझे खुशी है पुष्पी।"

वातावरण धुंधला था। पुष्पा की आँखों के नीचे जो बूँदें थीं, उन्हें किसन बरसात की बूँदें समझता रहा। बरसात होती रही।

तीस

कदम उठ चुके थे। अब उन्हें पीछे करना असम्भव था।—द्विविधा की स्थिति में किसन के पास आत्मसान्त्वना के लिए ये ही दो छोटे वाक्य थे। उसके साथ उसके सभी साथी भी इसी ख्याल के थे। दो-तीन लोग अब भी ऐसे थे जिनके लिए दो भिन्न वाक्य थे—'खतरा मोल लिया था। अब तो अनर्थ होकर ही रहेगा।' जो भी हो, उनकी प्रतीक्षा दोनों पक्षों को उसी बेसब्री के साथ थी। कुन्दन की अनुपस्थिति किसन को बहुत खल रही थी। दो-तीन बार वह उनके घर से हो आया था। वह होता तो किसन को मानसिक स्तर पर इतना-कुछ सहना नहीं पड़ता।

उसकी माँ से पहले रेखा ने उसे उसकी उस हालत पर टोका था, "दो दिन में तुम्हारी आँखें इतनी धँस गयी हैं कि उनमें अंजुली-भर चावल समा सकता है।" अपने सिर को दोनों हाथों में लिये वह दीवार के हनुमानजी के चित्र के सामने बैठा रहा। वह प्रार्थना नहीं कर रहा था। अपने भीतर के अन्तर्द्वन्द्वों को भीतर झेलता रहा। हज़ार से ऊपर लोगों का उसने अपने-आपको जिम्मेदार बनाया था। उसके बाप ने यहाँ तक कहा था, "किशू! हज़ारों लोगन के भविस के जिम्मेवारी तु काहे लेवत बाटे? सभी-के बन जाये त अच्छा ही बा, न बनी त सभी लोगन तुम्हारे ऊपर टूट परियत स।"

अपने-आपकी बातों पर गौर करने की रौ में वह नहीं था। वह रेखा की एक बात थी जिससे इन कठिन परिस्थितियों में भी उसकी मुस्कान बनी हुई थी।

"इतना बड़ा निर्णय ले चुकने के बाद भी तुम इस तरह मुरझायी हालत में क्यों हो ?"

उसकी आँखों की गहराई में चमक आ गयी थी।

अपनी माँ को अपने सामने चुपचाप बैठे पाकर उसने जान लिया था कि वह सूरजनारायण से मन-ही-मन उसकी सफलता की प्रार्थना कर रही थी। वे आठ-दस औरतें, जो ईखों की निराई किया करती थीं, किसन की माँ से कह गयी थीं, "भूखे मर जाव स और का ? एक हला हमनी के वाद हय जुलूम ना रहे।"

सच पूछा जाये तो किसन ने सभी कुछ झिझकते हुए किया था—भारी उधेड़बुन के साथ। प्रतिक्रिया इतनी जबरदस्त होगी, इसका पूरा विश्वास उसे नहीं था। लेकिन अब इसी पूरे विश्वास के प्रति सन्दिग्ध था। उसके जेहन का सवाल थम नहीं पा रहा था।

जो होना है वह हो क्यों नहीं जाता ?

यह अधीरता क़िसन में बचपन से थी। अधीरता और असन्तोष के लिए कोसे जाने पर भी वह उन्हें अपनी विशेषता मानता था। ये दो चीजें उसे शिथिल होने से रोके रहती थीं।

अपने हाथों को सिर से हटाते हुए उसने सामने की ओर देखा। हनुमानजी के हाथ में पहाड़ था। उसने अपने-आपसे प्रश्न किया—क्यों ?

'क्यों' का उत्तर उसके पास नहीं था, लेकिन अपने एक बहुत बड़े प्रश्न का उत्तर उसे अवश्य मिल गया था। इतना बड़ा पहाड़ उठाये हुए भी हनुमानजी के चेहरे पर दुख और चिन्ता नाम की कोई चीज नहीं थी !

आवाजें जैसे गूँजती रहीं।

पहाड़ उठा लो·····उठा लो पहाड़। कौन कहता है, पहाड़ नहीं उठाया जा सकता है ? पहाड़·····पहाड़·····पहाड़······!·····हनुमान·····शक्ति·····शक्ति की ही पूजा तो उसके घर में होती थी। उस दिन जब रेखा आँगन के पेड़ के नीचे उस स्थान को लीपकर एक छोटी-सी लाल झण्डी फहरा रही थी तो इसी शक्ति के देवता के नाम पर। उस लाल झण्डे के फहराने से बस्ती का भय, लोगों की आशंका, सभी को मिट जाना चाहिए था। तो फिर किसन क्यों आतंकित था ? भय-सा कोई भाव उसके भीतर क्यों था ?

इन सभी विचारों को झकझोरते हुए किसन अपने स्थान से उठा। आँगन में उसने रेखा को हनुमानजी के चबूतरे के पास अरघ देते पाया। उस लाल ध्वजा का रंग किसन को कुछ और भड़कीला लगा। रेखा ने कहा था कि यही ध्वजा महाभारत के उस रथ पर भी थी, जिसे भगवान कृष्ण अर्जुन के लिए चला रहे थे।

रेखा ने किसन की ओर देखा, "वह क्या नाम है, हरबसिया या घरबसिया चाची ?"

"वह दोनों है ?"

"तुमसे मिलने आयी थी।"

"क्यों ?"

"मैंने यह कहकर उसे लौटा दिया कि तुम घर पर नहीं हो।"

"क्यों मिलने आयी थी ?"

"वह गयी, तुमसे मिलकर ही कहेगी।"

"मालिक की ओर से धमकाने आयी होगी और क्या !"

"जानते हो, निराई करनेवाली औरतों में उसने क्या कहा है ?"

"क्या कहा है ?"

"अगर वे लोग काम पर नहीं पहुँची तो मालिक उनके कपड़े उतरवाकर उन्हें बस्ती से बाहर कर देगा।"

"ठीक है रेखा। मैं जरा देवनन्दन बाबा को देख आऊँ, शायद लौट आये हों।"

किसन के कुछ आगे बढ़ जाने पर रेखा ने कहा, "देखो ! तुम अकेले कोठी की ओर मत जाना।"

अभी सूरज का उदय नहीं हुआ था। पक्षियों का कलरव पराकाष्ठा पर था। मजदूरों को खेतों में पहुँचने की जल्दी नहीं थी, इसलिए बहुत कम लोग बाहर दिखायी पड़ रहे थे। न बरतनों की खनक, न चक्की की घरघराहट। पूर्व से आती हुई एक ठण्डी हवा के झोंके को किसन ने अपने चेहरे पर अनुभव किया। गीली मिट्टी की सोंधी गन्ध को एक लम्बी साँस के साथ वह देर तक सूँघता रहा। उसमें गुलँची के फूल की गन्ध भी मिश्रित थी

बहुत दिनों के बाद सुबह की हवा में वह ठण्डक और महक थी। गीली मिट्टी की परतों को अपने पैरों में चिपकाये भारी कदमों के साथ वह आगे बढ़ता रहा। दाऊद के घर के सामने उसे सोनालाल मिल गया। पण्डित तुलसी के पौधे के सामने हाथ जोड़े श्लोक पढ़े जा रहा था। गोपाल की बहन आँगन बुहार रही थी। दतवन करता हुआ गौतम भी पीछे की ओर से आ गया। पण्डित ने आज निर्भयता के साथ पूजा समाप्त की। किसन के पास पहुँचकर बोला, "तुम लोग आत्मा को साक्षी रखकर अन्त तक आगे बढ़ना। शरीर हमें नरक को पहुँचाता है, आत्मा स्वर्ग को।"

पण्डित की बहुत कम बातें किसन की समझ में आती थी। सोनालाल और गौतम के साथ किसन कुएँ की ओर बढ़ गया। पण्डित का श्लोक सुनायी पड़ता रहा। पिछली शाम को अपनी माँ के अनुरोध पर किसन ने प्रार्थना की थी। उस समय उसे प्रार्थना समाप्त करने की जल्दी पड़ी हुई थी। प्रार्थना को पूरा करके उसने आत्म-शान्ति अनुभव की थी।

सामने बरसात का जमा पानी था। गौतम और किसन ने अपनी धोती को घुटनों के काफी ऊपर तक उठा लिया। सोनालाल जाँघिया पहने था। किसन की अपनी धोती बसी-बसी हो गयी थी। रेखा द्वारा पैबन्द लगाये जाने के बाद उसने अपने यार की पुरानी धोती पहन रखी थी। इस पुरानी धोती का रंग साफ धोने पर भी मैलटा रह जाता था। उन पर मिट्टी ने अपना रंग चढ़ा दिया था।

गुलबा के घर से निकलती हुरबमिया मिल गयी। इससे पहले कि वह कुछ

कहती, किसन ही पूछ बैठा, "क्यों मौसी, तुम मुझसे मिलने गयी थी ?"

"तोके साहब के खबर देवे के रहल।"

चलते हुए उनमें बातें होती रहीं।

"क्या खबर थी ?"

"तोके चाहे ला ओकर से मिले के।"

"कल ही मिलकर आया हूँ।"

"ऊ बहुत खिसियाल बा, ना मिलबे त हम सबन पर मुसीबत आ जाइ।"

सोनालाल ने बीच में व्यंग्य किया, "तुम्हारे ऊपर क्या मुसीबत आयेगी मौसी ?"

"हमके जौन बोले के रहल बोल देली। अब तू लोग अपन काम जान !"

बड़ी ही नम्रता के साथ किसन बोला, "मौसी, तुम हमारे लिए एक काम करोगी ?"

"कौंची ?"

"मालिक से कह देना कि हम कोठी में मिलना नहीं चाहते। मिलना है तो इन खेतों के बीच खुले मैदान में मिले।"

"तुम सभी लड़कन आग मूतने लगे हो। पूरे गाँव को जोखिम में डाल रहे हो।"

सोनालाल ने फिर से व्यंग्य किया, "तुम्हें इसकी क्या चिन्ता ? तुम गाँव की थोड़े ठहरी, तुम्हारी जगह तो हवेली में है।"

"तू लोगन के मति मारल गईल बा। हो देवननन् के बहकावे में आके अपन खना में माटी डाले बैठ गयल हव स।"

तीनों रुक गये। हरबसिया बड़बड़ाती हुई आगे बढ़ गयी।

कुन्दन का दरवाजा अब भी बन्द था। तीनों बैठ गये। किसन को कुन्दन की जरूरत थी। वही था जो उसके दबते हुए हौसले को बढ़ा सकता था। पुष्पा सामने आयी, किसन ने पूछा, "अभी तक नहीं लौटा ?"

पुष्पा सिर हिलाकर खड़ी रही।

अपने तलुवों में सटी हुई मिट्टी की मोटी तह को लकड़ी के टुकड़े से निकालते हुए सोनालाल ने किसन से प्रश्न किया, "तुम्हें अब भी विश्वास है कि मालिक हमारे हित के लिए झुककर रहेंगे ?"

"हाँ।" किसन के इस उत्तर में आत्मविश्वास का अभाव था।

"और अगर ऐसा नहीं हुआ तो ?"

पुष्पा बीच में बोल उठी, "ऐसा ही होगा।"

किसन ने पुष्पा की ओर देखा, फिर सोनालाल की ओर देखते हुए बोला, "अगर ऐसा नहीं हुआ तो हमारी हालत बदतर हो जायेगी। यही न ?"

सोनालाल चुप रहा।

"लेकिन सोना, जो हालत अभी है, उससे बदतर और क्या हो सकती है !"

"तुम इतने हताश क्यों लग रहे हो किशन ?"

किशन ने गौतम की ओर देखा । एक उधार ली हुई मुस्कान के साथ बोला, "नहीं गौतम, मैं हताश नहीं हूँ । देवनन्द चाचा के बारे में सोच रहा हूँ । खैर उठो, सूरज उगने से पहले हम सभी को नदी के पास इकट्ठा होना है ।

तीनों उठे और आगे को बढ़ गये । पुष्पा खड़ी तीनों को जाते देखती रही । बादल अब भी घिरे हुए थे । वर्षा फिर कभी हो सकती थी ।

इकतीस

उस रात जब रात का पिछला पहर बाकी था, कुन्दन रामजी सरदार के पीछे बिना कुछ ओढ़े निकल पड़ा था । रास्ते में अगर बरसात की फिसलन न होती और रामजी सरदार के पाँव में चोट न आयी होती तो सम्भवतः कुन्दन को इधर-उधर चक्कर काटते हुए रह जाना पड़ता । एक तो लछमनसिंह की बस्ती का रास्ता उसे नहीं मालूम था । ऊपर से अँधेरी रात । रामजी सरदार का पीछा करने में जो दूसरी बात सहायक रही, वह थी गांजे की गन्ध । उसी गन्ध को संकेत करके कुन्दन ने पहली आवाज़ दी थी :

"रामजी सरदार, रुक जाओ ।"

आवाज़ सुनकर सरदार घबरा गया था । अपने घायल पाँवों के साथ जिधर रास्ता पाया, उधर ही को बढ़ गया । उसके पीछे कुन्दन को भी पहाड़ी पर चढ़कर दूसरी ओर उतरना पड़ा । उस दुर्गम रास्ते में कुन्दन ने कई बार उसे रुकने को कहा । उन आवाज़ों से घबराकर सरदार कई बार फिसला, कई बार सँभला । कुन्दन भी दो बार फिसलकर अपना घुटना फोड़ चुका था ।

बहुत धीरे-धीरे उजाला शुरू हुआ था । वर्षा भी धीरे-धीरे थमी थी । आगे-आगे भागते हुए रामजी सरदार की आकृति साफ होती गयी । दोनों के बीच का फासला बहुत लम्बा नहीं था, पर अगर वह कम नहीं हो रहा था तो इसलिए नहीं कि कुन्दन की रफ़्तार कम थी । भय के साथ भागते हुए सरदार के पाँव कुछ अधिक तेज़ी के साथ उठ रहे थे । कुन्दन से वह हमेशा भयभीत रहा है । इस गुनगार रूप में उसके भय का बढ़ जाना एकदम स्वाभाविक था । वह जान बचाने के लिए दौड़ रहा था, जबकि कुन्दन उसे समझा-बुझाकर एक अनर्थ से रोकना चाह रहा था ।

वह किसी भी हालत में रेखा को उस बस्ती में नहीं लौटने देने का संकल्प कर चुका था जहाँ से वहाँ के गोरे का उस पर अधिकार बनता था । अधिकार ! इस शब्द पर कुन्दन को कई बार हँसी आयी थी । कई बार रोना भी । इस अधिकार की इस देश में बहुमुखी परिभाषा थी । अधिकारवंचित । अधिकार का नाजायज़ फायदा ।

मिट्टी में दफन हो गया अधिकार। कुचलने का अधिकार ! खाने का अधिकार। भूखे मरने का अधिकार !

रेखा की रक्षा उसका बहुत बड़ा कर्त्तव्य बन गया था। रेखा को उसने बस दो बार देखा था। इस दौरान उसने किसन को बहुत अधिक देखा था। बहुत निकट से देखा था और इसी निष्कर्ष पर पहुँचा था कि किसन को नये आयाम मिल गये थे। कुन्दन ने पुष्पा को भी बहुत महत्त्व दिया था। उसे पुष्पा के प्रति सहानुभूति थी। वह यह भी जान पाया था कि पुष्पा बहुत ही साहसी लड़की थी। हर स्थिति का सामना करने की शक्ति थी उसमें। किसन की हर गतिविधि को कुन्दन ने हृदय की आँखों से देखा था। किसन को जितना वह जानता था, उतना कोई और उसे नहीं जान सकता। यही कारण है कि रेखा को इस बस्ती से निकाल ले जानेवाली हर ताकत के सामने कुन्दन दीवार बनकर खड़ा होने को तैयार था।

बरसात एकदम थम गयी थी। उजाला ठिठुरी हुई हरियाली पर विस्तार पा चुका था। सामने की पर्वतमाला की उतरती-चढ़ती चोटियों से बादल बिखरते-से लग रहे थे। रश्मियाँ फूटकर बाहर होनेवाली थीं जब नाले के पास घायल पड़े सरदार के पास कुन्दन पहुँचा। सरदार की आँखों में भय था। उसका मुँह खुला हुआ था। सुबह की भीनी-भीनी गन्ध के ऊपर उसके कपड़ों की गाँजे की गन्ध अधिक भारी थी। उसकी एड़ी से खून बह रहा था। उसके हाथ और माथे पर भी घाव थे। कुन्दन चुपचाप उसके पास बैठ गया। काफी देर तक किसीने किसीसे कुछ नहीं कहा। थोड़ी दूरी पर कल-कल बहती नदी थी। आम के पेड़ों का झुरमुट था। तीन दिशाओं को जानेवाली तीन पगडण्डियाँ थीं। तीन ओर स्थित बस्तियों का यह वह मध्य स्थान था जहाँ शायद थके-माँदे लोग विश्राम के लिए ठहर जाते होंगे। नाले के ठण्डे पानी से कुन्दन ने हाथ-मुँह धोये और पूर्व की ओर मुँह करके खड़ा हो गया।

सामने का दृश्य उसे जाना-पहचाना-सा लगा। उसे हैरानी हुई। आज से पहले वह इधर कभी नहीं आया था। वही नदी। वही बरगद का पेड़। उसके पीछे वही विचित्र आकृतिवाला पर्वत ! कुन्दन के भीतर की वर्षों पुरानी याद जाग उठी। छावनी से लौटता हुआ सिपाही······नदी का किनारा······नंगी नहाती हुई गोरी औरत······घोड़ा······सिपाही······। कैदखाने की ऊँची दीवारें······।

अतीत की उन यन्त्रणाओं को भीतर झेलता हुआ कुन्दन पहाड़ की तरह अचल खड़ा रहा। नदी उसी तरह बही जा रही थी। पहाड़ उसी तरह खड़ा था। वे ही रंग······ केवल कुन्दन के अपने बाल काले से श्वेत हो गये थे। उसका अपना रंग केवल मुरझा गया था। ऊपर की ठण्डक के बावजूद कुन्दन ने भीतर से चिपचिपाहट महसूस की। अतीत की याद पूरी बारीकी से उसकी साँसों के सामने आ खड़ी हुई थी। उसकी तन्द्रा तब टूटी जब रामजी सरदार अपनी जगह से उठकर नाले को पार कर गया। झटके के साथ कुन्दन ने उसकी ओर देखा और चिल्ला पड़ा, "रुक जाओ !"

उसकी आवाज पहाड़ों के बीच गूँजती रह गयी। [illegible] की [illegible]

सरदार दौड़ता रहा। झाड़ियों से होता हुआ पागल की तरह टेढ़े-मेढ़े वह भागता रहा। कुन्दन दोबारा चिल्लाया। दोबारा प्रतिध्वनियाँ होती रहीं। वह भागता रहा, गिरता-उठता वह दौड़ता रहा। उसके हाँफने की आवाज नाले की तरंगों की आवाज से भी तेज थी। क्षण-भर के लिए जो बदली फटी थी, वह फिर घनी होने लगी। नदी पार करने से पहले कुन्दन रामजी सरदार के आगे जा खड़ा हुआ।

दोनों एक-दूसरे के सामने खड़े रहे। ढीले पड़ जाने से दोनों एक-दूसरे को हाँफते देखते रहे। आती-जाती लम्बी साँसों के साथ कुन्दन ने कहा, "तुम अब इससे आगे नहीं जा सकते सरदार!"

"तुम मुझको रोकत है?"

"बैठ जाओ।"

"मैं नहीं बैठने को।"

"मैं कहता हूँ बैठ जाओ।"

"तुम काहे को हो हमार पीछे?"

"जीवन-भर तुम मजदूरों के पीछे रहे हो।"

"तुम्हारी शिकायत कर दूँगा।"

"किससे?"

"मालिक से।"

"इससे पहले मैं तुम्हें ऊपरवाले मालिक के पास भेज दूँगा।"

"तू पागल है।"

"तुम बैठते हो या नहीं?"

"मुझे क्यों रोक रहे हो?"

"क्यों? जुल्म ढाते ही रहना चाहते हो?"

"का चाहत हो तुम?"

"तुमने जिन्दगी-भर चुगली की है। अब आगे नहीं करोगे।"

"मुझे जाने दो।"

"कहाँ?"

"घर।"

"तुम्हारा घर इधर भी है क्या?"

"आखिर क्या चाहते हो तुम?"

"तुमने जिन्दगी-भर मजदूरों को धोखा दिया है। अब आगे नहीं दोगे।"

"ठीक है, अब हम किसी को धोखे नाहीं देंगे।"

"तुमने जिन्दगी-भर मजदूरों पर बाँसों की बौछार की है।"

"अब आगे नाहीं करूँगा।"

"जिन्दगी-भर तुमने हमारी बहू-बेटियों को बेचा है। एक-एक मजदूर का हक मारा है तुमने।"

"अब नाहीं मारता।"

"तुमने बाजार में आदमी को गुलाम की तरह बेचा है।"

"यह पुरानी बात है।"

"आज भी तुम व्यवसाय करते हो। मजदूरों को हाथ को बेच-बेचकर तुम आय बढ़ा रहे हो।"

"मुझे देर होवत है।"

"नहीं, तुम्हें देर नहीं होगी। तुम ठीक समय पर पहुँचोगे।"

"कहाँ ?"

"जहाँ तुम्हें पहुँचना है।"

"मुझे कहीं नहीं पहुँचना है।"

"तो फिर बैठ जाओ।"

"मैं नहीं बैठूँगा।"

"बैठ जाओ।"

रामजी सरदार इस तरह बैठ जाता है जैसे किसी ने धक्का देकर बिठा दिया हो। उसके बैठ जाने पर कुन्दन भी भीगी घास पर बैठ जाता है। कुन्दन व्यंग्य-भरी हँसी के साथ कहता है, "तुम मालिक को रेखा का पता बताने जा रहे थे। अब अच्छी तरह से जान लो कि रेखा तुम्हारे काले कारनामों के लिए लक्ष्मण-रेखा है। अब तो मरकर भी तुम इसे पार नहीं कर सकते।"

"नहीं...मैं...मैं किसी को रेखा का पता नहीं बताऊँगा।"

"तुम झूठे हो।"

"तुम्हारे को जो भी चाहिए मिल जायेगा।"

"मुझे तुम्हारी जान चाहिए।"

"तुम्हारे को मालिक से कहकर जमीन दिलवा दूँगा।"

"तुम्हें जमीन की जरूरत होगी। तुम्हारी लाश को दफ़नाने के लिए।"

रामजी सरदार जल्दी से उठकर भागने लगता है। कुछ ही दूर जाकर लुढ़क जाता है। कुन्दन धीरे-धीरे चलकर उसके पास पहुँचता है। सरदार हाथ जोड़कर गिड़गिड़ाने लगता है।

"मुझे माफ कर दो।"

"तुम्हारे रहते हुए इतिहास नया मोड़ नहीं ले सकता।"

दूर से कुत्तों के भौंकने की आवाजें आती हैं। सरदार तनकर खड़ा हो जाता है। रोब-भरे स्वर में कहता है, "सिपाही आ रहे हैं। कहो। बोलो...बोलो, अब क्यों बोलना है !"

कुन्दन मौन खड़ा रहा।

उसकी आँखों में चमक आयी। वह अपने स्थान से हिला।

कुत्तों की आवाजें पास आती गयीं।

बत्तीस

तीन दिन की वह लगातार बरसात ! किसन को जहाँ उससे सुख होता था, वहीं वह उससे ऊबने लगा। वही भीगी-भीगी हवा, वही ठिठुरा हुआ वातावरण। उसके भीतर की अधीरता भी धीरे-धीरे ठण्डी पड़ती जा रही थी। एक चौथाई दिन बीतने को था। मालिकों की बैठक का अब तक कोई उत्तर नहीं पहुँचा।

किसन ने एक बार फिर उस ऊँचाई से पगडण्डी के दूसरे छोर की ओर देखा। वही सन्नाटा। सभी कुछ मोम की तरह जमा हुआ था। ईर्दगिर्द के सभी मजदूर पहली बार अपने निजी काम में लगे हुए थे, फिर भी उनमें जो सक्रियता होनी चाहिए थी वह नहीं थी। हिम्मत हारे हुए लोग-से लग रहे थे सभी। आसपास के जंगली फूल भी सूर्यकिरणों के अभाव के कारण निखार को बढ़ा नहीं पाये थे। पानी की बूँदों के साथ पत्ते-पत्ते पर उदासी जमी हुई थी। और ''।

और किसन उन सभी को अपने भीतर झेल रहा था। उसकी भी आशाएँ भीतर-ही-भीतर मोम की तरह जम जायें, उसे गवारा नहीं था। वह खोखले आश्वासनों से जूझता रहा। बाहर की सारी शिथिलता, उदासी, जमाव, बेचारगी और निहत्थेपन को वह अपने भीतर बटोर लेना चाहता था ताकि वातावरण मुखरित हो सके, ताकि उसके मित्रों की मुस्कानें वापस आ जायें। पर यह इच्छा कठिन इच्छा थी। यह लड़ाई भारी लड़ाई थी। किसन को अपनी चेतना पर हथौड़े के प्रहार होते-से प्रतीत हो रहे थे।

पुष्पा के लौटे अभी कुछ ही देर हुई थी। वह भी जाते-जाते उसे एक उदासी ही तो दे गयी थी। उसके चले जाने के बाद के कुछ क्षण किसन ने रेखा की उसी निश्छल मुस्कान को याद करते हुए बिताये। इस बार बोलों और कोड़ों की जो बौछार हो रही थी, वह किसन की पीठ पर न होकर उसके हृदय के स्पन्दनों पर हो रही थी। वह पीड़ा कुछ इतनी अधिक थी कि उसे अपना अस्तित्वबोध धूमिल होता-सा प्रतीत होने लगा। आसपास की सारी सच्चाई मिथ्या-सी लगी। चिल्लाना चाहकर भी उससे चिल्लाया नहीं जा सका।

सभी कठिनाइयाँ, सभी समस्याएँ, उलझनें, सभी बाधाएँ अपने आकार के दायरे से बाहर होकर बड़ी हो चली गयी थीं। अब सभी कुछ दैत्य जैसा लग रहा था। किसन एक बार फिर पूरे निहत्थेपन के साथ सारी लाचारी से उस दैत्य के सामने खड़ा था। लेकिन जमी हुई आशा को पिघलाने का उसका प्रयास कम नहीं हुआ था। विकृत स्थितियों में भी किसन को खड़े रहना था, वह खड़ा था।

कुछ ही दूरी पर पेड़ काटे जा रहे थे। पेड़ों के गिरने की आवाज उसके कानों में उस दिन के चट्टानों से टकराते ज्वार-भाटों की आवाज पैदा कर रही थी जब रेखा को साथ लिये वह बस्ती का रास्ता तलाश रहा था। वे आवाजें उसके भीतर की उम्मीदों को झनझनाती हुई, उसके कान के परदों के भीतर विस्तृत होती चली गयी

थी। प्रलयकारी-सी। आवाजों की वह बरछी झनझनाहट के साथ अब उसके मस्तिष्क को भेदती चली जा रही थी। भीतर-ही-भीतर वह लहूलुहान होता रहा। उसके भीतर के भय और संशय ने प्रश्न किया—मालिकों ने हमारी मांगों को ठुकरा दिया तो ?उसके भीतर के पुरुष ने उत्तर दिया—प्रलय तो नहीं आ जायेगा ! लेकिन उसका वही पुरुष रह-रहकर तिलमिला भी उठता था।

कुन्दन अभी तक नहीं लौटा था। जो मनोबल उसे मिलना चाहिए था, वह भी नहीं मिल रहा था। अपने हाथ की कुदाली को नीचे रखकर किसन कुछ देर खड़ा रहा। फिर उसने चहलकदमी शुरू कर दी। सुबह जब वह घर से निकल रहा था, उसकी बहन और रेखा दोनों उसे फाटक तक छोड़ने आयी थीं। रेखा ने मृदु स्वर में पूछा था, "अगर मालिकों का निर्णय हम लोगों के पक्ष में नहीं रहा तो क्या होगा ?"

उस समय किसन ने बड़े आत्मविश्वास के साथ उत्तर दिया था, "उन्हें विवश होकर निर्णय हमारे ही पक्ष में देना होगा और वह भी आज ही।"

न जाने किस आवेश और संवेदना में उसने रेखा को यह उत्तर दिया था। शाम को घर लौटने पर रेखा उसके कन्धे से कुदाली उतारने सामने आ जायेगी। उसकी आंखों में नया प्रश्न होगा। किसन क्या उत्तर देगा उसका ? रेखा के सामने वह हारे हुए व्यक्ति की तरह नहीं पहुंचना चाहता था।

उसकी प्रतिक्रियाओं में विरोधाभास था। वह सोचने लगता, इतनी सारी बरसात नाहक चली जा रही थी। खेतों में गड्ढों की कतारें तैयार थीं। ईख की गुलियां कटी पड़ी थीं। बस, खाद बिछाकर गुलियों पर माटी चढ़ानी थी। वे लोग स्वर्ण-अवसर से चूक रहे थे। फिर वह अपने-आपसे प्रश्न कर बैठता—कौन अवसर चूक रहा है ? हम या मालिक ? दोनों बंटे तो नहीं थे। दोनों को एक ही जमीन पर जीना-मरना था। ऐसा ही था तो फिर समझौता इतना असम्भव क्यों ? पर समझौता किसका और किससे ? उसके विचार अस्तव्यस्त हो जाते। उसकी चहलकदमी बढ़ जाती।

किसन के पास प्रश्न बहुत थे। उत्तर एक भी नहीं था।

उत्तर उसके पास उस समय भी नहीं था जब रेखा ने उससे पूछा था कि वह उसे इतना अधिक महत्त्व क्यों देने लगा था। पुष्पा ने भी जब सवाल किया था कि बरसात के समय भी उमस और उष्णता क्यों होती है तो इसका भी उत्तर उसने नहीं दिया था। बांसों की बौछार के बाद खून से लथपथ रेखा के बाप ने भी दम तोड़ते हुए लक्ष्मनसिंह की साक्षी में किसन से पूछा था, "तोर हाथ छोड़े जात बानी न अपने रेखा के जीवन ?"

इसका भी उत्तर किसन से नहीं बन पड़ा था। उसके अन्तःकरण ने हामी अवश्य भरी थी।

तोरे हाथ छोड़े जात बानी न अपने रेखा के जीवन ?

इसका भी उत्तर किसन से नहीं बन पड़ा था। उसके अपने कन्धे की लकड़ी को

नीचे फेंकते हुए सोनालाल उसी पर बैठ गया। उसके एक हाथ में अब भी नमकरकन्द-लिपटी सीटी थी। आस्तीन से अपने चेहरे के पानी के छींटों को पोंछते हुए उसने सीटी का पहला टुकड़ा दाँत से काटा। आँखों में प्रश्न लिये उसने किसन की ओर देखा। किसन निरुत्तर-सा खड़ा रहा। उसकी आँखें पगडण्डी की ओर मुड़ गयीं। वह सुनसान थी। अपने हाथ की सीटी के आखिरी टुकड़े को खाने के बाद सोनालाल चलने को हुआ। किसन ने उसे रोकते हुए पूछा, "तुम्हें पता है, दिन कितना गया होगा ?"

इस प्रश्न से चौंककर सोनालाल किसन की ओर देखता रहा। काफी देर बाद उसने जवाब दिया, "आधा दिन होने को है।"

तभी पगडण्डी के दूसरे छोर पर कोई दौड़ता हुआ दिखायी पड़ा। अपनी बढ़ गयी धड़कनों की रफ्तार पर काबू पाते हुए किसन उस आनेवाले व्यक्ति की ओर एकटक देखता रहा। वह अभी दूर ही था जब किसन ने उसे पहचान लिया। अपने स्थान ही से चिल्लाकर पूछा, "क्या खबर है दाऊद ?"

एकदम पास आ जाने पर ही हाँफते हुए दाऊद ने कहा, "साहब तुमसे मिलने आ रहा है। उसने तुम्हें सभी लोगों के साथ कारखाने के पास पहुँचने को कहा है।"

सुनने की देर थी कि किसन ने एक जोरदार आवाज में आसपास के लोगों को कारखाने के पास पहुँचने को कहा और खुद सबसे आगे दौड़ गया। उसके भीतर की उत्सुकता पराकाष्ठा पर पहुँच गयी थी। उसी की जैसी स्थिति में कई लोग उसके पीछे दौड़ पड़े। कारखाना बहुत दूर नहीं था। जहाँ से कारखाना साफ दिखायी पड़ना शुरू होता था, वहीं से दौड़ना बन्द करके किसन झपटते हुए चलने लगा। अब तक कोई चालीस से ऊपर लोग दौड़ पड़े थे। साहब बग्गी पर बैठा हुआ था। सभी लोग बग्गी के इर्दगिर्द खड़े हो गये। किसन चुप रहा। दोनों मालिकों ने बाकी लोगों के भी आ जाने की प्रतीक्षा की। लोगों के धैर्य के बाँध के टूटने से पहले रेगों साहब बग्गी से नीचे उतरा और ऊँचे स्वर में बोला, "हम लोग तुम सभी की माँगों को मानते हैं।"

इसके आगे बोलने की आवश्यकता उसे नहीं हुई, क्योंकि भीड़ के उल्लास-भरे स्वर में उसकी बाकी बातों को सुनना असम्भव था। किसन आगे बढ़ा। भर्राये हुए स्वर में उसने कठिनाई से कहा, "बहुत-बहुत धन्यवाद साहब !"

"कल सुबह बोआई शुरू कर देनी होगी।"

"आज्ञा हो तो अभी ही शुरू कर दें।"

"आज तुम लोग आराम करो।"

एकसाथ कई लोगों को अपने कानों पर विश्वास नहीं हुआ। बग्गी के चले जाने के बाद किसन को आगे रखे हुए वह भीड़ गाती-बजाती बस्ती की ओर लौट पड़ी। उस उल्लसित क्षण में भी किसन को कुन्दन की अनुपस्थिति खटकी। वह देवनन्दन चाचा के गले में बाँहें डालकर नाचना चाहता था। वह कुन्दन ही था जिसे इस नये दिन का सारा श्रेय वह देना चाह रहा था। भीड़ के कई लोगों से उसने कुन्दन के बारे में पूछा। उसकी खबर किसी को नहीं थी।

थी। प्रलयकारी-सी। आवाजों की वह बरछी झनझनाहट के साथ अब उसके मस्तिष्क को भेदती चली जा रही थी। भीतर-ही-भीतर वह लहूलुहान होता रहा। उसके भीतर के भय और संशय ने प्रश्न किया—मालिकों ने हमारी माँगों को ठुकरा दिया तो ? उसके भीतर के पुरुष ने उत्तर दिया—प्रलय तो नहीं आ जायेगा ! लेकिन उसका वही पुरुष रह-रहकर तिलमिला भी उठता था।

कुन्दन अभी तक नहीं लौटा था। जो मनोबल उसे मिलना चाहिए था, वह भी नहीं मिल रहा था। अपने हाथ की कुदाली को नीचे रखकर किसन कुछ देर खड़ा रहा। फिर उसने चहलकदमी शुरू कर दी। सुबह जब वह घर से निकल रहा था, उसकी बहन और रेखा दोनों उसे फाटक तक छोड़ने आयी थीं। रेखा ने मृदु स्वर में पूछा था, "अगर मालिकों का निर्णय हम लोगों के पक्ष में नहीं रहा तो क्या होगा ?"

उस समय किसन ने बड़े आत्मविश्वास के साथ उत्तर दिया था, "उन्हें विवश होकर निर्णय हमारे ही पक्ष में देना होगा और वह भी आज ही।"

न जाने किस आवेश और संवेदना में उसने रेखा को यह उत्तर दिया था। शाम को घर लौटने पर रेखा उसके कन्धे से कुदाली उतारने सामने आ जायेगी। उसकी आँखों में नया प्रश्न होगा। किसन क्या उत्तर देगा उसका ? रेखा के सामने वह हारे हुए व्यक्ति की तरह नहीं पहुँचना चाहता था।

उसकी प्रतिक्रियाओं में विरोधाभास था। वह सोचने लगता, इतनी सारी बरसात नाहक चली जा रही थी। खेतों में गड्ढों की कतारें तैयार थीं। ईख की गुलियाँ कटी पड़ी थीं। बस, खाद बिछाकर गुलियों पर माटी चढ़ानी थी। वे लोग स्वर्ण-अवसर से चूक रहे थे। फिर वह अपने-आपसे प्रश्न कर बैठता—कौन अवसर चूक रहा है ? हम या मालिक ? दोनों बँटे तो नहीं थे। दोनों को एक ही जमीन पर जीना-मरना था। ऐसा ही था तो फिर समझौता इतना असम्भव क्यों ? पर समझौता किसका और किससे ? उसके विचार अस्तव्यस्त हो जाते। उसकी चहलकदमी बढ़ जाती।

किसन के पास प्रश्न बहुत थे। उत्तर एक भी नहीं था।

उत्तर उसके पास उस समय भी नहीं था जब रेखा ने उससे पूछा था कि वह उसे इतना अधिक महत्त्व क्यों देने लगा था। पुष्पा ने भी जब सवाल किया था कि बरसात के समय भी उमस और उष्णता क्यों होती है तो इसका भी उत्तर उसने नहीं दिया था। बाँसों की बौछार के बाद खून से लथपथ रेखा के बाप ने भी दम तोड़ते हुए लछमनसिंह की साक्षी में किसन से पूछा था, "तोर हाथ छोड़े जात बानी न अपने रेखा के जीवन ?"

इसका भी उत्तर किसन से नहीं बन पड़ा था। उसके अन्तःकरण ने हामी अवश्य भरी थी।

तोरे हाथ छोड़े जात बानी न अपने रेखा के जीवन ?

इसका भी उत्तर किसन से नहीं बन पड़ा था। उसके अपने कन्धे की लकड़ी को

नीचे फेंकते हुए सोनालाल उसी पर बैठ गया। उसके एक हाथ में अब भी सब्ज़ीकन्द-लिपटी रोटी थी। आस्तीन से अपने चेहरे के पानी के छींटों को पोंछते हुए उसने रोटी का पहला टुकड़ा दाँत से काटा। आँखों में प्रश्न लिये उसने किसन की ओर देखा। किसन निरुत्तर-सा खड़ा रहा। उसकी आँखें पगडण्डी की ओर मुड़ गयीं। वह सुनसान थी। अपने हाथ की रोटी के आखिरी टुकड़े को खाने के बाद सोनालाल चलने को हुआ। किसन ने उसे रोकते हुए पूछा, "तुम्हें पता है, दिन कितना गया होगा ?"

इस प्रश्न से चौंककर सोनालाल किसन की ओर देखता रहा। काफी देर बाद उसने जवाब दिया, "आधा दिन होने को है।"

तभी पगडण्डी के दूसरे छोर पर कोई दौड़ता हुआ दिखायी पड़ा। अपनी बढ़ गयी धड़कनों की रफ्तार पर काबू पाते हुए किसन उस आनेवाले व्यक्ति की ओर एकटक देखता रहा। वह अभी दूर ही था जब किसन ने उसे पहचान लिया। अपने स्थान ही से चिल्लाकर पूछा, "क्या खबर है दाऊद ?"

एकदम पास आ जाने पर ही हाँफते हुए दाऊद ने कहा, "साहब तुमसे मिलने आ रहा है। उसने तुम्हें सभी लोगों के साथ कारखाने के पास पहुँचने को कहा है।"

सुनने की देर थी कि किसन ने एक जोरदार आवाज़ में आसपास के लोगों को कारखाने के पास पहुँचने को कहा और खुद सबसे आगे दौड़ गया। उसके भीतर की उत्सुकता पराकाष्ठा पर पहुँच गयी थी। उसी की जैसी स्थिति में कई लोग उसके पीछे दौड़ पड़े। कारखाना बहुत दूर नहीं था। जहाँ से कारखाना साफ दिखायी पड़ना शुरू होता था, वहीं से दौड़ना बन्द करके किसन झपटते हुए चलने लगा। अब तक कोई पचास से ऊपर लोग दौड़ पड़े थे। साहब बग्गी पर बैठा हुआ था। सभी लोग बग्गी के इर्दगिर्द खड़े हो गये। किसन चुप रहा। दोनों मालिकों ने बाकी लोगों के भी आ जाने की प्रतीक्षा की। लोगों के धैर्य के बाँध के टूटने से पहले रेमों साहब बग्गी से नीचे उतरा और ऊँचे स्वर में बोला, "हम लोग तुम सभी की माँगों को मानते हैं।"

इसके आगे बोलने की आवश्यकता उसे नहीं हुई, क्योंकि भीड़ के उल्लास-भरे स्वर में उसकी बाकी बातों को सुनना असम्भव था। किसन आगे बढ़ा। भर्राये हुए स्वर में उसने कठिनाई से कहा, "बहुत-बहुत धन्यवाद साहब !"

"कल सुबह बोआई शुरू कर देनी होगी।"

"आज्ञा हो तो अभी ही शुरू कर दें।"

"आज तुम लोग आराम करो।"

एकसाथ कई लोगों को अपने कानों पर विश्वास नहीं हुआ। बग्गी के चले जाने के बाद किसन को आगे रखे हुए वह भीड़ गाती-बजाती बस्ती की ओर लौट पड़ी। उस उल्लसित क्षण में भी किसन को कुन्दन की अनुपस्थिति खटकी। वह देवनन्दन बाबू के गले में बाँहें डालकर नाचना चाहता था। वह कुन्दन ही था जिसे इस [illegible] का सारा श्रेय वह देना चाहता था। भीड़ के कई लोगों से उसने कुन्दन के बारे में [illegible] उसकी खबर किसी को नहीं थी।

बस्ती तक पहुँचते-पहुँचते औरतें भी उनके साथ मिलकर अपनी खुशी जाहिर करने लगी थीं। बिना कुछ समझे-बूझे बच्चों ने भी अपने ढंग से लोगों का साथ दिया। वर्षा अब भी हो रही थी। बादल अब भी उमड़े हुए थे। लोग गाते रहे, बजाते रहे। एक झूमर के बाद दूसरा झूमर·····वह चलता रहा। शाम कैसे हो गयी, किसी को पता तक नहीं चला।

किसन की नजर रेखा पर पड़ी। उसका अपना मस्तक ऊपर उठ गया। रेखा के चेहरे पर वही निर्मल मुस्कान थी। वह उतनी ही खुश थी, जितना किसन था। भीड़ के बीच होते हुए भी दोनों एक-दूसरे को मुस्कराते देखते रहे। किसन को रेखा के बाप की एक क्षणिक याद आयी। उसने अभी तक रेखा को उसके बाप के चल बसने की बात नहीं बतायी थी। यह क्षण भी उस बात के लिए थोड़े ही था! किसन आगे बढ़ा और रेखा के दोनों हाथों को अपने हाथों में लेकर घूम गया। रेखा के नेत्रों में खुशी के आँसू डबडबा आये थे।

अँधेरा छाने लगा था। मशालें जलायी गयीं और उनके प्रकाश में गाना-बजाना होता रहा। वह गोपाल था जो सबसे देर से पहुँचा था। सातों माँगें मंजूर कर ली गयी थीं, यह सुनकर वह भी पागलों की तरह उछलने लगा। उस खुशी में वह लोगों को यह बताना तक भूल गया कि रामजी सरदार की हत्या के जुर्म में कुन्दन को गिरफ्तार किये जाने के बाद बड़े कैदखाने में भेज दिया गया था। जंजीरों से जकड़े अपने हाथों को ऊपर उठाते हुए कुन्दन गोपाल से केवल इतना कह पाया था, "किसन से कह देना मैं अपने घर को लौट रहा हूँ।"

इस वाक्य का अर्थ गोपाल की समझ में नहीं आया था।

वर्षा होती रही। लोग गाते-बजाते रहे।

तेंतीस

बस्ती के आठ आदमियों के एक ही साथ बीमार पड़ने की बात से सभी लोग भयभीत हो गये थे। पिछले ही सप्ताह यह सुनने को मिला था कि उधर दक्षिण की दो बस्तियाँ इस रोग से उजड़ी जा रही थीं। यह खबर वह आदमी लाया था जो आज भी बैठके में छिपा हुआ था। वह अपनी पत्नी और बच्चे की लाशों को जलाने के लिए लकड़ी काटते हुए पकड़ा गया था। उसने गोरे के हाथ से चाबुक छीनकर उसीसे उसकी नरेटी कस दी थी। वह बुखार लिये इस बस्ती में पहुँचा था। वैद्यजी की दवाई से जिस दिन उसका बुखार उतरा, उसी दिन बस्ती के आठ आदमी एकसाथ बीमार पड़े। वह बुखार जो माथे पर धधकता-सा लगे और जिससे शरीर का रंग साँवला हो जाये। रेखा की बस्ती की ओर जाने का रास्ता बन्द था। सुनने को मिला था कि वैद्यजी भी नहीं रहे। जड़ी-बूटियाँ समाप्त हो चली थीं। किसन तीन बार मालिक से मिल आया

था ... तीनों बार दवा के प्रबन्ध का आश्वासन लेकर लौटा था। देखते-ही-देखते कुछ अधिक लोग बीमार हो गये थे। सरदारों ने ज़बर से दाग़ लोगों को घर के भीतर से घसीटकर बाहर निकाला था। उन्हें कुदालियाँ थमाकर खेतों में ढकेल दिया था।

अभी सात दिन भी नहीं बीते थे। वह मालिक ! वे सारे आश्वासन ! सभी वायदे उड़ गये थे कपूर की तरह। मिठुवा का शरीर उसी समय ठण्डा पड़ गया था जब दो सरदार उसे दो तरफ़ से घसीटे लिये जा रहे थे। तालिब भी खेतों के बीच पहुँचने से पहले ही चल बसा था। दो सरदारों ने मिलकर उसकी लाश को उसी कुएँ में फेंक दिया जिसका पानी पूरी बस्तीवाले पीते थे। रात को मशाल लिये दो आदमी कुएँ में उतरे थे और किसी तरह तालिब की गली हुई लाश के एक भाग को ऊपर किया था। उसी रात उसे दफ़नाया गया था। तीन दिन तक लोगों ने कुएँ का पानी नहीं पिया। पर और कब तक ? जब जीने को मजबूर हुए तो नाक दाबकर कुएँ से पानी निकाला गया था। नदी जाने का रास्ता बन्द था। और फिर वहाँ का पानी भी साफ़ होना तब तो ?

किसन ने पहले चिल्लाकर सरदारों, फिर मालिकों से कहा था कि अगर बस्ती में कोई वैद्य नहीं पहुँचा और दवाइयों का प्रबन्ध नहीं हुआ तो वह मजदूरों के उस दस्ते से मिलेगा जिसकी चर्चा कुछ दिनों से हो रही थी। उसके साथ वह उस नयी सरकार तक पहुँचेगा जो कि सुनने में आया था कि मजदूरों के पक्ष में है। मालिक ने बड़ी ही गम्भीरता के साथ किसन से छोटा-सा प्रश्न किया था, "तुम वहाँ जाओगे कैसे ?"

किसन के पास कोई उत्तर नहीं था। कोई रास्ता नहीं था। अगर कोई रास्ता निकल भी सकता था तो वह नहीं निकल सका, क्योंकि उसी क्षण किसन को दबोच लिया गया था। उसके हाथ-पाँव बाँधकर उसे काली कोठरी में ढकेल दिया गया जिसमें कठिनाई से दो कदम चला जा सकता था। तीन दिन बाद किसन को कोठरी से बाहर किया गया था। जब बस्ती की तीन लाशों को एकसाथ चिता पर चढ़ाया जा रहा था। पहली बार किसन ने यही सुनी थी कि उस फैलते हुए रोग ने बीस से ऊपर लोगों को दबोच लिया था। किसन को इस शर्त पर आज़ाद किया गया था कि अगर उसने मजदूरों को भड़काया या शिकायत लेकर मालिक के पास पहुँचा तो उसी क्षण उसे फिर से कोठरी के हवाले कर दिया जायेगा। सामने की चिता की धधकती लपटों के बीच किसन के ध्यान उधेड़बुन की तरह प्रज्वलित होते रहे। क्या करें ? उस काली कोठरी में बन्द होने से कौन डरता है। पर बात सिर्फ़ इतनी ही होती तब तो ? कोठरी में बन्द हो जाने के बाद बस्ती में फैलती हुई बीमारी और फिर उसके अपने घर के लोग भी थे। वहाँ की ख़बर तो उसे किसी ने दी ही नहीं। सबसे पहले रेखा का ध्यान आया। वह घर की ओर दौड़ पड़ा। उससे दौड़ना भी नहीं हो रहा था। इतनी अधिक कमजोरी वह पहली बार महसूस रहा था। सामने के इटोरी के पेड़ की डाली को थामकर वह खड़ा हो गया। उसका अपना शरीर लुढ़कता-सा लगा। एक हाथ से

चकराते हुए माथे को उसने थाम लिया, दूसरी से डिठोरी की डाली को कसने का प्रयास किया। मुट्ठी में दम नहीं था। उसका हांफना कुछ कम हुआ और वह चल पड़ा। बस्ती के वे सभी घर दूर भागते-से लग रहे थे। पगडण्डी उसके पाँवों के नीचे से खिसकती-सी प्रतीत हो रही थी।

जिसकी याद उसे बिल्कुल नहीं आयी थी, वही सबसे पहले उसे मिली। पुष्पा अँकवारी में हरी घास लिये हुई थी। किसन की लड़खड़ाती हालत को देखकर उसने घास को नीचे रख दिया। किसन के पास पहुँची।

"क्या हालत बन गयी है तुम्हारी ?"

किसन ने अपने हाथ को उसके कन्धे पर रख दिया। पुष्पा ने उसे घास की चट्टान पर बिठाया।

"मेरे घर के लोग कैसे हैं ?"

"निश्चिन्त रहो। सभी अच्छे हैं।"

कुछ देर बाद किसन ने फिर पूछा, "तुम कैसी हो ?"

"मैं तो सबसे अच्छी हूँ।"

बिना सूरज की दोपहर थी। उस सांवले वातावरण में डालियों के पत्ते तक नहीं हिल-डोल रहे थे। कुछ ही दूरी पर की बस्ती की भूरी दीवार पर किसन की आँखें टिकी रहीं। उस दीवार को बाहर से देखने पर उसे तोड़ डालने का हौसला और भी बढ़ जाता है। केवल बाहर ही से ऐसा लगता है कि इस दीवार को ढाने में जो कठिनाई महसूस होती है वह भ्रम है। उसे तोड़ा जा सकता है······फिर उसने अपने-आपसे पूछा—क्या भीतर से भी ?

"मैं तुम्हारे लिए पानी ले आऊँ ?"

पुष्पा के इस प्रश्न से वह चौंक उठा, "नहीं !"

दोनों बस्ती को चल पड़े।

"यह इतनी-सी घास ?"

"हिरण के बच्चे के लिए।"

"हिरण के बच्चे ?"

"तुम्हें नहीं मालूम क्या ? अरे हां, इधर तुम मिलते भी कहाँ हो ? दाऊद भैया जंगल से पकड़ लाया था। मैंने उसे पालकर इतना बड़ा कर दिया है। चलो देख लेना।"

"इस वक्त नहीं पुष्पा, फिर कभी।"

घने बादल आकाश को घेरे हुए थे। दोनों बिना परछाइयों के चलते हुए फाटक तक आ गये। ऊपर के घने बादल स्थिर थे। उस मोटी परत के पीछे कौन जाने सूरज भी ठिठक गया होगा। लोगों की आँखें चुराकर वह इतना तो कर ही सकता है। तभी तो पीड़न-भरे दिन अधिक लम्बे हुआ करते हैं। किसन भी सूरज की तरह खालीपन में आश्रय तलाश रहा था। एक बार उसने अपने को उस कुत्ते की तरह पाया था जो

आकाश के चाँद से एक टुकड़ा काटने के लिए ऊपर मुँह किये भौंकता ही रह गया था। सम्भवतः भौंकते-भौंकते वह कुत्ता मर गया होगा और चाँद अब भी गोल-का-गोल था।

कुन्ता को उसके घर के पास छोड़कर किसन आगे बढ़ गया था। बस्ती सुनसान थी। सभी लोग नदी के पास दो शवों को जला रहे थे। उस धुँधलके में लपटें ऊपर को उठ रही होंगी ....और अपने घर के सामने पहुँचकर किसन ने पीछे की सभी बातों को पीछे छोड़ दिया। अपने बाप को उसने उसी तरह लेटे पाया जिस तरह वह छोड़ गया था। माँ उसके बाप के पाँव दबा रही थी। सन्ध्या और रेखा कपड़ों में पैबन्द लगा रही थीं। सभी को एकसाथ पाकर किसन की जान-में-जान आयी। किसन को सामने पाकर चारों के चेहरे की वह उदासी मिट गयी। उन आठों आँखों में एकसाथ एक आभा तैरी। स्वर उसके बाप के मुँह से पहले निकला, "किसन !"

माँ उससे लिपट गयी। सन्ध्या अपनी जगह से खड़ी हो गयी। रेखा की आँखें भर आयीं।

किसन जानता था कि घर में कुछ भी नहीं था। कोने के चूल्हे को बुझे तीन दिन होने को थे। उसने रेखा की ओर देखकर कहा, "थोड़ा पानी।"

चौंतीस

कारखाने की ठेलागाड़ी से लाशों को नदी के उस पार किया जाता। पिछली चिता पर एक ही साथ चार लाशों को रखा गया था। बस्ती अधिया गयी थी। बदबू के कारण लोगों के हाथ हर वक्त नाक पर होते थे। कई लोगों की मृत्यु खेतों में काम करते-करते हो गयी थी। बस्ती से खेतों तक फैलती चली जा रही थी बुखार में सनी हुई खाँसी। और खाँसी को रोकने के लिए खड़ी थी मौत की वह ऊँची दीवार। स्पेन के किसी जहाज द्वारा लायी गयी सौगात थी वह महामारी जिसे भारतीय मजदूरों के बीच बिखरने दिया गया था। प्राणों के लाले पड़े थे जिन क्षणों में, उन्हीं क्षणों में रेमों साहेब के बेटे ने अपने घोड़े पर से दाऊद को अपने पास बुलाया था।

"कौमी तालेग थी ?"

"दाऊद।"

"तो तुम्हीं हो ?"

दो दिन हुए थे, दाऊद ने एक सरदार को कह दिया था कि जहन्नुम में जाये मालिक का हुकुम। छोटे साहब की बन्दूक की नाली पर नजर पड़ते ही दाऊद को अपने बड़े भाई की याद आ गयी। इसी नली का वह शिकार हुआ था। दाऊद के मुँह से शब्द नहीं निकला। वह खड़ा रहा। तैयार था मालिक के हुकुम को जहन्नुम भेजने की सजा भुगतने के लिए कि तभी रेमों साहेब के बेटे ने कहा, "पास आओ।"

"क्या ?"

"इतनी अधिक खूबसूरत तुम्हें नहीं समझा था।"

"यह क्या उटपटांग बात कर रहे हो ?"

"तुम किसकी खातिर हो ?"

"क्या मतलब ?" सारे भोलेपन को साथ लिये हुए था यह छोटा-सा सवाल।

"तुम सिर्फ मेरी खातिर क्यों नहीं हुई ?"

"मैं सिर्फ तुम्हारी खातिर हूँ।"

"नहीं जीनत, नहीं।"

"और जिनकी खातिर थी वे तो चल बसीं।

"तुम सिर्फ मेरी खातिर नहीं हो जीनत......।"

एक गहरे सन्नाटे के बाद हुआ वह विस्फोट।

"शाम को तुम्हें रेमों साहब के बेटे के यहाँ जाना है।"

विस्फोट के बाद फिर सन्नाटा। फिर तनाव। फिर आन्तरिक कोलाहल। जीनत की सूखी हुई आंखों से पहले आंसू टपके, फिर दाऊद की आंखों से। जीनत के दोनों हाथों को अपने हाथों में लेकर दाऊद ने धीरे से कहा, "जीनत, ऐसा पहली बार तो नहीं हो रहा।"

जीनत चुप रही।

"लोग मर रहे हैं बिना खाना, बिना दवाई।"

जीनत सुनती रही।

"यह फैलती महामारी। इसे रोकने की कोशिश तो की जा सकती है। हम दोनों शायद इसे कर सकें। अगर कर पाये तो कितना बड़ा काम होगा, जानती हो ?"

जीनत को लगा, दाऊद के स्वर में वह लहजा था जो पागलों की आवाजों में होता है। फिर भी वह चुपचाप सुनती रही।

"एक जाति तबाह होने से बच जायेगी। एक छोटी-सी कीमत में यहाँ अनाज पहुँच सकता है, दवाइयाँ आ सकती हैं। तुम सुन तो रही हो न ?"

जीनत ने सिर हिलाकर हामी भर दी।

"मौका अच्छा है। क्यों न उठा लें इसका फायदा ? क्यों, क्या कहती हो तुम ? बस, इस तरह चुप बैठी रहोगी ? कुछ बोलो भी तो......।"

"क्या, बोलो ?"

"तुम्हें मंजूर है न ?"

"क्या ?"

"यह, यहाँ पर दवाई और अनाज पहुँच सके।"

"यह मंजूर क्यों न हो ?"

"ठीक है। तो फिर......शाम होने में अधिक देर नहीं......तुम तैयार हो

जाओ।"

"कहाँ जाने के लिए ?"

"बस्ती के लिए अनाज और दाना लाने।"

"कहाँ ?"

"रेमों साहब के बेटे के पास।"

"तुम पागल तो नहीं हो गये ?"

"पागल क्यों ? मौके की बात कर रहा हूँ। मौका अच्छा है। एक बहुत बड़े उद्देश्य के लिए थोड़ी देर आँखें मूंद लेने से क्या अनर्थ हो जायेगा ? तुम औरत हो जीनत। और औरत की देह रोटी का कोई टुकड़ा नहीं होती जो किसी के मुंह लगने से जूठी हो जाये। तुम जूठी नहीं होओगी। पर याद रहे, अपने को उसके हवाले करने से पहले सौदा हो जाना चाहिए। तुम पहले उसे राजी कर लेना, फिर अपने को समर्पित करना।"

बगल से किसी के रोने की आवाज आयी। मर गया होगा फिर कोई !

पैंतीस

जहाँ पगडण्डी मरती थी, वहाँ से आगे विस्तृत मैदान खुलता था। सारी बची-खुची ताकत के साथ दौड़ता हुआ किसन दाऊद और जीनत के आगे जा खड़ा हुआ। उससे खड़ा नहीं रहा गया। बिछी हुई हरी दूब पर वह लुढ़क गया। दाऊद और जीनत से आगे नहीं बढ़ा गया। दोनों खड़े रहे। किसन जोरों से हाँफता हुआ थोड़ी-बहुत शक्ति बटोरने के प्रयास में लगा रहा। तब तक वे दोनों चुपचाप खड़े रहे।

आँखों को ऊपर करके दोनों को देखते हुए किसन आखिर बोल सका, "कहाँ जा रहे हो तुम दोनों ?"

उत्तर देर से आया। वह भी प्रश्न बनकर।

"क्या करेंगे यहाँ ?"

"भाग रहे हो ?"

"कोई दूसरा चारा भी है क्या ?"

"कहाँ-कहाँ भागोगे ?"

"तुम चाहते हो कि मैं जीनत को उस भेड़िये के हवाले कर दूं ?"

"मैं यह चाहता हूँ क्या ?

"तो फिर क्या चाहते हो ?"

प्रश्न-ही-प्रश्न। अब तक एक भी उत्तर सामने नहीं आया था। किसन ही को उत्तर देना पड़ा, "सामना किया जा सकता है।"

"वह तो उस पहली घड़ी में किया जा रहा है जब सभी के सामने पहली औरत

को नंगी किया था। सभी के सामने उस औरत के साथ……।"

जीनत बीच में बोल उठी, "किसन भैया, हम किसी दूसरी जगह तो जी सकते हैं।"

"वह दूसरी जगह इस टापू में कहीं नहीं है जीनत ! यह कटघरा इतना बड़ा है कि इसमें खुली जगहों का भ्रम हो जाता है, जबकि यहाँ ऐसी कोई भी जगह नहीं। तुम्हें इस छोर से उस छोर तक कोई भी जगह नहीं मिलेगी जहाँ गोरे जमींदारों के खूंख्वार कुत्ते तुम्हारी बोटी को नोचने के लिए दौड़ न आयें।"

"मर जाने के लिए तो कोई जगह मिल जायेगी ?"

"दाऊद, यह तुम कह रहे हो ?"

सूरज स्याही फैलाकर भाग गया था।

अपनी जगह से उठते हुए किसन ने धीरे से कहा, "अँधेरा फैलता जा रहा है।"

"अभी जान रहे हो ?" व्यंग्य-भरी धुंधली मुस्कान के साथ दाऊद ने पूछा।

"लौट चलें।"

"कहाँ ?"

"यह क्या बचपना करने लगे ?"

"पूछ रहा हूँ कहाँ लौटने की बात कर रहे हो ?"

"तुम्हारा कोई घर भी तो है।"

"है क्या ?"

"तुम्हारे घर को अगर कभी तुम्हारी जरूरत हुई तो वह आज है। आज पूरी बस्ती को तुम्हारी जरूरत है दाऊद।"

"बस्ती को लाशों का अभाव पड़ गया क्या ?"

"कन्धों का अभाव पड़ गया है। लाशों को उठानेवाले कन्धों का।"

आकाश पर पहला तारा झिलमिलाया। किसन ने अपने दाहिने हाथ को दाऊद के कन्धे पर रखा। अपने हाथ को वहाँ रखे-रखे किसन ने कई प्रश्न किये। दाऊद से एक का भी उत्तर नहीं बन पड़ा। अपने पिछले प्रश्न को किसन ने फिर से दोहराया :

"कहो दाऊद, अब और कौन रह गया है तुम्हारे बिना ? अगर तुम्हें जाना ही है तो कम-से-कम एक ऐसे व्यक्ति का नाम तो बताते जाओ जो उस समय भी मेरी बगल में होगा, जब इस लड़ाई में मेरी उम्मीद की एक आखिरी साँस बाकी रह जायेगी !"

जीनत की आँखों से जो बूँदें टप् से टपक गयीं, उन्हें दोनों ने नहीं देखा।

"लौट चलो दाऊद। मरने के लिए अपने आँगन से बेहतर कोई दूसरी जगह हो ही नहीं सकती।"

दाऊद अब भी चुप था। उसे अपने बाप की एक बात याद आ गयी थी—आदमी के ना चाहला हार माने के जनावर से।

इस वाक्य का सन्दर्भ दाऊद को भलीभाँति ज्ञात था। वह भीतर-ही-भीतर काँप गया। जीनत ने भर्रायी हुई आवाज में कहा, "हम बस्ती को लौट चलें।"

दाऊद कुछ नहीं बोला।

उसके पाँव उठे। और कलमानव की तरह वह बस्ती की ओर चल पड़ा। अब तक की रोकी हुई साँस को छोड़कर किसन ने लम्बी साँस ली। जीनत की ओर देखा। अँधेरा बढ़ गया था। दोनों दाऊद के पीछे चल पड़े। आकाश तारों से खचाखच भर आया था। पूर्व की ठण्डी हवा दो पहाड़ों के बीच से होती हुई विस्तार पाने लगी थी। दाऊद अब भी उस अँधेरे में नींद में चलनेवाले की तरह चल रहा था। उसके कानों में इस्लाम मियाँ के वे शब्द बज रहे थे, जो मरने से पहले कह गया था—इस दुनिया को तीन चीज़ों की जरूरत होती है।......वह टिकी रहती है इन्हीं तीन चीजों पर—मुद्दतों से चली आयी अच्छाइयों की परतें...... उसी जोड़न से तैयार वह लड़ाई जो बुराई को उखाड़ फेंकने के लिए हो...... और लड़नेवालों का अपने ऊपर का भरोसा।

दाऊद के कदम तेज हो गये। अगर मरना ही है तो इस्लाम मियाँ की मृत्यु क्यों न मरा जाये? बहुत बड़ी कीमत चुकानी पड़ी थी उसे, बस्ती के कुएँ में मालगासी सरदार को पेशाब करने से रोकने के लिए।

दाऊद को अपने ऊपर हैरत हुई। वह कैसे भाग सकता था इस बस्ती से?

कई दिनों से लोग सुनते आ रहे थे कि बस्ती में मजदूरों का रक्षक पहुँचनेवाला है। जितने मुँह उतनी बातें। कोई कहता, उसके आते ही हमारी स्थिति सुधर जायेगी। कोई कहता, वह हमारी सभी फरियादों को सरकार तक ले जायेगा। सरकार मामले पर ध्यान देगी या नहीं, यह नहीं कह सकते। दिन बीतते गये, बस्ती में मजदूरों के रक्षक की चर्चा रोज होती रहती, पर कभी कोई रक्षक नहीं पहुँचा। लोगों को जो पिछली खबर मिली वह यह थी कि मजदूरों का वह रक्षक इस ओर आया अवश्य था, परन्तु मालिक की कोठी से आगे नहीं बढ़ सका। वह उधर ही से खुशी-खुशी लौट गया था। इसी तरह वह आयोग भी अपनी सभी छानबीन को कोठी तक ही पूरा करके लौट गया था। मालिक और सरदारों के मुँह से मजदूरों की सन्तोषजनक कहानी उसने वहीं सुन ली थी।

किसन बार-बार अपने-आपसे यह कहकर रह जाता—ऐसी घड़ी में देवनन्दन चाचा साथ नहीं। कुन्दन का अभाव किसन के सभी हौसले को डगमगा जाता। कुन्दन जो योजना बना गया, वह आज भी बैठके की पुस्तकों के बीच दबी पड़ी थी। किसन को लगता कि उस योजना को साकार करने का यही समय था......लेकिन कुन्दन के बिना? उस दिन बैठक के बाद वह उस पुस्तक को साथ ले आया था जिसमें कुन्दन की सारी योजना के चार-पाँच पन्ने थे। उसने उन्हें दो बार पढ़ा। अब इस योजना के अलावा कोई दूसरा चारा नहीं था।

महामारी एक-एक करके लोगों को निगलती जा रही थी। अब तक बच्चों और औरतों को छोड़कर बाईस मर्द महामारी के शिकार हो चुके थे। चौवालीस भुजाएँ

कम हो गयी थीं। मृत्यु का यह सिलसिला बना रहा तो पूरी बस्ती को श्मशान में परिवर्तित होने में महीना-भर से अधिक नहीं लगेगा। किसन को भय था तो बस देरी का। कहीं देर न हो जाये और……। बस्ती की मृत्यु का बस महीना-भर बाकी था। पूरी बस्ती भयभीत थी। आंखों में भूख थी। पीड़ा थी। मृत्यु का भय था। बस्ती का गाना-बजाना बन्द था। सुनसान ! सभी दरवाजे बन्द होते गये, मौत बस्ती में मंडरा रही थी और उसे अपने घर के भीतर प्रविष्ट होने से रोकना था। अपने भीतर के भय को हटाने के लिए जहां-तहां से हनुमानचालीसा का स्वर सुनायी पड़ता रहता। लोग अपने वर्तमान और भविष्य सभी कुछ बेचकर बैठे-से लग रहे थे। जो भी लोग बच्चे हुए थे अपने सामने की निर्धारित मृत्यु को जानते थे। सभी जानते थे कि वह आयेगी और सभी को उसकी प्रतीक्षा थी, फिर भी लोग तावीज बांधे जा रहे थे। देवी मैया की मनौतियां होती जा रही थीं।

किसन के बाप की पलकें बोझिल होती गयीं। शरीर का रंग सफेद होता गया। आंखें सूखती गयीं। शरीर का तापमान घटता गया। किसन की मां अपने बेटे से लिपटकर चिल्ला उठी, "अब कोई ना बची किसन !"

"नहीं मां, अभी भी समय है।"

लेकिन उसके बाप का जो समय बाकी था, वह बहुत कम था। शाम होते-होते वह समय पूरा हो गया। किसन कोने में खड़ा-खड़ा सभी को रोते देखता रहा। होश आने पर वह आगे बढ़ा। सबसे पहले अपनी मां को अपने बाप के शव से अलग किया। फिर सन्ध्या को हटाया और उसके बाद रेखा को। उसकी मां फिर से लाश की ओर बढ़ी। किसन चिल्ला उठा, "नहीं !"

उसने यह 'नहीं' उस मौत को कहा था जो उसके अपने घर के भीतर भी आ ही गयी थी। उसका वह बाप जीवन से इस्तीफा दे ही चुका जो यह कहते आया था कि जीवन में इस्तीफा नहीं होता। क्या वह सचमुच इस्तीफा था या जिन्दगी की हद थी ? अपने सामने के गहरे अंधेरे में भी किसन ने उन सारे दृश्यों को देखा जहां उसके बाप का जीवन उस हद तक पहुंचता रहा था। इस्तीफा का मतलब तो हट जाना होता है। कब हटा था उनका बाप ? तो फिर वह संघर्ष समाप्त हो गया क्या ? संघर्ष कैसे मिट सकता है ? वह तो एक हाथ से दूसरे हाथ को पहुंचनेवाली चीज होती है। एक हाथ थका और दूसरे ने उसे थाम लिया।

किसन की मां की बेहोशी लम्बी रही। उतनी ही लम्बी रही उसके बाद की वह खामोशी, तीन रातों की एक लम्बी रात, अपलक और घटाटोप। किसन के भीतर का भय उसके दुख से अधिक था। भय क्यों ? भय चेतना और साहस को मारनेवाला होता है। भय भी तो एक दूसरी तरह की मृत्यु ही होती है। वह मृत्यु आदमी के संकल्प और शक्ति की मृत्यु होती है। किसन को लगा कि उसके बाप की मृत्यु मात्र एक शरीर की मृत्यु नहीं थी। वह मृत्यु एक युग की थी। उसने वर्तमान के लिए भय पैदा कर दिया था। वह भय किसन को भूलभुलैया में ढकेल गया था। वह स्थिति अपने

अस्तित्व को भूल जानेवाली स्थिति होती है। उस बेसुधी में भी किसन का प्रण जाग रहा था। उसे भय का सामना करना था। यह भय उसके ऊपर से और उसके भीतर गुजर जायेगा और वह तटस्थ रहेगा। रहेगा ?

उसके पाँव काँप रहे थे। उसके होंठ हिले और उसने सुना अपनी ही आवाज को—एक जाति के लिए मृत्यु से भी गयी-गुजरी कोई चीज होती है जिसके सहारे वह जीने को विवश होता है।

मस्तिष्क शरीर को आदेश देकर हर तरह का काम करवा लेता है, लेकिन मस्तिष्क अपने-आपको आदेश देकर उस आज्ञा का पालन नहीं करवा पाता। यही बात किसन के साथ हो रही थी। शरीर की कमजोरी ने उसे अब तक नहीं कँपाया था, पर वह दूसरी कमजोरी उसको कँपा ही गयी।

काँपता हुआ वह बाहर आ गया।

किसी दूसरी मृत्यु का आगम देने के लिए कोई भी कुत्ता बाकी नहीं था रोने को।

पहले तो लोगों को हैरत हुई थी कि मालिक इन मजदूरों को इस तरह मरने क्यों दे रहा था। मजदूरों की कमी हो जाने पर सबसे बड़ी हानि तो उसी की थी। सारे खेत सूख जायेंगे। मालिक के महलों के चारों ओर जंगल उग आयेंगे। लोगों की यह हैरानी उस दिन मिटी जब किसी दूसरे सरदार के मुँह से यह सुना गया कि कौन परवाह करे इन विद्रोही मजदूरों की। दो ही तीन दिन में वह जहाज द्वीप के किनारे से लगनेवाला था जिसमें सत्या का चाचा मालिक के लिए साढ़े तीन सौ मजदूरों को ला रहा था। इस बार बिहार के चुने हुए मेहनती मजदूर होंगे जिसके लिए सत्या के चाचा को हर मजदूर पर माहवार दस आने से लेकर पन्द्रह आने तक मिलने की बात हुई थी। फिर तो मरनेवाले मरते रहें।

छत्तीस

पिछली शाम जब एक बार फिर साहस बटोरकर किसन मालिक की कोठी पर पहुँचा तो उस समय उसके सातों कुत्ते तीन बड़ी हाँडियों को घेरे हुए थे, जिनके भीतर के उबलते हुए पायस से बस्ती के सभी मजदूर तीन दिन तक अपने पेट पाल सकते थे। किसन ने उन हाँडियों को देखा और भूख से विवश जीभ को होंठों पर आने से रोक लिया, फिर भी एक बार कुत्तों के बीच कुत्ता होकर उन हाँड़ियों पर टूट पड़ने के लिए मन-ही-मन तिलमिलाकर रह गया था।

कुत्ते उसकी ओर नहीं लपके थे।

किसी सिपाही ने उसे नहीं रोका था। और न ही मालिक ने उसे गुरेड़कर देखा था। कभी वह पहाड़ी की पगडण्डी से चिल्लाकर अपनी ही आवाज की प्रति-

ध्वनियां सुनने का आदी था। उस बचपन से भिन्न लग रही थी इस बार की उसकी अपनी ही आवाज की खामोश अनुगूंज।

वह लौट आया था।

पर लौटकर चुप नहीं रहा गया था। चुप्पी के विस्फोट से जो धमाका हुआ था, उससे उसके कान के परदे फट गये थे। उस दर्द के कारण प्रतिक्रिया को रोकना उससे सम्भव नहीं हो सका। उधर उसकी मां लेटी हुई थी। अब-तब।

वह निर्णय तो लेना ही था। इसलिए उसी क्षण बैठक हुई और पन्द्रह व्यक्ति निकल पड़े उस कोठरी को जहां अनाज बन्द था।

जहां अनाज बन्द था वहां कुत्ते खुले हुए थे। किसन की अगवानी में आते हुए जुलूस को देखकर चारों सिपाहियों ने बन्दूकें तान ली थीं। इस बार तो ये लोग प्रण के साथ पहुंचे थे। सिपाही स्थिति को समझ पाते कि इससे पहले पन्द्रहो व्यक्ति झपट पड़े थे।

कुत्ते भी झपटे, फिर भाग गये थे।

बन्दूकें दूसरे हाथों में आ गयी थीं। चारों सिपाहियों को एकसाथ बांध दिया गया था। अनाज की कोठरी का दरवाजा खोलकर आठ व्यक्ति भीतर पहुंचे थे। चारों सिपाही उन्हें बोरों के साथ जाते देखते रह गये थे। बन्दूकें तोड़कर नाले में फेंक दी गयी थीं।

सभी कुछ बहुत कम समय में हो गया था और बहुत ही कम समय में किसन की मां भी चल बसी थी।

किसन मुक्त था। वे बाकी चौदह व्यक्ति भी मुक्त थे। कोई सिपाही बस्ती तक नहीं पहुंचा। बांसों की कोई बौछार नहीं हुई। कोई गिरफ्तार नहीं हुआ। जंजीरें खनखनायीं नहीं। मालिक चुरुट पीता हुआ अपनी झूलती हुई कुरसी से नहीं उठा।

आज तीसरा दिन था, लोग अब भी मुक्त थे।

और आज ही समुद्रतट से वह जहाज लगा जो नये और अधिक परिश्रमी मजदूरों के साथ पहुंचा था।

दूसरा भाग

जिस दिन आहों से कंकड़ हीरे में बदलने लगेंगे, उस दिन गरीबों की आहें जब्त कर ली जायेंगी।
जिस दिन पसीने और आंसू की बूंद मोती में बदलेंगे, उस दिन मजदूरों के रोम-कूपों को चुन दिया जायेगा, उनके आंसुओं पर पाबन्दी लग जायेगी।

एक

धरती, स्मृतियों की गंधीली धरती। मिट्टी की महक, भीनी-भीनी महक।

खेतों की हरियाली पर तैरती हुई सोंधी हवा। झीनी-झीनी हवा।

और—

सात लम्बे वर्षों की प्रतीक्षा।

कुटिया के पिछवाड़े की मुंडेर गरदन तक आ गयी थी। उस पहले दिन से रोज एक पत्थर को वह मुंडेर पर चढ़ाता आ रहा था। सात वर्ष लम्बी मुंडेर थी वह। अब उसकी ताकत के साथ उसका धैर्य भी जवाब देने लगा था। कुटिया के पिछवाड़े में मुंडेर की कोई खास जरूरत नहीं थी। पहाड़ के काफी ऊपर तक देवदारु के पेड़ थे जो बहुत घनी दीवार का काम कर रहे थे। उस ऊँची दीवार के बावजूद वह मुंडेर बनाता रह गया था—सात सूने नीरस वर्षों तक।

सात वर्ष की सजा।

उसका अपना बेटा अपनी सात वर्ष की सजा पूरा कर रहा था। सात वर्ष की वह अवधि पूरी होकर भी अभी अधूरी थी। अभी कुछ दिन और बाकी थे। मुंडेर पर कुछ पत्थरों को चढ़ना था। उसने सुन रखा था कि कैद में अगर कैदी का व्यवहार अच्छा रहा तो उसकी रिहाई समय से पहले हो जाती है। उसके अपने बेटे के साथ ऐसा नहीं हुआ था। मुंडेर के एक-एक पत्थर को गिनकर उसे इस बात का विश्वास हो गया था कि बेटे के साथ किसी तरह की रियायत नहीं हो पायी थी।

कुटिया के आगे की बड़ी-सी चट्टान के पास खड़े होकर वह नीचे की ओर देखा करता। बहुत नीचे थी वह पगडण्डी जो बस्ती तक जाकर ओझल हो गयी थी। उस दिन उस दुर्गम पगडण्डी से वह उतर ही गया था। बस्ती के लोग उसे देखकर हैरान रह गये थे। उस जर्जर शरीर के साथ उसका नीचे उतर आना सभी को अचरज-सा लगा था। पर वह अचरज सपना नहीं था, क्योंकि उसी शाम वह उसी पगडण्डी से ऊपर लौट भी गया था। धनलाल ने कितना चाहा था कि दो व्यक्ति उसे कुटिया तक छोड़ने उसके साथ जायें। मगर उसने नहीं चाहा था। बहुत लम्बे समय बाद वह नीचे उतरा था, धनलाल से पता लगाने कि सात वर्ष पूरा होने में कितने दिन बाकी थे। धनलाल की गिनती में भी सात साल की अवधि पूरी हो गयी थी। एक-एक पल को

काटकर उसने इतने लम्बे समय को बिताया था। वह सौ साल का लगने लगा था—अपनी उम्र से दोगुनी उम्र का। ईख के बोझ, कोड़ों की बौछार और कोल्हू ने तो तोड़ा ही था, रेखा की उस अचानक मृत्यु और मदन की गिरफ्तारी ने तो उसे और भी बूढ़ा बना दिया था। पचास-पचपन के बीच की थी उसकी उम्र, पर कमर टूट चुकी थी। वह निचोड़ लिया गया था।

बस्ती के कुछ लोगों ने सोचा था, मदन रिहा होकर रास्ता भूल गया होगा। वह द्वीप के किसी दूसरे कोने में भटक रहा होगा। पर सभी ने उम्मीद बँधायी थी। वह आयेगा जरूर। इसी आस के साथ वह अपनी कुटिया को लौट आया था। रात में बस्ती के लोगों ने ऊपर रोशनी देखी थी और आश्वस्त हो गये थे कि वह सही-सलामत पहुँचा था। इसी हर रात की रोशनी को देखकर ही लोगों को उसके जीवित होने का विश्वास होता था। यह विश्वास कोई दो-तीन बार खण्डित भी हुआ था। और लोग घबराये हुए ऊपर दौड़ गये थे। पर वे अवसर मृत्यु के नहीं थे—बस, थकान और······बुखार। उस हालत में लोग उसे बस्ती में ले आने की सोचते। उसके न चाहने पर लोग लौट आते। दूसरे-तीसरे दिन ऊपर रोशनी दिखायी पड़ जाती और लोग फिर आश्वस्त हो जाते।

कभी चट्टान के पास से वह अपनी कुटिया को लौटकर अपने सामने अँधेरा पाता और उसे लगता जैसे कि वह अपनी आँखों को धूपीली पगडण्डी पर छोड़ आया हो। उस चमकती हुई पगडण्डी ने ही उसकी आँखों को निस्तेज किया था। अब वह उसके भीतर की आस को भी हताश करने लगी थी। पर नहीं, उसकी वह आस उसकी आँखों की तरह थोड़े ही थी! पर फिर अपने-आपसे पूछ बैठता—क्यों नहीं थी? आँखों के साथ-साथ समय ने उसकी आस को भी हर मोड़ पर पछाड़ा था। समय की उस धूप ने जहाँ उसकी आँखों की शक्ति को क्षीण किया था, वहाँ वह उसकी आस को भी पिघला-पिघलाकर बहाती रही है। उस बहाव में उसकी बहुत-सारी चीजें बहीं······

नीचे की बस्ती के लोग आज भी उसे वही मानते थे जो वह कभी था। लेकिन वह जानता था कि बस्ती के लोगों की वह नेकनीयती थी। वह श्रद्धांजलि थी एक मृत हस्ती को। अपनी ही नजर में वह एक मृत क्रान्ति का वह कंकाल था जिसे बस्तीवाले यादगार के रूप में आज भी अपने किसी वृक्ष से लटकाये हुए थे। वह झूल रहा था—उसके अपने ऊपर के मांस भी उस बहाव में बह गये थे। पानी खून में मिलकर कभी खून नहीं हुआ, लेकिन खून पानी में मिलकर पानी हो गया। वह उस पानी को बहते हुए अब भी देख रहा था।

एकाध बार उसके भीतर आशंका भी उठी थी—कहीं मदन भी उसी बहाव में······

मदन की धमनियों में वही खून था जो उसकी अपनी धमनियों में कभी था। जिस तरह बहाव में उसकी चीजें बहती रहीं, पर वह खुद कभी नहीं बहा······उसी तरह मदन का भी बह जाना नितान्त असम्भव था। मदन में इतनी ताकत तो होनी

चाहिए कि वह धारा के विरुद्ध तैर सके। धारा के विरुद्ध तैरनेवाला आदमी बहता नहीं—वह डूबता भी नहीं। मदन को उससे भी अच्छा तैराक होना है अन्यथा ये घोर बवण्डर और प्रलयंकर ज्वारभाटे उसे निगल जायेंगे।

मदन के बन्दी हो जाने का उसे दुख तो था, पर गर्व भी था। उसने जो अपने बारे में चाहा था वह उसके बेटे को प्राप्त हुआ था। उसके जीवन की एक अधूरी कड़ी की मदन ने पूर्ति की थी। मदन का तो उस समय जन्म भी नहीं हुआ था जब से वह अपने भीतर चारदीवारी के भीतर पहुँचने की चाह को संजोये हुए था। उस चार-दीवारी के भीतर, जहाँ देवनन्दन चाचा ने जिन्दगी बिता दी थी। धारा के खिलाफ जाना जुर्म था, फिर भी उसे इस जुर्म की वह मनचाही सजा कभी नहीं मिली। इसी-लिए कई बार उसे ऐसा आभास होने लगता कि उसका आन्दोलन दमदार नहीं था। उसकी क्रान्ति में गहनता नहीं थी। उसका विद्रोह सशक्त नहीं था। तभी तो वह मुक्त रहा! और · और यही वजह भी रही हो। स्थिति के आज भी लगभग वैसा ही रह जाने की।···देवनन्दन चाचा, हमारी यह स्थिति यहाँ होते कभी नहीं बदल सकती। कम-से-कम एक बार तो हमें हद तक पहुँचकर ही देखना होगा।

फिर तो जीवन-भर के लिए कैद कर लिये जायेंगे।

स्थिति में परिवर्तन तो आ जायेगा चाहे वह बदतर ही क्यों न हो।

वे दिन अब केवल याद करने के लिए रह गये थे।

अभी बहुत दिन नहीं हुए थे। उस दिन वह गेंदे के पौधे रोप रहा था। अभी तो गेंदे के उन पौधों में पहले फूल भी नहीं आये थे। एक आदमी पगडण्डी चढ़ता हुआ ऊपर आ गया था। वह लंगोटी में था। पीठ नंगी थी उसकी। उस पर कई लकीरें थीं। पंजरी की हड्डियाँ बाहर झाँक रही थीं। उसकी आँखें सूखी हुई झील की तरह थीं। गाल पिचके हुए थे। दाढ़ी बस जहाँ-तहाँ काली बची हुई थी। वह आगन्तुक कैद से आया था। मदन की ओर से सन्देश लाया था।

"चिन्ता नाँ करिय—ऊ हुवाँ अच्छा से बा।"

उसने आगन्तुक को सोते का ठण्डा पानी पिलाया था। वह व्यक्ति कैद की कहानियाँ सुनाकर अपने सन्देश को झुठला गया था।

"अभी और केतना दिन······?"

"दूसरका पुरनवासी तक ओके चाहेला आ जाय के।"

तब से चार पूर्णमासी बीत चुकी थी। अगली पूर्णमासी तक के लिए उसके पास अधिक साँसें बाकी नहीं थीं। अब उसे डर लगने लगा था आनेवाली उस पूर्णमासी से, जो कि अमावस-सी काली थी उसके अपने ख्यालों के भीतर।

पिछले वर्ष की तरह इस वर्ष भी तूफान की सम्भावना थी। पिछली बार जब हवा की रफ्तार तेज होनी शुरू हुई थी तो लोग उसे लेने नीचे से ऊपर आ गये थे, लेकिन वह कुटिया का कोना पकड़े रह गया था। तूफान को जोर पकड़ते देख लोग बस्ती को लौट गये थे। अपनी कुटिया के भीतर से वह बाहर के प्रलयंकर क्षणों की सच्चाई से

जूझता रहा।

हवा हाहाकार कर रही थी। बादल गरजने से पिछवाड़े का पहाड़ चकनाचूर होता-सा प्रतीत हो रहा था। उसकी कुटिया एक बार हिली थी—दो बार हिली थी और तीसरी बार छत नीचे आ गयी थी। इमली के उस चीमड़ पेड़ के कारण वह खुद दब जाने से बच गया था। उसी इमली के तने को पकड़े वह बिजलियों को चमकते और पेड़ों को टूटते-गिरते देखता रह गया था। कई लम्बे घण्टों के बाद सुबह हुई थी। हवा थमी थी, पर वर्षा और भी मूसलाधार हो चली थी। उस भारी बरसात में धनलाल दो साथियों के साथ ऊपर पहुँचा था। कुटिया ढह जाने पर भी उसने धनलाल की बात नहीं मानी थी। अन्त में बस्तीवालों को फिर से कुटिया को खड़ा करना ही पड़ा था। उसे अपनी कुटिया टूट जाने का उतना दुख नहीं था जितना बस्तीवालों की तैयार फसलों के तहस-नहस हो जाने का।

इस बार भी अगर यह तूफान आ गया तो बस वही महीनों के लिए सब्जियों के लाले पड़ जायेंगे। तूफान की याद से उसे सब्जियों के लिए मुहताज रहने की याद आती थी और सब्जियों की याद से उसे मदन की माँ याद आ जाती थी। मदन की माँ को तो तूफान का पूर्वाभास सबसे पहले होता था। आनेवाले तूफान का आभास पाकर मदन की माँ सब्जियों को सुखा-सुखाकर रखने लगती थी। वे ही सब्जियाँ तूफान के बाद पूरी बस्ती के काम आती थीं।

मदन की माँ की मृत्यु बस्ती में न होकर यहीं इसी कुटिया [illegible] थी। उसी के कहने पर यह कुटिया बनी थी। उसी के कहने पर दोनों बस्ती से [illegible] टिया में आ बसे थे। एक दिन अचानक ही मदन की माँ कह उठी थी, ' [illegible]
कोठी में हुआ। न चाहने पर भी [illegible] उमिरवा बीत गयी उस [illegible]
सच मानो, मैं मरना कहीं और [illegible] खुली हवाओं में····

उस समय पूरे दिन में कठिनाई से उसका कोई अपना क्षण होता था। जबकि आज समूचा दिन उसका अपना होता था।

यह अलग जीवन था। नया जीवन। सात वर्ष पुराना जीवन। प्रतीक्षा का जीवन। सात वर्षों से वह अकेले जीता आ रहा था, अपने बेटे की प्रतीक्षा करता हुआ। उसके पिछले जीवनों से भिन्न इसका हर क्षण उसका अपना होते हुए भी अपना-जैसा नहीं लगता था। अगर अपना ही था तो फिर साथ क्यों नहीं देता था? उसके प्रश्न उत्तर के लिए नहीं हुआ करते थे। जीवन के उन बेशुमार प्रश्नों के उत्तर अगर उसे मिले होते तो आज वह उन्हें रखता कहाँ? अब तो उसकी मुट्ठियाँ भी नहीं बँध पाती हैं।

हवा यों ही तेज हो जाया करती थी। मैनाओं, गोरैयों और बुलबुलों की आवाजें हवा के झोंकों से टकराती हुई सम्मिश्रित अनुगूँज के साथ बिखर जातीं। कभी पूर्वी हवा के ऊपर से पश्चिमी हवा के झोंके बिना सांय-सांय किये निकल जाते। समुद्र से बटोरी हुई उमस को पूरे माहौल में छिड़क जाते। दूसरे दिन पौधों के कोमल कल्ले मुरझा जाते। इसी हवा ने एक बार अपनी एक प्रतिध्वनि को उसके आँगन में छोड़ दिया था। उस प्रतिध्वनि की अनुध्वनि कई दिनों तक उसके कानों में गूँजती रह गयी थी—जब उन ताकतों का सामना करने की शक्ति बाकी न रहे तो बुद्धिमानी इसी में होती है कि उनके साथ हो लिया जाये।

यह युद्ध ही रह गया था। हार को हार माने अपने जीर्ण अस्तित्व का एहसास करता आ रहा था।

और वह एक बहुत ही मुहताज हवा होती थी जो उसके कानों में गुनगुना जाती—तुम्हें याद है, देवनन्दन कहा करता था कि युद्ध में कई मोर्चे होते हैं। एक मोर्चे की हार का मतलब पूरी लड़ाई की हार नहीं हुआ करती।

तो क्या लड़ाई आज भी जारी थी?

और उसे आगे बढ़ाने के लिए उसका बेटा आयेगा?

उसे प्रश्नों के उत्तर की प्रतीक्षा नहीं थी। यह प्रतीक्षा बहुत ही लम्बी हुआ करती है। कभी तो सात लम्बे वर्षों से भी अधिक लम्बी।

उसे प्रतीक्षा अगर थी तो सात लम्बे वर्षों के अवसान की—उस निहत्थेपन की स्थिति की, मृत्यु की।

दो

उस थरथराती ठण्ड से अपने दाँतों को कड़कने से बचाता हुआ किसनसिंह अपने दोनों हाथों को दोनों माँगों के नीचे दबाये रहा। दबाये रहना पर दाँत दाँतों से पिसमकार कड़क ही जाते। उस आवाज की ठण्डक से उसका शरीर सिहर जाता और

वह अपने शरीर को थोड़ा और सिकोड़ लेता। कुछ क्षण पहले उसने अपने पूरे शरीर को अपने हाथों में लपेटकर गरमी पाने का प्रयास किया था। अब वे ही हाथ काँखों के के नीचे दबे हुए थे। वहाँ हल्की गरमी थी और उससे अपने हाथों को वहाँ से हटाना नहीं हो पा रहा था। वहाँ की उस गरमी को नोचकर वह अपने शरीर के दूसरे भागों में पहुँचाने की सोचता, पर उसके वे हाथ उसके मस्तिष्क की आज्ञा की अवहेलना कर ही जाते।

ठण्ड की भीगी परत में लिपटा माहौल। उसके छोर से टपकती बूंदों की सिहरन से तर हवा। हवा के चुभते स्पर्श को अपने गालों पर झेलता हुआ किसनसिंह नीचे की बस्ती के झिलमिलाते चिरागों के तिलमिलाते प्रकाश की गरमी की उस दूरी को महसूसता हुआ खड़ा रहता। उसकी अपनी कुटिया का दीया बिना लौ के लकड़ी के खम्भे से लटका हुआ था—अँधेरे को अपने से लपेटे हुए। बाहर पेड़-पौधों की पत्तियाँ अपने ही कम्पन से सहमी हुई थी।

उसे अपने आसपास की निर्जीवता और भी सिहरा गयी थी। यह ठण्ड एक-सी कभी नहीं रही। पिछले दो-तीन सप्ताहों के बाद ही अचानक ऐसी ठण्ड पड़ी थी। कभी सोच उठता कि यह ठण्ड हमेशा एक-सी ही रहती होगी। वह उसके अपने शरीर की सहनशक्ति का उतार-चढ़ाव रहा होगा। बस्तीवाले ने उसे सन के धागों से बुनी हुई एक फतुही दी थी। अपने को ठण्ड से बचाने के लिए उसे उसने कभी पहना ही नहीं। शरीर की गरमी के बिना वह फतुही भी जिस कोने में थी, ठण्डी पड़ी थी।

सरदी के शिकंजे में बन्द अपनी ठण्डी साँसों को महसूसते हुए किसनसिंह उस गहरी खामोशी को ध्यान से सुन रहा था। न मेंढकों की टरटराहट थी, न नीचे की बस्ती से आती हुई कुत्तों की आवाज़ें। जाड़े का सन्नाटा था। उसके अपने शरीर के अध-सूखे गोश्त हड्डियों से चिपके हुए थे। चमड़े पर सर्दी की फुंसियों के साथ रोएँ भी खड़े हो आये थे। ठण्ड से सिकुड़ा उसका शरीर चुप था। ऊपर आसमान पर बस मुट्ठी-भर तारे थे—वे भी सहमे हुए। उसके जबड़े रह-रहकर हिल जाते और दाँत कटकटाक् की आवाज़ से फिसल जाते। वह फिर से मसूड़ों पर जोड़ देता हुआ उन्हें जकड़ लेता।

किसनसिंह के हाथ काँखों के नीचे से निकलकर गरदन पर आ गये। वहाँ की ठण्डी त्वचा उसे अपनी कुटिया में टँगी ढपली पर के चमड़े-सी लगी। एकदम निर्जीव! पर..........उस ढपली की वे पुरानी यादें निर्जीव नहीं थीं। वे तो जेहन पर कीड़ों की तरह रेंगती रहती थीं। वह उसके अपने बेटे की उम्र की थी। दोनों की आवाज़ें पहली बार एक ही साथ गूंजी थीं। उधर बच्चे का रोना हुआ था और दाऊद की अंगुलियाँ ढपली पर थिरक गयी थीं। दस दिन पहले से दाऊद उसकी तैयारी में लग गया था। उस समय नयी बस्ती में कोई बकरा था ही नहीं, फिर भी दाऊद को न जाने कहाँ से वह काला चमड़ा मिल गया था। तीन दिन से लगातार वह ढपली को अंगारों पर सेंके जा रहा था और बच्चे के रोने की आवाज़ सुनते ही वह ढपली के साथ खड़ा हो

गया था पहाड़ के नीचे की नयी बस्ती में जनमा वह बच्चा था और जीनत ने पहला 'ललना' गाया था।

ठण्ड को अपने दाँतों से दबाये किसनसिंह बस्ती की धुंधली रोशनी को देखता रहा जिसके बीच जन्म लिया था उसके उस लड़के ने। छत्तीस लम्बे वर्ष बीत चुके थे जब बस्ती में पहली बार द्वीप के पूर्वी भाग में पंवरिया आया था। फूल की थरिया का बजना उसके फूटने के बाद ही रुका था।

जिस दिन नयी बस्ती की आखिरी कुटिया के छाजन के लिए बाँस बाँधे जा रहे थे, उसी दिन बस्ती को सिपाहियों ने घेर लिया था। अपनी बग्घी से उतरकर आगे आते हुए मोरेल साहब ने सभी मजदूरों के आगे खड़े किसन से कहा था, "सा वान साकाज सा ली दाँ मों लातेर।"

उसके हाथ में लम्बे-चौड़े कागजात थे जिससे वह प्रमाणित कर रहा था कि वे सभी झोपड़ियाँ उसकी अपनी जमीन में बनायी गयी थीं। किसन की आपत्ति पर वह चिल्ला उठा था कि जमीन सरकार की नहीं, उसकी अपनी खरीदी थी। फिर तो नयी बस्ती के लोगों के सामने दो ही रास्ते थे। अपने पूरे वर्ष-भर के परिश्रम को छोड़कर फिर मारे-मारे फिरना या तो शर्त की मंजूरी। शर्त थी—बस्ती में रहते हुए मोरेल साहब के खेतों में काम। किसन को लगा कि वही पुरानी गुलामी फिर से नया जामा पहने सामने आ गयी थी। बस्ती को जिस लगन और श्रम से सजाया गया था, उसे छोड़कर बेघर और बेकार होना किसी को गवारा नहीं था। साथ-साथ उस जमीन को भी तो छोड़ना होता जिसपर बस्तीवालों ने खेती शुरू की थी। बाद में किसन को पता चल ही गया था कि उस खेतो की हरियाली और उपज के कारण ही मोरेल साहब ने उस पूरे इलाके पर अधिकार जमाया था। इस बात का विरोध करते हुए किसन ने जो कुछ भुगता था, उसमें आदमी का जीवित रह जाना अपने-आपमें आश्चर्य की बात थी।

किसनसिंह इस शर्त के सामने चुप रह गया था कि तीन साल की मजदूरी के बाद बस्ती के सभी घर जमीन सहित मजदूरों के नाम कर दिये जायेंगे। तीस वर्ष बाद भी वह शर्त पूरी नहीं हुई थी। यह अवश्य हुआ था कि कुछ दूरी के पहाड़ी इलाके की पथरीली जमीन पर मजदूरों को अपनी निजी खेती करने की छूट दे दी गयी थी। मालिक की नौकरी से छुट्टी पाने के बाद ही शाम के धुंधलके में कोई डेढ़-दो घण्टे के लिए बस्तीवाले अपने खेत में काम कर पाते थे। सब्जियों की बोआई करके मजदूर अपनी स्थिति में थोड़ा-बहुत सुधार लाने में सफल हुए थे। बस, इसी बात के लिए किसनसिंह का विरोध शिथिल पड़ गया था।

सामने के टिमटिमाते चिरागों को देखते रहने के कुछ ही देर बाद किसनसिंह की निस्तेज आँखों के सामने अँधेरा छा जाता। उसे अपनी आँखें मरी हुई प्रतीत होने लगतीं। उसकी पलकें एकाध बार झपककर बन्द रह जातीं और उसके मस्तिष्क के भीतर एक क्षणिक प्रकाश झिलमिलाकर फिर बिखर जाता। लगता कि उसके पाँव

ज़मीन से सटे हुए न हों। आगे की बढ़ती हुई रात ठण्ड को अपने साथ घसीटे लिये जाती और अपनी देह को अपने-आपसे जकड़े वह ठण्ड स्याह परतों से ढँकने का प्रयत्न करता रह जाता। धीरे-धीरे नीचे की बस्ती के चिराग एक-एक करके बुझ जाते। स्याह परतों पर एक मोटी स्याह परत के आ जाने से वह धुंधला दृश्य भी विलीन हो जाता। फिर तो दो ही चीज़ उसके सामने रह जातीं—अँधेरे की शून्यता और ठण्ड का कम्पन।

और जब ठण्ड ने सचमुच ही उसे झकझोर दिया तो वह ठिठुरन लिये अपनी झोपड़ी को लौट आया। एकदम रिक्त और शक्तिहीन। एकदम हताश और अकेला। पर इसी स्थिति में उसे झोपड़ी के अँधेरे में अँधेरे के स्पन्दन का एहसास होने लगता। उस घटाटोप अँधेरे में उसे रेखा की उन तेज सांसों की मौजूदगी का आभास होने लगता जिन्हें अपने में समेटकर मौत उड़ गयी थी। रेखा की वे आखिरी सांसें इतनी अधिक तेज थीं कि उसके सामने किसनसिंह की अपनी सांसें अनसुनी रह गयी थीं। झोपड़ी की दीवारों से चिपकी उन सांसों ने कभी उसे इस घर में अकेलेपन का भय नहीं दिया। उन सांसों में लिपटी हुई रेखा की अदृश्य देह कुटिया के भीतर चहल-कदमी करती रहती।

रेखा की सांसों की उस आवाज़ के बाद एक गहरी खामोशी उस चारदीवारी को अपने में बांध लेती और फिर वह खामोशी की फसफुसाहट होती जो किसनसिंह के कानों में खटमल की तरह रेंगती रह जाती—यह आवाज़ उसके अपने ही गीतों की अनुध्वनियां होती थीं। खेतों का वह स्वर अब अकुलाहट लिये हुए था। उसमें रेखा की अन्तिम सांसोंवाली वही धुकधुकी थी।

अभी महीना भी नहीं हुआ होगा, उस दिन न जाने किस ख्याल से पहाड़ की झाड़ियों से होता हुआ वह काफी ऊपर पहुँच गया था। और जब सांसें फूलने लगी थीं तो वह चट्टान पर बैठ गया था। वहां से पश्चिम का सागर एकदम पास दीख रहा था..........सामने के जहाज को उसने वही जहाज़ समझा था जिससे कुलियों के साथ उसके बाप का भी यहां आना हुआ था। उसी जहाज़ ने उसे मजबूर कर दिया था, मुद्दतों बाद एक बार फिर नया गीत गुनगुना जाने को। उस गीत में उसने अपना सारा क्रोध जहाज़ पर उतारा था, उसे यह कोसते हुए कि अभी और कब तक करना है उसे कुलियों को लाने का यह धन्धा! इसके साथ ही मस्तिष्क में समेटकर रखी हुई कहानी के चन्द टुकड़े बोल उठते—

..........................भारत..............................बिहार...........................

...........................आरा...........................

.....................छपरा.....................

दलाल.............................कलकत्ता..................................जहाज़

कुली लोग.............................पत्थरों के नीचे सोना

मॉरिशस.........................बांस.........................कोड़े

कोल्हू .... महामारी........................

रात ठिठरी रही मध्य बिन्दु पर। उसकी सांसें आंतों तक चिपके हुए पेट के साथ ठिठक गयी। फिर उसने लम्बी सांस ली। पेट थोड़ा-सा फूला, फिर पचक गया। उस अँधेरे में बिना अड़चन वह लकड़ी के खाट पर जा बैठा। जीभ को अपने पनपोछर होंठों पर फेरा। गला साफ़ किया। आंखों पर हथेली से आकर वहाँ के सीलेपन को पोंछा और खाट पर लेट गया।

झोंपड़ी के छप्पर के छिद्रों से भी कोई तारा नजर नहीं आया। नीरवता से सन के बोरे को खींचकर अपने को ढाँप लिया। बोरे के रूखेपन से ठण्ड कुछ कम हुई। बाहर नीरवता रही। वही काली नीरवता जिसको वह पीछे छोड़ आया था, पर जो उसके साथ-साथ भीतर आ गयी थी। उसने—

उसने आंखें मूंद लीं।

कुछ चेहरे झिलमिलाये…… उनमें से एक भी मदन का नहीं था।

और हर रात की पहली झपकी के साथ उसने उसी घिस गये वाक्य को भीतर-ही-भीतर सुना—बस फजीरवा के मदन आ जाई।

हर बार, वह सूरज जो अपने साथ मदन को लाता, पहाड़ों के उस पार कन्नी काटकर निकल जाता।

बाहर की झीसी ने ठण्ड को पराकाष्ठा तक पहुँचा दिया था। अपने को अपनी ही अँकवारी में समेटकर वह खाट पर पड़ा रहा। बोरे के एक छोर को अपने पाँव से दाबकर दूसरे छोर से पूरे सिर को ढाँप लिया। कोयले खत्म हो जाने के कारण अँगीठी आज नहीं जल पायी थी। पिछली मूसलाधार वर्षा के कारण तन्दूर की सभी लकड़ियाँ गीली हो गयी थीं और कोयले नहीं पक पाये थे। बस्तीवाले जब भी नीचे से मक्की या मोहनभोग या कोई दूसरी खाने की चीज लेकर ऊपर आते तो किशनसिंह उनकी टोकरी को बदले में कोयलों से भर देता था।

मदन की प्रतीक्षा ने उसे इतना बेकार बना दिया था कि लाख चाहकर भी वह तन्दूर के लिए दूसरी लकड़ियाँ नहीं जुटा पा रहा था। कोयले न पकाकर उसे लगता कि वह अपनी अन्तिम घड़ी को सुस्त की जिन्दगी बना चुका था। उसे चिढ थी उस जिन्दगी से। रोज यह तय करके भी कि कल से वह अपने काम में फिर जुट जायेगा, वह ऐसा नहीं कर पाता। काम न करने से उसे भूख भी नहीं लगती थी। दो दिन पहले की उबली हुई अरबी अब भी देगची में पड़ी हुई थी। इधर दो दिन से दाऊद के बेटे का आना भी इधर नहीं हुआ था और फरीद के न आने से उसके कुत्ते का भी आना नहीं हो रहा था। यही वजह थी कि देगची खलियाने की नौबत नहीं आ रही थी।

अपने बोरे के भीतर करवटें बदल-बदलकर वह अपने-आपमें सिकुड़ता गया। नींद उससे उतनी ही दूर थी जितनी कि मदन था।

वह किसी भी तरह की अज्ञात आशंका को अपने पास फटकने नहीं देता।

मदन आयेगा।

सात लम्बे वर्ष बीत चुके थे।

मदन के उससे दूर रहने की यह लम्बी अवधि पूरी हो गयी थी। उसके अपने भीतर का विश्वास अधीर होकर गुहार करने लगा था।

तीन

वे धनलाल और दाऊद मियाँ ही थे जो झरने के पास की चट्टान पर बैठे झींगे फँसाने में लगे हुए थे। किसनसिंह उन्हें दूर ही से पहचान गया था। झाड़ियों की खरखराहट सुनकर दोनों चिहुँक गये थे। वह वर्जित स्थान था। झींगे फँसाने की बात तो दूर रही, वहाँ नहाना भी मना था। एक बार वहाँ से कच्चू के पत्ते काटते हुए धनलाल पकड़ा गया था। जब किसनसिंह बाक़ी साथियों को लिये हुए इस इलाके में पहुँचा था, उस समय यह इलाका स्वतन्त्र था। किसी का प्रभुत्व नहीं था इस पर। आसपास की ज़मीन को पथरीली और ऊसर जान उसे जंगल रह जाने दिया गया था। किसनसिंह अपने अधटूटे हताश साथियों के साथ जमीन से पत्थर हटाने में लग गया था। पत्थरों की सैकड़ों मेड़ खड़ी करने के बाद कहीं जमीन बोआई के योग्य बन पायी थी। चौदह आदमियों ने मिलकर पहली खेती जो की थी वह मकई की थी। वह दाऊद मियाँ ही था जो पहाड़ी के उस पार के किसी खेत से मकई की दो सूखी बालियाँ ले आया था। धीरे-धीरे लोगों ने कन्द के साथ सब्ज़ियाँ बोना भी शुरू किया था और वह टमाटर का लहलहाता खेत था जिस पर मोरेल साहब ने अधिकार जमा लिया था। स्वतन्त्रता फिर छीन ली गयी थी। और तभी से आज तक पसीने की हर बूंद बन्धक चली आ रही थी। उन बूंदों की फसल से मोरेल साहब ने दो गन्ने के कारखाने खड़े कर दिये थे। तीन अलग बस्तियों में सात सौ मजदूरों का स्वामी बन गया था। नदी पार के खेत में आबनूस के पेड़ जैसी ऊँची मेंड़ के लुढ़कने से वह अपनी आँखों के सामने एक ही साथ तेरह मजदूरों को विकलांग होते और आठ मजदूरों को मौत के घाट उतरते देख चुका था। कहा जाता है कि मोरेल साहब बहुत ही साहसी आदमी है, क्योंकि उस बीभत्स दृश्य के सामने भी उसके चेहरे की प्रतिक्रिया नहीं बदली थी। उसके हाथ का कोड़ा नीचे नहीं गिरा था।

धनलाल और दाऊद के पास पहुँचते ही किसनसिंह के मुँह से अनायास ही निकल पड़ा, "अभी तक न पहुँचल ऊ त ?"

दोनों समझ गये कि उसका आशय मदन से था। वे चुप रहे। जलप्रपात की झरझराहट अनसुनी होती रही। तीनों काफी देर तक अपने बीच की खामोशी को सुनते रहे। कच्चू के डोलते पत्तों पर शीत की बूंदें इधर से उधर लुढ़कती रहीं। किसनसिंह के अपने भीतर के ख्याल भी कच्चू के पत्तों पर की ओस-बूंदों की तरह थे। अस्थिर ! पर बूंदों में चमक थी, उसके अपने ख्यालों में नहीं। वे भीतर के घटाटोप अँधेरे में लुढ़क रहे थे। सामने के चकोतरे के पेड़ पर की लालमुनिया ने एक क्षण के

लिए उसे अपनी ओर आकर्षित किया। दूसरे ही क्षण उसने आँखें फेर ली। आम और जामुन की घनी डालियों के बीच अदृश्य बुलबुलें और चिड़ियाँ चहचहाती रहीं। उसके अपने भीतर की अधीरता भी उसी तरह अदृश्य सिसकियाँ लिये जा रही थी। टेंट से तम्बाकू के सूखे पत्ते को निकालकर दाऊद मियाँ ने उसे हथेली पर मला और महीन किया। कागज के टुकड़े में लपेटने के बाद धनलाल की ओर देखा। धनलाल को चकमक जलाने में काफी समय लग गया। दाऊद ने तम्बाकू किसनसिंह की ओर बढ़ा दिया। उसके इन्कार कर जाने पर दाऊद ने खुद पहला कश लिया और धनलाल की ओर बढ़ा दिया। धनलाल ने दाऊद मियाँ को ओर कनखी से देखते हुए इन्कार कर दिया। वह किसनसिंह के सामने तम्बाकू नहीं पी सकता था। किसनसिंह उसके बाप की उम्र का था। किसनसिंह ने धीरे से पूछा, "धनू, ऊ अब नहियें आई का ?"

फिर एक लम्बी खामोशी, और इसके बाद दाऊद ने किसनसिंह की सूखी आँखों में झाँकते हुए कहा, "किसन भैया, इधर उस घटना के कारण शायद ....."

वह चुप हो गया।

"कौन-सी घटना ?"

बीच में धनलाल बोल उठा, "सुना है, किसी मन्दिर के आँगन में इकट्ठे हुए एक लाख मजदूरों के बीच से साठ हजार मजदूरों को गिरफ्तार कर लिया गया है।"

"कब हुआ ऐसा ?"

"परसों की बात है।"

"तुम लोगन भी हुआँ थे ?"

"तीस कोठियों से लोग वहाँ इकट्ठे हुए थे।"

"काहे खातिर ?"

"जुल्मों के खिलाफ आवाज उठाने के लिए।"

इस बार दाऊद बीच में बोल उठा, "अपने हक की माँग के लिए भी।"

"तो तुम लोगन नहीं थे उसमें, क्यों ?"

"हमारी बस्ती तक बात आयी ही नहीं थी।"

फिर कुछ देर के लिए पीछे से आती कल-कल ध्वनि खामोशी को चीरकर गुजरती रही।

किसनसिंह के ध्यान में जो प्रश्न आया, उसे न पूछकर उसने दूसरी बात पूछ ली, "इतने लोगन की गिरफ्तारी मदन की रिहाई से कैसे जुड़ गइल ?"

"भैया, यह क्यों भूल रहे हो कि इस देसवा में हम लोगन का जो पहला शिवाला बना था, उसी से मदन ने मजदूरों का पहला जुटाव किया था। उसकी गिरफ्तारी भी मन्दिर से हुई थी। दो बातें हो सकेला भैया ! एक तो इस घटना के बाद मदन की रिहाई रोक ली गयी होगी, या दूसरी बात यह कि रिहाई के बाद रास्ते में मदन भी उन मजदूरों से जा मिला हो।"

"जिन लोगन की गिरफ्तारी हुई ?"

"हाँ ! और यह भी हो सकता है कि वह एक बार फिर पकड़ा गया हो।"

"हमरा से मिले बिना·····?"

नहीं; वह यह मानने को तैयार नहीं था। इधर की धनलाल की कोई भी बात सच नहीं हुई थी। वह लगातार कहता आ रहा था कि मदन कल पहुँच रहा है। पर वह कल कभी नहीं पहुँचा था। अब उसकी इस बात को वह क्यों मान लेता कि मदन अब भी बन्दी था ?

चकोतरे के पेड़ के उस पार खरखराहट हुई। धनलाल और दाऊद चौकन्ने हो गये, शायद कोई नेवला था। दोनों की राहत की साँसें अभी आधी ही थीं कि तभी दाहिनी ओर की पगडण्डी से कोई आता दिखायी पड़ा। वह काफी दूरी पर था, फिर भी उसके सिर के टोप के कारण उन्हें समझते देर नहीं लगी कि वह आंत्वान सरदार था। दूसरे ही क्षण तीनों व्यक्ति चकोतरे के पेड़ की बगल से झाड़ियों से होती हुई पगडण्डी पर आ गये थे। रास्ते-भर किसनसिंह ने एक भी बात नहीं की। दोनों व्यक्तियों ने चाहा कि वह उनके साथ बस्ती तक पहुँचे। दोनों ने बारी-बारी से कहा :

"जीनत तुमसे बातें करना चाह रही थी।"

"उधर मन लग जायेगा।"

बिना कुछ कहे किसनसिंह उस दूसरी पगडण्डी को पकड़ चुका था जो ढलान से अलग चक्कर काटती हुई ऊपर को चली गयी थी।

दूर से आती हुई मालिक के शिकारी कुत्तों की आवाज़—फिर सन्नाटा······ फिर दूर जाती हुई उन्हीं कुत्तों की भूँक जो हिरणों के पीछे दौड़ रहे होंगे। इन्हीं कुत्तों ने कभी सुखुवा को नोचकर बत्ती-बत्ती कर दिया था। सुखुवा जंगल में लकड़ी बटोर रहा था। कोंस्ताँ साहब के दामाद ने खरखराहट सुनकर गोली दाग दी थी। कुत्ते उस पर टूट पड़े थे। उसकी पीठ से बहते खून को चाट चुकने के बाद वे कुत्ते उसकी अँतरियों के साथ दौड़ गये थे। कोंस्ताँ साहब की बेटी को सुखुवा की विधवा पत्नी और उसके पाँचों बच्चों पर दया आ गयी थी। उसने रुकमिनिया के यहाँ सात रुपये भिजवा दिये थे। वह दयालु कुछ अधिक ही थी, इसलिए उसने उस पुलिस अफसर के यहाँ भी दस रुपये भिजवा दिये थे जिसने थाने की बही में यह लिख दिया था कि कसूर सुखुवा का ही था।

वह सुखुवा ही था जो गौतमवा के बाद बच्चों को बैठका में इकट्ठा करके रामागति सिखाता था। जिस समय मोरेल साहेब ने अपने साथ लाये हुए कागज़ातों और सिपाहियों के बल पर बस्ती की ज़मीन पर अधिकार पा लिया था, उस समय सुखुवा ही ने सभी बच्चों के आगे मुस्कराते हुए कहा था, "यह देश तुम सभी का है······ तुम सभी यहाँ जनमे हो······यहीं तुम्हें मरना है। कागज के टुकड़े पर यह चाहे किसी का क्यों न हुआ, लेकिन इस पर कल तुम्हारी श्रमबूँदों का मुहर होगा। ·····यह तुम्हारा वह सपना है जिसे नींद के बाद भी तुम्हें सँजोकर रखना है······"

बच्चों की समझ में उसकी बातें कहाँ तक आयी थीं कोई नहीं बता सकता,

पर उसने अपनी बातें कह दी थीं। उसकी मृत्यु के दिन किसनसिंह उन बातों को दोहराता रह गया था। गुगुवा की बातें तो बड़े लोग ही नहीं समझते थे तो फिर बच्चों की बात तो दूर रही·····। वह तो यह भी कहा करता था—

पुराने कानून का अन्त और नये का आरम्भ हो·····

वह कौन-सा कानून होगा—कौन बनायेगा उसे जो पुराने को हटाकर नये को लाये ? किसनसिंह का सोचना इसी ठौर पर रुक जाता था।

घिसने वाले पत्थरों में रिसमसता हुआ नाला। नाले के पानी में अपनी जड़ों को धोता हुआ जंगली बादाम का वह पेड़। वह स्थान किसनसिंह की झोपड़ी और नीचे की बस्ती के बीच में पड़ता था। यहीं बैठकर वह प्रायः सोचा करता था कि दो तरफ की जगहों में वह कहाँ का था। इसी नाले में स्नान करके अपने कपड़ों को कुरी के पौधों पर सुखाता था। कुरी के छोटे-छोटे फूलों से अपनी हथेलियों को भरकर वह वहीं बैठा गुनगुनाता रहता। इधर कई दिनों से उसका स्नान रुक गया था। उसकी फतुही और धोती बिना धुली थी। उसका गुनगुनाना भी बन्द था। कुरी के रंगबिरंगे फूलों के कोमल स्पर्श को भी वह भूला हुआ था। कुरी का वह विस्तृत फैला जंगल।

कुरी के नन्हे-नन्हे फूल।

कुरी के नुकीले काँटे।

और उसका अपना लहूलुहान शरीर।

यहीं बैठने पर कई बार वह दृश्य उसके सामने आया था—गुगुवा की मृत्यु पर उसकी पत्नी के पास भेजे गये सात रुपये को अपने साथ लिये वह कोल्नी साहब के घर पहुँचा था। साहब के दामाद के सामने पैसे लौटाते हुए उसने कहा था, "मिस्ये एंग्रीजे ना सारजे नु पा सालाव आवकेन्ने।"

साहब का दामाद पहले तो आगबबूला हो गया था। पूरी आँखें बाहर निकाल-कर उसने किसनसिंह को देखा था। उसी क्रोध में वह अपनी दाहिनी मुट्ठी को दाहिने कन्धे पर पीछे की ओर घोलकर चिल्ला उठा था। उसी क्षण पीछे खड़े सालगासी रखवार ने उसकी मुट्ठी में कोड़ा थमा दिया था।

कोड़ा ऊपर उठा था। किसनसिंह के हाथ उसी तरह जुड़े-के-जुड़े रह गये थे। अपनी पत्नी की तरह साहब को भी दया आ गयी थी। अपनी आँखों को तरेरे हुए वह हँस पड़ा था। हँसते हुए उसने अपने तीनों शिकारी कुत्तों को चुटकी बजाकर पास बुला लिया था। कुत्तों को पुचकारने के बाद उसने हँसकर अपने ढंग की भोजपुरी में कहा था, 'किसनसिंह।"

"हाँ मालिक।"

"सुना है तुम बहुत तेज दौड़ते हो ?"

किसनसिंह सिर झुकाये खड़ा था।

"मैं एक से तीन तक गिनूँगा·····और तुम भागना शुरू कर दोगे। समझे या नहीं ?"

किसनसिह पहले तो चुप रहा। साहव के डांटने पर उसने सिर हिलाकर हामी भर दी थी। साहव और भी जोरों से हँस पड़ा था।

"तुम्हारे भागते ही मैं एक से सौ तक गिनूंगा·····और इसके वाद मेरे कुत्ते तुम्हारे पीछे हो जायेंगे·····एक·····दो·····तीन !"

किसनसिह दौड़ गया था।

कुछ ही देर वाद भौंकते हुए तीनों कुत्ते उसके पीछे थे और·····कुरी के विस्तृत जंगल को लांघता हुआ वह भागता रहा—भागता रहा।

और जव तीनों कुत्ते अपने मालिक के पास लौटे होंगे उस समय किसनसिह की धोती का आधा भाग अपने मुंह में लिये होंगे।

चार

ऊपर से वह नीचे की ईख की कटाई को देखता रहा था।

नीचे की वह दुनियां, जिससे उसने अपने को काट लिया था, अपने में पूरी सक्रियता लिये हुए थी। कभी वह उस सक्रिय संसार का एक अंग था। उसके पसीने से भीगकर जामुनी ईख और भी चमकीली हो जाती थी। उसके परिश्रम का फल वह सफेद सोना ! उसका मूल्य वढ़ता ही गया था, पर उसके अपने हिस्से में जो आता था वह सफेद चीनी की मिठास न होकर रस की रूसठ सीठियाँ होती थीं।

सीठियों की कड़वाहट को अपने भीतर लिये वह नीचे के दृश्यों को देखता रहता।

कटे हुए ईख के खेतों पर मंडराते मैना के झुण्ड उसे कभी अच्छे लगे थे, पर अव नहीं। अव नहीं अच्छा लगने का पहला कारण था उन मैनाओं का कांय-कांय करके खेती के माहौल में दखल पहुँचाना। मुंडेर से ईख के सूखे फूलों को चुगती हुई गौरैया पर मैना का झपटकर उसे खदेड़ देना भी उसको खलता था।

वे यादें तो आज भी एकदम ताजी थीं।

अगौरे की पुलियाँ वटोरते समय कभी रम्भा से सीता का झगड़ जाना खेत की सवसे स्वाभाविक घटना होती थी। उन अवसरों पर रम्भा के मुँह से जो पहला वाक्य निकलता वह होता, "तू त मैना जैसन झगड़ालू हवे सीत।"

इस पर रम्भा के आगे की सभी पुलियों को वटोरकर सीता हँसती हुई वहाँ से भाग जाती।

किसनसिह सीता को वहुत चाहता था। वह जव वहुत छोटी थी, तभी से किसनसिह के मन में उसे वहू वनाने की लालसा पैदा हो गयी थी।

उस दिन—

दोनों ओर के कटे खेतों के वीच की भीगी पगडण्डी पर चार-पाँच मैनाओं को झगड़ते पाकर सीता ने चुसी हुई ईख के आखिरी टुकड़े को उनकी ओर चला दिया

था। मैनाएँ वहाँ से कुछ दूरी पर जाकर फिर लड़ने लगी थीं। यही वह अवसर था जब किसनसिंह सीता से पूछ बैठा था, "सीत, तू करबे ब्याह हमर मदनवा से ?"

सीता मैनाओं के झुण्ड के पीछे-पीछे दौड़ गयी थी।

उसी रात दारू की डबली को पपपपाते किसनसिंह गुनगुना उठा था—

बाल बचपन के खातिर सुदेरे सब चिरैया दाना
कॉव-कॉव करके देख भैया बीच कुदेला मैना।
सब चिरैयों के खोंतवा लगे छोटे-छोटे गेंदवा
मैना गुमानी बसेरा करे नारियल के पेड़वा।

बाद में इसी गीत को मदन के मुँह से सुनकर सीता उस अन्तर के बारे में पूछ बैठी थी, "मदन ! आखिर मैना इतने ऊपर क्यों रहे ?"

किसनसिंह गवाह था।

कभी बहुत अधिक सोचते रहने के बाद सीता इसी प्रश्न को दूसरे ढंग से करने लगती, "ये बाकी पक्षी भी अपने घोंसले मैना के घोंसले के बराबर क्यों नहीं बनाते ?"

इस अनुत्तरित प्रश्न के साथ मदन अपने बाप के पास अत्यन्त ही गम्भीर चेहरे लिये पहुँचता। उसकी उस गम्भीरता को देखकर किसनसिंह भी गम्भीर हो जाता।

और आज बहुत दिनों बाद—एक ही साथ कई पुराने चित्रों का सामने मँडरा जाना।

पहला चित्र—

बारह गाड़ियाँ ईख लादने के बाद मदन का घर लौटना। उसे अपने सामने पाते ही किसनसिंह का प्रश्न, "मदन ! सचमुच ही तुम सीता को प्यार करते हो ?"

"आपको इसका उत्तर मालूम है, पिताजी !"

"मुझे नहीं मालूम।"

"आप भी उसे बहू बनाना चाहते हैं।"

"यह मेरे प्रश्न का उत्तर नहीं।"

"आपकी आज्ञा से मैं उसे ब्याहना चाहता हूँ।"

"यह भी मेरे सवाल का जवाब नहीं।"

"मैं उसके बिना . . ."

"बकवास बन्द करो। मुझे सही उत्तर चाहिए।"

"मैं उसे बहुत अधिक प्यार करता हूँ। अपने से भी अधिक।"

दूसरा चित्र—

पुष्पा का बेटा विवेक। कोल्हू में तीन गाड़ियाँ गन्ने पेरने के बाद कुएँ के पास किसनसिंह के सामने।

"ठहरो विवेक, तुमसे कुछ बातें करनी हैं।"

विवेक का ठिठक जाना।
"तुम और मदन बहुत अच्छे दोस्त हो न ?"
"यह पूछने की बात है चाचा ?"
"फिर भी पूछ रहा हूँ।"
"उससे अच्छा और घनिष्ठ दोस्त मेरे लिए दूसरा कौन हो सकता है ?"
"सीता ?"
विवेक से तुरन्त उत्तर नहीं बन पड़ा।
"कहो विवेक !"
"यह भी आप जानते हैं।"
"क्या जानता हूँ मैं ?"
"कि मैं सीता को कितना प्यार करता हूँ।"
"जानता तो फिर पूछता ही क्यों ?"
"मैं उसके बिना.........."
"मेरा प्रश्न था तुम उसे कितना प्यार करते हो ?"
"बहुत अधिक।"
"मदन की दोस्ती से भी अधिक ?"
"बराबर।"
तीसरा चित्र—
नदी में कपड़े धोती हुई सीता बाकी औरतों से कुछ अलग उस स्थान पर, जहाँ पुरैन के पत्तों का गलीचा बिछा होता है।
"सीता, तुमसे एक बात पूछूँ ?"
"क्या बात पूछनी है चाचा ?"
"तुम जानती हो इस बस्ती के दो सबसे घनिष्ठ मित्र कौन हैं ?"
"सभी जानते हैं।"
"तुम जानती हो ?"
"हाँ।"
"कौन हैं ?"
"मदन और विवेक।"
"तुम चाहती हो कि दोनों की मित्रता स्थायी रहे ?"
"सभी चाहते हैं।"
"तुम क्या चाहती हो ?"
"मैं भी यही चाहती हूँ।"
"क्या ?"
"दोनों की मित्रता सदा बनी रहे।"
चौथा चित्र—

बैठका के सामने गोधूलि के सद्‌ वातावरण में पण्डितजी के द्वारा विवाह के मन्त्रों का पढ़ा जाना। विवेक की सिन्दूर-भरी चुटकी का सीता की मांग पर छिटकना और फिर सिन्दूर से मांग का भर जाना। उसी रात बैठका में जन्माष्टमी भी मनायी गयी थी और उससे एक रात पहले किसनसिंह को सपना आया था :

सीता सामने खड़ी थी घूंघट में।

मदन और विवेक एकदम तैयार खड़े थे। पण्डितजी का शंखनाद सुनते ही दोनों दौड़ पड़े थे। पूरी बस्ती नीम के पेड़ के पास आ खड़ी हुई थी। सूरज के डूबने से पहले दोनों के लौटने की प्रतीक्षा बनी रही। दोनों बस्ती को छोड़ते हुए पहाड़ी पगडण्डी पार करके पहाड़ पर चढ़ने लगे थे। पहाड़ के उस पार मोरेल साहब के बंगले से वह कोड़ा उठा लाना था जो लाल हो चला था मजदूरों के खून से। सूरज डूबने से पहले मदन और विवेक में से जो भी कोड़े के साथ पहुँचेगा, उसी से सीता का ब्याह निश्चित था।

सूर्यास्त से पहले जो व्यक्ति कोड़े के साथ पहुँचा था वह विवेक था।""

किसनसिंह की नींद टूट गयी थी। उसे अपने निर्णय पर पश्चात्ताप नहीं था।

वह पुरानी याद आज यूं ही आयी और यूं ही गयी नहीं। वह आयी थी बरछी की धार लिये। आज जब मदन का लौटना नहीं हो रहा था तब किसनसिंह को अपने पुराने इन्साफ़ की उस गलती का आभास हो रहा था। उसने अपने-आपसे पूछा—किसके लिए लौटेगा मदन ?

पहली बार उसे मदन की उस शान्ति पर सन्देह हुआ। उसे लगा कि वह शान्ति निश्छल नहीं थी। वह एक बहाना था यथार्थ से भागने का। उस समय तो किसनसिंह ने यही सोचा था कि मदन के पास बेहिसाब शक्ति थी परिस्थिति को झेल जाने की। उसने उसे समय के प्रहारों से बना हुआ जीव समझा था। उसकी वह धारणा गलत कैसे हो गयी ? और अगर वह गलत नहीं थी तो कहाँ था मदन ?

साठ हज़ार लोगों की गिरफ्तारी, वह भी मन्दिर के आंगन से ?

अगर मदन आ भी गया तो क्या होगा ! बाप-बेटे का गले मिलकर खुशी के दो आंसू बहा चुकने के बाद एक लम्बी सांस ? और उस लड़ाई का अपने-आप स्थगित हो जाना ?

जो ताकत मन्दिर के आंगन से साठ हज़ार मजदूरों को हिरासत में ले ले, उसके सामने एक आदमी की लड़ाई। यह उस प्रण और आस्था की आत्महत्या थी जो किसनसिंह की नस-नस में बिंधी हुई थी।

नीचे दूर तक फैले हुए हरे-भरे खेतों में ईख की कटाई हो रही थी। खेत घना था, फसल बड़ी थी। पिछले वर्ष से बेहतर फसल थी। चीनी अधिक होगी। चीनी की कीमत अधिक होगी। पैसा बेशुमार आयेगा।

एक और चित्र किसनसिंह के सामने झिलमिला उठा—

सात मजदूरों के प्रतिनिधिमण्डल का सामूहिक स्वर, "मालिक, हमारी

मजदूरी में एक आना बढ़ा दिया जाये। हमारे बच्चों के कपड़े तार-तार हो गये हैं। दो जून की रोटी भले ही पूरी न हो, पर नंगा कैसे रहा जा सकता है ?"

पहली बार मालिक खामोश रहा। तीसरी बार मालिक खामोश रहा। सातवीं बार मालिक खामोश रहा।

ईख कटती रही। चीनी बनती रही। कड़वाहट बढ़ती गयी।

मदन की प्रतीक्षा अब भी थी।

पाँच

सभी ने सुना कि मजदूरों की स्थिति में सुधार लाने की अपील सरकार के पास फिर से पहुँची थी। स्थिति की जाँच के लिए नये आयोग की नियुक्ति हुई है। खेतों में इस तरह की बातें रोज सुनने को मिलती रहती थीं। अफवाहें यहाँ तक होती थीं कि मजदूरों की हर पसीने की बूंद का मूल्य चुकाया जायेगा। खेतों के हालात का मुआइना करने-वालों के सामने मजदूरों की श्रमबूंदें नहीं चमकीं। उन्हें चूस लिया गया। उनका भाव वही रहा। एक आने की करोड़ बूंदें। बाजार खुला हुआ था। सिपाही तैनात थे। सौदागर सौदा किये जा रहा था। तसल्ली मिली जा रही थी।

एकबार कोंस्ताँ साहब के मुँह से यह सुना गया, "आंतान दे लो लामेर विन दू।"

इन्तजार करो। सबूरी का फल मीठा होता है। तुम सभी की माँगें पूरी होंगी···

उस दिन पूरी होंगी जब······जब समन्दर का खारा पानी मीठा हो जायेगा।

एक-दो लोग मजदूरों को जहाँ-तहाँ समझाने बैठ जाते—स्थिति में परिवर्तन आयेगा······आकर रहेगा। हिम्मत न हारें······कभी स्थिति यह थी कि मुँह खोलने की इजाजत नहीं······आज तो माँगें करने की छूट है।

इसे कुछ लोग व्यंग्य समझते, कुछ लोग आश्वासन।

मालिकों की बैठकों में मजदूरों के धैर्य को सराहा जाता, सरकारी विभागों में हैरानी जाहिर की जाती और इन सभी के बावजूद परिस्थितियों का आदी मजदूर खेतों में जूझता रहता। पसीने की बूंदों की बोआई होती रहती। फसलें काटी जाती होतीं और सरकार के सामने मालिकों का प्रश्न होता—कहाँ है स्थिति का विरोध ? कहाँ है शिकायत ?

इस प्रश्न की प्रतिध्वनि कहीं से नहीं हुई कि वह निरीक्षक, जो खेतों की हालत देखने पहुँचा था, कहाँ ओझल हो गया ? किस जंगल में खो गया, यह किसी को पता तक न चला।

किसनसिंह के बाद वह धनलाल का बाप था जो सबसे बूढ़ा था। किसनसिंह

के दो-तीन महीनों का छोटा था कुंदन भगत। उसकी भी कमर झुक आयी थी। चेहरे पर अनगिनत झुर्रियाँ और आँखें चिपके हुए गालों के ऊपर खोखली थीं। जिस दिन वह जहाज से उतरा था, उस दिन द्वीप में महामारी अपनी चरमसीमा पर थी। उसके कई जहाजी दोस्त भी उस महामारी के शिकार हो गये थे। द्वीप छोड़ भागने की कुंदन भगत ने कई चेष्टाएँ की थीं। सभी असफल! उसके अपने गिरमिटिया अनुबन्ध की अवधि पूरी हो जाने पर भी उसे भारत लौटने की आज्ञा नहीं मिली। कोठी के नियम भंग करने के अभियोग में उसके ऊपर मोटी रकम का जुर्माना था जिसे कोठी का खजांची हर हफ्ते उसकी तनख्वाह से वसूल कर लेता था। उसकी तनख्वाह से एक तिहाई काट ली जाती थी और इस हिसाब से पूरा जुर्माना भुगतने में उसे और पैंतीस साल का समय चाहिए। धननाम से वह कहा करता, "हमार हिसाब त मरन के बाद हमार लोग के बोटी-बोटी काटके ही पूरा होई।"

कुंदन भगत को बस्तीवाले मनई चाचा कहा करते थे। लोगों की विकलता पर उन्हें धीरज बँधाते हुए वह कहा करता, "हम लोगन के बखत त एकर से भी गड़ल-गुजरल दिन रहल। भगवान मनाव कि अब हम लोगन के गला में नम्बर लिखा टीन के टुकड़ा न लटकल होवे ना। हम लोगन के समय में त नम्बर कहीं बिला गइल के कारण तीन महीनवा के सजा होइत रहल।"

बस्ती का हर आदमी जानता था कि उन दिनों को किसनसिंह ने मनई चाचा से अधिक निकट से देखा था। लेकिन जब उनसे उन दिनों के बारे में पूछा जाता, वह चुप रहता। उसकी उस चुप्पी में वही गुमसुम-सी स्थिरता होती जो तूफान की भीषणता को सह चुकने के बाद वातावरण में हुआ करती है। कुंदन भगत ऊँख के पौधों की तलाश में उधर से होता जब भी किसनसिंह की कुटिया पर पहुँचता, उसे उसी तूफान के बादवाले सन्नाटे में पाता। वह उसे समझाते हुए कहता, "अब अन्तिम दिनों में अपने को जीवन की सफलता-असफलता से जोड़े रखने में क्या लाभ? भैया, अब तू निकाल ले अपन गोटी खेल में से। दो दिन काटे के बा, बेफिकिर होके काट।"

किसनसिंह कुंदन को कभी यह नहीं समझा सका कि वह तो खेल से बहुत पहले निकाला जा चुका है। खेल में भाग न लेते हुए भी वह उसके परिणाम से अपने को नहीं काट पाता—उसके अपने भीतर के बेशुमार प्रश्नों में एक यही प्रश्न तो बाकी रह गया था—इसका परिणाम क्या होगा?

परिणाम के लिए खेल की समाप्ति का भी आसार तो दीखे!

आरम्भ हुआ था उसके अपने बाप के जीवन से। उसके बाद उसका अपना जीवन भी पूरा होने को है। दो पीढ़ी के बाद तीसरी पीढ़ी को भी उसी समस्या से जूझना होगा—तो फिर इसका अन्त कब होगा?

कुंदन उसकी इस बात को कभी नहीं समझ सका कि वह खेल में न होकर भी खेल से जुड़ा हुआ था और मौत के बाद भी जुड़ा रहेगा, जब तक कि खेल समाप्त न हो जाये। उस पहली बस्ती में किसनसिंह बस्ती के बच्चों को गुल्लीडण्डा और कबड्डी

सिखाया करता था। उस समय वच्चों को वह यही सीख देता रहता कि खेल को वीच में छोड़कर अलग होने का मतलव उससे भागना होता है—भागने का मतलव होता है कायरता। खेल में हारते हुए भी खिलाड़ी को खेल के अन्त तक रहना पड़ता है।

सूरज अभी ऊपर ही था जव चिलम साफ करते हुए सुगुन भगत नीचे उतरने लगा था। आज घण्टों तक उसने जो भी वातें किसनसिंह के सामने कीं, उन्हें खुद कहता और सुनता रह गया था। किसन की उस खामोशी से ऊवकर ही वह समय से पहले कुटिया से वाहर आ गया था। उसके पीछे-पीछे किसनसिंह भी कुटिया से वाहर आकर सञीहन के पेड़ के नीचे के वड़े-से पत्थर पर वैठ गया था। गाँजे की वोझिल गन्ध से अव भी उसकी सांसें भारी थीं। गाँजे के दम तो सुगुन ने लिये थे, पर उसकी गन्ध किसन पर छोड़ गया था।

चीड़ के पेड़ों के वीच से अँकवारी में वकाइन की हरी पत्तियां थामे सीता को सामने आते देख किसनसिंह को आश्चर्य हुआ। उसके पास आते ही किसन के मुँह से दिन का पहला वाक्य निकला, "तू इधर कैसे आ गयले ?"

सीता अपनी अँकवारी की घास को वगल में रखकर डिठौरी के सूखे तने पर वैठ गयी। उसके वैठ जाने पर किसनसिंह को लगा कि उसका अपना वह प्रश्न उत्तर के लिए था ही नहीं। वह हैरत का सहज प्रश्न था। उसे भूलकर उसने दूसरा प्रश्न किया, "सुनत वानी कि आजकल वाछी पाल रही हो ?"

उसने सिर हिलाकर हामी भर दी।

सीता के झँवराये चेहरे को देखकर किसनसिंह ने उसके उस चेहरे को याद किया जो कभी इससे भिन्न था। वस्ती में जँतसार गुनगुनाती हुई जांता चलाने में लीन वह सीता। उस समय किसनसिंह उसके वाप के सामने वैठा रामचरितमानस की चौपाइयां सुनाता होता। सुखदेवा भी पास वैठा नारियल गुड़गुड़ाता होता। सीता अपनी धुन में चक्की चलाती गुनगुनाती रहती। कई अवसरों पर ऐसा होता कि किसनसिंह का ध्यान सीता के वाप की रामायण की चौपाइयों पर न होकर सीता की कजरी पर होता।

किसनसिंह अभी कोई दूसरा प्रश्न सोच ही रहा था कि सीता पूछ वैठी, "चाचा ! अव तुम नीचे नहीं आते ?"

"वेटी, इस शरीर से उतरा नहीं जाता।"

"जीनत चाची तो कोई दूसरा ही कारण वता रही थी।"

"क्या कारण वताती है वह ?"

"वह कहती है……।"

"तू चुप काहे को हो गयी ?"

"चाचा, तुम मदन के लिए इस तरह उदास रहते हो न ?"

"तोर सास कैसन वा ?"

"चाचा, तुम मदन के लिए उदास रहते हो न ?"

"जब मदन को हमार फिकर नाहीं त हमके होकर काहे के होय मगन ?"

"मैं जानती हूँ, तुम उसी के लिए इतने दुखी हो।"

"दुखी ! और मैं ? अरे ई तू का कहे लगली ?"

"मेरा मन कहता है वह आयेगा।"

किसनसिंह चिल्ला उठा, "वह नहीं आयेगा !"

सीता इस आवाज के लिए तैयार नहीं थी। वह सहमकर चुप रही।

"नहीं बेटी, ऊ नहीं आने को। छोड़ इन बातों को। तू त अच्छी बानी न ?"

"मैं तो अच्छी हूँ चाचा, तभी तो इतने ऊपर तक आ सकी हूँ।"

फिर कुछ देर तक दोनों चुप रहे।

झाड़ियों के बीच के चट्टानों से मधुमक्खियों के छाते की तलाश में निकले हुए बंसी और सोहना कुछ दूरी पर जाते दिखायी पड़े। किसन जानता था कि छाता हाथ लग जाने पर दोनों फिर इधर ही से होते हुए मधु की रोटियाँ छोड़ जायेंगे। बंसी मधु का छाता काटने में माहिर था। यह हैरत की बात थी कि मधुमक्खियाँ उसके शरीर पर घने बैठकर भी उसे नहीं डँसती थीं।

"सीता, तुम कैसे कह सकती हो कि वह आयेगा ?"

"वह आयेगा चाचा, जरूर आयेगा।"

"अभी तक नहीं आया।"

सूरज पश्चिम के आबनूस के पेड़ की चोटी पर ठिठका रहा। खरगोश की जोड़ी दौड़कर झाड़ियों में चली गयी। शाम की हवा की पहली सिहरन ने किसन के चमड़े पर फुर्तियाँ ला दी।

"सीता ! तोर लयका के नाम पूछे के अवसर कभी ना मिलल।"

"परकाश !"

"परकाश ? परकाश का मतलब त अँजोरा होवेला ना ?"

"पण्डितजी ने तो यही कहा था। कहा था परकाश जोति को कहते हैं।"

"त फिर अँजोरा कब तक बन्दी रही ?"

"क्या मतलब चाचा ?"

"जोति कब तक अँधेरे की कैद में रहे ? तुम नहीं समझोगी सीता।"

"मैं समझ गयी।"

"का समझ गयली ?"

"कब तक यह हालत बनी रहेगी !"

"क्या तुम्हारे परकाश के हिस्से भी यही जीवन होगा ?"

"उसका नसीब जाने।"

"नसीब काहे ?"

"और क्या कहूँ ?"

"नहीं बेटी, ई सवाल नसीब का नहीं।"

"तो फिर ?"

"छोड़ो इसे। तुम्हें विश्वास है मदन आयेगा ?"

"विश्वास न होने का कोई कारण ?"

"कल तक अपन को भी विश्वास था।"

"चाचा, मैं तुम्हें अपने साथ ले चलने आयी हूँ। तुम यहाँ और भी उदास रहोगे। और फिर मदन तो पहले बस्ती में ही पहुँचेगा।"

"अब तक ना पहुँचा तो कब पहुँचेगा ?"

किसनसिंह की वह लम्बी साँस सीता से टकराकर रह गयी।

सूरज आबनूस की चोटी पर अब भी ठिठका हुआ था। ठण्ड भी ठिठक जाने को विवश हो गयी थी। गेंदे की गन्ध लिये सरसराती हवा बह गयी।

किसनसिंह अपने स्थान पर बैठा रहा।

सीता भी बैठी रही उसके उठने की प्रतीक्षा में।

○

किसनसिंह अपनी अधलिखी पोथी को लेकर बैठ गया। बाँस की पतली कलम को जामुन से निचोड़े हुए रंग में डुबोकर उसने पहले उस बस्ती की पुरानी बातें याद कीं जहाँ हर आदमी के मुँह से सोमा और सन्तू की कहानी सुनने को मिलती थी। उसके सामने वह दृश्य झिलमिलाया जिसमें सोमा अपनी सास के साथ चक्की में मक्की दरती हुई कभी कजरी गा रही होगी। किसनसिंह अपनी ओर से कुछ नहीं लिखना चाहता था। वह अपने भीतर सँजोयी उन आवाज़ों को ज्यों-का-त्यों लिखता जा रहा था। सोमा और सन्तू की पूरी कहानी संवादों में होगी। दो भाग पूरा करके इधर कई दिनों से उसने कुछ भी नहीं लिखा था। कल रात एकाएक उसने तय किया था कि अब तो इस कहानी को पूरा करके ही दम लेना है। कजरी की कुछ पंक्तियाँ याद आते ही किसनसिंह ने सोमा-सन्तू की कहानी का तीसरा भाग लिखना शुरू कर दिया :

> ···पुरवा के पश्चिम आई जावे।
> तबहू न देबव तोहरो सिंदूरवा का दान
> नदिया किनारे राम चितवा बुझाय
> ताहि चढ़ी रुदवा बेटी सति होइ जाय
> रुदवा के अम्माँ रोवे जार हो बेजार
> कैसे तूहू सहे रुदवा अग्नि के धार······

हय अँटवा टोकरी में भर दे बेटी, हम छोड़ले आयला। देखिला करीम भैया हियाँ सायद कुछ पैसे के मिल जाये।

तुम्हें विश्वास है माँ कि उसे छुड़ाया जा सकता है ?

विश्वास छोड़के जियल बड़ा कठिन होवेला बेटी ! सीता माई का विश्वास त

रावण के लंका में भी ना टूटल रहल।
मेरा अपना विश्वास तो लड़खड़ाने लगा है। यह घर झाँय-झाँय करता है।
तुम्हारे भाई से भी कुछ नाहीं हुआ।
उसकी बात छोड़ो माँ! ओहदा मिल जाने पर अब वह मजदूरों का थोड़े ही रहा?
आदमी के बदलत देर ना लगेला।
भैया की बात रहने दो माँ···उसकी याद तो अब बरछी की तरह चुभती है।
जब भैया को खरीद ही लिया गया तो फिर अब·····
हमके चुप कराके तू खुद दुख पहुँचाईवाली बात दोहरावत बानी। अब त सन्नू के क़िस्मत ही जानी आगे का होई।
तुम्हारा दिल क्या कहता है माँ?
छूट जाई बेटी!
पर छुड़ायेगा कौन?
भगवान से बड़ा कोई ना ह सोमा!
इतना कुछ हो जाने पर भी तुम यही सोचती हो?
भगवान पर से विश्वास हटाके आगे के सोचल बड़ा कठिन होई बेटी। चल·····
तू चलके कुछ खा ले। कल भी तू कुछ ना खयले बानी।
मेरे अपने भीतर कभी तो यह विश्वास जोड़ पकड़ता है कि रिहाई होकर रहेगी, पर फिर न जाने क्यों दूसरे ही क्षण वह विश्वास टूटने लगता है।
अपन विश्वास के एतना हाली टूटे ना दे सोमा। जौन आदमी से तोर ससुर मिले गइल बा ओकर से कुछ-न-कुछ जरूर होई।
पिताजी को उधर गये दो दिन हो गये। अब तक तो उन्हें लौट आना चाहिए था।
जीवन सबूरी के नाम ह सोमा?
मैं तो भीतर-ही-भीतर दबी जा रही हूँ। ऐसा लगता है कि उधर से भी निराश पिताजी के कदम उठ नहीं पा रहे होंगे।
बड़े लोगन से मिले में काफी कवाहट होवेला।
कहना चाहती हो कि देरी हो जाना स्वाभाविक है? लेकिन माँ, मैं अपने भीतर की बेसब्री की खलबली को कैसे रोकूँ?
ओके त रोके के ही पड़ी सोमा! इस परदेसवा में तो इस तोर पहला दरद ह। इस तरह के कई दरद हम लोग सहते आवत है। कुछ लोगन के आफत त एकर से भी बड़ा ह। डिबिया में थोड़ा-बहुत आटा बचल होई, ओकर से दूगो लीटी सेंक दिहे बेटी। जाने तोर ससुर कब भूखल-प्यासल आ जाय। अच्छा करले तू आ गइले मुनी! हम इस अँटवा छोड़े जात बानी, तब तक तू सोमा के पास रहना।

ठीक है मौसी, पर तुम जरा जल्दी आना। साँझ में हमारे यहाँ रामायण हो रही है। घर पर काफी काम है।
पर झुनी, कल ही त हरीननन् भगत के रामायण गावे के जुलुम में सिपाही पकड़ ले गयल।
इसका यह मतलब थोड़े ही होता है कि हम अपनी सभी रामायण जलाकर घर में चुपचाप वैठे रहें !
ठीक वा वेटी, पर सावधानी त चाहे ला वरतते रहके।
देखना तो यह है कि कितनी रामायण जब्त होती है, कितने रामायणियों को वन्द किया जाता है। मौसी, तुम जल्दी आ जाना।
झुनी, मेरा विश्वास रह-रहकर काँप क्यों जाता है ?
तुम्हारे भीतर धीरज की कमी है सोम !
पहले तो नहीं थी।
खैर छोड़ो···यह जो भात लायी हूँ इसमें से कुछ खा लो।
झुनी, कल से तुम हमारे लिए भात न लाना।
क्यों न लाऊँ ?
तुम नहीं समझती कि एहसान कितना भारी प्रतीत होता है।
तुम सर पर एहसान क्यों लिये वैठी हो ? मैं एक वात कहूँ सोम ? एक वार मुझे अपना समझकर तो देखो।
झुनी, मैं तुम्हें अपना नहीं समझती ?
तो फिर यह परायी-जैसी वातें क्यों करती हो ?
मैंने कभी भी यह नहीं सोचा था कि मेरे व्याह के सातवें दिन वाद मेरे ऊपर पहाड़ टूट जायेगा। इस घटाटोप अँधेरे में मुझे अपनी धड़कन से डर लगता है। आज सुवह मेरी माँ आयी थी। मेरे भाग्य पर रोती हुई दोपहर को चली गयी। सभी कुछ सुनकर मेरे वाप की हालत और भी विगड़ जायेगी। आस-पास के सभी लोग हमारी इस दशा पर हाय-हाय करके चले जाते हैं, पर मुझे खुद अपनी हालत पर रोना नहीं आता। कितनी अजीव हूँ मैं !
तुम्हारा यह भीतर से रोना तो और भी खतरनाक है। अपने-आपको इस तरह क्षार कर दोगी। न जाने हम लोगों को क्या सूझा था ! अपनी धरती छोड़कर यहाँ की सभी मुसीवतों को सर पर उठाने आ गये थे। ये दिन जो तुम्हें आज देखने पड़ रहे हैं, उन्हें यहाँ की सभी भारतीय स्त्रियाँ अपने-अपने ढंग से देखती आ रही हैं। दुख से आदमी जितना घवराता है, उतना ही वह असह्य लगता है और फिर हम तो यहाँ सोना ढूंढने आये थे। सोने की भी तो कोई कीमत होती है सोमा···वह मात्र पत्थर उलटने से थोड़े ही मिल जाता है ! अव हाथ पत्थर के नीचे दव रहे हैं···अभी और सहना है।
अभी हमने एक-दूसरे को अच्छी तरह देखा भी नहीं था।

हो सकता है कि अभी कुछ और प्रतीक्षा करनी पड़े।
तीन दिन पहले उसकी बाहों से अपने को छुड़ाकर मैं रसोईघर को भाग गयी थी। मुझे क्या मालूम था कि यह फासला इतना लम्बा हो सकता था! कहो मुनी, तुम्हारा दिल क्या कहता है? सच-सच बताना।
किसके बारे में?
कहा न कि अपने को तो पूरा विश्वास है कि सभी कुछ ठीक हो जायेगा। बस, थोड़ा-सा धीरज चाहिए।
यह तो पिघला जा रहा है। सच मानो मुनी, मेरा दिल तो बैठा जा रहा है। हर पल युग-सा लगता है। मेरी अपनी ही साँसें मुझे चुभ रही हैं। मैं तो एक अज्ञात भय से दबी जा रही हूँ। मुनी! तुम यह मानने को तैयार हो कि उसने हत्या की है?⋯ तुम चुप रहो, पर सच मानो तो यह विश्वास नहीं होता कि उससे ऐसा हो सकता है। तुम उस वक्त यहाँ नहीं थी मुनी, नहीं तो उसकी आँखों की निरीहता और निर्दोषिता देखकर तुम्हें भी यकीन नहीं होता।
मैं भी तो नहीं मानती कि मन्नू से ऐसा हो सकता है। लेकिन⋯⋯
लेकिन क्या?
कड़कती धूप में थके-मांदे मजदूर बोसों की बौछार से अपने होश-हवास खोकर कुछ-से-कुछ कर सकते हैं⋯⋯खैर, उसने जो कुछ किया होगा आत्मरक्षा के लिए किया होगा। यह भी हो सकता है कि कुदाली उसके हाथ से इस तेजी के साथ उठ गयी हो कि उसे रोकना असम्भव हो गया होगा।
इस समय वह काली चारदीवारी के भीतर होगा भूखा-प्यासा दर्द से कराहता हुआ⋯उसकी पीठ पर के गहरे घाव पर मरहम की जगह चाबुक पड़ रहा होगा। मुनी! हमारे लोग तो खून-पसीना एक करके इस मरुभूमि को समृद्ध करने में लगे हुए हैं। इसके बदले में उनके साथ यह घोर अत्याचार क्यों होता है?
रोना तो इसी बात का है सोम, कि जो लोग वीरान जंगल को काटकर उन्हें रमणीक और हरे-भरे खेतों में बदल रहे हैं, वे ही इस दयनीय हालत में हैं। अनाज पैदा करनेवाले खुद भूखे मर रहे हैं। जुल्मों से दब रहे हैं। विडम्बना ही तो है यह कि मालिकों की तिजोरियों को भरकर भी मजदूर का पेट खाली रहे। तन ढाँपने के लिए भी पर्याप्त कपड़े नहीं। मुट्ठी-भर लोग हजारों को अपने पैरों से रौंदें, यह बात मेरी समझ में नहीं आती। जमीन हम जोतते हैं। मेहनत हमारी होती है। खून-पसीना हमारा बहता है। और उपज की सारी फसल किसी और की हो जाये? यहाँ तो मजदूर के पसीने की कीमत कुएँ के पानी से भी सस्ती है।
ऐसा कब तक होगा?
तुम्हारे इस प्रश्न का उत्तर कौन दे? हम तो अधिक की इच्छा नहीं रखते, फिर

भी जिससे हमारा गुजारा हो जाये वह भी हमें नसीव नहीं। इज्जत और अधिकार हमें कव मिलेंगे ?

हे प्रभु, हमें कब तक दवाया जायेगा ?

तुम गलत गुहार कर रही हो सोम ! हमें दवाया नहीं जाता। यह हमारी अपनी कमजोरी है जिससे हम दवते हैं। तुम अपने भाई की ही वात ले लो···

झुनी, भगवान के लिए उसकी चर्चा मत करो !

कहते हैं हर चीज का अन्त होता है। कुचले जानेवालों के भी अपने दिन आयेंगे। गोस्वामी तुलसीदासजी कहते हैं···सोम ! तुम तो रामायण वहुत अच्छी तरह पढ़ लेती हो, फिर तो रामायण पर विश्वास करनेवालों को संकट से घवराना नहीं चाहिए। तुम तो एक ऐसे रामायणी की वेटी हो सोमा, जिसको रामायण पाठ करने के कारण तीन महीने कैद में रहना पड़ा था ! मुझे वे दिन आज भी याद हैं। इसीलिए तो मुझे इस वात का विश्वास नहीं होता कि विनय गोरों का हिमायती वन गया है।

पर झुनी, तू हरखू सरदार से बात करनेवाली थी न ?

तुम भी किसका नाम लेने लगी ? एक तरह से उसी के चलते तो वैलों को हटाकर आदमियों से ईख-भरी गाड़ियाँ खिचवायी जा रही हैं। सुना है, उसकी ठेकेदारी से खुश होकर गोरों ने नदीकिनारे उसे दो वीघा ज़मीन दे रखी है। भगवान करे वह श्मशान वन जाये !

वह तो वन ही जायेगा।

मैंने तो यहाँ तक सुना है कि कोई गोरा उसकी अनुपस्थिति में उसके घर आया-जाया करता है।

धुंधलापन छाने लगा। पिताजी भी लौटने में देर कर रहे हैं।

सोम, तुम मन-ही-मन अपने भाग्य को कोस रही हो न ! पर पगली, तुम्हारा यह भाग्य हम सभी भारतीयों का भाग्य है।

नहीं झुनी, मैं अपने भाग्य को नहीं कोसती। आज नहीं तो कल किसी-न-किसी को तो ईट का जवाव पत्थर से देना ही था। मुझे तो सच मानो इस वात का गर्व है कि अन्याय के खिलाफ मेरे पति ने पहली वगावत की है।

ठीक है सोम ! समय ने तुम्हें वोलना सिखा दिया, पर तुम्हारे भीतर जो अशान्ति है, जो वेदना है उसको मिटाने के लिए मुझे क्या करना होगा—यह मेरी समझ में नहीं आता।

सोम, मैं चलती हूँ नहीं तो मेरी सास आवाज देने लग जायेगी। तुम्हें डर तो नहीं लगेगा न ?

झुनी, तुम जाओ। यह अकेलापन इतना भारी क्यों होता है ?···कौन है ?
अरी वहू, तुम हमको देखकर डर काहे गयी ?

नहीं तो।
हमको नमस्कार करना भूल गयी। अरी मैं हरखू सरदार हूँ—चाचा लगता हूँ तुम्हारा। मुझे तुम्हारे ससुर से जरूरी काम है।
वह तो बाहर गये हैं। पर आपसे तो मिलकर ही उधर गये होंगे?
अरे हाँ तो। पर क्या अभी तक वह लौटा नहीं? तुम्हारी सास नहीं दीख रही है।
वह पड़ोस में मकई का आटा छोड़ने गयी है।
हाय-हाय! इस घर में तुम्हें मकई का भात खाना पड़ रहा होगा। कितनी गयी-गुजरी जगह में रहती हो तुम! भला तुम जैसी सुन्दर मासूम लड़की के लिए यह कोई जगह है? घर से यहाँ तक आते-आते मेरे पैर दुखने लगे।
बैठिए न?
कहती हो तो बैठ जाता हूँ। कल कोठीवाले मालिक मुझे एक बग्घी दे रहे हैं, फिर तो नवाबों की तरह ठाठ से निकला करूँगा। थकने की नौबत नहीं आयेगी। घोड़ा सफेद होगा। मुझे तुम्हारी इस हालत पर दया आती है। तुमने जसोदा की बेटी की बात सुनी? एकदम तुम्हारी ही सूरत की है वह। उसके शरीर की बनावट भी तुम्हारी ही जैसी है। वह तो मूसे मार्सल के घर में रानी की तरह जी रही है।
चाचाजी, हमारे घर आकर आपने बड़ी कृपा की। आसपास के सभी लोग यही कहते हैं कि मेरे पति की जिन्दगी आप ही के हाथ है।
वह तो है ही ···पर तुम चाहो तब तो······
मैं क्या चाहूँ चाचाजी?
तुम्हारा यह घर तो बाड़े-सा लगता है।
चाचाजी, आप उसे बचा लीजिए न!
खेत के मजदूर कह रहे थे कि अभी तक सन्नू ने तुम्हें छुआ तक नहीं।
चाचाजी, मुनिया ठीक कहती थी कि सभी कुछ आप ही के हाथ में है।
ऐसे तो मुनिया ठीक कहती है, पर इस मामले में ·····
आप चुप क्यों हो गये?
सन्नू ने खून किया है। वह भी एक गोरे मालिक का। आदमी भगवान की हत्या करके बच सकता है, परन्तु······
नहीं चाचा, वह निर्दोष है। उसे बचा लीजिए।
एक खूनी को बचाना इतना आसान नहीं होता।
पर आपके लिए तो कठिन कार्य भी आसान होता है।
इसकी कीमत काफी महँगी पड़ सकती है।
आप तो हमारी हालत को अच्छी तरह जानते हैं। इस समय तो हमें दाना मुहाल है। फूटी कौड़ी के मुहताज हैं। पैसा तो नहीं उगाह सकेंगे।

पैसा ही सभी कुछ होता है क्या ?
तो फिर ?
न्याय अन्याय तो रोलाँ साहेब के हाथ में होता है।
आप रोलाँ साहब को मना सकते हैं।
तुम रोलाँ साहब को नहीं जानती। वह पूछ बैठता है कि तुम कौन होते हो दूसरे की सिफारिश करनेवाले ! जिसका यह प्रश्न है वही क्यों नहीं आता !
आपका मतलब है कि हममें से ही किसी को उनसे बातें करनी होंगी।
किसी दूसरे की वह थोड़े ही सुनेगा ? लेकिन एक कठिनाई यह है कि कल सुबह वह अपने दूसरे बंगले को जा रहे हैं और तीन महीने से पहले वह लौटने को नहीं।
तीन महीने ? इस बीच तो कुछ-से-कुछ हो जा सकता है।
एक ही उपाय है। उससे इसी समय मिला जा सकता है।
इस समय ? लेकिन इस समय तो पिताजी भी यहाँ नहीं हैं।
अरे लखन से कुछ होने को नाहीं। जितनी आसानी से रोलाँ साहब को तुम मना सकोगी उतनी आसानी से कोई और नहीं मना सकेगा। तुम्हें तो बस देखते ही उनके भीतर दया आ जायेगी।
लेकिन मेरा जाना ? इस समय माताजी बाहर गयी हुई हैं।
ठीक है तो मैं जाता हूँ, तुम अपनी सास की प्रतीक्षा करो। इस बीच अगर रोलाँ साहब सो गया तो फिर यह अवसर भी जाता रहेगा।
ठहरिए चाचा ! माताजी आती होंगी।
इस बरसात में तो वह कहीं ठहर गयी होगी।
तो फिर क्या किया जाये ?
क्यों, मेरे साथ चलने में तुम्हें क्या हर्ज है ?
कोई हर्ज नहीं, लेकिन......।
ठीक है तो फिर मैं चलता हूँ।
बाहर वर्षा हो रही है।
मैं नमक थोड़े ही हूँ जो गल जाऊँगा ?
ठहरिए......। मुझे रोलाँ साहब से मिलवा दीजिए।
तो फिर बोरे की घोघी ले लो और जल्दी चलो।

किसनसिंह ने आत्मशान्ति की लम्बी साँस ली। आज उसने हमेशा से कुछ अधिक लिखा था।

छः

उस समय सीता की उम्र बारह की रही होगी। उसी के विवश करने पर उसके बाप ने आमेत कोठी छोड़ी थी। समुद्री इलाके की वह कोठी इस नयी बस्ती से एकदम भिन्न थी। बस्ती की लड़कियों के साथ सीता का समय भी वहाँ की चमचमाती रेत पर बीतता था। वहाँ का समुद्र कभी इतना भयंकर होता कि दिल दहला जाता। पहाड़-से ऊँचे ज्वार-भाटे काली चट्टानों से टकराकर अपनी फेनिल झालर से पूरे तट को ढाँप जाते। बालू पर के घरौंदे सभी बहकर बह जाते। उन घरौंदों के बह जाने का सीता को बहुत दुख होता। समुद्र के शान्त होने पर वह उस स्थान को ढूँढ़ने लग जाती जहाँ उसका घरौंदा होता। उस धुले हुए सपाट तट पर झाग की छाप के सिवा कुछ नहीं मिलता उसे। कभी झटास का आनन्द लेने के लिए वह काली चट्टानों को पार करती हुई वहाँ पहुँच जाती जहाँ लहरों ने चट्टानों को खखोरकर कन्दराएँ बना दी थीं। बाकी लड़कियाँ चिल्लाने लग जाती और जब सीता उनके पास वापस लौटती, उस समय उसके कपड़े गीले होकर शरीर से चिपके होते। दूसरी लड़कियों के कन्धों से ओढ़नियाँ लेकर वह अपने चेहरे से पानी के छींटों को पोछने लग जाती और लड़कियाँ उसे धमकाने लग जाती कि आइन्दा वे लोग सीता को अपने साथ नहीं लायेंगी।

उस स्थान को हमेशा के लिए छोड़ते हुए सीता को बहुत दुख हुआ था, पर वहाँ जो कुछ बीता था उसके बाद वहाँ रहना उसके लिए आसान नहीं था। उसकी माँ मालिक की फुलवारी में काम करती थी। उसके बाप के घायल हो जाने पर बहुत गिड़गिड़ाकर उसकी माँ ने नौकरी पायी थी। तीन आदमियों के पेट पालने के लिए कुछ-न-कुछ तो करना ही था। बस्ती के मुखिया के अनुरोध पर ही सीता की माँ मिस्य गास्तों के पास गयी थी। वह घण्टों तक गिड़गिड़ाती रह जाती अगर गास्तों साहब के बड़े बेटे को उस पर दया न आ जाती।

गास्तो साहब के बेटे को साँवले रंग की लड़कियाँ बहुत प्रिय थीं। कई अवसरों पर उसे कहते सुना गया था, "जादोर ला ब्रौन।"

उसके उसी साँवलेपन के प्रति प्यार का परिणाम था कि सीता की माँ को लेकर बातें फैलने लगी थीं।

"उसके पेट में गोरा बच्चा है।"

कोठी में वह सीता का बाप था जिसने सबसे बाद को यह बात सुनी थी।

"सीता! हम का सुनत बानी सीता?"

दूसरे दिन के बाद सीता की माँ दिखायी नहीं पड़ी। सात दिन की तलाश के बाद सीता के बाप की पीठ के पीछे किसी ने किसी से कहा था :

"समन्दर गंगा होता है। पाप को अगर पनाह मिल सकती है तो उसी की गहराई में।"

यह स्वर एक आदमी का था। दो आदमियों के स्वर इससे अलग थे, "झूठी

अफ़वाह उसे निगल गयी।"

और, एक रात सीता अपने बाप के साथ कोठी से बाहर हो गयी थी। तीन दिन इधर-उधर भटकने के बाद बाप-बेटी किसनसिंह के सामने पहुँच गये थे। किसनसिंह के प्रति आदर के कारण ही सीता ने सिर झुकाकर उसकी आज्ञा मान ली थी। यह सही था कि किसनसिंह की सेवा में हर समय लगे रहने के कारण ही वह मदन और विवेक के उतने अधिक निकट आ गयी थी, लेकिन……

लेकिन उस समय सीता ने उन दोनों में से किसे अधिक प्यार किया था, वह नहीं जानती थी। यह तो विवेक की बन जाने के बाद ही उसने महसूस करना शुरू किया था कि दोनों में शायद वह मदन को अधिक चाहती थी। अकेले में वह सोचने लगती—कहीं मदन के दूर चले जाने के कारण उसके भीतर ऐसा ख्याल तो नहीं पैदा हुआ था……यह भी तो हो सकता था कि विवेक के साथ सुखी न रहने से ही वह ऐसा सोचने को विवश थी। अपनी इस धारणा को, कि उसने शायद मदन को अधिक चाहा हो, पुष्ट करने के लिए वह अतीत की गर्द में दब गये क्षणों को खींचकर सामने लाने में लग जाती।

बस्ती के प्रवेशद्वार पर पीपल के नीचे सिन्दूर-टीकेवाले पत्थर को लात मार-कर उलट देने के बाद जब कोंस्तां साहब का पाँव अच्छा होने से रहा तो उस समय दूसरे प्रकोप के डर से उसने पीपल के नीचे वहरिया पूजा की इजाजत दे डाली थी। सीता गुलैंची के फूलों से माला गूंथ रही थी जब मदन और विवेक दोनों दौड़े हुए उसके पास पहुँचे थे। पूजा शुरू होने में देर हो रही थी। हार लेने के लिए दोनों ने एकसाथ हाथ आगे बढ़ाये थे।

"सीता, हार मुझे दो।"

"सीता, हार मुझे दो।"

सीता हार लिये आगे बढ़ी थी और उसने उसे धीरे से मदन के हाथ पर रख दिया था। मदन हार लिये खुशी से हँसता हुआ कालीमाई की ओर दौड़ गया।

दूसरी घटना भी उसी दिन हुई थी।

पूजा के बाद। कुएँ पर हाथ-पाँव धोने के लिए दोनों एकसाथ पहुँचे थे। दोनों ने एकसाथ कहा था, "सीता, पहली बाल्टी का पानी मुझे देना। परसादी बाँटने के लिए गोपाल चाचा इन्तज़ार कर रहे हैं।"

विवेक एकदम आगे आ गया था, फिर भी सीता ने पहली बाल्टी मदन की ओर बढ़ा दी थी।

कई बार ऐसा हुआ था।

उस दिन भी बाड़े के सामने सीता बकरियों के लिए ईख के गेंड़े टुकड़याने में लगी हुई थी। काम पर से लौटते हुए मदन और विवेक दोनों ने दो तरफ से उसकी चोटियाँ खींच ली थीं। सीता ने एक की शिकायत की थी, दूसरे की नहीं। जिसकी शिकायत नहीं हुई थी वह मदन था। नदीकिनारे जब विवेक उसे पानी के

छींटे मारता, वह नाराज हो जाती पर वे ही छींटे जब मदन मारता तो वह चुपचाप आँख मूँदे पड़ी उन छींटों को सह लेती। इधर मदन की अवधि पूरी हो जाने पर भी वह नहीं लौट रहा था तो किसनसिंह के बाद वह सीता ही थी जो अधिक दुखी थी। उसके भीतर भी प्रतीक्षा की लगभग वही बेसब्री थी जो किसनसिंह के भीतर थी। कई बार वह विवेक से पूछ चुकी थी, "सजा पूरी हो जाने पर भी मदन लौट क्यों नहीं रहा ?"

तब कहीं जाकर विवेक को मदन की याद आती और वह भी कह उठता, "आखिर उसके अब तक न लौटने का कारण क्या हो सकता है ?"

"तुम पता क्यों नहीं लगाते ?"

"कैसे ?"

इस 'कैसे' का उत्तर सीता के पास नहीं होता था।

विवेक जब गुगुन भगत के घर से गाँजे के दम लेकर लौटता, उस समय सीता के इसी प्रश्न का उत्तर दूसरे ढंग से देता।

"तुम खुद पता क्यों नहीं लगाती ?"

एकाध अवसर पर विवेक फिलीप सरदार की औरत के यहाँ से घर पहुँचा। उस वक्त वह चिल्लाकर कहता, "मदनवा का फिकर तुम्हें हमार से ज्यादा क्यों होने लगा ?"

किसनसिंह के यहाँ से लौटने के बाद सीता मदन के बारे में और भी चिन्तित हो चली थी। सात वर्ष पहले जब मदन सिपाहियों की जंजीर में जकड़ा हुआ बन्दी-गृह की ओर जा रहा था तब बस्ती के सभी लोगों की तरह सीता के भी आँसू बहे थे, लेकिन अपने आँसुओं के साथ सीता को एक और भी अनुभूति हुई थी जो शायद ही किसी को हुई होगी। उसने इस बात से गर्व का अनुभव किया था कि मदन अपने लोगों के हित के लिए गिरफ्तार हुआ था। उसकी नंगी पीठ पर कोड़े के निशान स्पष्ट थे। बहता खून ताजा था। मदन के चेहरे पर न भय था, न उदासी थी। अपने आँसुओं के बावजूद सीता को इस बात की प्रसन्नता थी। उसने अपने में एक गर्व-सा अनुभव किया था।

फिर समय के साथ मदन की याद धूमिल भी हुई थी और ताजा भी। ताजा उस समय जब विवेक के थप्पड़ों की बौछार से वह भीतर-ही-भीतर रो पड़ती थी। विवेक की गालियों और लातों से उसके आँसू कभी नहीं बहे थे। वह ऊपर से कभी नहीं रोयी थी। माँ की याद आ जाती थी। बाप की भी। पर अगर कोई जीवित था जिसको याद करके वह स्वयं को सान्त्वना दे पाती तो वे दो व्यक्ति थे—किसनसिंह और मदन ! यही वह क्षण होता जब मदन का इतनी अधिक दूर होना उसे खलने लग जाता।

उस रात जब विवेक थाईआ के यहाँ से घर नहीं लौटा था तो पुष्पा फुफकार कह उठी थी, "तुम्हें अपनी बहू बनाकर मैंने तुम्हारी जवानी माटी में मिला दी सीता !

तुम्हें विवेक से नहीं, मदन से ब्याह करना चाहिए था।"

दूसरे दिन अपनी इस बात को पुष्पा ने विवेक के सामने भी कह दिया था, "उस बदमरी आंद्रेआ के पीछे पागल होना था तो फिर इसको क्यों तबाह किया ?"

विवेक उसी स्वर में कह उठा था, "दोनों वखत घर बैठे रोटी मिल रही है, तबाह कैसे हो गयी ?"

"इसकी दशा जरा देखना। गन्ने का पेड़ बनी जा रही है। खूब लगती है तुम्हारी रोटियाँ उसकी देह में ! और फिर औरत के लिए रोटी ही सबकुछ होती है क्या ? इसका बाप जीवित होता तो मैं इसे तुम्हारे फन्दे से हटा ही लेती।"

सीता अपने ब्याह के उन पहले तीन महीनों को भी याद करती। उन महीनों और इधर के इन वर्षों में कितना अन्तर था ! उस समय सचमुच वह घर की रानी थी। काम से लौटकर विवेक एक पल के लिए भी घर से बाहर नहीं होता। सीता के लिए रोज जंगल से फूल लाया करता। अँगोछे में अमरूद और जामुन लाता। सीता कहती, "कपड़े में जामुन का दाग लग जायेगा।" मगर उसे दाग की परवाह नहीं थी।

मादाम आंद्रेआ के यहाँ से जब विवेक लौटता, उस समय उसके पूरे शरीर से अंगूरी शराब की गन्ध आती। उल्टी के बाद उस महक से घर अँड़रा यनहो जाता। सीता पोंछने-पाछने लग जाती और पुष्पा माथा पीटने लगती। अकेले में जब सीता उसे समझाने की कोशिश करती, उस समय वह बरस पड़ता था।

"तुम क्या जानोगी आंद्रेआ क्या है ?"

"मुझ-जैसी औरत ही तो है !"

"वह मर्दों के लिए बनायी गयी है।"

"बस, थोड़ी अधिक गोरी होगी और क्या ?"

"वह तुम-जैसी नहीं।"

"यह तो मैं जानती हूँ।"

"तुम नहीं जानती। तुम तो सरदी की रात की तरह ठण्डी हो जबकि वह आग है, आग। मर्द को ठण्डक नहीं आग चाहिए। तुम जानती हो मरद लोग गाँजा और शराब क्यों पीते हैं ? गरमी के लिए। उसी गरमी के लिए उसे औरत चाहिए। जिस औरत की गरमी में मरद पसीना-पसीना न हो जाये, वह औरत किस काम की ?"

तभी सीता को मदन की एक पुरानी बात याद आ जाती—'सीता, तुम्हें पाकर आदमी निहाल हो जायेगा।'

तब सीता ने इस वाक्य का अर्थ भी नहीं समझा था। आज वह सोचने लग जाती है। दोनों आदमियों की बातों में से किसे सच माने ! वह घड़ियों तक अपने-आपसे प्रश्न करती रह जाती—क्या थी वह ? औरत ? क्या होती है औरत ? औरत, औरत क्यों नहीं हुआ करती ?

मर्द का वह ताकाजा !

औरत का वह अधूरापन······इन दोनों के दरमियान खड़ी रह जाती वह।

सात

दस से भी अधिक लोग थे। उन सभी को ऊपर आते देख किसनसिंह के भीतर जो पहली बात कौंधी, वह थी मदन की वापसी। वे लोग काफी नीचे थे। आकृतियाँ पहचानना उसकी निस्तेज आँखों के लिए कठिन था। पहला ख्याल आया—लोगों के बीच मदन होगा। वह बस्ती मे पहुँचा होगा और लोग उसे लिये चले आ रहे थे। उसमें अपनी धड़कनों पर बस नहीं पाया जा रहा था। उधेड़बुन ने उसे अविचलित कर दिया था। वह भी नीचे उतरे या अपने स्थान पर खड़ा रहे? खड़े-खड़े प्रतीक्षा लम्बी होती है। उतरकर वह उस प्रतीक्षा के समय को कम कर सकता था। कुछ तय नहीं हो पा रहा था। वह खड़ा रहा।

सूर्यास्त होने ही वाला था।

उसे लगा कि ऊपर पहुँचने में लोग पूरा समय ले रहे थे। धुँधलका विस्तृत हो जायेगा। वे लोग अँधेरे मे पहुँचेंगे और वह मदन को पहचान नहीं पायेगा। उसने चाहा कि आवाज़ देकर लोगों से कहे, 'चिवटी जैसे काहे चलत हव रा?'

उसकी आँखें उन लोगों के बीच मदन को ढूँढ़ लेने मे व्यस्त थीं। मदन के चलने का ढंग उसे अभी याद था। उस चाल को पहचानना चाहा। लोग अभी भी दूर थे। अधीरता उस दूरी को तानती जा रही थी। लोग पगडण्डी पर आ चुके थे। संकीर्णता के कारण लोग कतार में आ गये थे। आकृतियाँ धीरे-धीरे पास आती गयीं—स्पष्ट होती गयीं।..... और जब सभी लोग पास आ गये तो किसनसिंह की उमग ठस रह गयी। उसकी पलकों को झपकी नहीं आयी। आन्तरिक अँधेरे मे वह खड़ा रहा, चेतनाहीन-सा। दाऊद मियाँ की आवाज़ ने उसे अपनी साँसों का आभास दिया।

"अनर्थ हो गया किसन!"

वह आशंकित हो उठा। उसने आँखों से प्रश्न किया—क्या हुआ?

"अब तुम ही कोई उपाय सुझाओ।"

किसनसिंह चुप रहा। अब भी आशंकित, उसकी आँखों में वही प्रश्न था। दूसरा स्वर धनलाल का था, "हमारी कमर तोड़ने के लिए ऐसा किया जा रहा है।"

धनलाल के इस वाक्य से जब किसनसिंह को विश्वास हो गया कि सन्दर्भ मदन का नहीं था तो उसने धीरे से पूछा, "कोंचो होल?"

"साहेबवा हुकुम दे गया है।" धनलाल ने उद्वेग मे कहा।

घोंसलों को लौटती हुई मैनाओं का झुण्ड टाँय-टाँय करता हुआ ऊपर से निकल गया।

"का हुकुम देलक साहेबवा?"

"पिछवाड़े की वह जमीन, जिसमें हम अपने लिए थोड़ी-बहुत सब्ज़ियाँ उगा लेते हैं, अब ....." धनलाल से वाक्य पूरा न हो सका। किसन समझ न सका कि आक्रोश के कारण धनलाल अपने वाक्य को पूरा न कर सका था या रुआँसा हो जाने के कारण।

किसन ने दाऊद की ओर देखा। दाऊद मियाँ ने आगे कहा, "अब हम अपनी खेती नहीं कर सकते।"

"क्यों ?"

"साहेब ने रोक दिया।"

"साहेबवा ऐसा ना कर सकी।"

"खेतों को घिरवा दिया गया किसन भैया ! अब हम कल से वहाँ नहीं जा सकते।"

"हम ना समझ पावत हैं।"

"उस जमीन पर अगले सप्ताह गन्ने का नया कारखाना बनेगा।"

क्षण-भर चुप रहकर किसनसिंह बोला, "पर ऐसा ना हो सकी।"

"ऐसा हो गया। खेतों के चारों ओर कँटीले तार लगा दिये गये हैं। दो सिपाही बन्दूक लिये पहरा दे रहे हैं। हमारी फसलें उसी में रह गयीं।"

"उस जमीन का तो निवटारा हो चुका था। साहेब मान गइल रहल कि उ हम लोगन के रही।"

"उस समय उसने माना था किसन भैया, जब उसे हमसे जमीन निकलवानी थी। कुत्ते के सामने हड्डी फेंककर पूरा हरिन लेकर भाग जानेवाली बात थी वह।"

"साहेबवा ने तो पूरी बस्ती के सामने वचन दिया था।"

"है कोई कागज-पत्तर इसका हम लोगन के पास ?"

किसनसिंह से उत्तर नहीं बन पड़ा।

देवराज ने आगे आकर कहा, "मुझे बताया गया है कि यहाँ कोई भी कारखाना बनने को नहीं।"

"तो फिर ?"

"बाहर से कोठी के लिए दो सौ सुअर पहुँचे हैं। उन्हीं के लिए बाड़ा बनेगा।"

डूबे हुए सूरज की लालिमा छिटक आयी थी।

दाऊद मियाँ बोला, "किसन भाई, तुम्हीं बताओ हम क्या करें।"

किसनसिंह चुप रहा। मैनाओं की एक दूसरी जोड़ी भी ऊपर से निकल गयी। एक टूटे हुए-से स्वर में किसनसिंह ने पूछा, "तुम लोगों ने क्या सोचा है ?"

"हम लोग तो सीधे तुमसे मिलने चले आये हैं।"

अपने दायित्व को समझने की उसने कोशिश की। इससे पहले उसने अपने-आपसे दो-तीन प्रश्न कर डाले—'क्या मैं अब भी बस्ती का हूँ ?' 'लड़ाई हार चुका आदमी क्या फिर से आगे आ सकता है ?' 'क्या मुझे उसी समय इस फरेब का पता नहीं लग जाना चाहिए था ?' और भी कई प्रश्न थे जो एक ही साथ उसके मस्तिष्क में उठे और दब गये। अन्तिम प्रश्न था—'अब मेरा क्या कर्तव्य हो जाता है ?'

काफी देर तक सोचते रहने के बाद उसने कहा, "खेत नहीं दिये जा सकते।"

"किसन भैया, क्या यह इतना आसान है ?"

"तुम लोगों ने क्या तय किया है ?"

"हम भी खेत छोड़ने को तैयार नहीं।"

"त फिर आसान और कठिन के चक्कर में काहे पड़त हो ? उस तीन बीघे खेत पर किसी भी हालत में साहेब का अख्तियार नहीं हो सकता।"

"क्या करें ?"

"काल फजीर के कोई काम पर ना जाई। हम भी साथ रहब। खेत के पास सब मिलें।"

"तुम जानते हो किसन, ऐसा क्यों किया जा रहा है ?"

"साहेबवन के मर्जी। जो मन में आवे कर लें।"

"नहीं भैया, इस बार मर्जी की बात नहीं। साहब को पता चल गया है कि खेतों को जोतकर हम अपनी स्थिति में थोड़ा-बहुत सुधार ला सके हैं। हमारी स्थिति में सुधार आये, यह साहबों को गवारा कैसे हो सकता है ? इधर की ताजी सब्जियों से हमने अपनी सेहत भी कुछ सुधार ली है, यह भी इन्हें पसन्द नहीं। अपने को ये हमारे पसीने की हर बूँद के मालिक मानते हैं। यह कैसे सह सकते हैं कि हम अपनी गिरवी पड़ी पसीने की बूँदों को अपने लिए भी बहायें ?"

गुगुन ने जो कि अब तक चुप था, गांजे की खुमारी में पूछा, "कल खेतवा के पास मिलके का करेके होय ?"

"पहले वहाँ मिलें, फिर देखा जायेगा।"

"हम बोलत बानी ई सबसे कोई लाभ होने को नहीं।"

"तो फिर पालथी मारे बैठ जायें ?"

"वहाँ हम डेढ़ सौ मजदूर मिलकर साहब से मांग करेंगे।"

"कि खेत हमारे हैं, हमें दे दिये जायें ?' [illegible] का सबसे जवान स्वर था यह।

"बात अगर नहीं मानी गयी तो ?"

"सरकार के नाम अर्जी [illegible] की जायेगी।"

"यह क्यों भूल रहे हो कि पिछले दिनों सत्रह हजार मजदूरों के अंगूठे का किसी पर कोई असर नहीं हुआ था।" यह सबसे जवान स्वर दाऊद मियाँ के बेटे का था।

दाऊद मियाँ ने इसे आगे कहने से रोक दिया। वह नहीं चाहता था कि रिमनसिंह के सामने मजीद [illegible] के साथ बात करे। मजीद के चुप होते ही [illegible] बोल उठा, "किसन काका, [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]। [illegible] इस छोर से उस छोर तक [illegible] [illegible] साहब [illegible] जो मनमानी कर रहे हैं [illegible] इसलिए कर रहे हैं कि इनको [illegible] है कि इनकी करतूतों को [illegible] नहीं करार देगी। [illegible], [illegible] [illegible] की बात [illegible] [illegible] नहीं। [illegible] [illegible] [illegible] के [illegible] की [illegible] [illegible]

आधे घण्टे तक बाँसों की बौछार होती रह गयी थी। खून से तर पीठ के साथ दोनों मजदूरों को पुलिस ने इस अभियोग में गिरफ्तार कर लिया कि उन्होंने मजदूरों को भड़काने की कोशिश की थी। एक मजदूर की पत्नी जब पुलिस के पाँव पर गिरकर गिड़गिड़ाने लगी तो उसे भी हिरासत में ले लिया गया।"

"हम समझ रहे हैं तुम क्या कहना चाहते हो, लेकिन…।"

"आप लोग नहीं समझते। समझते तो ये जुल्म इतने लम्बे अरसे तक नहीं ढाये जाते। अगर हम इसी तरह नरमी के साथ पेश आते रहे तो अभी और पचास साल हमें इसी स्थिति में रहना होगा। मैं तो कहता हूँ अब सोनार का ठक-ठक नहीं, लोहार का खटाँग होना चाहिए।"

"अभी तुम ही कह रहे थे कि ये लोग अकेले नहीं हैं। सभी ताकतें इनके साथ हैं। इस हालत में नरमी के अलावा कोई दूसरा रास्ता हो ही क्या सकता है?"

अपने बाप की इस बात का जवाब फरीद ने खुद दिया, "शुरू से आज तक तो नरमी के साथ पेश आये हैं। नतीजा हर वक्त यही रहा है कि सिर झुकाकर सभी कुछ सह लेने की बात को हमने अपना मजहब बना लिया है। हद हो गयी इस मजहब की…मेरा चले तो हाथ में गड़ाँसे लिये हम दौड़ जायें इन जुल्मी ताकतों की ओर।"

"इरादा अगर खुदकुशी का हो तो ठीक है।"

दाऊद मियाँ के बाद किसी ने कुछ नहीं कहा। आकाश पर पहला तारा झिलमिलाने लगा था जब किसनसिंह ने यह कहते हुए सभी को विदा किया, "कल फजीर को हम सभी खेत के पास मिल रहे हैं।"

सभी लोगों के चले जाने के बाद—

अँधेरे की स्याह चादर में लिपटे अपने कमरे के भीतर के अदृश्य खाट पर किशनसिंह ने अपने को पाया। अपनी साँसों से अपने को टटोलकर उसने अपने को आश्वस्त किया। वह वही था। वही किसन……जो कभी फ़रीद की उम्र का था। उसका अपना अँधेरा कमरा एक काली कन्दरा-सा था जिसका दरवाज़ा भी चुन दिया गया था। वह उसके भीतर जीवित था……आगे के क्षणों के लिए विकलांग……अतीत की बैसाखी पर टिका हुआ……अविचलित।

कहीं से झिंगुरों की आवाज़ के साथ कोई स्वर आया—फरीद का स्वर था वह। उसके कानों में वह बजता रहा। मन में आया कि अपनी अँगुलियों से दीवार को खखोरकर एक सुराख पा ले जिससे बाहर के आकाश के किसी तारे की झलक भीतर आ जाये और……

और उसी तारे की पतली चमक के सहारे बाहर से थोड़ी-सी हवा भीतर आ जाये ताकि वह साँस ले सके।

अकुलाते हुए उसने अपनी आँखों को किचकिचाकर बन्द कर लिया। वह कल्पना कर उठा……एक खुले हुए मैदान की……जहाँ साँसें न घुटती हों……

तभी दीवार से किट-किट-किट-किट……कीट-कीट-कीट-की……

गिरगिट की आवाज ने उसे अकेलेपन की अथाह गहराई में डूब जाने से बचा लिया था।

आठ

कँटीले तारों के उस पार खेत की विस्फारित हरी आँखें थीं। इस पार थे बस्ती के सभी मजदूर मटियामी फतुही और धोतियों में। खामोशी सफेद थी। अभी ओस की बूँदें पगडण्डी की दूब पर घनी थीं। सूर्योदय से पहले ही मजदूरों का जमा होना शुरू हो गया था। सभी हाथ में गड़ासा और कुदाली लिये हुए थे। खेत के सामने पहरा देनेवाले चार रखवारों में से दो कोठी की ओर दौड़ गये थे। खेत की हरी गन्ध के ऊपर तम्बाकू की गन्ध तैर गयी थी। जहाँ-तहाँ कुछ अधेड़ लोग उकड़ूँ बैठे हुए थे। बाकी लोग प्रण के साथ खड़े थे। सभी को किसनसिंह के आने की प्रतीक्षा थी।

किसनसिंह ने पहुँचने में देर नहीं की। उसके पहुँचते ही कोई तीन सौ आँखें उसकी ओर इस तरह उठीं गोया पूछ रही हों—क्या करना है? सबसे पहले किसनसिंह ने दाउद मियाँ से बातें कीं, फिर सोनालाल महतो से। इस बीच दूर तक फैले हुए लोग नजदीक आते गये। कुछ देर बाद किसनसिंह के लिए रास्ता बनाया गया ताकि वह सामने की बड़ी चट्टान पर पहुँच सके। वहाँ खड़े होकर उसने एक बार सभी की ओर देखा, फिर कहा, "सबसे पहले हमके एगो सवाल करेके बा।"

क्षण-भर की खामोशी रही। इसके बाद उसने आगे कहा और वह भी बड़ी कठिनाई से अपने स्वर को ऊँचा करते हुए, "खेत रखना है या देना है?"

आवाजें एकसाथ आयीं—

"रखना है!"

"नहीं देना है!!"

"किसी भी सूरत में नहीं देना है!!!"

शोर कम होने पर किसनसिंह ने कहना शुरू किया, रुक-रुककर, "आसपास की ये सारी जमीन हम लोगन की थी। जंगल काटकर हम सबन ने खेती की थी। सभी खेतवा हमसे ले लिये गये। कानून हमनी के साथ ना रहल। बस रह जायके पस्त। बचो-खुचो तीन बीघा जमीन है [illegible] एकरे में कालीमाई के चौतरा भी बा, बैठका भी। अब तक के सभी [illegible] के साथ [illegible] कालीमाई के चौतरा भी देवे के पड़ जाए, बैठका भी। पता नहीं तुम सबन के [illegible] विचार का होय, पर हमार सुन लो।—अब तक तुम लोगों ने कालीमाई पर [illegible] बकरों की बलि दी है—अगर कालीमाई का चौतरा हम लोग के हाथ से निकल त हमार बलि हो जाए! [illegible] देह पर ही [illegible] के [illegible] बन सकी, देवे नाहीं। कालीमाई के [illegible] घरन बा ना चढ़ी।"

आते हुए लोगों का समूह दिखायी पड़ा जिसमें सबसे आगे वर्दी पहने सात सिपाही थे। कोठी के सभी सरदारों के पीछे बड़े साहब की बग्घी थी। सातों सिपाही अपनी बन्दूकें थामे थोड़ी-थोड़ी दूरी के फासले पर तैनात हो गये। सरदारों के हाथों में लाठियाँ थीं। वे बड़े साहब के इर्द-गिर्द खड़े रहे।

पहली बार सभी लोगों ने बड़े साहब के सामने बैठे रह जाने का साहस किया था। केवल किसनसिंह अपने स्थान से उठा और बड़े साहब के सामने जा खड़ा हुआ। अपने क्रोध पर कठिनाई से अधिकार पाते हुए बड़े साहब ने धीरे से प्रश्न किया, "केल ए तू सेत ईसत्वार किसनसिंग ?"

किसनसिंह ने उसी तरह धीरे से फ्रेंच ही में जवाब दिया, "साहब, हम लोग क्या जानें, बखेड़ा हमने थोड़े ही खड़ा किया है ?"

"ये लोग काम पर क्यों नहीं पहुँचे ? तुम जानते हो तुम्हारे एक दिन काम पर न आने से हमारा कितना नुकसान होता है ?"

पीछे से घनलाल ने उसी तरह धीमे से पूछा, "कितना साहब ?"

"केयंज़ मील रुपी।"

"पन्द्रह सौ रुपया ? यानि कि हर मजदूर पर सौ रुपया। हमारा मूल्य जब आदमी पीछे सौ रुपया है तो फिर हमें सिर्फ आठ आना रोजाना क्यों मिलता है ?"

किसनसिंह ने धनलाल को चुप रहने का आदेश दिया, "हम सब पैसा के लेखा-जोखा लेवे खातिर ना जुटल है स।"

बड़े साहब ने अपने स्वर को थोड़ा-सा ऊपर उठाया, "तुम लोग सीधे मन काम पर जाते हो या नहीं ?"

किसनसिंह ने अब भी उस तरह धीमे से कहा, "निबटारा हो जाये पहले।"

"कैसा निबटारा ?"

"आप ये तीन बीघा खेत हमसे नहीं ले सकते।"

"ये खेत हमारी ज़मीन के बीच हैं।"

पीछे से फरीद की आवाज़ आयी, "चाचा, इससे कह दो कि हम बहस करना नहीं चाहते। खेत हमारा रहता है या नहीं हमें बता दे। हमारे पास जाली कागज देखने का वक्त भी नहीं।"

बड़े साहब ने और भी कड़ककर कहा, "ये खेत अब तुम्हारे नहीं रहे।"

"तो फिर हम यहाँ से नहीं उठेंगे।"

"तुम लोग पहले भी भुगत चुके हो इस तरह के हठ और बदतमीज़ी की सज़ा। मिस्ये कोंस्तां के यहाँ से दस सिपाही यहाँ पहुँचने ही वाले हैं। तब तक के लिए मैं तुम लोगों को खेत और कारखाने के रास्ते पर पहुँच जाने का अवसर दे रहा हूँ।"

किसनसिंह ने अपने दोनों हाथों को जोड़कर पूरी विनम्रता के साथ क्रिओली में कहा, "साहब, मैंने अपना सारा जीवन......।"

पीछे से फरीद चिल्ला पड़ा, "चाचा, इस तरह भीख मत माँगो !"

"साहब, मैंने अपना सारा जीवन आप-जैसे मालिकों की सेवा में लगा दिया। पहली बार और आखिरी बार आपसे प्रार्थना कर रहा हूँ······यह तीन बीघा खेत हमारे लिए छोड़ दीजिए। इसमें हमारी फसल, हमारी कालीमाई और हमारा बंटारा है। आप यह मान लें और मैं फिर से अपने अन्तिम दिनों तक आपकी सेवा में लौटने को तैयार हूँ।"

वह दो कदम आगे बढ़ा ही था कि एक सरदार ने उसे पीछे धकेल दिया। उसके नीचे गिरते ही धनलाल और फरीद सरदार पर झपट पड़े। उन पर लाठियाँ चल पड़ीं। मजदूर अपनी जगह से उठकर आगे बढ़े। लाठियाँ चलीं धड़ाधड़। बन्दूकें तन गयीं। किसनसिंह उठकर आगे बढ़ा, "रुक जाओ तुम लोग···रुक जाओ···"

किसी तरह वह मजदूरों के आगे आ सका। हाथ फैलाकर उन्हें रोकना चाहा। लोग मुँडेरों से पत्थर उठाने लगे थे। लाठियों के जवाब में पथराव होते देर नहीं लगी। बड़ा साहब भीड़ से हटकर अपनी बग्घी तक पहुँच चुका था। उसने वहीं से गोली चलाने का आदेश दिया। किसनसिंह दौड़ पड़ा बन्दूकधारियों की ओर। पहली गोली चली ·····धाँय·····किसनसिंह की छाती से टकराकर सन गयी गरम खून से। किसनसिंह गिर पड़ा—कालीमाई का चौतरा दूर था।

नौ

किसनसिंह की लाश!

लाश से बहती खून की गरम धाराएँ खेत की मिट्टी पर बह गयीं। बहकर जम गयीं। मिट्टी ने खून का तिलक लिया था और किसनसिंह के माथे ने मिट्टी का। खून की तरह ही लोगों के चीत्कार, रोना और आँसू सभी जम गये थे।

किसनसिंह की मृत्यु इतिहास की मृत्यु थी।

इतिहास की मृत्यु प्रसव होती है। बड़े साहब को यह समझते देर नहीं लगी थी। उससे पहले बन्दूकधारी ने भी यह बात समझ ली थी। गोली चली ही थी, धाँय की आवाज के साथ किसनसिंह धराशायी हुआ ही था—खून बहा ही था कि मजदूरों के बीच से गर्जन हुआ था। और अभी उस गर्जन की प्रतिध्वनि होने ही वाली थी कि सिपाही, सरदार और बड़े साहब दौड़ गये थे—उसी दिशा को जिस दिशा से आये थे।

पत्थरों की बौछारों के साथ मजदूर उनके पीछे दौड़ पड़े थे। उसी क्षण किसनसिंह की अन्तिम पुकार को फरीद ने सुना :

"रुक जाओ!"

फरीद के कण्ठ से उस स्वर की प्रतिध्वनि हुई :

"रुक जाओ!"

पश्चिम के रास्ते पर सभी मजदूर रुक गये थे···उधर किशनसिंह की साँसें भी रुक गयी थीं।

वस्ती से दौड़ता हुआ स्त्रियों का वह झुण्ड अभी घटनास्थल पर पहुँच भी नहीं पाया था कि एक ही साथ कई लोगों की नज़र पूर्व से आती हुई पगडण्डी पर पड़ी। दाढ़ीवाला लम्बा नौजवान चला आ रहा था। लोगों ने पहले नीली धारीवाली उस फतुही को पहचाना जिसे पहने सात वर्ष पहले मदन गिरफ्तार हुआ था, फिर मदन को पहचाना।

पश्चिम से काली घटाओं को अपनी ओर खींचकर सूरज ने अपने चेहरे को छुपा लिया।

मदन पसीने से तर था। उसकी आँखों में सुखारी थी। वह पास पहुँचा। भीड़ में उसके लिए रास्ता वनता गया। नींद में चलनेवाले आदमी की तरह चलकर वह अपने वाप की लाश के सामने पहुँचा। उसकी आँखों की वह सुखारी वनी रही। किसी वुत के चेहरे से हवा टकराकर आगे को वह जाये—उसके चेहरे की वही प्रतिक्रिया रही। प्रतिक्रियाहीन ! वे दूसरे लोग थे जो फफक रहे थे, लम्बी साँसें ले रहे थे, आँखों के आँसू पोंछ रहे थे। वह मदन था जो खड़ा रहा—निःशव्द, अविचल।

स्त्रियाँ आ पहुँचीं चीखती-चिल्लाती। कुछ औरतें किसनसिंह के शव के पास गयीं। कई टकरा गयीं मदन से—फिर भी मदन उसी तरह स्तब्ध खड़ा रहा। पुष्पा लाश पर से उठकर मदन से लिपट गयी। धनलाल ने आगे वढ़कर पुष्पा को मदन से अलग किया। एकाएक हल्की वारिश शुरू हुई। वहुत कम लोगों को अपने भीगने का आभास हुआ। मदन ने वालों से टपकते हुए पानी के चलते अपनी पलकें वन्द कर लीं। लोग चुप थे। स्त्रियों का रोना सिसकियों में वदल गया था। मदन ने धीरे से पलकें उठायीं। सामने खड़े विवेक को देखा—फिर धनलाल को। उसकी आँखें फरीद से मिलीं और फरीद ने दाँतों से अपने निचले होंठ को काट लिया।

मदन ने लम्वी साँस ली और उसके शरीर का ऊपरी भाग काँप गया। अपने सिर को दोनों हाथों में थामकर वह उस वक्त तक सिर हिलाता रह गया जव तक कि विवेक ने आगे आकर उसके माथे को थाम न लिया। पुजारीजी के कहने पर लाश को वहाँ से उठाकर वैठका में पहुँचाया गया। लाश के सिरहाने सफेद मिट्टी की दीवार पर सिर टिकाये मदन नियति की कठोरता पर सोचता रहा। वह दो पल पहले भी तो यहाँ पहुँच सकता था, पर अगर नहीं पहुँच सका तो क्या केवल इसलिए कि नियति की सार्थकता प्रमाणित हो जाये ! कुछ समय पहले उसने संयोग की वात सुनी थी। सयोग कैसा ? किसके लिए ? क्या था वह ? फिर उसने होनी की वात सुनी थी। कैसी होनी ? अगर यही होनी थी तो अनहोनी क्या होती होगी ? और···और इसके वाद धैर्य—धीरज ! कैसा धीरज ? किसको ? हताश को ? और हताश अगर धीरज का पीछा करता हुआ हो तव ?

कोई कहाँ तक भागे !

वह अपने बाप की मौत पा रहा था। बहुत ही बोझिल थी वह खामोशी। अपने भीतर के क्रन्दन को रोके मदन ने उस खामोशी की आवाज को सुनना चाहा। वह आवाज उससे कुछ तो कह जाये ? चलते जाने की—लड़ते रहने की ! खामोशी के उस चीत्कार में कुछ भी स्पष्ट नहीं था।

चारदीवारी के भीतर में ही उसने योजनाएँ बनायी थीं। योजनाएँ—जीने की, जूझने की, संघर्ष की। हारी जा चुकी लड़ाई को लड़ाई समझकर लड़ते रहने की नादानी में बाज आ जाने का प्रण। अब कुछ नहीं रहा। कोई लड़ाई बाकी नहीं रही। कोई अभियान बाकी नहीं रहा। कैद से छूटकर घर को लौटते हुए उसने रास्ता खो दिया था। फिर उसे रास्ता मिल गया था। उसने तो सामने के पहाड़ और खेतों को देखते हुए ऐसा ही सोचा था। जाने-पहचाने दृश्यों को सामने पाकर उसने अपनापन अनुभव किया था। वह रास्ता पा लेना और आत्मीयता की अनुभूति सारा-कुछ भ्रम था। घर पहुँचकर भी वह खोया हुआ बाकी था।

दूसरे दिन बैठका से अरथी निकलते समय पहली बार लोगों ने मदन की आँखों में आँसू की सफेद धारा देखी। शव-यात्रा के समय आसपास की अन्य कोठियों से पहुँचे हुए लोगों को देखकर मदन को विस्मय हुआ। अपने जीवनकाल में पहली बार उसने एक बस्ती के लोगों को दूसरी बस्ती के संकट में भाग लेते पाया। पता चला कि किसनसिंह की मृत्यु की खबर पाकर आसपास की कोठियों में हड़ताल हो गयी थी।

मदन के साथ-साथ कई लोगों को एक ही संग वह घटना याद आ गयी जब पड़ोस की बस्ती के पाँच विद्रोही मजदूरों की सजा के विरुद्ध बोलते हुए किसनसिंह ने हरएक बस्ती से दूसरी बस्ती के संकट में भाग लेने की माँग की थी। उसने यह भी कहा था कि एक बस्ती में लड़ाई लड़ने से कोई लाभ नहीं होगा। इस लड़ाई को एक ही साथ सभी कोठियों की लड़ाई होना चाहिए। उस समय एक बस्ती के साथ दूसरी बस्ती नहीं जुड़ सकी थी और सजा पानेवाले पाँच मजदूरों में से दो की सातवें दिन मृत्यु हो गयी थी। किसनसिंह क्रोध में आकर बोला था कि उसे उस दिन की प्रतीक्षा रहेगी जब कोठियाँ एक सूत्र में बँधकर अपनी आवाज उठाएँ। जलती हुई चिता के पास यह चर्चा हुई थी।

किसनसिंह को जिस दिन की प्रतीक्षा थी, वह उसकी मृत्यु के बाद आया।

मदन ने भी यह सुना और उसने अपने बाप की मृत्यु की सार्थकता का अनुभव किया।

रात को बैठका में रामायण के सत्संग के दौरान दशरथ-मृत्यु के सन्दर्भ में पुजारी जी ने कहा, "किसनसिंह की मृत्यु को हम मृत्यु न समझें।"

पुजारीजी का तात्पर्य चाहे कुछ भी रहा हो, पर अधिक लोगों के लिए उसका अर्थ यही रहा कि यह अवसान एक नये जीवन का जन्म है। आत्मविश्वास और सामूहिक शक्ति से भरे जीवन का, जहाँ लड़ाई को लड़ने का तरीका सिर झुकाकर लड़ना नहीं होगा बल्कि सिर उठाकर।

जो भाव लोगों के मन में उठ रहे थे, वही मदन के अपने मन का भी भाव नहीं था। उसकी अपनी स्थिति तूफान के बाद के निपाती पेड़ की तरह थी। कैद से रिहाई पाने के बाद उसने जिस मुक्ति का आभास पाया था, इस समय उसी मुक्ति के बाहुपाश में जकड़कर शिथिल हो गया था। उसके अपने इर्द-गिर्द के सभी चेहरों पर युग की थकान थी। उन सभी आँखों में निराशा के साथ-साथ भय भी था। लोग जितने शोकाकुल नहीं थे, उतने व्यग्र थे।

सत्संग की समाप्ति के बाद धनलाल का वह स्वर आक्रोश का न होकर व्यग्रता का था। सुगुन भगत के इस प्रश्न के उत्तर में उसने कहना शुरू किया था कि क्यों न सरकार के सामने नयी अरजी भेजी जाये।

"हमारी रक्षा के लिए कोई आगे नहीं आयेगा। हमें अपनी रक्षा खुद करनी होगी। हमारी लड़ाई को कोई दूसरा नहीं लड़ सकता। अपनी लड़ाई हमें खुद लड़नी है।"

मदन के लिए कैद के बाहर का दरवाजा खोलने से पहले जेलर साहब ने उससे कहा था, "पा आल फ़ेर ले कुयों आंकोर एन कू। अगर इस बार तुमने किसी मजदूर को भड़काने की कोशिश की, फसाद खड़ा किया तो जीवन-भर के लिए बन्द कर दिये जाओगे।"

यह नयी सज़ा तो मदन को बिना कुछ शुरू किये ही मिल गयी थी। अब उसमें बाकी ही क्या था कि वह अपनी किसी लड़ाई को लड़ सके ! विकलांग कैदी से कोई लड़ाई लड़ने की उम्मीद कैसे रख सकता है ?

छिटपुट तारों के कारण रात राख का रंग लिये हुए थी। मदन की आँखों के सामने की रात स्याही में डूबी हुई रात थी और उसके कानों में अपने बाप की चिता के धू-धू करके जलने की आवाज अब भी आ रही थी। उसके रिक्त मस्तिष्क में एक प्रश्न उठा—क्या चिता ने मात्र किसनसिंह को ही जलाकर राख किया था या उसके साथ-साथ और भी चीज़ें जली थीं उसमें ?

उत्तर अगर उसे ही देने थे तो अपने रिक्त मस्तिष्क के किस कोने में उसे तलाशे ? प्रश्न के बाद तो वहाँ प्रश्न-ही-प्रश्न थे।

रेखा ने एक बार उससे कहा था, "तुम भी अपने बाप की तरह अपने भीतर केवल प्रश्न-ही-प्रश्न रखे हुए हो। प्रश्नों से क्या होता है ? तुम उत्तर क्यों नहीं तलाशते ?"

उसकी माँ !

उसने भी उसकी प्रतीक्षा नहीं......

मदन ने एक दूसरी लम्बी साँस ली जिससे उसका समूचा अस्तित्व काँप गया। उसने आँखें मूँद लीं। किचकिचाकर मूँदने से गारे जा चुके नींबू को दोबारा निचोड़ने की तरह आँखों के नीचे का भाग हल्की तरलता से चमक गया।

पहले दिन जब मदन काम पर से लौटा तो आँखों में आँसू लिये लौटा था।

ग्यारह साल का था, पर चूँकि तगड़े शरीर का था इसलिए कोठी में मालिक के सामने पहुँचने का तकाजा आ गया था। किसनसिंह ने उसकी पीठ को थपथपाते हुए कहा था, "पहला दिनवा हरएक जना के लिए कड़ा ही होवेला।"

फिर उसने रेखा से कहा था, "तुम देखना, मदन वह कर दिखायेगा जो किसी से नहीं हो सका है। गोरों की यातनाओं को यह हद तक जाने तभी तो यह उस स्थिति को बदलने में कुछ भी बाकी नहीं छोड़ेगा। तुम गाँठ बाँध लेना रेखा, हमारा मदन ही वह होगा जो कोड़े और बाँसों के युग को बदलकर रहेगा!"

मदन ने जानना चाहा कि ये पुरानी बातें आज उसे क्यों याद आये चली जा रही थी।

उसकी बगल में धनलाल को नींद आ गयी थी।

मदन बापू की चटाई पर अपने सिर को हाथों पर रखे छत को घूरता रहा। जहाँ उसके बाप की लाश थी वहाँ अब भी मिट्टी का चिराग जल रहा था। रेहल पर रामायण बन्द पड़ी हुई थी।

कुछ देर पहले जो वर्षा शुरू हुई थी वह थम गयी थी, फिर भी बाहर रात सिसकती रही। मिट्टी का चिराग बुझने को हुआ। उसकी लौ काँपने लगी। मदन चटाई से उठा। कोने में रखे फूल की कटोरी में तेल था। चिराग की बत्ती ठीक की। तेल भरा। चिराग ने अधिकार पा लिया सुबह तक जलने का। चटाई पर लौटकर मदन उसी तरह हाथों को सिर के नीचे रखे लेट गया—सुबह तक जागे रहने के लिए।

दस

किसनसिंह की मृत्यु के तीसरे दिन सरकार की ओर से नियुक्त मजदूरों का रक्षक बस्ती में पहुँचा। उसने बस्ती में प्रवेश किया। उसकी बग्घी को मीरा ने उस दूसरे मोड़ पर ही देख लिया था। बकाइन के पेड़ों के बीच से आँखमिचौनी खेलती हुई वह बग्घी पास आती गयी थी। पहले तो मीरा उसे बड़े साहब की बग्घी समझ बैठी थी। अधिक पास आने पर वह साधारण बग्घी निकली थी। पगडण्डी मिलने से पहले वह रुक गयी थी। उस आदमी के साथ दो और भी आदमी थे, हाथों में कागज-बहियाँ लिये। एक नाटा था और दूसरा आगे-आगे चलनेवाले आदमी की तरह गठीला था।

मीरा बस्ती का पहला व्यक्ति थी जिसे उस आदमी के आगमन का पता चला था। वह डर गयी थी। कहीं वह आदमी मदन को फिर से हिरासत में लेने तो नहीं आ गया था। एक बार बस्ती में ऐसा हो चुका था। मिठुवा की रिहाई के बाद दूसरे ही दिन बिना वर्दी के पाँच आदमी बस्ती में आ पहुँचे थे और उसे दोबारा अपने साथ लेकर चले गये थे, और फिर तो मिठुवा हमेशा के लिए बस्ती से दूर हो गया था।

अपने दोनों साथियों के साथ उस आदमी के पास आ जाने पर मीरा ने उसे पहचान लिया था। वह दूसरी बार बस्ती में आ रहा था। बस्ती के लोगों से अलग साहबी ठाठ में। पहली बार जब वह आदमी कोठी में पहुँचा था तो बहुत ही लम्बी-चौड़ी चर्चा हुई थी उसकी—अब हमारी स्थिति में परिवर्तन आयेगा। यह आदमी हमारा रक्षक है।......

इस आदमी ने उस समय बहुत-सारे वायदे किये थे। इस आदमी को लेकर कोई बहुत बड़ी बात हुई थी। क्या थी वह—मीरा की याददाश्त इससे आगे एक धुँधलके में खोकर रह जाती। उसकी अपनी माँ की मृत्यु भी उन्हीं दिनों हुई थी। शायद यही वजह हो कि उसे उस समय की और दूसरी बातें याद न रहीं। जिन परिस्थितियों में उसकी माँ की मृत्यु हुई थी, वे इतनी नुकीली और तीखी थीं कि मीरा के भीतर तक धँसकर कसकती रह गयी थीं।

दो घटनाओं के एकसाथ घटने पर प्रायः ऐसा होता है कि एक की छाप सतही होती है और दूसरे की हड्डियों तक धँसी रह जाती है। इतनी याद तो उसे अवश्य ही थी कि उस आदमी के पहुँचते ही उसे एक ही साथ कई हार पहनाये गये थे। उसने बहुत लम्बा भाषण किया था। उसने क्या कहा था यह मीरा को नहीं मालूम, लेकिन उसकी बातों से लोग खुश हो उठे थे। उस खुशी में लोगों का नाचना-गाना अपनी पराकाष्ठा पर था, जब एकाएक मीरा की माँ की मौत से सभी कुछ सन्नाटे में परिवर्तित हो गया था।

मैदान के उस दूसरे छोर पर दो बकरियाँ चर रही थीं। बस्ती के पहले घर की ओरियानी में एक कुत्ता लेटा हुआ था। वह आदमी अपने दोनों साथियों के साथ वहाँ पहुँचा जहाँ बस्ती के सभी लोग इकट्ठे थे। उसे पास आते देख कोई अपनी जगह से नहीं हिला। पहली बार जब वह आया था तो लोगों ने झुक-झुककर सलाम किया था। बहुत अधिक खातिरदारी हुई थी उसकी। वह जाने लगा था तो लोगों ने उसकी बग्घी को चीजों से भर दिया था। मीरा अपनी जगह पर खड़ी सोचती रह गयी—इस बार इस आदमी के जाने के बाद बस्ती पर क्या गुजरेगा? पिछली बार इसके आने से पहले और आने पर उम्मीदें आयी थीं। उसके जाते ही मृत्यु आयी थी, गिरफ्तारी आयी थी। निराशा का सूखा पड़ गया था। इस बार क्या होगा? मीरा चिन्तित हो गयी थी। उसे सबसे अधिक चिन्ता मदन के लिए थी। वह दौड़ गयी जीनत खाला के पास।

जीनत चक्की में मकई पीस रही थी। सपुरा फरीद की धोती में पेवन्द लगा रही थी। दोनों के सामने होते ही मीरा बोल पड़ी, "खाला, वह आदमी फिर आ गया!"

चक्की रोककर जीनत ने मीरा की ओर देखा। मीरा ने अपनी बात दोहरायी। जीनत ने पूछा, "कौन आदमी?"

"वही जो मेरी माँ के मरने से पहले आया था। तुम कहती थीं न कि वह मजदूरों का रक्षक नहीं कोई मनहूस है!"

सपुरा भी मीरा की ओर देखने लगी। ये बातें उसके यहाँ पहुँचने से पहले की थीं।

"खाला, मुझे डर लगने लगा है।"

"किस बात का डर है?"

"इस बार इसके जाने पर क्या होगा?"

"वह तो इसके आने से पहले ही हो गया। किसन भैया की मौत से बड़ा अनर्थ अब और होगा ही क्या?"

"मैं मदन के बारे में सोच रही हूँ।"

"उसके बारे में क्या सोचना है?"

"कहीं मिठवा भैया की तरह इसकी भी फिर गिरफ्तारी न हो जाये।"

"काहे को होने लगी?" जीनत ने जिस ढंग से प्रश्न किया, उससे मीरा को जैसे यह कह दिया गया कि ऐसा कभी हो ही नहीं सकता।

मीरा उसकी बगल में बैठकर उसके साथ जाँता चलाने लगी।

मदन की गिरफ्तारी के समय वह ग्यारह साल की थी, जिस उम्र में उसकी माँ का ब्याह हुआ था। बस्ती की बहुत-सारी लड़कियों का ब्याह ग्यारह-बारह की उम्र में हो जाता था। दूसरी बस्तियों से जो लड़कियाँ दुल्हन के रूप में यहाँ आतीं, वे भी इसी उम्र की हुआ करती थीं। मीरा के ब्याह के लिए कई बार बैठका में भी चर्चा हुई थी। जीनत की ओर से वह दाऊद मियाँ होता था जो यह कह उठता, "मीरा बिना माँ-बाप की है, पर वह भागी नहीं जा रही। अगर वह खुद शादी के लिए तैयार नहीं तो उसे मजबूर क्यों किया जाये?"

आज वह बस्ती में अठारह साल की अकेली कुँवारी लड़की थी, इस बात से कुछ लोगों को चिढ़ थी। कुछ लोग रियायत करके उसे बस्ती का बोझ नहीं मानते थे। बाद में जब कुछ लोगों ने यह कहकर कि बात की हद हो गयी, मीरा के हाथ हर हालत में पीले कर ही देना चाहिए तो किसनसिंह के साथ-साथ पुजारीजी ने भी यही कहा था, "वह किसन की मीरा है, रहने दिया जाये।"

चक्की चलाती हुई मीरा ने पूछा, "खाला, तुम्हें यकीन है न कि मदन को फिर से ....।"

"अरी पगली, कह दिया न कि उसे कोई नहीं पकड़ सकता। और फिर मदन बस्ती में थोड़े ही है, वह तो ऊपर किसन भैया की झोपड़ी में है। वहाँ ये लोग थोड़े ही पहुँचेंगे?"

एक लम्बी साँस के साथ मीरा जँतसार गाती हुई जाँता चलाती रही—

सोरवा से भिगी गयले गोरी के चुनरिया
बड़ी गइली ठनवा सरदी के रतिया
गरमी के खातिर चलावे रात भर जँतवा
गोरी पिसत रहइले सैंयाँ खातिर सतवा

[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]—
[illegible] !

आँगन में सूखने के लिए रखे हुए धान पर चिड़ियों को आते पाकर जीनत ने सपुरा से कहा, "सपुरा, चिड़ियों को खदेड़ आ।"

उसकी बात के कहने से पहले ही सपुरा अपने हाथ की धोती को खाट पर रखकर उठ गयी थी। उसके बाहर निकलते ही जीनत ने [illegible] पूछा।

"मीरा, तुम एकदम वहीं आ रही हो जो……।"

"क्या बात है खाला, तुम चुप क्यों हो गयीं ?"

"तुम एकदम वहीं आ रही हो जो मैंने कभी किया था।"

"क्या किया था तुमने ?"

"तुम्हारे खालू के बिना जाने उन्हें प्यार करती रह गयी थी। अगर आपा वकील नहीं होतीं तो हमारा निकाह ही कभी न हो पाता। लगता है, तुम्हारे और मदन के बीच रज्जू आपा की तरह मुझे ही आना पड़ेगा।"

मीरा अकेली जाँता चलाने लगी। जीनत हँसकर बोली, "खाली चक्की चला रही हो ?"

मीरा ने जल्दी से सामने की डलिया से मकई के दाने निकालकर चक्की में डाले और उसे घुमाने लगी। जीनत चुप नहीं रही, "अरी पगली, इससे पहले कि मैं तुम दोनों के बीच आऊँ, तुम पहले यह पता तो लगा लो कि मदनवा तुम्हें ब्याहने को तैयार होगा या नहीं।"

मारकीन के कपड़े पर से मकई के आटे को बटोरकर थाल में रखती हुई जीनत हँस पड़ी।

"मैं भी उल्टी बात करने लगी। यह पता तो मुझे ही लगाना होगा कि मदन तुम्हें चाहता है या नहीं।"

"खाला, एक बात पूछूँ ?"

"मदन के बारे में ?"

"सपुरा को तुमने फरीद भैया के लिए पसन्द किया था या खुद भैया ने……?"

"तुम्हारे फरीद भैया में इतना दम कहाँ कि वह किसी लड़की को पसन्द कर सके और फिर सपुरा को तो उसने निकाह के वक्त ही देखा था।"

"तो इसका मतलब है कि तुम्हीं ने उसे पसन्द किया था।"

"और कौन करता ?"

"सपुरा तो इस बस्ती की नहीं थी।"

"मेरी बुआ सपुरा की बस्ती की थी……पर तुम ये सारी बातें क्यों खोद

रही हो ?"

"फरीद भैया और मथुरा की जोड़ी बहुत अच्छी निकली।"

"तू सीधी बात क्यों नहीं पूछ लेती ?"

चक्की पर हाथ बदलते हुए मीरा ने पूछा, "कौन-सी सीधी बात ?"

"यही कि तुम्हारी और मदनवा की जोड़ी कैसी रहेगी।"

चक्की की चाल को धीमा करके दाने डालने के बाद मीरा बोली, "मैं तो ब्याह करूँगी ही नहीं, तो फिर जोड़ी कैसी ?"

"तू अपनी हिरन की आँखों को नीचे झुकाकर क्यों बात कर रही है ? ऊपर करके बात कर, फिर देखूँ। मैं भी तुम्हारी ही तरह छिनरछाप किया करती थी।"

मथुरा के लौट आने पर दोनों ने फिर उस विषय पर बात नहीं की।

घर लौटकर मीरा ने अपनी मौसी को उसी हमेशावाली मुद्रा में पाया। वह उसके पास पहुँची। अपने दोनों हाथों से उसके सिर को थामकर अपना सिर उससे दे मारा। उसी हमेशावाले स्वर में मौसी बरस पड़ी, "फोड दे हमार मथवा फिर त तोर मनमनी हो जाय।"

"मौसी, तुम्हारे माथे से तो मुड़िया पहाड़ का माथा फूट सकता है। तुम्हारे माथे को कौन फोड़े ?"

"तू रहने कहाँ अब तक ?"

"घूम रही थी।"

"तोर लच्छन पर कुत्ता मूते। छोकरी होके घरघूमनी बनन रहेले। तोर उमीर में हम पाँच लैका के माँ रहलीं।"

मीरा गम्भीर हो गयी, क्योंकि यही वह वाक्य होता था जिसे अनायास ही कह चुकने के बाद उसकी मौसी उदास हो जाती थी। सचमुच कभी वह पाँच बच्चों की माँ थी। यह उस प्रकोप से पहले की बात थी। उसी तूफान का शिकार मीरा का मौसा भी हुआ था।

पूरी सोरठी ही दब गयी थी बरगद के पेड़ के नीचे।

O

मदन ने किसी तरह अपने मस्तिष्क के तनाव को कुछ कम किया। किसनसिंह की हस्तलिखित उस पुस्तक को अपने साथ लिये वह नदी की ओर बढ़ गया। जंगली बादाम के पेड़ के नीचे बैठकर उसने पुस्तक खोली—वह मौसा-सन्नू की कहानी थी संवादों में। मोटी थी वह पुस्तक, फिर भी मदन ने उसे पूरा पढ़ने को सोचा। लिखावट स्पष्ट थी। उसे पढ़ना शुरू किया :

मौसा। हूँ कल से अपन को नौकरी पर जाना ही पड़ेगा सन्नू की माँ !
कैसे जा सकोगे ? अभी तो तुम्हारा घोर अच्छा भी नहीं हुआ।

लछिया, तू ही गावत है, तू ही वजावत है।
मैं तुम्हरे को काम पर जाने को थोड़े ही वोलत वानी ?
पर यह तो कह रही थी ना कि सन्तू जो कुछ लाता है वह वस नहीं हो पाता है।
झूठ थोड़े ही वोलत वानी ?
मैं जानत हूँ लछिया। एही कारन त कल से नौकरी पर जाने की सोच रहा हूँ। यहाँ बैठल रहल से त चावल-दाल सरदार के हके लगत रही। भगवान को भी कवो न जाने का सूझेला ? अपन को उहे वखत लँगड़ा वना गया जब घर में एगो पेट और बढ़ गया है। हम लोगन तो पेट दबाके सो सकते हैं, पर दिन-भर मजदूरी करेवाला सन्तू और घर में नया-नया आवल वहू के कव तक भूखे रखल सकी ?
भगवान है। तुम काहे फिकर करत वानी ?
वस, तुम्हारे को तो एक ही मन्तर आता है।
तुमसे अपने को सँभाला नहीं जाता और काम पर पहुँचने की कहते हो ?
रात को फिर से कच्ची हरदी बांध दोगी तो फजीर तक अच्छा हो जायेगा।
लेने के देने न पड़ जाये ! इस वार कोई दूसरा पत्थर लुढ़क आइल त वस जिन्दगी-भर गोर पकड़के रह जाना पड़ेगा।
सोमा ! सन्तू के खातिर तुमने लीटी तो सेंक दी न ?
सेंक दी है माँ !
तो फिर आकर यहाँ तनी वैठ तो सही।
रसोईघर में अभी कुछ और काम वाकी है।
काम के खातिर त इस घर में तुम्हारी जिन्दगी पड़ी है......आ वैठ, हम तुमसे दो-चार वातें कर लें।
इधर कई वरस वाद हम लोगन ने किसी का व्याह देखा।
मैं समझी नहीं।
हाँ वेटी......जव से इस धरती पर हमरे पाँव पड़े हैं, हमने पहला व्याह देखा यहाँ !
यह कैसे हो सकता है ? हमसे पहले भी तो इन सारे लोगों के व्याह हुए होंगे ?
यहाँ कौन किसको व्याह करने देता ? हम लोगन की गिनती आदमी में थोड़े ही होवत रहल !
वह तो अव भी नहीं होवत है सन्तू की माँ।
हाँ, पर हालतवा तो कुछ-कुछ सुधरल है। सोमा वेटी, तुम्हारे को यह नाहीं मालूम कि जव हम लोग जहाज से उतरे थे तो घूँघट के साथ। हमारे वीच के मर्दन से कहा गया था कि जिसे चाहें वे लोगन अपनी घरवाली वना लें।

घूंघट हटाके पसन्द करेके हुकुम कोई के ना मिलत ई खातिर गोर कि पातली देख-देखके जेकर मन में जे आल ओके पसन्द कर लिया गया। इसने तो मेरे पाँव भी नहीं देखे थे। बस हम एकर सामने थी। गोरे की डाँट से डरके इसने मेरी ओर संकेत कर दिया था।
सभी ब्याह इसी तरह हुए थे ?
तुम एके ब्याह कहत बानी ?......
लछिया ! छोड़ो उन पुरानी बातों को।
सोमा बिटिया, तुम और सन्नू बड़े भागवाली हो। धूम-धाम, गाना-बजाना, खाना-पीना लोग-बाग के ना होल ता ना होल, कोई बात नहीं, पर सन्नू तुम्हारी माँग में सेंदुर तो भर पाया। इस मारीच देसवा की तुम पहली-पहली दुलहनिया हो।
सन्नू की माँ, अपनी इस धोती का पेवनवा देख, फिर फट गया।
अभी त उसी दिन इसे सीले रहली।
इसमें हमर का दोष ?
ना-ना, दोष त हमार होना चाहिए।
सन्नू की माँ, वह ना तुम्हार है न हमार, जंगल की झाड़ियों का है। पर इधर तो कई दिन से घर से बाहर हुआ ही नहीं......सोचत बानी तुम्हारा तागा ही अच्छा ना होगा।
बहू ! देख छोटे सन्दूक के ऊपर डिबिया में सूई-तागा होई, तनी लेते आना त।
इस धोती को छोड़त भी नाही बनत। बीस बरस से हर घाम-पानी में साथ देती आयी है। भारत से मारीच तक। वे सभी दिन युग-से लम्बे हो-होके बीतते रहे हैं। कई बार तुमने इसे सिया है—चिथरी-चिथरी होने से बचाया है। पर अब त लगत बा कि एकर दिन पूरे हुए। इये धोती मे हम जहाज पर चढ़ा था। हमार माँ बिदाई के बखत कहले रहली—लखन ''रामायण मे राम के बनवास होइल रहल..... हमार राम त जी भरके दूध भी ना पी सकल रहल। महामारी मे लोप हो गइल।..... लखन के अकेला बनवास हो रहल बा .....कालीमाई तुम्हारी रच्छा करी बेटा। मारीच मे धन कमाके हम लोगन के बिसार न जाना। उस बखत का एक यही हाथ का कड़ा निशानी रह गइल है। माँ बोली थी—इय कड़ा तुम्हारे हाथ को धन कमाने की सक्ति देवेगा। यहाँ त पत्थर उलाट-उलाटकर सोना के बदले हम सबन को लोर-ही-लोर मिलते आया। यह कितनी बड़ी कमाई रही !
जब सुनो तब तुम एही पुरान बातों को दोहरावत रहत हो।
इस नरक में आगे की कोई गुंजाइश भी तो नाही।
तुम लोगन से क्या सोचा जायेगा.... सोचनेवाले तो सोच ही रहे हैं।

इस नरक में यही पोथी तो हम सवन को जीये की चाह देगी।
ठीक वा पर इस समय हमरे को कुछ भी सुनना-उनना नाहीं।
अरी सुनना ना सही, सुना तो सकती हो ?
कह देली ना कि इस समय मेरा मन दुखी है।
यहाँ आओ तो वहू !
वहू को और भी कई काम करने को हैं।
ऊ सव होते रही वेटी ! सन्तू कहत रहल कि तुम्हें रामायण वहुत अच्छी आती है। तुमने अव तक सुनाया नहीं।
थोड़ी-वहुत आती है।
तो फिर सुनाती क्यों नाहीं ?
रात को सुनाऊँगी।
अच्छा तो रामायण रात को सुनाना, अभी थोड़ा-सा आल्हा तो सुना सकती हो।

ऐसा मार करी महलन में नाहर तेरो वुरो होई जाय।
नाहक छेड़ा इन वैरिन को रड़िया करा वुखार गाँव।
मानुष होते तिनसे लड़ते देवता किनपै मार जायँ।
थोरी उमरियन के लड़िका है और मसभीजे रेख उठान।
वहुतक क्षत्तीय ढेर कर दिये इनके अंग न आई घाव।···

सचहूँ तू तो वहुत ही अच्छा गावत है सोमा ! सुनके खून चले लगल।
तुम लोगन का यह खून वस घरवे तक चलता है। वाहर तो वह घोंघा का पानी हो जाता है।
वकती खुद रहत हो और हमें कहती हो कि हम विन वात की वात करत हैं।
अपने इस घायल पाँव के साथ कल तुम्हें खेतों में पहुँचना है, नहीं तो और भी चार दिन की मजूरी काट ली जायेगी······ये सव विन वात की वात वानी।
तू रोज मेरे को ताने देती रहत हो।
ये तुम्हरे अकेले की वात थोड़े ही है। यह सिमटी हुई वेवसी की जिन्दगी हर मजदूर जी रहा है। आल्हा गानेवाले इस तरह वेचारगी का जीवन कव तलक जियेंगे ? अपन संगे-संगे अपन औलादों को भी एही तरह की जिन्दगी जिलाते आ रहे हो·····अव उनके वच्चों के लिए भी वही होगी ?
का करेके वोलत वानी ?
आखिर तुम लोगन भी मालगासी गुलामों-जैसे वैल की तरह कड़े काम को करने से इन्कार क्यों नहीं कर जाते ?
अरी लछो, हम विहारी लोग काम से डरत नाहीं। काम ही में तो राम

ठीक वा ! तो फिर आँख-मुँह वन्द करके चुपचाप सबकुछ सहत रह।
अभी सहे के कुछ सक्ती बाकी वा।
खून पानी बन गया है तो बस सहते रहो। कहत है वन्धल परजा ना बसत है पर हम लोगन त बसते आ रहे हैं।
सहना भी तो कुछ करना ही होवत है। आदमी पहले अपने-आपसे जूझे, फिर दूसर से जूझने की हिम्मत करे।

पीछे से आवाज सुनकर मदन ने पुस्तक से आँखें हटाकर उधर देखा। देवराज था वह।

"मदन भैया, बस्ती में एक आदमी आया है।"

ग्यारह

वह आदमी मजदूरों के आगे जा खड़ा हुआ। लोग हिले नहीं, डुले नहीं। उस आदमी ने सरदारी नजर से मजदूरों की ओर देखा। डेढ़ सौ मजदूरों का जमघट था उसके सामने, सभी पालथी मारे बैठे हुए थे। उसके पहुँचते ही रामायण का पाठ बन्द हो गया था। उस आदमी ने अपने साथ के दोनों आदमियों के बीच खड़े होकर एक के हाथ से कोई कागज लिया। उसे ऊपर उठाते हुए उसने पूछा, "तुम्हारा नेता कौन है ?"

बैठे-ही-बैठे धनलाल ने कहा, "सभी नेता हैं।"

"मुझे एक विशेष आदमी से बात करनी है।"

"यहाँ सभी विशेष हैं।"

"मैं मजदूरों का रक्षक हूँ।"

"हम जानते हैं।"

"मैं सरकार की ओर से आया हूँ।"

"पिछली बार भी आप सरकार की ओर से आये थे।"

"यह कागज देख रहे हो तुम लोग ! कोठी के मालिक ने अपनी जमीन वापस चाही है।"

"आप मालिक की ओर से आये हैं या......"

"यह चिट्ठी अदालत की ओर से हम लोगों के पास पहुँची है।"

पीछे से किसी की अस्पष्ट आवाज आयी, "हमारी अर्जी को आप लोगों के यहाँ पहुँचे तीन महीने हो गये, कोई हमें देखने नहीं आया। मालिक की चिट्ठी को बस तीन दिन हुए और आप आ पहुँचे।"

"हंगामे को रोकने के लिए आना पड़ा।"

"कैसा हंगामा ?"

अपनी जगह पर खड़े होकर फरीद ने कहा, "तुम हमारे आदमी नहीं हो !"

"भटियारा है !"

"दलाल है !"

कई लोग एकसाथ खड़े हो गये।

धननान ने कहा, "आप यहाँ से चले जाइए, हम आपका कुछ भी सुनना नहीं चाहते।"

अपने स्वर में कोमलता लाने का प्रयास करते हुए मजदूरों के उस रक्षक ने कहना शुरू किया, "मैं आप लोगों के हित के लिए यहाँ आया हूँ। आप लोग मुझे गलत समझ रहे हैं। वे लोग ताकतवर हैं, उनके साथ इस तरह की लड़ाई नहीं चल सकती। बाकी सभी कोठियों में काम शुरू हो गया है। आप लोगों के लिए भी कोई दूसरा चारा नहीं। पानी में रहकर आदमी मगरमच्छ से बैर नहीं कर सकते।"

फरीद आगे आ गया, "चाहे हमारा सर मगरमच्छ के मुँह में आ जाये हमें हिलने-डोलने की भी इजाजत नहीं मिल सकती। यही न ?"

अपने हाथ की चिट्ठी को अपने बायें खड़े आदमी को लौटाते हुए मजदूरों के उस रक्षक ने कहा, "हालात को और भी नाजुक मत बनाओ। कानून से यह खेत कोठी के मालिक का होता है। इसे लौटा देने में ही तुम सभी का कल्याण है।"

एक ही साथ कई स्वर आये :

"हम खेत नहीं लौटायेंगे !"

"जो जमीन इतने वर्षों से हमारी रही है वह एक जाली कागज के टुकड़े से किसी और की नहीं हो सकती !"

"यह जब जंगल था तो किसी का नहीं था, आज कैसे किसी का हो गया ?"

"हमारी फसल हमारी है। हम किसी को नहीं देंगे !"

ये आवाजें फ्रेंच से लेकर क्रियोली-हिन्दी-भोजपुरी तक थीं। एक-एक करके सभी लोग अपनी जगह पर खड़े हो गये थे।

उस आदमी ने धीरे से सवाल किया, "इस तरह हाथ बाँधे तुम लोग कब तक रहोगे ?"

फरीद ने उत्तर दिया, "यह सवाल हमारे हमदर्द का होता तो जवाब जरूर मिलता।"

"मैं तुम लोगों का हमदर्द हूँ।"

"नहीं हो।"

"एक हफ्ते बाद तुम लोग चावल-आटे के मुहताज हो जाओगे।"

"हम अभी भी मुहताज हैं।"

उस आदमी को आश्चर्य हुआ। पहली बार वह किसी बस्ती के मजदूरों को इस ढिठाई के साथ बातें करते पा रहा था।

"तुम लोग मेरी बात नहीं मानोगे तो पछताना पड़ेगा।"

रहना होगा।"

"और ऊपर का घर ?"

"धनलाल अकेले रहता है। तुम्हें उसी के साथ रहना होगा।"

मदन ने आगे कुछ नहीं कहा।

शाम को जब वह ऊपर से सभी पुस्तकें लिये लौट रहा था, सीता उसे कुएँ के पास मिल गयी। अगर सीता खुद नहीं टोकती तो मदन सिर झुकाये आगे निकल जाता। उसने उसे उसकी आवाज से पहचाना। सीता बदल गयी थी। अपने भीतर की उस टीस को मदन ने दबा लिया।

"कैसी हो सीता ?"

"मैं तो अच्छी हूँ, तुम कैसे हो ?"

"अच्छा हूँ।"

उसके पास बातें नहीं थीं। कठिनाई से बात मिली, "दिन में विवेक मिला था। उससे पूछा था तुम्हारे बारे में।"

"किसन चाचा तुम्हें बहुत याद करते थे।"

यह कह चुकने के बाद सीता ने महसूस किया कि यह बात उसे नहीं छेड़नी चाहिए थी। मदन के होंठों के बीच जो फीकी मुस्कान थिरकी, वह उसकी अपनी नहीं थी। सीता को लगा, वह शाम की हवा से उधार ली हुई थी।

बारह

सूरज निकलने से पहले ही चार आदमी शहर को रवाना हो गये। विवेक उनके साथ नहीं था। उसने रात अपने घर बितायी ही नहीं थी। जब मदन ने सीता से उसके इस तरह बस्ती से बाहर रहने की बात पर स्पष्टीकरण चाहा तो सीता ने सिर झुका लिया था। उसकी आँखों में आ गये आँसू को मदन नहीं देख पाया था। रास्ते में धनलाल ने मदन को सारी बातें बतायीं।

चारों आदमियों के शहर चले जाने के बाद लोग खेतों में उसी पुरानी लगन के साथ जुट गये। गौतम राव का बेटा जामुन की डाली पर बैठा जोर से गा-गाकर लोगों के हौसले को बढ़ा रहा था। धरती में अब भी रात की गन्ध थी। सूरज सहमा हुआ बादलों के पीछे था। खेत तर था पतली झालर में। आम के पेड़ पर के वे सारे पक्षी थककर चुप हो गये थे। दो-दो चार-चार के झुण्ड में वे डालियाँ छोड़ने लगे थे। सुबह की छिटकती ज्योति के साथ मजदूरों के भीतर का भय काफूर होने लगा था। चौथा दिन था, सब्जियों की तोड़ाई नहीं हुई थी। बैंगन, टमाटर और मिर्च की डालियाँ बोझिल थीं। भिण्डी मोटाने लग गयी थी। मक्की की बालियों को मैनाओं ने नंगा करना शुरू कर दिया था। मूंगफली के पौधों की जड़ में तीतरों ने बिल बना दिये थे।

पौधों और डण्ठलों में नेवले ने कई छेद कर दिये थे। खेत की अस्तव्यस्तता का उतना अधिक दुख किसी को नहीं था। सभी लोग कुछेक बाद अपनों के बीच लौटे हुए लग रहे थे।

सूरज ठीक सिर के ऊपर पहुँच गया था जब खेत का काम अपनी चरमसीमा पर था। कुन्दन भगत की नजर सबसे पहले कारखाने की ओर से आते हुए रास्ते पर पड़ी थी। उस उड़ती धूल में पहले तो कुछ भी स्पष्ट नहीं हुआ, पर दूरी कम होते ही लोगों ने देखा—बारह-पन्द्रह बन्दूकधारी रखवारों के आगे-पीछे सौ से अधिक सूअर बढ़े चले आ रहे थे। उनको घेरे हुए आठ-दस शिकारी कुत्ते थे। लोग कुछ समझ पाते कि इससे पहले रखवार बन्दूक ताने खेतों के चारों दिशाओं को पहुँच गये। कुत्तों की अगवानी में सभी सूअर धड़ाधड़ खेतों में प्रवेश कर गये। पौधों को रौंदते हुए सूअरों ने समूचे खेत को कुछ ही घड़ी में तहस-नहस कर दिया। कुत्तों और सूअरों को रोकने के प्रयास में कुन्दन कुएँ में गिरते-गिरते बचा। हरीश के गिर जाने पर कई सूअर उसके ऊपर दौड़ गये। मदनलाल और रामसेवक ने मुँडेर से गिरकर अपने-अपने पाँव तोड़ लिये। जिन्होंने जानवरों पर पत्थर चलाने की कोशिश की, उनकी गरदन पर बन्दूक की नली टिका दी गयी।

रखवारों से हाथापाई करके बन्दूक छीनने की कोशिश में सुनंदन और धनपतवा रस्सी से जकड़े जा चुके थे। सूअरों के झुण्ड के लौट जाने पर खेत उजड़ा हुआ, लाश-सा प्रतीत हुआ। हरियाली मटियामेट हो गयी थी। सूअर की गन्ध में मिट्टी की सोंधी गन्ध विलीन हो गयी थी। सभी कुछ सपाट हो गया था। फसल चाट ली गयी थी। महीनों का सारा परिश्रम देखते-ही-देखते मिट्टी में मिल गया था। सबसे अधिक घायल सोनालाल था। कुत्तों ने उसे नोच डाला था। खेत की लाश पर सभी लोग लाश बने-से खड़े रहे। बहुत देर के बाद लोगों को पता चला कि रखवार अपने साथ पाँच आदमियों को बाँध ले गये थे जिनमें सुनन्दन और सोनालाल के बेटे भी थे। किसी ने एक रखवार के मुँह से सुना था कि कारखाने में चार दिन से भूखे पड़े गन्नों को उन पाँच आदमियों से पेरवाकर ही रहा जायेगा। एक दूसरे ने कहा था कि अस्सी आदमियों का काम उन्हीं पाँचों को पूरा करना था। उस बीभत्स दृश्य की कल्पना मात्र से लोग दहल गये।

उस बलात्कार के बाद खेत का बहुप्यारा हुआ सन्नाटा! सन्नाटे का खौलता हुआ वह माहौल! माहौल की दबी हुई अनसुनी सिसकियाँ और बीच में बेबस खड़े निहत्थे, लाचार मजदूर एक-दूसरे के सामने गुनाहगार की तरह खड़े रहे। वह भारी-भरकम सन्नाटा अकुलाकर फट गया। एक अप्रत्याशित चीख! और कुन्दन भगत ने अपने मे ऐंठकर अपने दाँतों को पीसते हुए दोनों आँखों को बाहर आ जाने दिया। एक और लम्बी चीख मिरगी के दौरे जैसी। सहम से आकर लोग उस तक पहुँचते कि इससे पहले वह निश्चिन्त होकर चट्टान पर बैठ गया। इसी तरह का दौरा उसे उस दिन भी आया था—जब वह जवान था। तीन भाइयों के साथ उसने भारत छोड़ा था। अपनी

माँ के सामने तीनों ने एकसाथ जीने-मरने की सौगन्ध खायी थी। जहाज से उतरते ही कतार में से तीनों भाइयों को तीन अलग गोरों ने खरीद लिया था। सुगुन सबसे छोटा था। भाइयों से बिछुड़कर वह पछाड़ मारकर गिर पड़ा था। इसी तरह की मिरगी उस वक्त भी आयी थी। तीनों भाई एक-दूसरे से फिर कभी नहीं मिले।

हवा में भँवर काटता हुआ वह उसका अपना ही स्वर था जो परिक्रमा के बाद आज उसके अपने कानों में बजने लगा था। उसने दोनों हाथों से कान बन्द कर लिये। चिलम के पहले कण के बाद ही वह किसनसिंह से तर्क कर उठता था—'यह सामने का पहाड़ है न किसन! इससे लड़ने का मतलब जानते हो क्या होता है? इस लड़ाई की हार और जीत एक समान है। हार का मतलब तो माथा फूटना ही है, पर जीत का मतलब भी वही है। जीत तो तभी न होगी जब पहाड़ टूटेगा? और जानते हो पहाड़ टूटेगा तो क्या होगा? वह सीधे हमारे ही सिर पर गिरेगा!'

वह गाँजे की खुमारी नहीं होती थी, पर उसे सुननेवाले ने उसके स्वर को कभी उसका स्वर नहीं माना। 'आवाजें आती होती हैं। वे हवा में विलीन नहीं होतीं, उसमें समा जाती हैं। समाकर सुरक्षित रहती हैं और प्रतिध्वनित हो उठती हैं अनचाहे अवसरों पर।' किसनसिंह की यह बात आज उसे सच प्रतीत हुई।

उसके अपने सामने था—उजड़ा हुआ खेत और उजड़े हुए लोग। उन्हीं में एक था वह। अपनी डबडबा आयी आँखों को बहने से रोकने के लिए उसने अपने को वर्तमान से काटना चाहा। लंगोटी की टेंट तक हाथ पहुँचाया और लम्बी साँस लेकर रह गया। उस चीज को जब काम आना चाहिए तभी वह सामने नहीं होती। उसने अपने चारों ओर देखा। विवेक भी सामने नहीं था। खाली चिलम को उसने लँगोटी के छोर में फिर से बाँध लिया।

सूरज ठीक माथे पर था। उसकी बरछियों की तरह नुकीली सलाखें मजदूरों के सीने और माथे को भेद रही थीं। पसीने की धाराएँ बह रही थीं। दम तोड़ते खेत को गंगाजल नसीब था।

चेतना पाने पर किसी ने प्रश्न किया—"का हालत होई हमारे पाँच भयवन के?"

पिछली बार जंजीर में बँधकर कारखाने को घसीटे गये उन आठ मजदूरों के साथ जो कुछ हुआ था उसे सभी लोग जानते थे। सिर्फ वे ही नहीं जान सकते जो सात वर्ष के नहीं हुए होंगे। उन आठ आदमियों में सुगुन भगत भी तो एक था! अगर उसकी गरदन आज भी टेढ़ी और कन्धे से सटी हुई थी तो वह इसलिए कि बैलगाड़ी का पहिया उसके कन्धों पर चौबीस घण्टे बँधा रह गया था। वह गिरमिटिया था। अनुबन्ध की अवधि समाप्त हो जाने पर जब उसने भारत लौटना चाहा था तो उसके सारे कागजात फाड़ देने के बाद उससे कहा गया था कि वह जहाज जो उसे भारत लौटा ले जाता, हिन्दमहासागर की अथाह गहराई में डूब गया था। कहा जाता है कि उस दिन पहली बार सुगुनवा ने गाँजे का दम मारा था। गाँजा पीकर लोग हँसते हैं, पर

गुनगुनाता बच्चों की तरह विसयता रह गया था। आज उजड़े हुए खेत में उस घड़ी की पुनरावृत्ति हुई।

कुछ ही दूरी पर टीले के उस पार खाकिया की गेरुई दीवारवाले उस घर में विवेक हँस रहा था। आंद्रेआ को उसकी वह हँसी बहुत अच्छी लगती थी। विवेक हँसता था तो गांजे के दम के बाद ही।

शुरू में आंद्रेआ को गांजे की वह गन्ध तनिक भी अच्छी नहीं लगी थी। विवेक के सामने फ्रांस की अंगूरी शराब रखने के बाद उसने कई बार उससे कहा था कि नशे के लिए वह चीज गांजे से बेहतर थी। उसकी उस बात को मानकर एक दिन विवेक ने चिलम नहीं जलायी थी। उसकी उस अंगूरी शराब के नशे में आंद्रेआ घबरा गयी थी। वह नशा भिन्न था। विवेक की हँसी गायब थी। वह विवेक नहीं रह पाया था। उसी दिन उसने सामने के शीशे को फोड़ दिया था। दूसरे ही दिन आंद्रेआ ने बोतल छिपा दी थी और विवेक को फिर से चिलम जलानी पड़ गयी थी। उस रात आंद्रेआ ने उसके कान में धीरे से कहा था, "विवेक ज़े नेफ पा कोनी लोम प्ली कोम्प्ले के त्वा।"

इसके बाद आंद्रेआ ने अपने इस वाक्य को और भी कई बार विवेक के कानों में दोहराया था, "सचमुच विवेक, पहली बार तुम-जैसे सम्पूर्ण मर्द को जाना है मैंने।"

दोनों उस समय तक जागे रह जाते थे जब तक कि बिनमहरा मुर्गी की बांग शुरू न हो जाती।

अपने उन सारे मजदूर मित्रों से अलगवाली स्थिति में विवेक चारपाई पर लेटा रहा। फ्रांसीसी इत्र की गन्ध अब भी कमरे में तैर रही थी। आंद्रेआ के गुलाबी कपड़े चारपाई की डोरतारी में पड़े हुए थे। एक भारी बोझ से दबी हुई आंद्रेआ की आवाज उसके कानों के एकदम पास गुदगुदा गयी।

"आज रात भी मैं अकेली हूँ। तुम रह तो जाओ।"

"रात में आ जाऊँगा।"

"नो इल पवा पार्शो थी ने ब्येंद्रा पा से स्वार।"

"मेरी बात पर तुम्हें अब अविश्वास भी होने लगा क्या?"

"नो ज़े तों प्री रेस्त!"

"मुझे जाने दो आंद्रेआ, सूरज डूबते ही आ जाऊँगा।"

"नो।"

उसने विवेक को बाहों में बाँध लिया।

कारखाने में पाँचों मजदूरों के हाथों को मुक्त करके रस्सी को पाँवों में बाँध दिया गया। कोल्हू के दोनों बैलों की गरदन से पाचा खोलकर मजदूरों की गरदनों में बाँधा गया। हण्टरों की स्वाँवाक्-स्वाँवाक् की आवाजें हुईं। एक बूँद पसीना ... एक बूँद गन्ने का रस! कोड़े की आवाज—स्वाँवाक्! एक बूँद खून ... एक कप पानी ... स्वाँवाक्!

विवेक का शरीर पसीने से तर हो चला था। आंद्रेआ का शरीर भी उसमें सन

गया। विवेक ने अपने कान में फिर उसी गुदगुदी का अनुभव किया।

"विवेक शेरी !"

फिर दांत की हल्की चुभन। फिर गुदगुदी।

"ची ए मानीफिक।"

विवेक चुप रहा। उसने यह नहीं पूछा कि वह क्यों अद्भुत था।

"तुम माहिर हो !"

वह चुप ही रहा।

"इतनी देर तक प्यार करते जाने की ताकत है तुममें। ची ए फोरमिदाब्ल !"

तबाह हो चुके खेत का वह सन्नाटा बना रहा। पौधों के साथ चेहरे भी मुरझाते गये। बस्ती को लौटने की हिम्मत किसी में नहीं थी। सूरज बादलों की घनी परतों के पीछे छिपा रहा। हवा अपने सँजोये स्वर से धिक्कारती रही।

वह उस आनन्द की चरमसीमा होती थी जो विवेक के कानों में प्रशंसा का स्वर लाती थी। साँसों की तेजी के साथ आती हुई वह आवाज़ उसे भी तीव्रता दे जाती। गति पाकर वह भी उसके कानों में कुछ बुदबुदाना चाहता, पर चुप रह जाता।

"तुम जादूगर हो विवेक !" उसने इतने धीरे से कहा गोया दूसरे कमरे में कोई इन बातों को सुन रहा हो। उसकी अंगुलियों की सक्रियता रफ्तार पा गयी। वह सीत्कार उठी, "विवेक......"

जो कुछ था, कमरे के भीतर था। बाहर कुछ नहीं था। उस समूची दुनियाँ को, जो कि कमरे के भीतर समा गयी थी, दोनों अपनी सारी ताकत के साथ जकड़े रहे।

"ओ-ओह......वी......वी......वीवे......क !"

और शिथिल सन्नाटा !

उधर खेत का वह सन्नाटा खण्डित हो चुका था।

"हमें अपने पाँचों साथियों को उस नर्क से निकाल लाना है।"

"हम सभी की दुर्गति हो जायेगी।"

"उनको उसी तरह नहीं छोड़ सकते।"

"उनको छुड़ाना सम्भव नहीं।"

"हम डेढ़ सौ हैं।"

"डेढ़ सौ निहत्थे हैं।"

"यहाँ रहकर क्या करेंगे ? चलो कारखाने की ओर।"

सुगुन भगत अब भी चट्टान पर बैठा हुआ सभी कुछ चुपचाप सुन रहा था। धीरे-धीरे अपनी जगह से उठा। अपने एक हाथ को ऊपर उठाते हुए सभी के ध्यान को अपनी ओर आकर्षित किया, "हम कारखाना पहुँचेंगे। अवश्य पहुँचेंगे।"

किसी ने पीछे से जोरदार आवाज़ दी, "तो फिर चलें।"

"चलें, दोनों हाथों में पत्थर लेकर !"

मुगुन ने उसी तरह जोर से कहा, "ठहरो ! पहले दाऊद मियाँ को शहर में लौट आने दिया जाये।"

लोग ठिठक गये।

तेरह

कमरा खाली था। चारपाई नंगी थी।

चलते-चलते दोनों समुद्रकिनारे तक आ गये थे। सूरज नीचे आ गया था। उसे निगलने के लिए लहरें ऊपर को उछल रही थीं। उसके दुधिया झाग काली चट्टानों से टकराकर सफेद बालू पर बिखर जाते थे। बुलबुले कुछ देर टिककर फिर अस्तित्वहीन हो जाते। बालू पर क्षणिक पदचिह्नों को छोड़ते हुए दोनों काफी दूर निकल आये थे। विवेक साँवला था। उसके साथ की आंद्रेआ गोरे रंग की थी। एक का रंग लहरों के झाग का था, दूसरे का काली चट्टान का। आंद्रेआ के बहुत जिद करने पर ही विवेक इतनी दूर आया था। उसके भीतर अब भी डर था। पहली बार वह इतना बड़ा खतरा मोल ले रहा था।

आंद्रेआ ने उसे आश्वासन दिया था, "मेरे होते तुम्हारा कोई बाल बाँका नहीं कर सकता।"

हालांकि आंद्रेआ फ्रांसीसी नहीं थी, फिर भी गोरे और क्रिओल के बीच की होने के कारण रंग से गोरी थी। उसे अपने बाप का पता नहीं था, पर उसे विश्वास था कि वह गोरा ही रहा होगा। उसकी माँ क्रिओल थी। वह माँ पर न जाकर एकदम अपने अनजान बाप पर गयी थी। विवेक भलीभाँति जानता था कि उसपर गोली चल जाने के लिए इतना ही काफी था कि काली जाति का होकर गोरी औरत की बगल में चलने की गुस्ताखी की थी उसने। गोरी औरत की ओर नजर उठाकर देखने की सजा को वह जानता था।

दोनों एक ऊँची चट्टान पर पहुँचकर बैठ गये।

"विवेक, मुझे तुमसे एक जरूरी बात करनी है।"

[illegible]

क्या मालूम है ?"

"मेरी जाति ?"

"हाँ।"

"यह आज कैसे-कैसे प्रश्न करने लगीं हो तुम ? मेरी जाति की तुम लोगों के सामने क्या स्थिति है, यह तुम अच्छी तरह जानती हो।"

"मैंने यह पूछा है कि तुम अपनी जाति के बारे में क्या जानते हो ?"

"इतना ही जितना तुम। हम लोग यहाँ बैल की तरह गुलामी करने के लिए पैदा हुए हैं।"

"मेरा मतलब कुछ और था।"

"तो फिर मैं समझा नहीं।"

"मुझे तो लगता है कि तुम्हें अपनी जाति का बिल्कुल गर्व नहीं है।"

"इसलिए कि अपनी जाति के लोगों की परवाह किये बिना मैं तुम्हारे यहाँ आता-जाता रहता हूँ ? आंद्रेआ, तुम एक बात अच्छी तरह जान लो। हम लोगों की हालत यहाँ चाहे कुछ भी क्यों न हो, पर मुझे अपने हिन्दू होने का गर्व है। हमारे लोग जिस देश से आये हैं, उसके बारे में अगर तुम्हें बताने लग जाऊँ तो मुँह बाये रह जाओगी।"

"मेरा मतलब तुम्हारे हिन्दू होने से नहीं।"

विवेक ने आँखें उठाकर आंद्रेआ की ओर देखा। हैरत-भरे स्वर में कहा, "तुम मेरी जाति के बारे में पूछ रही थीं।"

"हाँ, तुम्हारी जाति के बारे में। बिसना सरदार बता रहा था कि भारत में पुजारी और किसनसिंह की जातिवाले तुम लोगों को आदमी मानते ही नहीं। वहाँ तो तुम लोगों को मन्दिर के भीतर जाने तक नहीं देते।"

"ये उल्टी-सीधी बातें तुम्हें किसने बता दीं ?"

"कहा न कि बिसना सरदार बता रहा था ! परसों की तो बात है, कोंस्ताँ साहब के यहाँ दावत थी। वहीं सभी के सामने बिसन बता रहा था कि हिन्दुओं में दस से ऊपर जातियाँ हैं।"

"तुम्हें इतना मालूम नहीं कि बिसना सरदार कितना बड़ा झूठा और फरेबी है ?"

"बिसना सरदार को छोड़ो। मुझे तुम्हारी भलाई से मतलब है।'

दोनों मौन रहे। लहरों का नाद दोनों के बीच गूंजता रहा। आंद्रेआ की बातें समझने में विवेक को कुछ कठिनाई हुई।

"मेरी भलाई ?"

"हाँ, तुम्हारी भलाई। सुना है तुम्हारी बस्ती के लोग किसनसिंह के बेटे मदन को अपना नेता मानने जा रहे हैं।

"आज मुझे हैरान करने पर तुली हुई हो। ये सब बातें तुम्हें कैसे मालूम ?"

"चूँकि मदन बड़ी जाति का है, इसलिए वही तुम्हारा नेता बन सकता है।"

"देखो आंद्रे आ, तुम्हें बहुत बड़ी गलतफहमी हो रही है। हमारी बस्ती में छोटी जात बड़ी जात का मामला नहीं है। हमने तो हिन्दू-मुसलमान में भी कोई अन्तर कभी नहीं पाया।"

"तुम्हारी बस्ती मे तुम्हारी अपनी जाति के लोग पचहत्तर के करीब हैं।"

"तुम भूल रही हो, हम यहां एक सौ पच्चास मर्द हैं।"

"मेरा मतलब तुम्हारी अपनी जाति से है। इतनी बड़ी संख्या वहां किसी दूसरी जाति की है ही नहीं। नेता तो उन्हीं में से एक को बनना चाहिए जो संख्या में अधिक हों।"

"आंद्रे आ, मैं तुमसे एक बात पूछूं ?"

"मे श्यौं सीर।"

"ये सारी बातें तुम अपनी ओर से कह रही हो या······।

"मैंने शुरू ही में तुमसे पूछा था न कि कोंस्ती साहब के बारे में तुम्हारा क्या ख्याल है ?"

"तो फिर ये सारी बातें कहां से आयी हैं !"

"तुम्हारे बारे में कोंस्ती साहब का ख्याल हमेशा···· ।"

"नेक रहा है। है न ? देखो आंद्रे आ, करने के लिए बहुत-सारी बातें हैं हमारे सामने। इनको तो छोड़ो।" उसने अपनी धोती की टेंट से गांजा निकालकर उसे हथेली पर मसलना चाहा, पर आंद्रे आ ने उसे रोक दिया।

"नहीं।"

"क्यों ?"

"अच्छा होगा कि इन सारी बातों को तुम पूरे होश-हवास में सुन लो और मुझे उत्तर दो।

"क्या उत्तर चाहती हो मुझसे ?"

"मदन की जगह तुम्हारे नेता होने की बात ।"

"जे ता प्री। छोड़ो इस बात को।"

"नहीं विवेक, हम इस बात को नहीं छोड़ सकते।"

"क्यों ?"

"यह कोंस्ती साहब की ख्वाहिश है।"

"हम लोगों पर बांसों की बौछार की ख्वाहिश अब उसे नहीं रही क्या ?"

विवेक उठ खड़ा हुआ।

समन्दर की लहरें उसी तरह उठती रहीं। दो-तीन छोटी लहरें, फिर एक बड़ी-सी दहाड़ती हुई लहर चट्टानों से होकर तट की बालू पर टूटकर तितर-बितर हो जाती। पश्चिमी क्षितिज पर परात-सा लाल सूरज पानी में ओझल होने ही वाला था। उसकी लाली दूर तक फैलने को थी। विवेक ने आंद्रे आ से चलने का अनुरोध किया। वह बैठी रही।

"एक मिनट, मेरी एक वात सुन लो।"

अपने उठे हुए कदम को विवेक ने रोक लिया।

"तुम्हें यह जानकर हैरानी होगी कि मेरा पति कहीं गया नहीं !"

"क्या ?"

"कल से आज तक वह हमारे घर के उस पीछेवाले कमरे में था जिसमें तुम्हें जाने से मैं रोकती रही थी।"

विवेक को अपने कानों पर विश्वास नहीं हुआ।

"क्या कह रही हो तुम ?"

"उधर देखो, उस दूसरी चट्टान की ओर।"

उधर देखते ही विवेक काँप उठा। काफी देर वाद उसके मुँह से निकला, "तो क्या वह हर वक्त हमें देखता-सुनता रहा है ?"

आंद्रेआ ने कोई जवाव नहीं दिया। विवेक नीचे से ऊपर तक दहल गया। पहले तो विश्वास नहीं हुआ, फिर सोचा कैसा मर्द है वह और अन्त में वात उसकी समझ में आ ही गयी। उसने धीरे से कहा, "वड़ी देर से वात समझ में आयी। कोंस्तां साहव को तुम्हारे पति की प्रतीक्षा है और तुम्हारे पति को मेरे उत्तर की। फिर तो ये सारी वातें घर के भीतर भी हो सकती थीं, यहाँ तक पहुँचने की क्या जरूरत थी ?"

इसके उत्तर में फिलिप सरदार धीरे-धीरे चलकर दोनों के पास पहुँच गया। उसने अपनी पत्नी की ओर देखा। उसे चुप पाकर वह विवेक के आगे आ गया। वह खाली हाथ था। पहली वार विवेक ने उसे विना बन्दूक के पाया था। उसके वारे में एक दिन विवेक ने आंद्रेआ से पूछा था, "तुम्हारा पति तुमसे इस तरह दूर-दूर क्यों रहता है ?"

"तुम भी तो अपनी पत्नी से दूर-दूर रहते हो।"

"वाहर इसकी भी कोई रखैल है क्या ?"

"नहीं तो।"

"तो फिर ?"

"उसे औरतों में कम दिलचस्पी है।"

विवेक को वस्ती का सुमना याद आ गया था जिसे लोग सिखण्डी कहते थे।

फिलिप सरदार को अपने सामने पाकर उस अवाक विवेक ने अपने-आपसे पूछा—तो यह आदमी उन क्षणों में भी उस दूसरे कमरे में था ? और......?

उससे फिलिप के प्रति कोई विचार निर्धारित नहीं हो पा रहा था। आंद्रेआ अपनी जगह से उठकर खड़ी हो गयी थी। विवेक दोनों के वीच में था। एक क्षणिक घिनौनेपन के आभास से वह भीतर-ही-भीतर तिलमिला गया।

सूरज ओझल हो चुका था।

लालिमा विस्तार पाती गयी। सागर दिन-भर दहाड़कर थक-सा गया था।

उसकी उफनती लहरों में शिथिलता आने लगी थी। विवेक जानता था कि कुछ ही देर बाद लाली मिट जायेगी। धुंधलका छा जायेगा।

उसने बारी-बारी से दोनों की ओर देखा। दोनों उसे देख रहे थे। दोनों को उसके उत्तर की प्रतीक्षा थी। एक त्रिकोण में तीनों खड़े रहे। उस समय तक खड़े रहे जब तक कि लालिमा समाप्त न हो गयी और धुंधलका छा न गया। तीनों एकसाथ चल पड़े। बालू पार करके वे पगडण्डी पर आ गये। आंद्रेआ आगे-आगे चलने लगी। उसका पति एकदम पीछे-पीछे। तीनों चुपचाप चलते रहे। चौराहे के पास तीनों ठिठक गये। विवेक ने धीरे से पूछा, "तुम्हें मेरा उत्तर चाहिए न?"

सरदार ने भी उसी तरह धीरे से कहा, "हाँ।"

"कल शाम को।"

दोनों को दायीं पगडण्डी पर छोड़कर विवेक बायीं ओर को झपट पड़ा।

चौदह

मदन ने अपने ही भीतर चिल्लाकर कहा—जमीन हमारी है!

उसके अपने भीतर संशय का दूसरा स्वर भी था—जमीन हमारी है तो फिर दूसरे की गिरफ्त में क्यों है?

फिर इन दोनों स्वरों से भिन्न एक शान्त, पर संकल्प-भरे स्वर में उसने अपने को कहते सुना—हमारी अपनी जमीन बन्धन में पड़ी नहीं रह सकती। हमें उसे स्वतन्त्र करके ही रहना है। उसकी स्वतन्त्रता में ही हमारी अस्मिता है······हमारा भविष्य है······हमारी प्रतिष्ठा है।

उसने अपने मौन स्वर को पहाड़ियों में गूंजते सुना—स्व······स्वत······स्वतन······स्वतन्त्र······स्वतन्त्रता हमारी धरती की!

गूंज की प्रतिध्वनियाँ हुईं। प्रतिध्वनियों की अनुध्वनियाँ गूंजती रहीं—जिस मिट्टी को खून से तर लाल पसीने से हमारे लोगों ने खेत का रूप दिया, हरियाली दी! जिस बंजर जमीन में प्राण फूंके! जिसके भीतर से पत्थरों को निकालकर उसे उपजाऊ बनाया! उस खेत को कोई कैसे हथिया सकता है? हमारे जीवन के त्याग और परिश्रम के फल को कोई कैसे हमसे हड़प सकता है?

वह खोखड़ी से बाहर आ गया। सामने की काली चट्टान की बगल से निकलकर वह उस ठौर पर आ गया जहाँ से पगडण्डी नीचे को दौड़ी चली गयी थी। वहाँ से दूरी पर धुंधलके में छिपा खेत दिखायी पड़ रहा था।

वह उसके अपने लोगों का सिरजा हुआ खेत था। उस खेत पर से गोरे पंजे को हटाकर उसे मुक्त करना था। उसकी रक्षा करनी थी।

वह सहमे हुए लोगों से पूछेगा—जब नागफनी का जंगल किसी का नहीं था

तो फिर उसका परिवर्तित रूप कैसे किसी का हो गया ?

एक बार कारखाने में कोल्हू चलाते हुए वह अपनी पीठ पर कोड़े की बौछार के लाल निशान लेकर घर लौटा था। जब उसने दूसरे दिन काम पर जाने से इन्कार कर दिया तो उसकी माँ ने उसे मनाते हुए कहा था, "अगर मार ही से डरकर घर पर रह जाने की बात होती तो हमारी इस जाति का इस देश से नामोनिशान मिट गया होता।"

"तुम यही कहना चाहती हो न कि लोगों ने सह-सहकर अपने अस्तित्व को बनाये रखा है, तो फिर यह जान लो कि मैं उस जुल्म को चुपचाप नहीं सह सकता। कल नहीं तो परसों मेरा हाथ उठ ही जायेगा और......।"

"खैर, जब तक तुम्हारा गुस्सा कम नहीं हो जाता तब तक तुम अपने ही खेत में काम कर लिया करो।"

"मैं काम नहीं करूँगा। हद हो गयी गुलामी की !"

"मैं तो अपने खेत में अपने काम की बात कर रही हूँ। भला अपना काम गुलामी कैसे हो सकता है ?"

मदन के कान बजने लगे—अपना काम......अपने खेत......अपनी जमीन।

जिस मिट्टी को उतने भोलेपन के साथ अपनी मिट्टी मान लिया गया था, उसे परायी होते कैसे छोड़ा जा सकता था ?

मदन को अपने समूचे शरीर पर कुछ रेंगता-सा लग रहा था। वह कोई अदृश्य कोड़ा था जो उस सिहरन को उसके जेहन तक पहुँचा जाता और वह सिहरन-चुभन पैदा करने लग जाती। बन्दीगृह की ऊँची दीवारों के बीच से वह अपनी बस्ती को जिन नये रंगों में देखने की बात सोचा करता था वे सारे रंग समय के गाढ़े काले रंग में डूबकर रंगहीन हो गये थे। उस स्याही से सूरज भी अछूता नहीं बचा था। बिना सूरज की सुबह थी। पूरा दिन बिना सूरज का रहा।

मदन के मन में लगातार यह ख्याल आता रहा था कि वह उस सूरज की गरदन दबोचकर उसे मार डाले। फिर कैदखाने जाना पड़ जायेगा। कैद का वह जीवन इससे तो बेहतर ही था। कम-से-कम वहाँ अपनी चीजों के लूटे जाने का भय तो नहीं होता था। अपने लोगों से दूरी का आभास अवश्य होता था, पर उनकी लाशें तो सामने नहीं होती थीं—बेबसी का घिनौनापन सामने नहीं होता था। वहाँ अँधेरा तो जरूर था, उस अँधेरे की आँखें यहाँ के अँधेरे की घूरती हुई आँखों की तरह आदमी के पूरे अस्तित्व को चकाचौंध नहीं कर जाती थीं।

अपने मस्तिष्क की थकान को दूर करने के लिए वह जोर-जोर से चलने लगा, इस ख्याल से कि शायद शरीर के भी थक जाने पर दोनों थकानों में सन्तुलन आ जायेगा। वह जिस रास्ते पर चल रहा था, वह पहाड़ की चढ़ाई की ओर ले जाता था। काफी ऊपर पहुँच जाने के बाद ही मदन को अपनी शारीरिक थकान मानसिक थकान से अधिक लगी। अपनी जगह पर खड़े होकर उसने नीचे की ओर देखा। बस्ती बहुत नीचे थी।

उसने अपने चारों ओर देखा। विस्तृत फैली हरियाली। दूर की दो अन्य बस्तियाँ और उनके पार स्थिर सागर का नीलापन था। चक्करदार नदी और उसके पार के ईख के कारखाने। वहाँ से उठते धुएँ और उस धुएँ के आगे की चीज़ें लुप्त थीं घनेपन में।

हरियाली की गहनता थी सामने। इस छोर से उस छोर तक ईख के अधकटे खेत। खेतों के ऊपर मँडराती हुई मजदूरों की आत्माएँ! उनकी सिसकती खामोशी! सामने की बस्तियों की झोंपड़ियों का गूँगापन!

मदन से और आगे नहीं बढ़ा गया। वह नीचे की ओर लौट पड़ा।

नीचे के विस्तृत फैले खेतों ने उसके मन में दाह-सी कोई प्रतिक्रिया पैदा की—हमारे लोगों की पैदा की हुई यह हरियाली किसकी है? ये खेत किसके हैं? ये लहलहाते गन्ने किसके हैं? ईख के रस की मिठास किसकी है?

उस करारे व्यंग्य के बारे में सोचकर मदन तिलमिला उठा।

पसीना किसी का, फसल किसी की।

किसी को मिठास, किसी को कड़वाहट।

एक ओर मजदूरों की झोंपड़ियाँ थीं घास-फूस की बनी।

दूसरी ओर मालिक का वह नीले रंग का महल था तीन बीघे की फुलवारी के बीच। देहतोड़ मेहनत करनेवालों और बैठकर खानेवालों के बीच का अन्तर।

इन्हीं अन्तरों पर प्रश्न कर जाने की हिम्मत के अभियोग में कैद समुद्री इलाके की बस्ती का साम्बो कैदखाने में मदन की कोठरी का साथी था। उसी ने मदन से सवाल किया था, "गन्ने से पैदा शक्कर का स्वाद मालूम है, कैसा होता है?"

"सभी जानते हैं मीठा होता है।"

"मैं सभी की बात नहीं कर रहा।"

"मुझे भी मालूम है, मीठा होता है।"

"तुम नहीं जानते।"

"क्या नहीं जानता मैं?"

"यही कि चीनी के दो स्वाद होते हैं।"

"यह कैसी बात हुई?"

"एकदम सही बात।"

"यानि कि मिठास दो तरह की होती है?"

"चीनी मीठी होती है, चीनी कड़वी भी होती है।"

"चीनी कड़वी कैसे होने लगी?"

"तुम तो चीनी पैदा करनेवालों में हो न?"

"यह तो देश ही गन्नों का है।"

"तो फिर क्या वजह है कि गन्नों के फल से एक आदमी राजा है, दूसरा कंगाल? गन्ने पैदा करके तुमने जीवन में जो कड़वाहटें पायी हैं, क्या वे गन्ने की न होकर

महुवे के माहुर फल की हैं क्या ?"

ताम्बी की बातें पागल की बातें नहीं थीं, पर पागलखाने में जगह नहीं होने के कारण उसे कैदखाने में भेज दिया गया था। जेलर ने सभी कैदियों से यही तो कहा था कि वे लोग ताम्बी से बचकर रहें, वह पागल है। ताम्बी कहता—कोठी के पादरी ने भी उससे यही कहा था कि तुम पागल हो ताम्बी, भगवान के पुत्र की स्तुति न करके तुम काले-कलूटे देवी-देवताओं की पूजा करते हो; तुम पत्थरों की मूर्तियाँ पूजनेवाले सभी पागल हो!

ताम्बी का बाप पागल नहीं था। उसने काले-कलूटे देवी-देवताओं की पूजा छोड़कर भगवान के बेटे की आराधना शुरू कर दी थी। ताम्बी की माँ और उसकी तीनों बहनें भी पागल नहीं थीं।

उसी ताम्बी से मदन ने पहली बार वह प्रश्न सुना था।

"यह हरियाली·····यह समृद्धि जो तुम पैदा किये जा रहे हो, किसकी है ?"

पहाड़ से नीचे उतरते हुए मदन अपने-आपमें इसी प्रश्न को दोहराता रहा—यह विस्तृत फैली हरियाली·····ये खेत·····यह अगाध समृद्धि किसकी है ? अगर अपने लोगों की नहीं है तो आग लगा दें इन चीज़ों को !

मदन ने ईख के खेतों को धधकते देखना चाहा। ढलान की फिसलन पर अपने पाँवों को जमाते हुए उसने शरीर के बोझ को कुछ पीछे किया और अपने स्थान पर खड़ा हो गया। दूर तक फैले गन्नों के खेतों पर नज़र दौड़ाकर उसने आँखें मूँद लीं। उसने उन खेतों को लपटों में लिपटे पाना चाहा था। उसे हँसी आ गयी। उसके चाहने से क्या होना था !

अपने जीवन की बहुत-सारी बातों को भूलकर भी मदन उस एक घटना को नहीं भूल सकता था। ईख के खेत में आग लग चुकी थी। भयंकर आग ! दहाड़ती हुई आग ! खेतों की हरियाली को निगलती हुई वह बढ़ी चली आ रही थी। ईखों के जामुनी रंग को अपने में समेटती हुई धुएँ की बाढ़ चली आ रही थी। और मजदूरों के साथ मदन भी अपने प्राणों को हथेली में लेकर आग बुझाने में जुट गया था। लोगों ने एकसाथ आवाज़ बुलन्द की थी—"तबाह हो जायेगा सारा खेत !"

किसका ?

यह किसी ने नहीं पूछा था।

उस समय मालिक की तबाही उनकी अपनी तबाही थी।

मालिक की तबाही जब अपनी थी तो उसकी समृद्धि अपनी क्यों नहीं थी ?

इस प्रश्न को आज तक किसी ने भी नहीं पूछा था।

उस समय मालिक के खेत की आग को बुझाते हुए मदन ने अपने हाथ जला लिये थे, अपने चेहरे को झाँवर कर लिया था। हाथ का दाग आज भी था। सप्ताह-भर तक उसकी आँखों की जलन बनी रह गयी थी।

हर फसल, हर कटनी से मालिक की तिजोरी भरी थी उसने।

हर फसल, हर कटनी के बाद चूहे नाचे थे उनके घरों की खाली हाँड़ियों में।

उन लोगों का अपना था ही क्या? ईख के सूखे पत्तों का छाजन भी अब उनका न रहा। जिस खेत को अपना समझा गया था उस पर भी मालिक का कब्जा होने जा रहा था—हो ही चुका था। वह जंजीर में बाँधा जा चुका था।

पहाड़ के नीचे बस्ती के रास्ते पर सूखी लकड़ियों का बोझ सर पर लिये जीनत मिल गयी। मदन ने उसके सर से बोझ को लेकर अपने कन्धे पर रख लिया।

"खेत का क्या होगा मदन?"

"खेत तो हमारा है चाची।"

"हमने तो ऐसा ही समझा था, पर वह हमारा रहे तब तो?"

"क्यों नहीं रहेगा?"

"साहब ने उसे घिरवा लिया है।"

"हमें उसे आज़ाद करके रहना है।"

दूसरी ओर से सिर पर घास लिये मीरा की मौसी भी साथ हो ली। कुछ दूर चलने पर जीनत ने उसके सिर से घास के बोझ को अपने सिर पर ले लिया।

बस्ती दूर नहीं थी। मदन ने क्षितिज की ओर देखा। बिना सूरज की शाम जैसे क्षितिज पर ठिठकी हुई थी।

पन्द्रह

वकील ने बड़े ध्यान से लोगों की बातें सुनी थीं। उसे पगड़ी बाँधे पाकर चारों व्यक्तियों को सुखद आश्चर्य हुआ था। आत्मीयता पाकर उन्होंने सभी बातें विस्तार से बता दी थीं। सभी कुछ सुन चुकने के बाद वकील ने प्रश्न किया था—

"कोई कागज-पत्तर?"

दाऊद मियाँ बोला था, "कागज-पत्तर तो कुछ भी नाहीं।"

"जमीन आप लोगों की कराने से पहले कानून सबूत का तकाजा करेगा।"

"एकर से बड़ा सबूत और का हो सकी वकील साहिब, कि बीस बरिस से ज्यादा समय से ऊ जमीन हम लोग जोत रहल हैं।"

बैठका के प्रधान के यहाँ जमा पैसे भी वे अपने साथ लिये आये थे। वकील ने उनसे कुछ भी नहीं लिया। यह कहकर लोगों को गाँव लौटा दिया कि तीसरे दिन वह बस्ती पहुँचकर मामले का नजदीक से मुआइना करेगा। लोग इस बात से आश्वस्त होकर लौटे थे कि उनके पक्ष में कुछ तो अवश्य होगा।

पैदल लौटते हुए काफी देर हो गयी थी। बस्ती को लौटते समय ही खेत उजाड़े जाने और पाँच व्यक्तियों की गिरफ्तारी की बात सुनकर मदन निष्प्राण-सा हो गया था। अगर रात नहीं होती तो वह उसी समय कारखाने को दौड़ जाता। खेत तक

दौड़े बिना तो वह रह नहीं सका। चाँदनी रात में बिलखते खेत को देखकर वह ठस रह गया था। मड़ई के सामने बैठने पर उससे उठा नहीं गया। वह छोटा था जब अपने बाप के साथ उसने इस खेत में चाँदनी रातों में भी काम किया। दो बार तूफान से खेत को बरबाद होते भी देख चुका था। पर इस तूफान की बेरहमी तो कुछ और ही थी। एक बार खेत में आग लग जाने से भी पूरे वर्ष की मेहनत जलकर राख हो गयी थी। मदन उन्हीं दिनों को अपने सामने साकार पाने लगा। वह आग पहाड़ी की ओर से शुरू हुई थी। दहाड़ती हुई लपटें बस्ती को भी जला जातीं, अगर उसके बाप के आदेश पर बस्ती के पास दूसरी आग पैदा करके उन प्रलयंकारी लपटों को नहीं रोका जाता।

उस समय किसनसिंह मदन से कहा करता था, "हम लोगन के चाहेला संकल्प कर लेई के कि काल और भी कड़ा मेहनत करब स, फिर काल के बाद जौन दूसरा काल आई उमें और भी कड़ा मेहनत ताकि आगे के दिन सुधर सकी।"

बस्ती के सभी लोग बारी-बारी से मड़ई में रात बिताकर जंगली सुअरों, खरगोशों और हिरणों से खेत की रक्षा करते थे। इसी खेत में आग के सामने बैठे चिलम से दम लगाते हुए सुगुन भगत भारत की कहानियाँ सुनाया करता था। उसी खेत को इस तरह उजड़े देख मदन को घटनाओं पर घटनाएँ याद आने लगी थीं। कुएँ के पास बैठे-बैठे सीता के साथ लम्बी बातें! फसल की खुशियाँ! नाच-गाने! लम्बी सुखारी के बाद की बरसात में भीगकर झूमते रहना! वे यादें धुँधली थीं, पर अस्पष्ट नहीं थीं।

सुबह कोई आठ-दस लोगों के साथ मदन कारखाने की ओर चल पड़ा। कई लोगों ने उन्हें रोकने का प्रयत्न किया था। मदन ने शान्त भाव से कहा था कि वे लोग लड़ने नहीं जा रहे थे। वहाँ आठ आदमियों के लड़ने का मतलब आत्महत्या होता। रास्ते में मदन ने अपने-आपसे पूछा—तो फिर? हम गिड़गिड़ाने भी तो नहीं जा रहे। वहाँ पहुँचकर क्या करना था, इसे न मदन जानता था न उसके साथ जानेवाले लोग ही जानते थे। नदी के पास पहुँचकर मदन खड़ा हो गया। सभी खड़े होकर उसे देखने लगे। सभी आँखों ने एकसाथ मौन प्रश्न किया—हम रुके क्यों?

अपने माथे से सुबह के पसीने को पोंछकर मदन ने कहा, "हममें से कोई आदमी वहाँ आपे से बाहर नहीं होगा।"

सोहना बोला, "हम वकील के पहुँचने तक रुक क्यों नहीं जाते? शायद उसके साथ चलने पर उन सभी को छुड़ा लाने में कठिनाई नहीं हो।"

"यहाँ तक आ पहुँचने पर हम बस्ती को लौट चलें क्या?" अपने उस शान्त भाव से हटकर मदन ने गम्भीर स्वर में कहा, "अगर हमें लौटना ही है तो कारखाने से लौटेंगे।"

"वहाँ रखवार तैनात होंगे।"

"हमें देखते ही गोलियाँ थोड़े ही चला देंगे?"

वे फिर आगे बढ़ गये। कारखाने के करीब पहुँचते-पहुँचते उनकी दिलेरी

जवाब देने लगी थी। कुत्तों के भूँकने की आवाज़ सुनकर मदन भी सहम गया। पर किसी को रुकना नहीं था, इसलिए वे रुके नहीं।

उन्हें आते देख फाटक के पासवाले रखवार ने कुछ दूरी पर के अपने साथी को आवाज़ देकर सजग किया। लोगों के फाटक तक पहुँचते-पहुँचते कोई दस रखवार एक कतार में आगे आ गये। अपने साथियों को रोककर अकेले आगे बढ़ते हुए मदन बोला, "हम कोंतों साहब से मिलना चाहते हैं।"

गबरू तगड़े मालगासी रखवार ने चिल्लाकर कहा, "मिस्ये कोंतों पा रेस इसी ····उनसे मिलना है तो कोठी पर जाओ।"

"हमारे पाँचों आदमी कहाँ हैं? कोत कोत?"

"भीतर काम कर रहे हैं।" उसी तरह कड़ककर उस भीमकाय ने कहा।

"हम उन्हें देखना चाहते हैं।"

"ओं या ते मोते मे फेस! देखना चाहोगे मेरे पूतर?"

मदन चुप रहा। गाली देनेवाला सरदार आगे बढ़कर बोला, "पा गाँव इवा जीबून इसी ··· पीछे हटो!"

दो कदम पीछे हटकर मदन ने शान्त भाव से कहा, "उन लोगों को हमारे हवाले कर दो।"

सरदार ने त्रिओली में व्यंग्य किया, "तुम्हीं सूरज को उगने और अस्त होने का आदेश देते हो क्या?"

"हम दूसरों के सूरज को रोकते भी नहीं।"

"या तो चले जाओ यहाँ से!"

मदन कई बार अपने-आपसे कह उठा था—चले जायें यहाँ से। पर इसके साथ ही हर बार यह प्रश्न भी सामने आ जाता—कहाँ? इस देश से दूर। पर क्यों? तंग आकर? इससे बदतर स्थिति में जब बाप-दादा ने इसे नहीं छोड़ा तो फिर हम क्यों छोड़ें? जिस माटी के कण-कण से हम बने हैं, उससे अधिक अच्छा स्थान तो शायद स्वर्ग भी न हो। आज इस ज़मीन को हम पसीने और खून से खरीद रहे हैं। जिस दिन मूल्य-भर की बूँदें टपक जायेंगी उस दिन तो यह माटी अपनी होनी ही है। नियति को कौन रोक सका है?

नियति तो तब यह भी थी। इसको भी कैसे रोका जा सकता था? गिड़गिड़ाने से कोड़ेवाले हाथ कभी रुके तो नहीं। वे क्यों रुकने लगे? पैसे और ताकतवाले अगर रहम खाना शुरू कर दें तो बस गरीब और कमज़ोर लोगों की हालत में बदलाव आ जायेगा। किसे गवारा था यह परिवर्तन? कोई क्यों चाहे कि आदमी एक-जैसा हो जाये! एक-जैसा हो जाने पर कौन किसका नौकर, कौन किसका स्वामी होगा?

यह मदन के भीतर की निराशा होती जो ज़ोर पकड़ लेती और हताश हो वह यह बात मानने को विवश हो जाता कि हाथ-पाँव पटककर उन्हें तोड़ भले लें, पर स्थिति बदलने की नहीं। उसकी यह निराशा देर तक नहीं रुकती। उसके भीतर तुरन्त ही

दूसरी भावना जाग उठती—स्थिति क्यों नहीं वदलेगी ? उसने सुन रखा था कि समय के साथ पहाड़ों की आकृतियां भी वदल जाती हैं। फिर वह समय की लम्बाई का ख्याल कर उठता। उस कछुवे की चालवाले समय को घसीट लाने की कोई तरकीव ! वह अपने वाप के मुँह से कई वार सुन चुका था कि हर चीज की तरकीव होती है—उपाय होता है। वस, उस तरकीव को ढूंढ़ निकालना कठिन होता है और·····और वह समय मांगता है।·····कठिनाई की उसे चिन्ता नहीं थी, पर समय के लिए वह चिन्तित था। उसके पास अव समय नहीं था·····प्रतीक्षा का समय नहीं था। प्रतीक्षा वहुत हो चुकी थी।

फरीद और धनलाल मदन के पास आ पहुँचे। सरदार और भी जोर से चिल्लाया, "आले वू जां !"

फरीद ने भी उसी स्वर में पूछा, "कहां जायें ?"

मदन ने फरीद को रोकते हुए धीरे से कहा, "हम लड़ने नहीं आये हैं।"

सरदार गरज पड़ा, "तो कापाव लागेर त्वा—लड़ सकते हो तुम ?"

मदन उसी तरह शान्त खड़ा रहा।

चूना-लिपटे पत्थरों की दीवार के उस पार कोल्हू की घड़घड़ाहट के रुकने पर कोड़े की आवाजें सुनायी पड़ जातीं। इन आवाजों के उत्तर में कोई आवाज नहीं थी। लग रहा था जैसे कोड़े मुर्दों पर वरसाये जा रहे थे या खाली हवा में। कोड़े की आवाजों पर प्रतिक्रिया का अभाव मदन को कँपा गया था। उसे अपनी पीठ के भर आये घाव वासी घाव की तरह चड़चड़ाते-से लगे। कभी कोड़े उसकी चमड़ी को चीर-कर गोश्त में दरार पैदा करके हड्डियों तक निशान छोड़ गये थे। उस याद मात्र से कोड़े के वे निशान रिसने लग जाते। वह भीतर-ही-भीतर कराह उठता। उसके इस क्रन्दन से उसकी मुट्ठियां वँध जातीं और रक्त का प्रवाह गति पा लेता। अपनी इस प्रतिक्रिया को दवाते-दवाते वह खुद लिजलिजेपन से दव जाता।

अपनी इस स्थिति को मदन उस रात की स्थिति से मिलाने लग जाता। एकदम ऐसी ही दशा हुई थी उसकी उस रात के सपने में। वह उसके कैद होने से पहले की वात थी, पर वह सपना इतना भयानक था कि वह भुलाया नहीं गया था।

सोहना समन्दर से भूरे रंग की दो वड़ी-वड़ी चिपटी मछलियां ले आया था। उन मछलियों को देखते ही दाऊद मियां ने उसे आगाह कर दिया था कि उस तरह की मछली जहरीली हुआ करती हैं। सोहना की पत्नी को मदन भोजी कहता था। उन मछलियों की मसालेदार तरकारी पकाने के वाद उसने मदन को घर वुलाया था। मसालेदार तरकारी की वात सुनकर मदन मछली खाने की अपनी इच्छा को रोक नहीं सका था। उस वस्ती में मसाला विरले ही पकता था। वह तो सोहना दूसरी वस्ती से ले आया था। वोतलवाली चीज भी वहीं से लाया था। मदन को हिचकिचाते देख सोहना की पत्नी वोल उठी थी, "तू इतना डरत क्यों वानी ? जहरीली मछली को नरेटी में सिक्का रखत ही ऊ रंग वदल देवत है। हम परीछा करके देख लेलीं और

फिर तोर भैया त तरसते हो दू टुकड़ा खा बैठा।"

बातों में आकर मदन ने भी मकई के पराठे के साथ दो टुकड़े खा लिये थे। मोहना और उसकी पत्नी को तो कुछ नहीं हुआ, पर मदन को घर लौटते ही पेट मरोड़ने लगा था। ओकाई आती रही, पर उल्टी नहीं हुई। रात को जब सोया तो उथ-विथ .....और फिर वह भयावह सपना—वह कटे हुए गन्नों के बीच खड़ा था कि तभी मेड़ पर से एक बहुत बड़ा पत्थर धीरे-धीरे लुढ़कता हुआ उसकी ओर आने लगा था। उसके पास भागने का पूरा समय था.... पर उससे भागा नहीं गया था। उसके पाँव ज़मीन से चिपके हुए थे। तन-बदन पसीने से तर था। चिल्लाना चाहकर भी चिल्ला नहीं पाता था....। फिर दूसरा भयानक सपना आया था—वह रास्ते पर खड़ा था। गन्नों से लदी बैलगाड़ी उसी की ओर दौड़ी चली आ रही थी। मोटी-मोटी आँखोंवाला वह बैल अपने नुकीले सींगों से उसे चीर डालने को दौड़ा आ रहा था। भागने के प्रयास में मदन नीचे लुढ़ककर अपने को पसीने में चपचप पाने लगा था। उससे रेंगना भी नहीं हो पा रहा था.... और बैल उसके करीब आता ही गया था.... लकवा मार गयी-सी स्थिति थी वह। बाद में लोगों ने उसे हल्के ज़हर का प्रभाव बताया था। इस समय भी मदन की एकदम वही हालत थी—विकलांग की स्थिति..... हल्के ज़हर के प्रभाव के बाद की सुन्न पड़ गयी स्थिति.....।

सोमा-सन्नू की कहानी के दूसरे भाग को पढ़ने के लिए मदन बैठ गया—

कल तुम्हारी प्रतीक्षा करती रही। आने को कहकर भी नहीं आये विनय भैया!

माँ आनेवाली थी, वह भी नहीं आयी।

पिताजी की तबीयत उतनी अच्छी नहीं थी, इसलिए माँ नहीं आ सकी।

पिताजी को देखे तीन दिन हुए हैं। लगता है, तीन वर्ष से नहीं देखा है।

माँ ने सतवा भेजा है सोमा!

मेरे लिए कुछ कहलवाया है?

वह जानना चाहती है कि यह नया घर तुम्हें कैसा लगा है? कैसे हैं तुम्हारे सास-ससुर? सन्नू के बारे में तो पूछना नहीं है क्योंकि अपना मित्र है।

तुम्हारे मित्र को शादी के दूसरे ही दिन से काम पर जाना पड़ रहा है। कभी अच्छी तरह से बातें भी नहीं कर पाये हैं। तुम्हारी वह बात अब मुझे भी सच प्रतीत होने लगी है।

कौन-सी बात?

यही कि यहाँ के मर्द खुले मैदान में होते हुए भी अपने ढंग से कारागार में होते हैं।

मैंने ऐसा कहा था?

तुम्हारा आन्दोलन कैसा चल रहा है? यहाँ तो सभी लोगों के मुँह पर तुम्हारा नाम होता है। लोग जब तुम्हारी प्रशंसा करते हैं तो मैं खुशी से पागल हो

जाती हूँ।
क्या कहते हैं लोग ?
सभी तुमको मजदूरों का नेता मानते हैं।
बस, इतना ही ?
लोगों को विश्वास है कि तुम उन पर ढाये गये जुल्मों को मिटाकर रहोगे।
सच ?
कल तो इसी घर में यहाँ की कोई दस औरतें एक स्वर में तुम्हारा गुण गा रही थीं। वह जो भौजी लगती है, उसने तो यहाँ तक कहा था कि अब वह समय दूर नहीं जब मजदूरों को उनके हक मिलकर रहेंगे।
छोड़ो इन बातों को, यह बताओ कि……
नहीं भैया, पहले तुम यह बताओ कि मजदूरों की भलाई के लिए जो लड़ाई लड़ रहे हो, उसमें तुम्हें कहाँ तक सफलता मिली है ?
तुम्हें इससे क्या लेना-देना है सोमा ?
बताओ भैया, कब सुधर रही है हम लोगों की हालत ?
जो काम भगवान नहीं कर सका, वह मुझसे थोड़े ही हो सकता है ?
तुम्हारी लड़ाई जारी रहेगी तो यह होकर रहेगा।
यह तुम कह रही हो सोमा ?
यह सभी लोग कह रहे हैं, लोग तुम्हारी सराहना करते हुए यही कामना करते हैं कि मजदूरों का संगठन बना रहे। तुम्हारे नेतृत्व में लड़ाई जारी रहे।
लड़ाई तो खत्म हो गयी।
सच ? समझौता हो गया ? मजदूरों की स्थिति बदल गयी ?
समझौता हो गया। मजदूरों की स्थिति का तो मुझे पता नहीं, पर मेरी अपनी स्थिति जरूर बदल गयी।
मैं समझी नहीं विनय भैया !
अब तक मैं मूर्ख था। दूसरों के हित के लिए अपना कम ख्याल रखता था। तुम्हें यह जानकर खुशी होगी सोमा, कि तुम्हारा यह भाई कल से कोठी का मुख्य सरदार है। मुझे जो तनख्वाह मिलेगी, वह अब तक किसी भी काली जाति को इस टापू में नहीं मिल पायी है।
तब तो मजदूरों की तनख्वाह में भी वृद्धि हो गयी होगी ?
कहा न, मैं नहीं जानता।
पर तुम तो इसी के लिए लड़ रहे थे ?
लड़ तो इसी के लिए रहा था, पर जब अपने भाग्य को बनते देखा तो उस पागलपन को छोड़ दिया। पहले आदमी अपने घर में चिराग जलाता है।
भैया, तुम तो इस तरह का मजाक नहीं किया करते हो ?
मैं मजाक थोड़े ही कर रहा हूँ !

सचमुच मजदूरों के हित से पहले तुम अपना हित करवा चुके?
पाप तो नहीं किया?
पाप? यह तो विश्वासघात हुआ। सभी मजदूरों को बीच दरिया में छोड़कर तुम किनारे पर भाग आये।
मुझे तैरना आता था, तैरकर आ गया। सभी के साथ अपने को भी डुबोने से क्या यह बेहतर नहीं रहा?
नहीं भैया......तुम ऐसा नहीं कर सकते। तुम लोगों के नेता थे।
ऐसे बोल रही हो जैसे मैंने दुनिया का सबसे बड़ा अनर्थ कर दिया है।
इससे बड़ा अनर्थ और हो ही क्या सकता है? भारतीय मजदूरों ने कौन-सा ऐसा पाप किया है जिसके लिए उन्हीं में से एक उनके विनाश का कारण बन जाये?
ठेकेदारों और दलालों को कोस रही हो, जो मेरे-जैसे लोगों को सोने का लालच देकर घसीट लाये थे?
भैया, क्या सचमुच तुमने सभी मजदूरों को इतने सस्ते दाम में बेच दिया?
मैंने किसी को नहीं बेचा।
तो फिर?
तुम समझौते की बात कर रही थीं। मैंने समझौते से ज्यादा कुछ भी नहीं किया। मेरे सामने जो प्रस्ताव रखा गया था उसे ठुकराकर मैं अपने को मूर्ख प्रमाणित नहीं कर सकता था।
सभी उम्मीदों पर पानी फिर गया।
मेरी नहीं। तुम्हारी भी नहीं, अब तो मैं सन्नू को बहुत अच्छी जगह पर बिठा देने की ताकत रखता हूँ।
और बाकी मजदूरों को काँटों और अंगारों पर बिठाओगे?
आदमी कहाँ बैठ रहा है, यह तो उसे खुद देखना चाहिए।
आज तो मैं तुम्हें बिल्कुल नहीं समझ पा रही हूँ। यह तो तुम्हारी ही कही हुई बात है कि इस देश में भारतीय मजदूर अँधेरे में घिरा है......फिर तुम यह देखकर बैठनेवाली बातें कैसे करने लगे? भूल गये कि कुछ ही दिन पहले मुंदेर के भड़कने से तुम्हारे पैर में गहरी चोट आ गयी थी, तीन दिन तुम घर ही रह गये थे और तुम्हारे छः दिन के पैसे काट लिये गये थे?
मैंने अपनी उसी स्थिति को तो बदला है आज।
पर तुम तो सभी मजदूरों की स्थिति बदलने निकले थे?
जो स्वयं अपनी हालत बदलने की स्थिति में न हो, उसके लिए दूसरे अपनी जान क्यों दें? इन आलसी लोगों से कुछ भी होने को नहीं।
बस, इसी का तो रोना है भैया, कि आज तुम्हें भी ये भारतीय मजदूर आलसी दीखने लगे। जिन्होंने श्मशान को खेतों की हरियाली में परिवर्तित कर दिया,

वे ही आज आलसी हो गये। अन्न के विना पीले पड़े होने पर भी वे खेतों में दम तोड़ रहे हैं, उन्हें तुम आलसी कह रहे हो ? कपड़ों के विना नंगे और हक के विना सहमे हुए मजदूर कहीं सैकड़ों की संख्या में थकान और बुखार से मर रहे हैं, उनके लिए न डाक्टर है न दवा।

ये वातें पुरानी हो गयी हैं सोमा, अब मैं इन्हें नहीं कहता।

इसीलिए तो मैं कह रही हूँ। जो आज भी हो रही है, अभी और न जाने कब तक होती रहेगी, उसे तुम पुरानी वात कह रहे हो ? अभी तो मेरी शादी के एक दिन पहले तुम आम के पेड़ के नीचे मित्रों के वीच चिल्ला-चिल्लाकर कह रहे थे कि हमारे वच्चों को पढ़ने से रोका जाता है। वहरिया पूजा के लिए हमें आज्ञा नहीं मिल रही। रामायण जब्त की जा रही......कोड़े की वौछार दुगुनी होती जा रही है। आज इन्हें तुम पुरानी वातें वताने लगे ?

आखिर वहन मेरी ही तो हो, तुम्हें भी इस कदर भावुकता और सीले आक्रोश में जी लेने का अधिकार मिल जाता है।

यह मेरा स्वर थोड़े ही है ? कल तक तो तुम यही कह रहे थे कि ये जो लोग गोरों के ठेकेदार वनकर आते हैं और जिनके हाथ मजदूरों की छाती को छलनी कर जाने के औजार वन जाते हैं, उन्हें कुदाली से टुकड़े-टुकड़े कर देना चाहिए......

मैं सन्तू के सामने एक प्रस्ताव रखने आया हूँ। अगर वह वात मान जाये तो फिर कुछ ही दिनों में साहवों की तरह जीने लगेगा।

मैं भी तो सुनूं क्या है वह प्रस्ताव ? सन्तू तुम ?

तुम इतने घवराये हुए क्यों हो सन्तू ?

विनय......क्या करूँ मैं ? मैं क्या करूँ विनय ?

क्या वात है सन्तू ?

विनय......!

वोल तो सही, हुआ क्या ?

मुझे छिपने की जगह वताओ।

क्यों छिपना चाहते हो ?

वे लोग आ रहे हैं......वे आ रहे हैं......सभी आ रहे हैं।

कौन आ रहे हैं ?

मुझे छिपा लो......छिपा लो मुझे विनय !

विनय भैया ! इसे क्या हो गया है ?

सोम ! वे लोग मुझे मार डालेंगे।

कौन ?

इससे पहले कि हरखू सरदार गोरों के साथ यहाँ आ पहुँचे, मुझे कहीं छिपा लो......माँ......मेरी माँ कहाँ ?......विनय......विनय, तुम मेरे सार भी, मित्र

भी ····मुझे बचा लो ····कुछ भी नहीं सूझ रहा है मुझे।
कुछ बताओ तो जानूँ किससे छिपना चाहते हो ?
तुम्हीं बच सकते हो मेरी रक्षा ···· छिपा लो।
आखिर क्यों छिपना चाहते हो ? क्या किया है तुमने ?
उनके साथ पुलिस भी आ रही होगी।
पुलिस क्यों आने लगी ?
मुझे जंजीर में कसने के लिए ····सोमा, ये लोग मुझे बन्दी बनाकर मार डालेंगे।
बैठो तो सही। अब बताओ, बात क्या हुई है ?
मैंने उसे मार डाला सोमा !
क्या ?
सोमा, तुम चुप रहो।
हाँ, मैंने उसकी हत्या कर डाली विनय !
किसकी हत्या की है तुमने ?
नहीं ! मेरा यहाँ रहना ठीक नहीं · सुनो · जंजीरों की आवाज, घोड़े के टाप ····पुलिस के पदचाप ··वह मर रहा है····उसके चिल्लाने की आवाज ·····
सन्नू ! यह क्या पागलपन है ? यह तो बता किसकी हत्या की है तूने ?
हत्या ? मैंने ?
हाँ, किसकी हत्या ?
मास्टर साहेबवा की। वह मर गया। मैंने खून के कई नाले बहते देखे। वह उसी क्षण मर गया था। वे सभी लोग मिलकर मुझे भी उसी तरह मार डालेंगे। खून उसी तरह बहेगा।
सन्नू ! सभी कुछ शुरू से बता। किसने की है मास्टर साहेब की हत्या ?
मैंने ···· मैंने ···की है ···मैंने ··
नहीं, विनय भैया।
क्यों की ?
न जाने क्यों की !
मैं पूछ रहा हूँ तुमने यह खून क्यों किया ?
मैंने जान-बूझकर नहीं किया।
तो फिर ?
यह हो गया। न जाने कैसे किस मेडी के साथ   ईख की बोआई के लिए मैं दांगली काट रहा था। गरमी और पसीने से मैं अकुला रहा था। घण्टों से झुके होने के कारण मेरी कमर टूटने-सी लगी थी, तभी·····
चुप क्यों हो गये ? सभी कुछ सुना क्यों नहीं देते ?

मेरी कमर दुखने लगी और······
और तुम्हें मुंडेर पर बैठ जाने का बहाना मिल गया होगा ?
अपनी ही धुन में मैंने अपनी कमर सीधी करने की कोशिश की थी······अभी वैसा कर भी नहीं पाया था कि लाप्येर साहेबवा हाथ में डबल बाँस लिये मेरे सामने खड़ा हो गया था······और······और इससे पहले कि मैं कुछ कहता, उसने मेरे ऊपर बांसों की बौछार शुरू कर दी······यह देखो······देखो सोम······मेरी पीठ खून से लथपथ है।
फिर क्या हुआ ?
मैं खुद नहीं जानता फिर क्या हुआ। सभी कुछ बिजली की तरह गुजर गया और······
आपे से बाहर होकर तुमने उसे मार डाला !
हां, मैंने उसे मार डाला······उसी क्षण।
किस चीज़ से ?
अपने हाथ की कुदाली से। मुझे क्या मालूम था कि एक ही कुदाली में वह ज़मीन पर लोट जायेगा। सोमा ! मेरे लिए थोड़ा-सा पानी ले आओ······बहुत जोरों की प्यास लगी है मुझे।
भैया, अब क्या होगा ?
पानी ले आ सोमा······
सन्तू, मैं चलता हूँ।
ठहरो विनय······जब तुम्हीं चले जाओगे तो फिर मुझे बचायेगा कौन ?
मैं तुम्हें कैसे बचा सकता हूँ ?
तुम मेरे मित्र हो। मेरे सार हो······हम मजदूरों के तुम्हीं तो सभी कुछ हो।
सन्तू, मुझे बहुत-सारे काम करने हैं······
नहीं विनय······तुम मुझे नहीं छोड़ सकते······वे लोग तो मुझे जान से मार डालेंगे।
तुम मुझे भी मरवाना चाहते हो।
विनय, तुम्हीं मुझे बचा सकते हो, तुम्हीं······
तुम्हें कुदाली चलाते किसने देखा था ?
किसी ने नहीं।
तुम भागे क्यों ?
सभी साथियों ने भाग जाने को कहा। मां, तुम आ गयीं ?
का हाल बेटा ?
सोमा, का कहत बानी······बेटा, के मरलक तोके ?
मां !
बैठ बेटा······

पुलिस आ रही है···· माँ, मुझे फाँसी हो जायेगी। मैं मरना नहीं चाहता। मैंने उसे जान से मारना नहीं चाहा था। हाँ विनय, मैं उसे मारना नहीं चाहता था। भला मैं क्या जानता था कि एक ही कुदाली में वह मर जायेगा ? कुदाली उसकी कनपटी में नहीं लगती अगर वह दूसरा वांग उठाने के लिए नहीं तुरता। मैंने जानबूझकर नहीं मारा।
विनय बेटा, यह कैसन बात कर रहा है ? बहुत अधिक गरमी और थकावट से कहीं एकर माथा तो नाहीं फिर गइल ? करीम भैया, तुम्ही एके समझाओ।
अरे सन्नू, तू हियाँ का करत हो ? खुदा के खातिर जितना जल्दी हो सके हियाँ से भाग निकलो। पुलिस नदी तक पहुँच आत बा। अरे लछमिन बहन, तू मुँह काहे ताकत है ? जितनी जल्दी हो सके अपन लड़कवा के हियाँ से भाग जाने को कह।
का बात ह करीम भैया, तुम्ही कुछ बता।
पहले सन्नुवा के हियाँ से भगा, फिर बतावत बानी।
पर चाचा, मैं भागूँ तो कहाँ ?
करीम भैया, इ सब का होत बा ?
अभी कुछ भी बताने का वख्त नाहीं। अपन लड़कवा के जान प्यारी मानत हवे त हामी से ओके कहीं भगा दे, नाहीं तो जिन्दगी-भर पछताते रहबो।
पर करीम भैया बात का ह ?
पेरमोन पा भुजे !
बाहर से घर घेरा जा चुका है। लिमेम ना। यही है। बाँध लो इसे।
हरखू भैया, का बात बा ?
हट जाओ तुम !
हमार बेटा से कौन भूल हो गइल साहेब ?
भावति !
साहब, हम तुम्हार पाँव पड़त बानी।
माई-बाप एक्सीजे। एक्सीजे मुझे ···हमार बेटा को माफ कर दो। हमरी रामायण की पोथी हमें छोड़ जाओ।
बाँध लो इस खूनी को !
हमार बेटा के माफ करवा दे, बदले में पूरा जिन्दगी साहबन के खिदमत में गवां देवब स ··। दया कर भैया, हमार सन्नू के छोड़वा दे·····मुझे पादीं ! मेरे बच्चे को माफ कर दो माई-बाप ! शुरू से तुम्हारी गुलामी की है, जिन्दगी भर करेंगे····· दया करो· ····। एन सांस···
धीरज धरो सयन।
करीम भैया ! सन्नू······

मदन को नींद आने लगी, उसने पुस्तक बन्द कर दी।

सोलह

मीरा जीनत से मिलने जा रही थी कि वह उसे बाड़े के पास मैले कपड़ों की गठरी के साथ मिल गयी। मीरा ने गठरी उससे ले ली और उसके साथ नदी की ओर बढ़ गयी। उसके अपने घर में दो जनों के कपड़े होते थे जिन्हें सप्ताह में एक बार धोने की नौबत आती थी, पर मीरा का नदी तक पहुँचना प्रतिदिन होता था। कभी वह सुष्पा चाची के कपड़े धोने आ जाती, तो कभी लवंगिया को हाथ बटा जाती। कभी नदी जाती हुई कोसिला की माँ उसे आवाज़ देकर साथ ले लेती, कभी रेतनों की माँ उसे बुलाकर अपने कपड़ों की मोटरी दे देती। पुष्पा उसे कभी भी मीरा नाम से नहीं पुकारती थी। उसकी देखादेखी बस्ती की और भी एक-दो स्त्रियाँ उसे बेलरानी कहकर पुकारतीं। सुगुन भगत से सभी लोगों ने बेलरानी की कहानी सुनी थी। एक राजा के सात राजकुमारों में से छोटे राजकुमार को बेल के नीचे से वह राजकुमारी मिली थी जो उसके राज्य में पहुँचकर दिन-भर अदृश्य रहती, रात को महल में लौट आती। अदृश्य रहकर ही वह राज्य के सभी घरों के काम करके लोगों को आश्चर्य में डाल जाती थी। उसी कहानी की बेलरानी को याद करके पुष्पा ने मीरा का नाम बेलरानी रख दिया था। मीरा को जब वह कहती कि इतना अधिक काम उसे नहीं करना चाहिए तो वह हँसकर बोलती कि उसके स्वास्थ्य को बनाये रखने के लिए वही एक उपाय था।

पहाड़ के सोपान नीचे हरे थे, बीच में भूरे और ऊपर पहुँचते-पहुँचते नुकीली आकृतियों में काले हो गये थे। पहाड़ कहीं सपाट था, कहीं तराई और कहीं ढलान एकदम चिकनी चढ़ाई लिये हुए। कहीं धूप का चटकीलापन लिये, कहीं छाँव की गहनता में पहाड़ कभी प्रहरी प्रतीत होता, कभी मरे हुए पत्थरों का ढेर। नक्काशी किया हुआ-सा पहाड़। पहाड़ी चश्मे—जहाँ-तहाँ चट्टानों की झुर्रियों से टपकते झरने और ऊपर की अकेली उदास चोटियाँ। मीरा को पहाड़ की चोटी की ओर एकटक ताकते पाकर जीनत बोल उठी थी, "अगर किसन भैया तुम्हें इस तरह पहाड़ की चोटी पर नज़र टिकाये पाता तो जानती हो वह क्या कह उठता ?"

"कि घबराओ नहीं, यह पहाड़ टूटनेवाला नहीं।"

"यह तो तुम कह रही हो।"

"तो फिर वे क्या कहते ?"

"वे कहते कि इससे उम्मीद मत रखो, यह इतिहास का गूंगा गवाह है। यह कभी आगे नहीं आयेगा तुम्हारी रक्षा के लिए।"

सामने के पहाड़ों से कभी हवा की साँय-साँय की प्रतिध्वनि आती और उसकी

खामोशी एक लम्बी और गहरी नींद का आभास दे जाती। उस नींद के डरावने सपनों को मीरा कभी सहन नहीं कर पायी ···· वह सपनों के बीच ही में चिल्ला उठती थी। इन पहाड़ों की ही तरह कठोर शोषित और अडिग थी वह व्यवस्था जिसको परिवर्तित करने के असफल प्रयास में मदन लगा हुआ था। इधर मदन के कैद से लौट आने पर मीरा ने चाहा कि उससे पूछे—जो नितान्त असम्भव हो उसके लिए अपने को ख्वार करने में क्या लाभ ? मदन के निकट पहुँचने का उसका भाग्य कभी नहीं हुआ था। फिर कौन जाने मदन को उसके अस्तित्व का भान था या नहीं ! मदन की गिरफ्तारी से पहले दोनों के बीच जो थोड़ी-बहुत जान-पहचान थी, उसके बल पर मदन को आज भी वह याद होगी इसे मान लेने में उसे कठिनाई होती। अगर वह मदन को याद रहती तो वह उससे उसी तरह मिलने आता जिस तरह सीता और अन्यों से मिलने पहुँचा था। इधर चार अवसरों पर वह मदन को थोड़े-बहुत फासले पर देख चुकी थी। हर बार उसी उदासी में। वह मन-ही-मन कल्पना करके देखना चाहती कि मदन के चेहरे पर की मुस्कान कैसी हो सकती थी। उसका अपना वह मस्तिष्क उस चित्र को बना ही नहीं पाता। कैद में जाने से पहले मदन के चेहरे पर हरदम मुस्कान ही तो घूमा करती थी। उसे याद करके भी मीरा उसके चेहरे की मुस्कान को सजीव नहीं कर पाती।

पर्वतों के पार्श्व में आकाश का रंग गहरा नीलापन लिये हुए था। उतने ही चमकीले थे वे श्वेत बादल, जो टुकड़ियों में पश्चिम को भागे जा रहे थे। किसी दूर की पहाड़ी कन्दरा में सीध-सांय करती हुई हवा की आवाज आज सुनायी नहीं पड़ रही थी, फिर भी रह-रहकर हवा में अधिक सनसनाहट हो जाती थी। वे बाँस के झुरमुट से गुजर रहे थे जहाँ हवा की सरसराती आवाज सनसनाती आवाज से मिलकर अजीब आवाज पैदा कर जाती। पगडण्डी की लाल मिट्टी रात की हल्की बरसात के गीलेपन को अब भी लिये हुए थी। पाँवों में गीली मिट्टी की मोटी तह चिपक जाने पर मीरा ने किनारे के पत्थरों पर पाँव रगड़कर उन्हें हल्का किया। पाँव के लसीलेपन से मुक्त होकर वह फिर चलने लगी।

जिस जगह पर मीरा का सुगाधोवा था वहाँ की चट्टानें कम चिकनी थीं। पिछले तूफान में उखड़ गया बरगद का पेड़ अब भी नदी के ऊपर पुल-सा पड़ा हुआ था। उसी विस्तृत सूखे पेड़ पर धुले हुए कपड़े सूखने को बिछाये जाते थे। अपने सिर की गठरी को बरगद के तने पर रखकर मीरा रीठे के पेड़ की ओर बढ़ गयी। वहाँ पहले ही से सीता कटज के फल तोड़ने में लगी हुई थी। उसने दो गुच्छे मीरा की ओर बढ़ा दिये। डाली छोड़कर वह चट्टान से नीचे आयी और नीचे के गुच्छों को उठाये मीरा के साथ सुगाधोवे पर आ गयी। शुरू में जब मीरा कपड़े धोने नदी पहुँचती थी, तब रीठे के फलों को रगड़ने पर उससे उत्पन्न फेन से वह बुलबुली पैदा करने में लग जाती और कपड़े अनधुले रह जाते थे। उसका वह बचपना अभी हाल तक बना रह गया था। वह रीठे के हरे फलों को कपड़ों पर न रगड़कर हथेलियों पर रगड़ती रह

जाती थी। और फिर जब धीरे-धीरे उसकी यह आदत छुटी तो वह सबसे अधिक तेजी के साथ कपड़े धोकर सुखा लेती थी।

मीरा के कोरे मस्तिष्क में जितने भी ख्याल आये थे वे सभी चट्टान से टकराती हुई नदी की तरंगों की तरह असफल थे। अपनी बहुत-सारी इच्छाओं को लहरों के साथ बह जाने देकर भी एक ख्वाहिश को उसने पानी के ऊपर लिख छोड़ा था। इस उम्मीद से कि वह पानी के ऊपर उपलाती रहेगी। वह भी डूब गयी थी। मीरा डुबकी लगाकर उसे ऊपर ले आयी थी। अपनी गरमी और साँसें देकर उसने उसे फिर से जीवित किया था।

समुद्र बस्ती से बहुत अधिक दूरी पर नहीं था, फिर भी मीरा दो ही बार वहाँ पहुँचकर वहाँ की बावली लहरों को अपनी कहानी सुना सकी थी। उसके अपने भीतर यह विश्वास हो गया था कि समुद्र का पानी उसके रहस्य को अपने में सँजोये रहेगा। उसने लहरों को पहले दिन और दूसरे दिन भी सिसकियाँ लेते सुना था। उन कराहती लहरों पर उसे विश्वास हो चला था। और फिर एक ऐसा दिन भी आया कि उसके भीतर यह चाह पैदा हुई कि लहरें उस धरोहर को किनारे पर फेंक दें। लहरों ने ऐसा नहीं किया। मीरा जीनत के सामने सिसककर रह गयी थी। आश्वासन के रूप में जीनत के मुंह से निकल गया था, "समुद्र धरती की हर चीज़ धरती को लौटा देता है।"

मीरा सोच उठी थी—लहरें ऐसा करती होंगी·····अपने अस्तित्वहीन होने से पहले। समुद्र से उन लहरों के अवसान का कोई आसार नहीं दिखा। नदी की तरंगों से खेलती हुई मीरा मुस्कराती चली आ रही थी। इसमें कभी अवरोध नहीं आया था। लहरें चाहे समुद्र की थीं या नदी की, उनकी गति कभी नहीं रुकी थी। चट्टानें भी उन्हें नहीं रोक सकी थीं। लहरों में बावलेपन से ही मीरा ने जीवन की बातें सीखी थीं। पर उसकी अपनी धुन को वह गति नहीं मिल पायी थी। अपनी सक्रियता ही उसे वह आनन्द दे जाती जो लहरों को अपनी गति से प्राप्त होती थी।

सभी लोगों के बीच भी कभी उसे एकाकीपन का अनुभव होता। वह थोड़ी-सी दुखी होती, पर फिर समुद्र और नदियों की याद आ जाती। उनके एकाकीपन को अपने एकाकीपन से मिलाकर वह अपनी उदासी को नदी की लहरों के हवाले कर देती और लहरें उन्हें लिये सागर को दौड़ जातीं। मीरा का मौसा जब कोंस्ताँ साहब के यहाँ खाना पकाने का काम करता था उस समय मीरा को कोंस्ताँ साहब तथा उसके लोगों के जीवन को नज़दीक से देखने का अवसर मिला था। वहाँ के जीवन को उसने अगाध पाया था। उसकी अपनी जिन्दगी से भिन्न थी वहाँ की वह जिन्दगी। आलीशान बँगला·····भड़कीले कपड़े·····हर तरह के पकवान ! मीरा छोटी थी, पर इतनी छोटी नहीं थी कि उस अन्तर से अचम्भित न हो जाये। जीवन और जीवन के बीच के अन्तर और दरार में वह अपने को अकेली खड़ी महसूस करती। उसके ईर्दगिर्द के लोग गूंगे थे। किसी ने कभी भी उसके प्रश्नों का उत्तर नहीं दिया।

जब वह पगडंडी पर मजदूरों की लम्बी कतार को खेत और कारखाने की ओर जाते देखती तो उसे लगता कि ये मजदूर चल नहीं रहे थे......रेंग रहे थे, रोटी के एक टुकड़े के कारण। लोग भविष्य की बात करते और वह सोचती रह जाती कि ये सारी थी जो भविष्य की ओर बढ़ रही थी। बस्ती का कोई मजदूर आगे नहीं बढ़ रहा था। वह इतिहास था जो लोगों के पाँवों के नीचे से सरकता जा रहा था।

खेत की किसी मुँडेर पर बैठी हुई वह क्षितिज की ओर देखती रहती, इसी आस में कि एक दिन सूरज उसी ओझल हो जानेवाली दिशा से तो उगे। ऐसा अगर हो जाता तो सम्भवतः उस गोरे और इस काले जीवन में थोड़ी-बहुत समानता आ जाती। वह बहुत गहरी और विस्तृत खाई थी जिससे मीरा डरी हुई थी। एक दिन अचानक उसके भीतर यह प्रश्न पैदा हो गया था :

"क्या मदन हो सकता है इस खाई को पाटनेवाला ?"

उस प्रश्न की पुनरावृत्ति पर जीनत हँस पड़ी थी।

"तुम हर बात को मदन के साथ क्यों जोड़ लेती हो ?" कपड़े धोते-धोते जीनत मीरा से पूछ बैठी, "पानी को चीरा जा सकता है क्या ? तुम जिस बराबरी की बात करती हो न, वह तो इससे भी कठिन है।"

मीरा के सारे सपने हवा में अकेले मँडराते हुए तरंगों के बीच जा लुढ़कते और तरंगें उनसे आँखमिचौली खेला करतीं।

धुले हुए कपड़े को बरगद के तने पर पसारकर मीरा जीनत के पास लौट आयी। जो सवाल वह शुरू से पूछना चाहकर भी नहीं पूछ पायी थी, उसके भीतर से आखिर निकलकर ही रहा। वह भी झिझक के कारण एकदम धीरे से।

"खाला ! मदन को कारखाने की ओर जाते हुए तुम तो रोक सकती थी ?"

अपने हाथ की भीगी ओढ़नी को निचोड़ती हुई जीनत बोली, "अरी पगली, उसकी उधर जाने की बात तो मुझे उसके चले जाने के बाद ही मालूम हुई।"

"पता नहीं आवेश में वहाँ क्या हो जाये !"

"कुछ भी होने को नहीं तू घबराती क्यों है ?"

अपने साथ मीरा जिस पोटली को लायी थी, उसे बरगद के सूखे पेड़ से उठाकर सीता सामने आ गयी। मीरा और जीनत के आगे बैठकर वह गाँठ खोलने लगी। फिर रुककर उसने मीरा की ओर देखा और एक सहज मुस्कान के साथ बोल उठी, "बिना खोले बता सकती हूँ कि इसमें क्या है।'

मीरा चुप रही। जीनत बोली, "तू तो सूँघकर पता लगा लेती है।"

"बिल्कुल नहीं।"

"तो फिर बता।"

"इसमें मकई की खीर है।"

मीरा ने सीता को देखा। सीता ने बात सही बतायी थी पर मीरा की आँखों में हैरानी नहीं थी। उन आँखों में एक धुँधली-सी निराशा अवश्य थी।

खीर उसने मदन के लिए तैयार की थी।

आज सीता खुश थी। आज उसे विवेक की वापसी का यकीन हो गया था। उसके अपने कानों में अब भी वह वाक्य गूंज रहा था—

"सीता, मुझे बहुत देर से अपनी भूल महसूस हुई है। उस प्रलोभन के पीछे का प्रयोजन मैं आज जान सका।"

सीता ने अपने पति को वापस पाया था, इससे अधिक खुशी उसे उत्तर की थी जो विवेक फिलिप सरदार को देने गया था।

सत्रह

बस्ती में न पहुँच सकने की सूचना वकील ने भिजवा दी थी। उन पाँच आदमियों की रिहाई नहीं हो सकी थी, इसका जवाबदेह मदन किसे माने ? खुद नहीं समझ पा रहा था। वकील का सन्देश लानेवाला व्यक्ति एक पत्र छोड़ गया था। उसमें अपने न पहुँच सकने का कारण बताते हुए वकील ने समूची बस्ती को आश्वासन दिया था कि वह उन्हीं के काम के लिए राज्यपाल से मिलने जा रहा था। उसके पत्र के अन्तिम भाग को मदन ने तीन बार पढ़कर लोगों को सुनाया :

"आप लोग आवेश में आकर कोई भी गलत कदम न उठायें। तनाव के कुछ कम होने पर ही समस्या का हल आसान हो सकेगा। कल आप लोगों की बस्ती में पहुँच रहा हूँ। मुझे पूरी आशा है कि आप सभी की कठिनाई दूर हो जायेगी। इस देश में भारतीय मजदूरों की स्थिति सुधर जाये, इसके अतिरिक्त मेरी कोई और प्रतिबद्धता नहीं। आप लोग हताश न हों।"

बातें विस्तार से न होते हुए भी लोगों को आसरा दे जाने के लिए पर्याप्त थीं। धनलाल ने लोगों को बताया था कि इस वकील की चर्चा हर बस्ती में थी। दूसरी बस्ती के लोग मिलने पर यही कहते थे कि इस आदमी ने इस बात की सौगन्ध खा रखी है कि मजदूरों को उनके अधिकार दिलाये बिना वह भारत नहीं लौटेगा। उसी के अनुरोध पर सरकार ने नये लोगों का एक आयोग नियुक्त किया था जो पूरी निश्छलता के साथ मजदूरों की समस्याओं को सरकार के सामने रख सके।

दाऊद मियाँ किसी को हताश और निराश नहीं करना चाहता था। उसके मन में बात उठी, पर उसने किसी से कहा नहीं कि इस तरह के कई आयोगों और नेताओं को उसने आते-जाते देख लिया है।

दूसरे दिन सुबह से ही लोग वकील की प्रतीक्षा में बैठ गये। बिन बरसात की धुंधलका-भरी बोझिल सुबह थी। रात में अपने भीतर की मायूसी और नाकामयाबी के सीलेपन के साथ मदन पहाड़ी के ऊपर चढ़ गया था। रात उसने वहीं अपने बाप की कुटिया में बिता दी थी। उसके साथ फरीद का कुत्ता भी ऊपर पहुँच गया था। कोने में

पड़े लकड़ी के पुराने सन्दूक में दो-तीन फटी हुई पुस्तकों के बीच वह बही भी थी जिसमें किसनसिंह अपने गीतों को जमा करते आया था। उन गीतों के बीच किसनसिंह के कुछ संस्मरण भी थे—दस-पन्द्रह पंक्तियों में। मदन ने उस हिस्से को दो बार पढ़ा जिसे उसके बाप ने अपने जीवन का एक अति सुखद क्षण माना था :

'' .... अपनी पीठ पर जूतेवाली लात के निशान के साथ घर लौटा। सूरज डूब गया था, पर अँधेरा बना हुआ था। कन्धे से मेरी कुदाली और भात की टोकरी को उतारती हुई रेखा बोल पड़ी—'बूझो तो जानें आज क्या पका है ?' मैं घूम-फिरकर वे ही दो-चार नाम बताता रहा जो जीवन-भर खाता रहा था। रेखा जोर से हँस पड़ी। और जब मुझसे बूझा नहीं गया तो मुझे अपने साथ लिये वह वहाँ ले गयी जहाँ रसोई होती थी। पहली बार मैंने घर की चारों देगचियों को एकसाथ गरम पाया। उसने पहली देगची खोली—उसमें दलपूरियाँ थीं, दूसरी—उसमें आलू-बैंगन मसालेदार थे। दूसरी देगची में भुना हुआ कुम्हड़ा और चौथे में टमाटर के साथ मटर का साग। मेरे सुखद आश्चर्य का ठिकाना नहीं था। फिर तो रेखा ने ही बताया कि बस्ती की सभी देगचियों में आज खेत की पहली फसल थी। अपने जीवन में पहली बार मैंने टमाटर और मटर का साग खाया। पहली बार बैंगन और आलू मसालेदार—बस्ती पहली बार इतना अच्छा भोजन पा रही थी। बस्ती खुश थी, मैं खुश था। हमारे अपने खेत की उपलब्धि थी वह।''

अन्तिम वाक्य के अपने शब्द को किसनसिंह ने अन्य शब्दों से अधिक बड़े आकार में लिखा था। उसके उसी अपनेपन को छीना जा रहा था उसकी रक्षा करते-करते तो उसने प्राण दे दिये थे। मदन सोचता जा रहा था—अगर यह खेत ले लिया गया तो मेरे लिए क्या बाकी रह जायेगा ? बस्ती के सभी लोगों की आशाओं की लाश ?

किसनसिंह के संस्मरण के सामनेवाले पन्ने पर एक गीत था। लिखावट धुंधली पड़ गयी थी। उसे बड़ी कठिनाई से मदन पढ़ सका जिसका अर्थ लगभग कुछ इस तरह था—

'' अब हमें अपने फूल के कटोरे धोने की आवश्यकता नहीं पड़ती।
यह लकड़ी के तख्ते पर खाली पड़ा रहता है
जूठे नहीं हो पाते हमारे फूल के कटोरे।''

नीचे की टिप्पणी पढ़ने के बाद ही मदन को पता चला कि यह गीत उस समय लिखा गया था जब महीने-भर बस्ती में अनाज नहीं पहुँचा था। चूल्हे नहीं जले थे।

मदन अपने सामने के अधीर साथियों को देखता रहा। सभी टूटे हुए थे। हारे हुए थे। मदन अपने सामने की तमाम आँखों में उन आँखों को तलाशने लग जाता जिनमें अभी भी हार को हार न मानने का संकल्प था। उस तरह की बहुत कम आँखें थीं उसके सामने। सिमटे हुए चेहरे। उदास आँखें। लुढ़के हुए कन्धे। झुकी हुई कमर। सभी के बीच उदास आँखें 'उदास आँखें ....उदास आँखें। उदा[illegible] कमर।

उस जंगल में मदन अपने को अकेला पाकर सिहर उठता।

सुबह जब वह सूरज की अगवानी करता हुआ पहाड़ी से नीचे उतर रहा था, सीता मिल गयी थी उसे। उन आँखों में उदासी नहीं थी, निराशा नहीं थी। उनमें खुशी थी......मुद्दत से खोयी हुई चीज़ के पा जाने की खुशी। उसने कुएँ से पानी निकालकर लोटा मदन के आगे बढ़ा दिया था। अपने हाथ के दातून को फेंककर मदन ने लोटा थाम लिया था। मुँह खँगारने के बाद सीता को लोटा लौटाते हुए उसने पूछ लिया था, "खुश नज़र आ रही हो। क्या बात है?"

मजदूर साथियों की क्षीण आँखों से भिन्न थीं सीता की आँखें। उनमें लौट आये विश्वास की आभा थी।

सीता ने उसके प्रश्न का उत्तर नहीं दिया था। वह पुष्पा थी जिसने मदन को सीता की खुशी का कारण बताया था। सीता की आँखों से ही उसने विवेक के गुमराह हो जाने की खबर सुनी थी। आज फिर सीता की आँखों से ही उसने विवेक की वापसी की बात सुनी थी। सभी कुछ सुन चुकने के बाद उसने पुष्पा से पूछा था, "कहाँ है विवेक?"

कुछ क्षण बाद पुष्पा ने उत्तर दिया था, "मैदान से आकर स्नान कर रहा होगा।"

सूरज पूरब के पेड़ों के ऊपर आ जाने के बाद भी ओझल था जब विवेक मदन के सामने पहुँचा था। कपूर की तरह उड़ गया अतीत फिर से मदन के सामने सजीव हो गया था। गुलीडण्डा के खेल के समय विवेक हार के भय से खेल छोड़कर भाग गया था। मदन उसे वापस ले आया था और वह दोबारा खेल में जूझकर जीत गया था। विवेक की इस वापसी से मदन को दुगुनी प्रसन्नता हुई थी। एक खुशी सीता से सम्बद्ध थी, दूसरी उस संघर्ष से जिससे हरएक मजदूर जुड़ा हुआ था। इस प्रसन्नता के साथ एक आशंका भी मदन को घेर गयी। वह आंद्रेआ को बहुत अच्छी तरह जानता था। वह जितनी सुन्दर थी, उतनी ही पिशाचिनी भी थी। उसकी माँ जादू-टोना करनेवाली वह बूढ़ी औरत थी जो जब चाहे किसी का बुरा कर दे। वह जानता था कि फिलिप सरदार तो विवेक का कुछ नहीं बिगाड़ सकता था, लेकिन आंद्रेआ चुप रह जाये इसका विश्वास मदन को नहीं हो रहा था। आंद्रेआ की माँ घर बैठे अपने दुश्मन के शरीर में खंजर भोंककर उसे मार सकती थी। वह जिस द्वीप से आयी थी, वहीं से भूत-प्रेत को साधने के ढंग-तरीके ले आयी थी। बस्ती के कुछ लोग तो उसकी झोंपड़ी के पास से गुजरते भी डरते थे। यही कारण था कि विवेक के आंद्रेआ के चंगुल में फँस जाने पर कोई भी खुलकर आगे नहीं आ सका था।

मदन सीता के बच्चे के साथ उस समय तक खेलता रहा जब तक कि नहाने के बाद विवेक पूरी ताजगी के साथ सामने न आ गया था। वह सचमुच ही नया विवेक लग रहा था। कुछ देर बाद दोनों खेत की ओर चल पड़े थे जहाँ वकील की बेसब्री के साथ प्रतीक्षा हो रही थी।

"तुम कैद से बहुत दुबले होकर लौटे हो मदन !"

मदन ने हँसी में कहा था, "कैद से किसी को मोटा होकर लौटते सुना है तुमने ?"

तीतर के चार बच्चे दोनों के आगे एक खेत से निकलकर दूसरे खेत को दौड़ गये थे। सूरज अब भी अदृश्य था। सामने ताड़ के पत्तों से लटके अपने घोंसलों में कुछ पंछी झूल रहे थे। इस बार मदन ने बात शुरू की थी।

"तुमने बहुत ही बड़े साहस का काम किया।"

"उधर का वह प्रस्ताव ठुकराकर ?"

"नहीं।"

"तो फिर ?" विवेक ने उसकी ओर देखते हुए पूछा था।

"आईशा को नकार कर।"

विवेक ने कोई जवाब नहीं दिया था।

"आईशा को मैंने भी उस दिन देखा। सात वर्ष बाद भी वह एकदम उसी तरह है। उस तरह की रूपसिन औरत से अपने को अलग कर लेना कम साहस की बात थोड़े ही हो सकती है !"

विवेक फिर भी चुप रह गया था।

"तुम्हें उसका पछतावा तो नहीं हो रहा ?"

फकीर का कुत्ता दौड़कर आगे निकल गया था।

"पछतावा क्यों होने लगा ?"

"तो फिर यह उदासी ? कहीं परिणाम......"

"परिणाम की परवाह कौन करता है ? मैं कुछ और ही सोच रहा हूँ।"

"क्या सोच रहे हो ?"

"कबीर नहीं पहुँचा तो !"

"वह जरूर पहुँचेगा।"

"कोई झुकने को तैयार हो तब तो !"

"इस बार कानून का सहारा लिया जा रहा है।"

"तुम्हीं से सुना कभी का एक वाक्य याद आ रहा है मुझे।"

"क्या ?"

"शहरों का कानून जंगलों-खेतों के लिए नहीं हुआ करता।"

दोनों चुप हो गये थे। खेत सामने आ जाने पर विवेक ने पूछा था, "तुम सोचते हो ये लोग कानून की क़दर करेंगे ?"

"देखना तो यही है।"

लगभग सभी लोग जमा हो गये थे। मदन और विवेक लोगों के सामने से होते हुए दाऊद मियाँ के पास जा रुके। उनसे पहले फरीद का कुत्ता फरीद के सामने पहुँचकर दुम हिलाते हुए उस पर उछलने लगा था।

ओझल सूरज काफी ऊपर आ चुका था। लोगों की प्रतीक्षा बनी रही। धुँधलका बना रहा। उमस बढ़ती गयी।

"वकील आ रहा है !"

यह स्वर बिजली-सा कौंधा। सभी आँखें एक ही साथ मुड़ीं। सभी अपने-अपने स्थान पर खड़े हो गये।

अठारह

वह आदमी चेहरे से जितना गम्भीर दीखता था, उतना ही गम्भीर उसका स्वर था। उसके बोलते समय ऐसा लगता था कि वह अपने हर शब्द को जीभ पर आजमाकर बाहर लाता था। बोलते समय उसके गोरे रंग पर लाली दौड़ जाती। गरदन के पास की उसकी नसें तन जातीं। उतने प्रभावशाली व्यक्तित्व का आदमी उधर से कभी नहीं गुजरा था। हरएक आदमी अपनी साँस रोके उसे सुनता रह गया था। जाते-जाते वह इतना कह गया था—

"कानून ने तुम्हारी रक्षा कर दी, कल तुम्हारा संगठन ही तुम्हारी रक्षा कर सकेगा।"

उसकी इस बात को सभी नहीं समझ पाये थे। मदन को इसका उतना दुख नहीं था, क्योंकि वह जानता था कि जिन्हें बात समझनी थी वे समझ चुके थे।

वकील के चले जाने के बाद कुछ व्यक्तियों को सभी कुछ सपना-सा लगा था। कुछ लोग उस आदमी को लौहपुरुष मान बैठे। उसके बस्ती में पहुँचने के कुछ ही समय बाद उसके दो सहयोगी बस्ती के पाँचों आदमियों को ले आये थे। लोग जितने हैरान थे, उतने ही खुश भी। उनकी वह खुशी उस समय पराकाष्ठा पर थी जब अपने गम्भीर स्वर में उस व्यक्ति ने कहा था—

"तुम्हारी खेती नष्ट हो गयी है, इसका मुझे दुख है। पर इस बात की मुझे खुशी है कि इस जमीन को तुम लोगों से कोई नहीं ले सकता। इस पर तुम लोगों के अधिकार की मुहर लग जाये, इसके लिए जरूरी है कि अगले सोमवार को तुम्हारे दो या तीन प्रतिनिधि मेरे दफ्तर पहुँचें जहाँ से उन्हें सम्बन्धित स्थान पर ले जाकर सभी औपचारिक कार्यवाही पूरी कर दी जायेगी। बाद में तुम लोग इसका आपसी वितरण भी कर सकोगे। जिस स्थान पर तुम लोगों के घर हैं उसकी भी सरकारी कार्यवाही हो जानी चाहिए। इन औपचारिक बातों के लिए तुम लोगों को कुछ पैसे की भी आवश्यकता होगी ....।"

लोगों ने आत्मसन्तोष की लम्बी साँस ली थी। देखते-ही-देखते जंगली फूलों का हार तैयार हो गया था और दाऊद मियाँ ने अपने काँपते हाथों से वकील को वह हार पहना दिया था।

नदी के उस पार तक वकील को छोड़ते हुए मदन ने पूछ लिया था, "हमारे लोग कोठी में काम करना नहीं चाहते। कानून से मालिक हमें मजबूर कर सकता है क्या ?"

"उसे इस तरह का कोई अधिकार नहीं मिलता। तुम उसके सामने अपनी शर्तें रख सकते हो, अगर वह मान जाये तो फिर तुम लोगों को काम करने में क्या आपत्ति होगी ! शर्त की बात तो बिना संगठित हुए तुम लोग कर ही नहीं सकते। तुम्हें यह बता दूँ कि कुछ कोठियों की हालत काफी सुधर चुकी है। आठ आने की जगह अब उन्हें बारह आने मिलने लगे हैं। मैं तो सोचता हूँ कि अपने खेत की देख-रेख के साथ-साथ तुम लोग कोठी के काम को भी कर सकते हो। वहाँ की आमदनी से तुम लोग सरकार से जमीन खरीद सकते हो और फिर समय के साथ तुम्हें किसी की गुलामी करने की जरूरत ही नहीं रह जायेगी। जहाँ तक इस कोठी में तुम लोगों की स्थिति का प्रश्न है, उस पर जाँच शुरू हो गयी है और कोठी के मालिक को बहुत जल्द ही सरकार की ओर से चेतावनी भी मिलने जा रही है।"

वकील को नदी के उस पार तक छोड़कर मदन फरीद, धनलाल और विवेक के साथ जब बस्ती को लौटा तब वहाँ झाल-ढोलक पर गाना-बजाना शुरू हो गया था। वह तो दूसरे दिन सभी को पता चला कि रात यों ही बीत गयी थी बिना सोये। नाचते हुए मदन अपने सिर पर उसी तरह की पगड़ी बाँधे हुए था जैसी कि वकील के सिर पर थी। कहीं से उसी के छाते की तरह कोई पुराना छाता भी निकल आया था जिसे कन्धों के सहारे दोनों हाथों से थामे मदन नाचता रह गया था। वह मीरा की नजरें थीं जो उस पर से हट नहीं पा रही थीं। मदन की अपनी नजर अगर एकाध बार कहीं रुकी थी तो सीता पर।

मशाल की रोशनी में मीरा मदन के चमकते चेहरे के उस उल्लास को मापने की कोशिश करती हुई खुद खो गयी थी। बेसुधी के अँधेरे में। जंगली बादाम का एक पीला पत्ता ओस की बूँदों से बोझिल होकर डाली से छूट गया था। उसे गिरते देख

मीरा उसे आकाश से छूटकर गिरता हुआ कोई तारा समझ बैठी थी। उसकी मौसी कहती थी कि तारे को टूटकर गिरते देखो तो मन में कामना कर लेना, वह पूरी हो जायेगी।

उसने मन-ही-मन कामना की—उसकी वह मुस्कान बनी रहे। कभी न मिटे उसकी वह खुशी। बादाम का पत्ता उसके एकदम पाँव के पास ही गिरा था, उसे पता तक नहीं चला। कुछ ही देर पहले उसकी मौसी सभी को कोसकर चली गयी थी, "घरे भूंजी-भांग नाहीं देहरी पे नाच।"

मीरा के मन में आया था कि वह अपनी मौसी को समझाये कि अनाज की चिन्ता से कहीं अधिक बड़ी थी उस कामयाबी की खुशी। अनाज तो जान से जुड़ा हुआ था जबकि यह सफलता बस्ती की प्रतिष्ठा थी। प्रतिष्ठा ही तो आत्मा थी। उसकी मौसी इन बातों को क्या समझती? उसके सामने तो सौ बात की एक बात होती है—

"तोर बाप भी बहकल-बहकल बात करत रहल, तू भी।"

जम्भाई लेती हुई सभी औरतें एक-एक करके सोने चली गयी थीं। मीरा अपनी जगह पर बैठी रह गयी थी। गांजे और तम्बाकू की महक से माहौल भारी था। हवा उनींदी थी। बिनसहरा की ठण्डक शुरू हो गयी थी। मशाल की रोशनी क्षीण होकर कांपने लगी थी। गानेवालों का स्वर बैठ गया था। ढपली की आवाज़ ठण्डी और ढीली हो चली थी।

मीरा अपने स्थान से उस समय उठी थी जब धनलाल के साथ मदन वहाँ से चला गया था। धीरे-धीरे चलकर वह घर पहुँची थी। बिना चिराग जलाये वह खाट पर जा लेटी थी। उसकी मौसी की नाक हमेशा की तरह बजी जा रही थी। अपनी आंखें मूंद लेने पर मीरा को लगा था कि झोपड़ी के भीतर खाट से लेकर सन्दूक तक हर चीज़ चटाई की तरह ऐंठती चली जा रही है। अपने भीतर की शारीरिक कमजोरी को महसूस कर उसने आंखें खोल दीं। सुबह होने में अधिक देर नहीं थी। मुर्गों की बांग शुरू हो गयी थी। जगी-जगी ही मीरा सपना बुनने लगी थी।

वही ऊँची चट्टानोंवाला समुद्र—पहाड़-से ऊँचे उठते हुए वहाँ के श्वेत ज्वार-भाटे—चट्टानों पर लम्बी चोंचवाले मच्छीखवा—मूंगरेखा पर की फेनिल दीवार—ऊपर गहरा नीला आकाश—विविध रंग बदलता सागर—दूधिया बालू का तट—ऊपर आ गयी जड़ोंवाला झावे का पुराना पेड़—बालू पर घरौंदा बनाती हुई मीरा—अपना नाम सुनकर पीछे की ओर देखना—मदन का झुककर उसका हाथ पकड़ लेना—एक-दूसरे का हाथ थामे दोनों का समुद्र के किनारे-किनारे दौड़ जाना—मीरा की ओढ़नी का हवा के झोंके के साथ लहरों के ऊपर उड़ जाना—ओढ़नी के उड़ जाने पर मीरा की सांसों के साथ कांपता हुआ उसका लावण्य—उसके चेहरे और छाती पर आ गये बालों का मदन द्वारा हटाया जाना और……

—मीरा!

मीरा की आँखों का एक क्षण ऊपर उठकर दूसरे ही क्षण झुक जाना।

सागर का और भी दहाड़ने लगना।

मीरा की समझ में बात का न आना।

—तुम्हारा सौन्दर्य ज्वारभाटों को और भी विद्रोही कर गया।

उससे हाथ छुड़ाकर मीरा का दौड़ जाना—समुद्रगर्जन के साथ होड़ लगाकर मदन का भी उसके पीछे दौड़ना—और······। ऊँ······ऊँ······ आँ······ आँ आँ······!

एक झटके के साथ मीरा के सपने के टुकड़े लड़खड़ाकर तितर-बितर हो गये। सपने में मीरा की मौसी ज़ोर से बवा उठी थी। मीरा जल्दी से उठी और उस अँधेरे में दो कदम चलकर अपनी मौसी की चारपाई तक पहुँची। टटोलकर उसने उसके दोनों हाथों को गरदन से अलग किया और जब उसकी अकुलाहट-भरी चीख रुक गयी तो मीरा अपने खाट तक लौट आयी। बाहर पौ फटने में अधिक विलम्ब नहीं था।

एकदम पिछले पहर में मीरा की आँख झपकी और उसे नींद आ गयी थी। पहली नींद की हलकी खुमारी में थी वह जब उसकी मौसी ने उसे झकझोरा था।

"ओ री महारानी, दिन चढ़ गइल और कब तलक सुतल रहवे!"

उसी खुमारी में वह बोल उठी थी, "मौसी, सोने भी तो दो।"

"सास के हाथ में तोर एक दिन भी गुजारा न होय।"

मीरा ने करवट बदलकर मारकीन की पेवन्द लगी चादर को अपने ऊपर तान लिया। उसकी मौसी अपने-आपमें बुदबुदाती हुई इधर-उधर के कामों में लग गयी। मीरा को खरी-खोटी सुनाना उसकी आदत बन गयी थी। वह जितनी खरी-खोटी उसे सुनाती, उतनी ही सराहती भी रहती थी। परमावती जब अपनी पतोहू की सुन्दरता बखानने लगती तो मीरा की मौसी उसे अच्छी तरह सुन चुकने के बाद सिर्फ इतना कह जाती, "शायद तू अभी हमार मीरा के दिन में ना देखले हुवे।"

मीरा को दोनों बकरियों की घास के लिए नहीं जाना पड़ा। उसकी मौसी मैदान से लौटती हुई भर अँकवारी आकास्या की फलदार पत्तियाँ ले आयी थी। बाड़े के पास खड़ी होकर मीरा ने अपनी मौसी से कहा, "मौसी, तू तो घास ले आयी, अब दिन-भर इसके बदले कितनी गालियाँ सुनायेगी मुझे?"

"तू बारह बजे तक सोवत रहो और बकरयन न में-में करके रामायण पढ़यन स।"

मीरा को हैरानी हुई। इतने लम्बे वाक्य को बिना किसी गाली के उसकी मौसी पूरा कर गयी थी

दतवन करती हुई मीरा पिछवाड़े की मेंड़ पर चढ़ गयी जहाँ से गन्ने के खेत कट जाने से दूरी पर का समुद्र स्थिर और मौन-सा लग रहा था। समुद्र उसके सामने भविष्य के सपने को साकार कर जाता। लेकिन भविष्य जो आकृति पाता वह धुँधली और क्षणिक होती। मन में ख्याल आया·· समुद्र! सपना उसे छूकर······ उसे बाँहों में समेटकर या फिर उसकी बाँहों में सिमटकर उसी तरह विस्तार पाने लगता

है और ..... नहीं ..... उसकी चौखट पर लहरें सिर धुनती रह जाती हैं ..... आत्म-हत्या कर जाती हैं लहरें ..... सपने ..... भविष्य के सपने झाग-से बिखरकर काफूर हो जाते हैं। लहरों पर बिछी हुई सांसें सपने की उम्मीद रखनेवाले के लिए नींद तक नहीं लाती।

अमरूद के दातून को बीच से चीरकर मीरा ने जीभी की और दोनों टुकड़ों को फेंककर कुएँ के पास पहुँची। सपुरा की बाल्टी से पानी लेकर उसने पहले मुँह खँगारा, फिर हाथ-पांव धोये।

सपुरा ने पूछा, "रात तू कब तक रही ?"

"मदन के जाने......।"

बस, बात मुँह से निकल गयी थी। उसने उसे पूरा नहीं किया। सपुरा हँस पड़ी। कुएँ पर का घांवमांव बरगद के पेड़ की चिड़ियों के कोलाहली कांव-कांव से कम नहीं था। परमावती की पतोहू सबसे अधिक बोले जा रही थी। कुएँ पर सबसे बाद में पहुँचकर भी वह अपनी बारी सबसे पहले बताती थी क्योंकि उसकी डोल वहाँ पहले ही से होती थी। परमावती इस बात के लिए भी कम गुमान नहीं करती थी कि उसकी पतोहू बस्ती की सबसे चड़बांक थी।

परमावती की पतोहू के देखते-ही-देखते मीरा उसी की डोल में पानी लिये घर की ओर झपट पड़ी। ओरियानी की बाल्टी में पानी उँड़ेलने के बाद जब मीरा डोल लौटाने कुएँ की ओर मुड़ी तो तभी मदन सामने से आता दिखायी पड़ गया। मीरा ठिठक गयी। पल-भर पहले उसके चेहरे पर जो शरारत थी उसे मिटते क्षण भी न लगा। पल्लू ठीक करती हुई वह खड़ी रही। उसे लगा कि उसकी ओढ़नी उससे छूटकर उड़ने ही वाली थी। कलाई की चूड़ियाँ अपने-आप खनक गयीं। दूसरी ओर से गौतम राव का बेटा अपनी ही धुन में पीतल के लोटे पर अँगुलियों से ताल देता और गुन-गुनाता हुआ निकल गया—

फजीरवा अभी होवल कहाँ
रतवा अभी मिटल कहाँ !

दुनियाँ-भर के सारे बोझ को अपनी पलकों पर लिये मीरा उन्हें ऊपर नहीं कर सकी।

उन्नीस

वकील के सहयोग से कागजात ठीक करवा आने के दूसरे ही दिन बाद खेत का नया बँटवारा हुआ। इस बार नागफनीवाले जंगल को लेकर जमीन का बँटवारा एक सौ बाईस टुकड़ों में हुआ। हर परिवार के हिस्से के खेत की लम्बाई तीस और चौड़ाई बीस लकड़ी थी। मीरा की मौसी का खेत ठीक मदन के खेत के सामने निकला।

कागजात के मुताबिक सात महीने बाद इन खेतों पर सभी के अधिकार जीवनपर्यन्त हो जाने की बात निर्धारित थी। बैठका के प्रधान के पास बस्ती का जो पैसा जमा था वह सारा कानूनी कार्यवाही में खर्च हो गया था, फिर भी लोग खुश थे। वकील के सामने ही यह बात भी तय हो गयी थी कि हर खेतिहर अपने खेत की आमदनी अपने पास ही जमा कर सकता था।

सुना गया कि मोरेल साहब किसी दूसरी कोठी से मजदूर ले आया था। इस बात की भी चर्चा थी कि कोंस्तों साहब गुलाम खरीदने के इरादे से यात्रा की तैयारी में था। नदी के उस पार ऊँची दीवार खड़ी कर दी गयी थी और 'ट्रेसपास' की पट्टी लगा दी गयी थी। दो अलग दुनियाँ हो जाने के कारण अब इधर के मजदूरों का भूल से भी उधर भटक जाने का मतलब था गोलियों से बिंध जाना।

वकील के चले जाने के दूसरे ही दिन बाद मोरेल साहब पैदल बस्ती में पहुँचा था। उसने वहाँ के कुएँ का पानी भी पिया था और भोजपुरी में बातें करके लोगों से फिर से काम पर लौटने का अनुरोध किया था। उसने मदन से कहा था, "तुम अपनी शर्तें सामने रखो।"

मदन ने उत्तर दिया था, "हमारी कोई शर्त नहीं। हम आपकी कोठी के मजदूर अब नहीं रहे।"

फिर उसने दूसरे लोगों से बातें की थी।

"मदनवा तुम लोगों को भड़का रहा है। काम नहीं करोगे तो बाल-बच्चों को पोसोगे कैसे ?"

"काम करने के लिए बस एक आप ही की कोठी, आप ही का कारखाना है ?"

"तुम लोगों को किसी भी दूसरी जगह नौकरी नहीं मिलेगी।"

"मरद जाति के लिए काम की कमी है क्या ?"

"सभी बखेरा मेरे सरदारों के कारण हुआ है। मैं तुम लोगों को यकीन दिलाना चाहता हूँ कि आईन्दा तुम लोगों को किसी तरह की शिकायत नहीं होगी। वकील की बातों में न आकर तुम लोग अपने आगे के दिन का ख्याल रखो। वकील का तो काम ही दावपेंच का होता है। तुम लोगों से कुछ अनर्थ करवाके ही तो वह कमा सकता है।"

मदन हँसकर बोला था, "मोरेल साहब, हम आपका काम नहीं करेंगे।"

"मैं दूसरे मजदूर भर्ती कर लूँ इससे पहले तुम लोगों को कल तक का समय देता हूँ। कल मैं फिर आऊँगा।"

"अच्छा होता अगर आप आने की तकलीफ न करते। हममें से कोई भी आपकी कोठी का मजदूर नहीं रहा।"

उसी शाम मोरेल साहब की ओर से दो सरदार विवेक को लेने पहुँचे थे। विवेक घर से बाहर नहीं हुआ था। पुष्पा ने दोनों सरदारों से बात की थी।

"साहब से कह देना कि सोने से मढ़वाने पर भी मेरा बेटा नहीं जायेगा।"

अकेले-दुकेले मिल गये एकाध मजदूरों को सरदारों ने धमकियाँ भी दी थीं, लेकिन धमकियों से डरने का दिन शायद बस्ती के मजदूरों के लिए ढल गया था। दाऊद मियाँ के साथ स्वर मिलाकर सभी ने प्रण कर लिया था—इस पार या उस पार !

दूसरे ही दिन लोग अपने-अपने खेतों में जूझ गये थे। सभी ने मिलकर तीन दिन में नागफनीवाले जंगल को भी साफ करके हिस्सेदारों को सौंप दिया था। उजड़े हुए खेतों से जो भी सब्जी और अनाज बटोरा जा सका था उसे बैठका में रखवा दिया गया था। आलू, अरवी, प्याज और कन्द जैसी चीजों को कोई खास नुकसान नहीं हो सका था इसलिए कोड़ने पर ये चीजें कुल मिलाकर अठारह बोरे आयी थीं।

मीरा की मौसी के हिस्सेवाले में तुरई, चिचिंडा और करेला की बेलों से भी कुछ फल मिल गये थे लेकिन जो खेत एकदम नष्ट हो चुके थे वे थे बैंगन, टमाटर, गोभी और अन्य सागों के खेत जिन्हें सुअर चर गये थे।

सातवें ही दिन खेतों में बोआई शुरू हो गयी थी। भीषण तूफान के बादवाले सुहाने मौसम-सी थी खेतों की वह रौनक। गौतम राव का लड़का इस खेत से उस खेत तक गाता हुआ निकल जाता। खेतों की रौनक पहले से दुगुनी हो जाने का सबसे बड़ा कारण तो यही हो सकता था कि पहली बार कानूनी तौर-तरीके से वे अपनी निजी ज़मीन जोत रहे थे, पर इसके साथ-साथ एक और कारण था। वह था बस्ती की स्त्रियों का सक्रिय और सम्पूर्ण रूप से खेतों में जुट जाना।

सुगुन भगत के सुझाव पर मीरा की मौसी अपने खेत में मकई और मूँगफली बोने को तैयार हो गयी थी। वह तो खेती-बारी के बारे में कुछ भी नहीं जानती थी पर चूँकि दाऊद मियाँ नें भी उसे यही बताया था कि इन दोनों चीज़ों के लिए मौसम अच्छा था और फिर वह कम मेहनत की खेती थी, इसलिए दूसरे ही दिन वह बोआई में लग गयी थी।

अपने खेत के काम पूरा करके मीरा अगल-बगल के खेतों में भी हाथ बँटा आती थी। अपने खेत की बोआई के बाद वह अंकुर ऊपर आते देखने को अधीर हो गयी थी। हर दूसरे दिन वह मिट्टी हटाकर बीजों को झाँक लेती थी। वर्षा होते ही दूसरे दिन उसने अंकुरों को अकुलाकर बाहर आते देखा। वह और कुछ न करके घूम-घूम-कर उन अंकुरों को देखती रही। उसकी मौसी भी अपनी उत्तेजना को सँभाल नहीं सकी।

"ई त सब फदफदा के जम आईल !"

मीरा ने सुन रखा था कि मकई के पौधे बड़ी तेजी के साथ बढ़ते हैं। उसके भीतर पौधों के एकाएक बढ़कर उसकी अपनी बराबरी के हो जाने की जो अधीरता थी वह उसे यह मानने ही नहीं दे रही थी कि पौधे तेजी से बढ़ रहे थे। तीसरे दिन पौधों के इर्द-गिर्द घास भी उग आयी थी। पत्थरों की मुँडेर के पास वह निराई में लगी हुई थी कि तभी बगल से मदन की सुबह की लम्बी परछाँई का ऊपरी भाग उसके सामने रुक गया। अपने माथे से पसीना पोंछकर मीरा ने आँखें ऊपर कीं।

मदन अगर मुस्कराता नहीं तो मीरा उसे उसकी फटी हुई दाढ़ी के कारण पहचान नहीं पाती।

"तुम तो बाजी मार ले गयी।"

मीरा की समझ में बात नही आयी। दाहिने हाथ के हँसुवे को बायें हाथ में पटूँचाती हुई वह खड़ी हो गयी। मदन ने उसी तरह हँसकर कहा, "हम सबों से पहले तुम्हारा खेत अंकुरित हो गया।"

मीरा को अपने भीतर इस बात का गर्व था, पर उसने उसे प्रकट नहीं होने दिया।

मदन उसके उस चेहरे को देखता रहा जिसपर जहाँ-तहाँ मिट्टी लगी हुई थी। उसके उस गेहुवे रंग पर मटियाला रंग फब रहा था या उस मटियाले रंग के कारण मीरा का गेहुवाँ रंग अधिक निखर आया था—मदन तय नही कर पाया।

"आज मौसी दिखायी नही पड़ रही ?"

मदन उसी तरह हँसता हुआ आगे बढ गया। यह मीरा की चुप्पी का पहला अवसर नही था। उससे उत्तर की आशा न रखते हुए भी वह हर बार प्रश्न कर ही जाता था। उसने अपने खेत मे टमाटर के बीज की धूनी गिरायी थी। उसमें अभी अंकुर नही आये थे, फिर भी मैंनाएँ मिट्टी खुदेड़कर बीज चुग जाती थी। मैंनाओं को दूर रखने के लिए मदन ने जहाँ-तहाँ सफेद झण्डियाँ उडा रखी थीं। उसी के खेत में नये कुएँ की खुदाई हो रही थी। बैठका मे यह तय हुआ कि सभी खेतो में सिंचाई की सुगमता के लिए तीन नये कुएँ की आवश्यकता थी। एक कुआँ नागफनी इलाके मे खोदा जा रहा था, दूसरा मदन की जमीन में और तीसरे के लिए जगह तय नहीं हुई थी। मदन के खेत का कुआँ पूरा होने को ही था। अनुमान से पहले ही उसमे पानी निकल आया था। मुगुन भगत की बनायी योजना के मुताबिक उस कुएँ का उपयोग आसपास के बीस खेतों मे हो सकता था। कुएँ किसकी जमीन में खोदे जायें यह विवाद की बात न बन जाये इसलिए दाऊद मियाँ ने अपनी मुट्ठी से तिनके खिचवाये थे। सबसे छोटा तिनका पाकर भी मदन अपनी जमीन में कुआँ खोदवाकर सबसे अधिक सुविधा पाने के पक्ष में नहीं था, पर यह निर्णय बैठके का होने के कारण अन्त में वह चुप रह गया था। उसकी अधिक सुविधावाली बात के उत्तर में दाऊद मियाँ ने कहा था कि उल्टे उनके पल्ले नुक्सान की सम्भावना थी क्योंकि हर दिशा से पगडण्डी बनाकर लोग उसके खेत में पहुँचेंगे। इससे सब्जियों के पौधों के कुचले जाने की सम्भावना रहती है। कुएँ के आस-पास की जमीन के कुछ भाग का उपयोग तो बोआई के लिए किया ही नहीं जा सकता।

इन बातों को सुनने के बाद मदन ने मुस्कराकर स्वीकृति दे दी थी।

उसी के खेत में पडा था नीम का वह पेड जिसके नीचे बैठकर गम्भीर समस्याओं पर विचार किया जाता था। उसके इर्द-गिर्द चिकने-चिपटे पत्थरों के सुन्दर आसन बने हुए थे। जिस जगह पर बैठका का प्रधान बैठा करता था, उसी पर मदन

बैठ गया। अपने पाँव में चुभ आये काँटे को एक दूसरे काँटे से निकालते हुए वह उस प्रस्ताव के बारे में सोचने लगा जो मोरेपो कोठी से आया था। वे वहाँ के दो मजदूर ही थे जो साहब की ओर से प्रस्ताव लेकर आये थे। सबसे पहले तो दोनों ने वहाँ की स्थिति में आ गये परिवर्तन की चर्चा की थी। परिवर्तन लानेवाले उस आदमी की बातें भी हुई थीं जो किसनसिंह से प्रभावित होकर ही उस लड़ाई को वहाँ अन्त तक लड़ता रह गया था। वहाँ के काम की शर्तें काफी हद तक सन्तोषजनक हो चली थीं। सुबह आठ से शाम के चार बजे तक की नौकरी बुरी नहीं हो सकती थी और रोजाना बाहर आना-जाना भी बुरा नहीं था। स्वतन्त्र रूप से काम करना था। बस्ती के कई लोगों को बात पसन्द आ गयी थी। पर पाँच पत्थल लम्बे फासले का मतलब था आने-जाने में रोजाना दस पत्थल। रात में बैठक लगी थी और बहुमत से यह बात मान ली गयी थी कि कुछ लोग, जिनके यहाँ के खेत का काम घर के लोग सँभाल सकेंगे, उस मोरेपो कोठी के काम को शुरू करके देख सकते थे। क्योंकि इन अपने खेतों से गुजारे की उम्मीद सिर्फ छः-सात महीने बाद ही की जा सकती थी। तब तक अगर दूसरी जगह पर इज्जत के साथ काम करके कुछ प्राप्त कर लिया जाये तो यह बेहतर ही तो होगा। दस आदमियों को अपने साथ लेकर वहाँ काम शुरू करने की जिम्मेवारी मदन ने अपने ऊपर ले ली थी। अपने खेत की देखभाल का दायित्व उसने धनलाल पर छोड़ दिया था।

सुबह खेत की ओर आते हुए सीता ने उसे रोक लिया था।

"दूसरी कोठी में जाकर काम करने की बात तुम क्यों मान गये ?"

"विवेक नहीं जा रहा।"

"तुम तो जा रहे हो !"

"हमारे ये उजड़े हुए खेत हम सभी को दो जून रोटी दे सकें इसमें अभी कुछ देर है।"

"और अगर इन लोगों की कोई साजिश हुई तो ?"

मदन हँसकर आगे निकल गया था।

आपस में झगड़ती हुई दो मैनाएँ नीम की डाली से छुटकर नीचे आयीं और फिर अपने को सँभालती हुई उड़ गयीं।

देवराज को हाथ में डोल लिये अपनी ओर आते देख मदन खड़ा हो गया। देवराज के पास आ जाने पर उसने पूछा, "डोल लिये तुम लोगों को पानी पिला रहे हो या खुद के लिए पानी ढूँढ़ रहे हो ?"

"मदन भैया, मैं फेनूस बाँट रहा हूँ।"

"लो, मैं तो भूल ही गया था कि गाय को बच्चा पैदा हुआ है। कैसी है बछिया ?"

"वह तो कूद-कूदकर दूध पी रही है।"

"देखो वो सामने मीरा है न ? तुम उसी को मेरे हिस्से का फेनूस दे देना।"

देवराज का बाप बस्ती में सबसे मेहनती था। दिन-भर और सभी लोगों से अधिक ही काम कर चुकने के बाद वह बस्ती की दोनों गायों के लिए घास भी जुटा लेता था। झोपड़ियों के छप्पर छाने में भी वह सबसे आगे था। खेतों में जब चीजें बोने की बात चली थी, उस समय देवराज के बाप ने कहा था कि सभी लोग सब्जियां बोयें पर वह तो गन्ना ही बोयेगा। और लोगों के 'आखिर क्यों' का उसने गम्भीरता के साथ उत्तर दिया था, "हय ईखवा के मुलुक होवेला भैया। हैये ईखवा के खातिर त एतना दुर्गत होवल, भला एके कैसे छोड़ल जाय ?"

बैठका के प्रधान ने पूछा था, "लेकिन सुकना, अपनी ईख को बेचने कहाँ जाओगे ? कारखाना तुम्हारी ईख थोड़े ही खरीदेगा ?

"अरे एकर फिकिर तुम लोगन ना करो। हम खुद ईख के रस पेरब और ओकर से भेली बनाके बाजार में भेजब।"

लोगों को यह ख्याल गलत नहीं लगा था।

देवराज के आगे बढ़ जाने पर मदन कुएँ की ओर बढ़ गया।

मदन समुद्री इलाके में बरगद के नीचे बैठा तन्दूर के पकते हुए कोयले की नशीली गन्ध से ऊबकर कुछ आगे को बढ़ गया। बैठे-बैठे उसने सोमा-सन्तू की कहानी का तीसरा भाग पूरा पढ़ लिया था। आगे की कहानी की बेसब्री को अपने में लिये वह समुद्रकिनारे पहुँच गया। चट्टान पर बैठकर लहरों की थपकियों को सुनते हुए उसने अपने-आपसे कहा, "सोमा को हरखू सरदार के साथ नहीं जाना चाहिए था⋯⋯"

आगे की कहानी जानने की अधीरता को न रोक पाकर उसने पुस्तक खोली और पढ़ना शुरू किया—

अब पछताव से का होई लछी ? ई तरह हाथ-पाँव बाँध के बैठे रहल से कुछ ना होई। हम सभी को सोमा की खोज में निकलेके चाही।

न जाने हमके का हो गइल रहल। हम घरवा ना छोड़ती त ई सब ना होवत।

लछी, चुप भी रह। हम कह चुकली कि इ सब होवे ओला रहल। होनी को कौन रोके ? अब माथा ठोकल से बेहतर त ई होई कि सोमा के ढूँढल जाय।

अभी त सन्तू के खातिर रोअल बन्द ना होल रहल कि ⋯

हम बोलत बानी चुप भी त रह। देख, विनय आ गया। बैठल से बात ना बनी बेटा !

क्या इतना कुछ हो जाने पर भी मुझसे उठना हो सकेगा ? इन्ही के लिए मैंने अपने लोगों को मँझधार में छोड़ दिया था। आज इन्ही लोगों ने⋯⋯

विनय, तू त एक ही बात के ओट रहल बारे बेटा⋯⋯

बस, अब सिर पीट-पीटकर मरना ही तो बाकी रह गया है।

सचमुच ऐसन नौबत आ जाय एकर से पहले उठ खड़ा हो बेटा !
किसी को मुँह दिखाने योग्य छुटा रहता तब तो।
बाहर तुम्हारे सभी साथी तुम्हारी राह देख रहे हैं।
मेरे मुँह पर थूकने के लिए ?
उठ बेटे, और चलके खोज शुरू कर दे।
किसकी खोज ?
सोमा के खोजे के बा बेटा !
सोमा को खोज निकालने के लिए तो सारा गाँव है। मुझे तो हरखू सरदार की खोज में निकलना है।
तू सोमा के खोज बेटा……समय बा, ऊ अब भी मिल सकी।
सोमा दीखे या न दीखे पता नहीं, पर हरखू सरदार कब तक नहीं दीखेगा यही देखना है।
विनय बेटा, तू ई सब बात बाद में करिहे, पहले सोमा के खोज निकाल।
सोमा ?
हाँ विनय बेटा !
सोमा को ढूँढ़ निकालने का वचन तो मैं आपको नहीं दे सकता, पर हरखू सरदार को हजार गोरों के बीच से निकाल के रहूँगा।
विनय, तू कहाँ जात बारे ?
यह विनय इस तरह कहाँ जा रहा है करीम भैया ?
ओकर सिर पर खून सवार बा करीम भैया ! हमके त डर लगत बा, कहीं ऊ सचमुच हरखू सरदार के जान से न मार देय।
ऐसा करके वह बुरा थोड़े ही करेगा ? आज नहीं तो कल हममें से किसी को इतनी हिम्मत तो करनी ही है।
हमारी बद्दुआओं से उसके जुल्म थोड़े ही खतम होंगे ! इस तरह की घिनौनी जिन्दगी को खत्म करने की कोशिश कभी न कभी तो करनी ही है।
करीम भैया ! तुम भी विश्वास करत हो कि बुराई के बदला बुराई से लेवल जाय।
अच्छाई के लिए अच्छाई होती है, बुराई के लिए बुराई। जहर में दूध मिलाने से वह अमृत थोड़े ही बन जाता है !
भैया, तुम्हारी बातों से हमके हैरानी होवे लगल। ऐसने अनर्थ करके सन्तू कैद बाटे, अब एही चाहत हो कि विनय भी वैसा ही कर जाए ? भैया, तू दौड़ के विनय के रोक ले। ओकर कपार पर बदला के भूत सवार हो गइल बा।
तुम सोचती हो उसे रोका जा सकता है लछी बहन ? समुद्र के उफनते ज्वार-भाटों को कोई नहीं बांध सकता। यह सही है कि पत्थरों की मुंडेर बनाकर उसे कुछ देर के लिए रोका जा सकता है, लेकिन फिर तो मुंडेर को टूटना ही

है—ज्वारभाटे को आगे बढ़ना ही है। इन जंजीरों ने तो यही एक बड़ी बात हमें सिखायी है। विनय की हरकत समय का तकाजा है। सुबह का भूला वह शाम को घर आया है। हम सभी हक चाहते हैं, आजादी चाहते हैं। ये दोनों चीजें झुककर नहीं ली जातीं, इनके लिए आदमी को सीधे खड़े होकर आगे बढ़ना पड़ता है।

आगे बढ़ के विनय के रोक ले करीम भाई !

उसे नहीं रोका जा सकता।

बाहर के सभी लोग मिलके ओके रोक सकियत स·····

देखता हूँ।

अब और कोंची बाकी रह गइल बा होई के ?····· सिपाही ? मेरे घर सिपाही ?

कोत निमिरो सेत सां जीम ?

किस बात को दस को ढूँढ रहे हो ?

हम पूछते हैं सन्तू का बच्चा कहाँ है ?

ई त सू लोग जनब स।

जल्दी बताओ, सन्तू कहाँ है ?

वह तो तुम्हारी कैद में है। मैं मुनिया बोल रही हूँ।

वह कैद में नहीं है।

तो फिर लाट साहब के महल में होगा।

देख लड़की, हमसे मजाक मत कर। जल्दी बता सन्तू कहाँ है वरना हम सभी को गिरफ्तार कर ले जायेंगे।

जो तुम सबकी ही कैद में हो उसे यहाँ क्यों ढूँढ रहे हो ?

लिकिन बूरे।

वह रात को कैद से भाग गया है। हमे यकीन है कि वह इसी घर में छिपा है।

क्या ? सचमुच वह कैद से भाग गया ?

अनजान मत बनो। जल्दी से उसे मेरे हवाले कर दो।

यह हमसे कह रहे हो ?

हाँ, तुम सभी से।

पर वह यहाँ हो तब तो ?

ली ला मेम।

तो फिर ढूँढ लो।

सचमुच सन्तू कैद में नहीं है ?

तू बीजें फुये पार्तु।

तलाशी लेने से पहले कागज बताना होगा।

लेवे दे बेटी।

सचमुच सन्तू कैद से भाग गइल ?

के जाने ई सच ह या झूठ।
चुप रहिये आप लोग……
ले पु पेई शोर पुर्शा।
वह हमसे वच नहीं सकता। इस वार उसकी शामत आ गयी है।
अगर सचमुच ही वह कैद से भाग गया है तो अव आगे क्या किया जाये?
हमरे को तो विश्वास ना होता झुनिया।
एक के वाद एक मुसीवत। उधर उसके कैद होने की चिन्ता से ग्रस्त ही थे कि सोमा गायव हो गयी। अभी सोमा मिल भी नहीं पायी कि यह दूसरी वात सामने आ गयी। तुम ठीक ही कहती हो मौसी! सनी है तुम लोगों पर।
ऊ कैसे भागल?
तुम्हारे को सोमा की चिन्ता जाती रहल का?
कहाँ-कहाँ भागत फिरत होई हमार वेटा?
लछी, हम पूछत वानी कि वह का ख्याल तुम्हारे को जाता रहा का?
मैं तुम दोनों के लिए कुछ पीने का प्रवन्ध करूँ।
ठहर वेटी। हम लोगन के कुछ ना चाही।
कव तक?
हय त ऊपरवाला ही जानी।
सन्तू! सचमुच तुम कैद से छूट गये?
वेटा! तोर मुँह सूख के चोंचा हो गयल वा।
तुम्हारा यहाँ आ जाना खतरनाक है वेटा!
तुम्हें इधर आते किसी ने देखा तो नहीं?
तू इतना झाँवर कैसे हो गइले सन्तू? तीन दिन पहले तोर चेहरा फूल जैसल रहल।
माँ!
देख वेटी, हमर लयका के पिये खातिर कुछ लियान।
मैं घर से दूध ले आती हूँ।
पानी चाहिए मुझे।
तोर पीछे सिपाही लगल वा सन्तू। तोर हियाँ रहल ठीक ना वा।
अउ हमार वेटा के कोई ना ले जाय सकी।
नै जनवे कव सिपाही हियाँ पहुँच जाय।
दे वेटी। हमर हाथ से पिही।
हम नीम के नीचे वैठते हैं। तुम लोगन जोर से वातचीत ना करना। हमर अगाह करते ही तू पीछे से भाग जाना।
माँ! सोमा को वुला।
तोर चेहरा एकदम वदल गइल वा सन्तू!

सोमा कहां है ?
भैया, तुम चुप रहो।
चुप रहकर भी तो सिपाहियों को यहां से दूर नहीं रख सकता। वे आते ही होंगे।
नहीं बेटे, ऐसन ना बोल।
सोमा को बुला दो मां, मैं उसे देखकर तो जाऊं !
कहां जयबे बेटा ?
यही तो मैं नहीं जानता मां, पर······पर मैं किसी भी हालत में यहां नहीं रह सकता। मुनी, तू ही उसे बुला ला।
पहले कुछ सांस भी तो ले ले।
मैं कल रात से फरार हूं। सिपाहियों का पूरा झुण्ड मेरे पीछे निकला होगा। और फिर कैदी कैसे सांस लेगा जब यहां मुक्त आदमी भी सांस नहीं ले सकता ? इसी सांस लेने की खातिर ही तो आज बन्दी हूं।
तुम बैठो तो सही।
थोड़ा और पानी ला दो मेरे लिए।
मां, तुम बहुत रोती रही हो न ? तुम्हारी आंखें इतनी सूजी हुई क्यों हैं ?
हमर आंख थोड़े ही सूजल बा। फीका तो तोर चेहरा पड़ गयल बा सन्तू।
मां, मैं दोबारा उस नर्क को नहीं लौटना चाहता।
मुनी तोर खातिर पानी ले आल।
मुनी ! सोमा बीमार है क्या ?······मैं ऊंची दीवारें फांदकर उसे देखने आया हूं, वह भी सामने नहीं आयी······ खैर, मैं खुद देखता हूं।
ठहर बेटा।
सोमा को देख तो सकता हूं ?
सोमा यहां नहीं है सन्तू।
सोमा यहां नहीं है ? क्या कह रही हो तुम ?
ओकर मां आल रहल।
क्यों गयी ? दुख का एक क्षण भी उससे इस घर में बिताया नहीं गया ?···
तुम सभी इस तरह चुप क्यों हो ? क्यों जाने दिया उसे ? क्या उसका सम्बन्ध मुझ तक ही था ? सोमा इतनी खुदगर्ज कैसे निकली ?
सोमा इतनी खुदगर्ज नहीं सन्तू।
तो फिर······
वह अपनी मां के घर नहीं गयी है।
मां, तुम तो······पर जब कहीं नहीं गयी तो फिर मेरे सामने आती क्यों नहीं ?
इसलिए कि यहां नहीं है।

यहाँ भी नहीं, वहाँ भी नहीं·····तो फिर वह है कहाँ ? मैं पूछ रहा हूँ सोमा कहाँ है ?
मोड़ से कुत्ता के भूंके के आवाज आवत बा·····शायद सिपाही इधर·····
आने दो सिपाहियों को·····पहले यह तो बताओ कि सोमा कहाँ है ?·····
पिताजी, मैं तुम्हीं से पूछ रहा हूँ कहाँ है सोमा ?
तुम लोगों ने क्या बताया इसे ?
पिताजी, सोमा कहाँ है ?
अब चुप रहल से का फायदा ?
फिर भी चुप हो···
कोंची बताई सन्तू ?
कहाँ है तुम्हारी बहू ?
ऊ हियाँ नाहीं।
वह तो मैं भी देख रहा हूँ।
कल रात से ऊ···
कल रात से वह घर छोड़कर चली तो नहीं गयी ?···क्या इसलिए कि उसे मालूम हो गया कि यहाँ अब रोटी-कपड़े ही नहीं तो फिर ऐसी जगह चिपके रहने से क्या लाभ ?
तुम सोम को गलत न समझो। उसने घर छोड़ा है यह सच है, लेकिन इस सच्चाई के पीछे जो सच्चाई है उसे न जानना चाहो तो अच्छा है।
क्या कह रही हो झुनी ?
बस इतना ही समझ लो कि औरतें इतनी जल्दी घर नहीं छोड़ा करतीं। ऐसा करने के लिए बहुत बड़ा कारण रहा होगा।
मैं भी तो सुनूं क्या है वह कारण ?
वह तो किसी को नहीं मालूम।
मुझे मालूम है। औरतों का वास्ता भी तो कुछ हद तक रोटी के लिए होता है। उसके अभाव में वह यहाँ भूखी क्यों मरती···
औरत जात को इतनी आसानी से समझने की कोशिश मत करो।
खैर, तुम लोग जानते तो होगे कि इस चौखट से पाँव निकालकर वह गयी तो अब होगी कहाँ ?
यही तो हम नहीं जानते। पूरा गाँव उसकी तलाश में है।
उसकी तलाश में पूरा गाँव ? तुम लोग मुझे उटपटांग बातें बता रहे हो। क्या बात हो गयी है जिसके लिए पूरा गाँव उसकी तलाश में है ? माँ, तुम चुप क्यों हो ?
का बताई बेटा ?
सोमा ने घर क्यों छोड़ा ?

मैं बाहर देखती हूँ, कहीं सिपाही तो नहीं आ पहुँचे।
दुनिया से बात बतायी नहीं गयी ·····पर तुम तो बताओ। कहाँ है सोमा ?
शायद ऊ अब जीयत ना मिली सन्नू !
क्यों वह जीवित नहीं मिल सकती ? यह क्या कह दिया तुमने···अब चुप क्यों हो ? क्यों सोमा जीवित नहीं मिल सकती ?
तोर गिरफ्तारी के बाद हम लोग सोके छुड़ावे के कोशिश में इधर-उधर लगल रहलीं स कि तभी हुय सबकुछ हो गइल।
क्या ?
नाजुक वखत के लाभ उठाके हरखू सरदार·····
अपनी बात को पूरा तो करो।
बेवस बहू ओकर सामने कुछ ना कर सकल।
साफ-साफ कहो ताकि मैं कुछ समझ सकूँ।
हरखू सरदार बहू के ले जाके कोठी के मालिक के हाथ में सौंप आल।
फिर·····?
ओकर संगे ऊ ही हाल होइल जौन रघुवीर के बेटी के साथ होइल रहल।
नहीं ···· नहीं ·····। माँ, तुम क्यों सिसकने लगी ? क्या यह सच है ? ऐसा क्यों हुआ माँ ? ऐसा क्यों हुआ ? तुमसे ····भी उसकी रक्षा नहीं हुई। सोम ! तुम्हें क्या हो गया ?····· पर वह है कहाँ ? इतना कुछ हो जाने के बाद सोम है कहाँ ?
उसकी तलाश घण्टों से जारी है।
ऐसा कब तक होता रहेगा ?
विनय आ रहा है।
विनय से भी मेरी सोमा की रक्षा नहीं हुई। इससे बेहतर तो यही होता कि मैं भी काली कोठरी में ही सड़ जाता। यह क्या हो गया माँ, यह क्या हो गया ?
सोम ? यह क्या हो गया तुम्हें सोम ? विनय, कहाँ मिली तुम्हें यह लाश ?
सोम ! यह तुमने क्या कर लिया ?
तू त अपन कलंक धो लेले बेटी, पर हमनी के दुखवा अब के बाँटी ?
विनय, यह क्या हो गया ?
सोमा की लाश तुम्हें कहाँ मिली विनय ?
सोमा ? कहाँ है सोमा ? तुम सभी मिलकर लौटावो मेरी सोमा को ··मैं एक-एक से अपनी सोमा को वापस लूँगा। ·····
जरा शान्त हो बेटा, सोमा तोर सामने बा।
कहाँ ? यह सोमा नहीं, लाश है। मुझे सजीव सोमा चाहिए·····

विनय, तुम इस तरह पत्थर क्यों बने हुए हो ? बताओ सोमा तुम्हें कहाँ मिली ?
बेटा, तू कुछ बोलत काहे ना हवे ? करीम भैया, तू भी त साथ रहले······सोमा के लाश कहाँ रहल ?
नदीकिनारे। लेकिन इस समय लाश की फिकर छोड़ो। ये जो जिन्दा हैं इनका ख्याल रखो।
क्यों, क्या बात है चाचा ?
तुम लोग सन्तू और विनय दोनों को यहाँ से कहीं और भेजने की सोचो।
दोनों को क्यों ?
विनय हरखू सरदार का खून करके आ रहा है।
विनय ! सचमुच तुमने उसे मार डाला ? ऐसा क्यों किया तुमने ?
तुम्हारे ऐसा करने से सोमा जीवित थोड़े ही हो जायेगी ?
विनय······क्या सचमुच······सचमुच तुमने उस आदमी को मिटा दिया ?
मैं पहाड़ी के पास सिपाहियों को देखकर आ रहा हूँ। वक्त बहुत कम है।
तुम लोग इस बात को छोड़ो···विनय, तुम भी सन्तू के साथ भाग निकलो।
विनय क्यों भागने लगा ?
इसने खून जो किया है !
कहाँ हुआ है यह खून ?
पहाड़ी के नीचे।
किसी ने खून करते इसे देखा था ?
किसी ने नहीं।
ठीक है। इस धरती को काफी पसीना पिलाया जा चुका है······अब इसे एकाध बूंद खून भी तो चाहिए था। विनय, तुम सजग हो चुके हो। तुम्हारे भीतर का भय मर चुका है······सभी कुछ चुपचाप सह जाने की दासभावना को तुम तज चुके। तम्हीं वह आदमी हो जो अन्याय को जला देनेवाली पहली चिनगारी को जन्म देगा।
सिपाही आ रहे हैं। तुम दोनों भाग निकलो।
आने दो।
वे एकदम पास आ गये हैं।
सन्तू, भाग निकलो।
नहीं।······विनय, एक बार फिर से सुन लो। तुम तो पहले से ही मजदूरों के नेता रहे हो······फिर भी सुन लो······तुम्हारा संघर्ष अब शुरू हो रहा है। तुम्हीं तो कहते थे कि अच्छाई को मिटाने में जितना बड़ा पाप होता है उतना ही बड़ा पाप होता बुराई को पनपते छोड़ देने में। तुमने अच्छाई की रक्षा के लिए बुराई को समाप्त किया है······। इस देश की समृद्धि के हकदार वे हों

जिनके पसीने बहें।
वे आ गये, तुम लोग भाग निकलो।
करीम चाचा ! भारतीय जान इतनी सस्ती नहीं हो सकती, इसलिए फाँसी एक की होगी, दो की नहीं। यहाँ की स्थिति को सुधारकर विनय अपने हाथों को धो लेगा।......चाचा, यहाँ के सभी लोगों का ख्याल रखना। विनय की जगह यहाँ के शोषित जनों के बीच है।...... बस, सोमा का किरिया-करम अच्छी तरह हो जाये।
तुम भाग नहीं सकते सन्तू !
घबराओ नहीं, मैं भागूँगा नहीं। बाँध लो। पहली बार तुम लोगों ने मुझे एक गोरे की हत्या के जुर्म में बाँधा था, इस बार तुम मुझे एक सरदार की हत्या के लिए गिरफ्तार करोगे। जकड़कर बाँध लो मुझे, मैंने हरगू सरदार की हत्या कर दी है। उसकी लाश तुम्हें पहाड़ी के नीचे मिल जायेगी।
सन्तू, यह क्या कह रहे हो ?
वही जो मुझे कहना चाहिए।
नहीं, तुम अकेले नहीं जा सकते !
ख़ैर विनय, तुम इस घर में सन्तू रहोगे, अपने घर में विनय और मजदूरों के बीच उनका उज्ज्वल भविष्य ! ठीक है, मैं चलने को तैयार हूँ।...... पर अपने माँ-बाप के पाँव तो छू सकता हूँ ?
कोठरी में जेलर के पाँव भी तो छूने हैं !

पुस्तक समाप्त करके मदन ने लम्बी साँस ली। सामने सागर की लहरें अब भी सिसकियाँ ले रही थीं।

बीस

गोबर से लिपी हुई बैठका की दीवार पर सफेद मिट्टी का लेप चढ़ाती हुई मीरा ने रम्भा से पूछा :

"तुम मानती हो जादू-टोने की बात ?"

"मेरा भाई अपनी मौत थोड़े ही मरा था !"

"जादू-टोने से मरा था ?"

"नहीं तो और क्या ? हमने बैठकी करवायी थी और दूसरी बस्ती से पहुँचे उस ओझे ने तो साफ कह दिया था कि आदिमा की माँ के चंगुल से उसे बचाना असम्भव है।"

"बस, ओझे के कहने से ही तुम्हें विश्वास हो गया ?"

"तुम विश्वास नहीं करती क्या ?"

"मैं तो नहीं करती।"

"तो फिर देख लेना विवेक भैया की हालत।"

"तुम्हारा मतलब है कि उसका बचना असम्भव है ?"

"तुमने वह गुड़िया देखी थी न जो उसकी चौखट पर पायी गयी ?"

"तुम भी तो साथ ही थी।"

"गुड़िया की छाती पर सात सुइयाँ चुभी हुई थीं।"

"मैं तो समझ ही नहीं पा रही कि इस छोटी-सी बात के लिए इतना बड़ा तहलका क्यों मचा हुआ है। सभी लोग आतंकित हैं। मेरी अपनी मौसी तो घर के भीतर काँप रही है। जीनत खाला पहली बार मुझे सहमी दिखायी पड़ी। अकेला विवेक भैया ही है जो बिना डरे हँसता हुआ दिखायी पड़ रहा है।"

"ऊपर से।"

"जीनत खाला के सामने तो मैंने उसे कहते भी सुना कि वह बेपरवाह है।"

शाम को बैठका के आगे बस्ती के सभी लोग जुटे। घनलाल ने अपने हाथों से गीली मिट्टी का कुण्ड बनाया। उसके सामने उसी ने हनुमानजी की छोटी-सी मूर्ति रखी। उसके चारों ओर फूल रखे। पुष्पा ने विवेक को विवश करके अपनी बगल में बिठाया। पुजारीजी ने विवेक के माथे पर चन्दन का टीका लगाया और फूल की दो-तीन पंखुड़ियों को मन्त्रोचारण के साथ उसके माथे पर फेंकते हुए उसने बगल में पड़े हुए आटे के उस पुतले की ओर देखा जिस पर सात सुइयाँ थीं। उसने विवेक को हाथ जोड़कर आँख मूंद लेने का आदेश दिया। मन्त्रों के साथ कुछ चावल फेंके।

एकदम अलग कुछ दूरी पर देवराज लकड़ी के छोटे-छोटे टुकड़ों से एक छोटी-सी चिता सजाकर तैयार कर चुका था। अपने मन्त्रपाठ को रोककर पण्डित ने सभी को सुनाते हुए जोर से कहना शुरू किया :

"भगवान से बड़ा कौन हो सकता है ? सभी को जो मन में आये करने की छूट है, पर इसका यह अर्थ नहीं हो जाता कि जादू-टोने और भूत-प्रेत के चक्कर से भगवान की मर्जी के खिलाफ कोई जा सकता है। जादू-टोने से लड़ने का तरीका हमें नहीं आता पर भगवान पर विश्वास करते हुए सारा कुछ उसी के हाथ छोड़ देने से अच्छा दूसरा तरीका हो ही क्या सकता है ? महावीर स्वामी के तो नाम लेने से ही संकट दूर हो जाता है। आज हनुमानजी की ही हम गुहार करेंगे। हम लोग चालीसा का पाठ एकसाथ शुरू करें, इससे पहले उधर की तैयार चिता पर इस पुतले को जला दिया जायेगा। भगवान करे इसके राख होते ही विवेक के शत्रु की वह मनसा भी राख हो जाये जिससे उसने विवेक को मारने का प्रयत्न किया है।"

सुगुन भगत अपने स्थान से उठा, उस सुइयोंवाले आटे के पुतले को उठाया और देवराज की तैयार की हुई छोटी-सी चिता पर रखकर आग लगा दी। लोगों का डर और भी बढ़ आया था। पुजारीजी ने जोरों के साथ हनुमान चालीसा का पाठ शुरू किया। लोगों ने स्वर मिलाया। दाऊद मियाँ और हनीफ एक ही जगह पर बैठे

दुआएँ करने लगे।

पाठ समाप्त होते-होते वह पुतला भी राख हो गया था। कुण्ड में आम की सूखी लकड़ियों को सजाते हुए पुजारी ने कहा, "भगवान ने चाहा तो विवेक का बाल भी बाँका नहीं होगा।"

इसके बावजूद लोगों का भय बना रहा।

सूरज सरकता हुआ सागर के ऊपर उपला गया था। पूरब के बादल रेंगते हुए पश्चिम को पहुँच गये थे। हवा में न ठण्डक थी न गरमी, बस खुश्की लिये बही जा रही थी। उस खुश्की की ही वह उमस थी जो धीरे-धीरे बढ़ती-सी प्रतीत हो रही थी। झोंपड़ी को लौटते हुए विवेक का एक हाथ पुष्पा के हाथ में था और दूसरे में पुजारीजी का थमाया हुआ हनुमान चालीसा था।

मीरा घर की ओर न लौटकर खेत की ओर बढ़ गयी। मूँगफली के पौधों की जड़ में आख़िरी चोंच मारकर घोंसले को लौट जाने का तीतरों और मैनाओं का यही समय था। कल शाम वह जीवत के यहाँ बस गयी थी और सुबह खेत पहुँचने पर उसने बीस-पच्चीस पौधों से मूँगफली के दानों को गायब पाया था और पौधे मुरझाये हुए मिले थे। गौतम के बेटे ने तीतरों के लिए जो जाल बिछाये थे उनमें कभी कोई तीतर नहीं आया।

मीरा अपने खेत में इस छोर से उस छोर तक चिड़ियों को खदेड़नेवाला गीत गाती हुई दौड़ गयी। मैना की एक जोड़ी ऊपर को उड़ गयी। मीरा ने अपने स्वर को और भी ऊँचा किया—

उड़ी जा उड़ी जा री मैना
तोर होवे बड़े बड़े डैना
उड़ी जा······
जा-जा तू लौट आना
फसलवा के दिनवा
बदले एक दनवा के
तू ले लेना सौ-सौ दनवा
उड़ी जा······

कुछ दूर दौड़ने के बाद दो तीतर नीचे-ही-नीचे उड़कर मदन के खेत में जा रुके। मीरा ने कंकड़ उठाकर उन पर दे मारा। वे वहाँ से आगे उड़े—पर अधिक दूर न जाकर दूसरे खेत में रुक गये। मीरा ने दूसरा कंकड़ चलाया पर वहाँ तक पहुँच न सका। खेत में दो चक्कर काटने के बाद मीरा घर को लौटने लगी।

अँधेरे के साथ-साथ उठ रहे थे उसके कदम। बहुत धीरे-धीरे अँधेरा बढ़ रहा था और बहुत धीरे-धीरे ही वह अँधेरी चाह उसके अपने भीतर पैदा हुई थी। पहली बार जब वह चाह उसके अपने भीतर पैदा हुई थी उस समय मीरा उस अकुलाहट के साथ जूझती हुई दग्ध हो गयी थी। जीवत से वह हर तरह की बात कर लेती थी पर

उस चाह को उस आत्मीयता के सामने प्रस्तुत करने की हिम्मत उसमें नहीं आयी। उसे लगता कि वह उसका अपना बोझ था। अकेले ढोने का बोझ।......और फिर वह अपने-आपसे अपने प्रश्न के उत्तर का तकाजा कर बैठती—क्या सचमुच ही वह अकेले का बोझ था ?

उसकी अपनी स्फूर्ति जाती रहती। चिड़चिड़ापन आ जाता। पूरे शरीर की उष्णता आँखों में डबडबा आती। भूख प्यास को खा जाती, प्यास भूख को पी जाती और वह चाह गिड़गिड़ाती रहती। गिड़गिड़ाती हुई वह सीली पड़ जाती और वह सीलापन बोझ बन जाता। सन्ध्या कहती, "तू मुझसे इस चाह को मिटाने का तरीका क्यों नहीं सीख लेती ?"

सन्ध्या एकान्त की बात करती। खुमारी की बात करती। आनन्द की बात करती। और मीरा उन बातों को न समझने की प्रक्रिया को बनाये रखती। आँखों में मदहोशी-सी लाकर सन्ध्या बोल जाती, "और फिर चरमसीमा होती है, इसके बाद चहक उठोगी।"

उन क्षणों की मीरा की वह उदासी गहरी होती थी। उस गहरी उदासी के भीतर होती थी वह दर्द-भरी गरम साँसें। साँसें जो अकुला देतीं। साँसें जो विस्फोट के साथ बाहर आ जाने के लिए बगावत कर जातीं। उसके उस संयम पर सन्ध्या हँस पड़ती।

"तुम लजवनी उबालकर पी लिया करो।"

"लजवनी क्यों पियूँ ?"

"संयम आसान हो जायेगा।"

उस दिन खेत में शरीफा के पेड़ के नीचे सन्ध्या ने यों ही देवराज के साथ बिताये एकान्त के उस घण्टे का विस्तार से वर्णन कर दिया था। मीरा सुनती रह गयी थी। उस सुनते रह जाने में एक आनन्द निहित था। आनन्द जो बाद में पीड़ा दे जाता—पीड़ा जो अपने में आनन्द का अनुअंश लिये होती।

"अपनी चोली के एकदम इस तरह छोटी पड़ जाने की वजह जानती हो ?"

मीरा सन्ध्या को देखती रह गयी थी और जब सन्ध्या ने वजह बताने की कोशिश की थी तो मीरा ने अपना हाथ उसके मुँह पर रख दिया था। घर पहुँचकर उसने तख्ते पर से आधे आईने को लेकर आँखों के सामने किया था। आईने को धीरे-धीरे नीचे उतारा था। आईना ठिठका रह गया था जहाँ चोली ठिठक गयी थी।

उसे गन्ना चूसते देख उसकी मौसी कह उठती, "जब देख तब खालि गन्ना चूसत रहती हो।"

"बच्ची हूँ क्या जो दाँत सड़ जायेंगे ?"

"जवान लड़कियन के गन्ना ढेर ना चूसे के चाही।"

"क्यों ?"

"तू त बात-बात पर कँव करत हो। जानत नाहीं कि गन्ना में बहुत गरमी

होवेला ?"

मीरा भागी-भागी नदी पहुँच जाती और देर तक डुबकियाँ लगाती रह जाती। शरीर की ठण्डक मन-मस्तिष्क को भी ठण्डक दे ही जाती।

जौनत के यहाँ से वह मदन के बाप की वही ले आयी थी जिसमें किसनसिंह की यादें और गीत इकट्ठे थे। रात को मिट्टी के तेल के चिराग की रोशनी में वह उस हस्तलिखित पुस्तिका को खोलकर बैठ जाती। जौनत के यहाँ सपुरा के वालों से ढोल हेरती हुई उसकी नजर उस वही पर पड़ गयी थी। किसनसिंह के गीतों से वह प्रभावित तो थी ही, पर ये मदन के बाप के गीत होते थे इससे वह उनकी ओर और भी आकर्षित थी। वही के उसी आखिरी गीत को गुनगुनाती हुई वह चल रही थी—

जीवन लागे साँझ के सुनसान डगरवा
घुकघुरी अँजोरवा मे अँटकल बयरवा।

यह गीत मीरा को बड़ी सरलता से याद आ गया था। दिन मे नदी किनारे भी वह इसी गीत को गुनगुनाती रह गयी थी। खेत में जब वह अपनी ही धुन में उसे राग के साथ गाये जा रही थी मदन पीछे आकर खड़ा हो गया था। मीरा के चौंककर चुप हो जाने पर मदन ने आश्चर्य के साथ पूछा था, "यह गीत कहाँ से सीखा तुमने ?"

मीरा अपने-आपमें सिकुड़ी रह गयी थी।

उसकी जबान काठ हो गयी थी।

मदन आगे बढ़ गया था। मीरा अपने-आप पर झुँझलाकर रह गयी थी। मीरा अंगुलियों पर गिनती आ रही थी। वह ग्यारहवाँ अवसर था। ग्यारहवाँ अवसर मदन के सामने गूँगी बन जाने का। ग्यारहवाँ अवसर अपने-आपको भीतर-ही-भीतर कोस जाने का। एक बार फिर पिछले दस अवसरों की तरह उसने तय किया था—इस बार मुझे हिम्मत से काम लेना होगा।

घर पहुँचकर मीरा ने अपनी मौसी को दोनो बकरियो को पानी पिलाते पाया। मीरा को देखकर उसकी मौसी बोली, "मना करल पर भी तू खेत पहुँच के रहले।"

"मौसी चिड़ियो का अकुरो के नीचे से बीज चुग जाने का यही तो समय होता है।"

"मगर एतन बखत खेत मे अकेले होवल जवान छोकरी खातिर कहाँ ले अच्छा होवेला ?"

"खेत मे बनैला सुअर थोड़े ही होता है।"

"ना होवत है त हो जाय एक दिन।"

"मौसी, अब तो घरदारों की परछाइयाँ भी नहीं फटकतीं।"

"जौनत लोगे खोजत रहल।"

यह कहकर मीरा की मौसी घर के भीतर चली गयी। मीरा डोल से पानी लेकर हाथ-पाँव धोने लगी।

उस चाह को उस आत्मीयता के सामने प्रस्तुत करने की हिम्मत उसमें नहीं आयी। उसे लगता कि वह उसका अपना बोझ था। अकेले ढोने का बोझ।......और फिर वह अपने-आपसे अपने प्रश्न के उत्तर का तकाजा कर बैठती—क्या सचमुच ही वह अकेले का बोझ था ?

उसकी अपनी स्फूर्ति जाती रहती। चिड़चिड़ापन आ जाता। पूरे शरीर की उष्णता आँखों में डबडबा आती। भूख प्यास को खा जाती, प्यास भूख को पी जाती और वह चाह गिड़गिड़ाती रहती। गिड़गिड़ाती हुई वह सीली पड़ जाती और वह सीलापन बोझ बन जाता। सन्ध्या कहती, "तू मुझसे इस चाह को मिटाने का तरीका क्यों नहीं सीख लेती ?"

सन्ध्या एकान्त की बात करती। खुमारी की बात करती। आनन्द की बात करती। और मीरा उन बातों को न समझने की प्रक्रिया को बनाये रखती। आँखों में मदहोशी-सी लाकर सन्ध्या बोल जाती, "और फिर चरमसीमा होती है, इसके बाद चहक उठोगी।"

उन क्षणों की मीरा की वह उदासी गहरी होती थी। उस गहरी उदासी के भीतर होती थी वह दर्द-भरी गरम साँसें। साँसें जो अकुला देतीं। साँसें जो विस्फोट के साथ बाहर आ जाने के लिए बगावत कर जातीं। उसके उस संयम पर सन्ध्या हँस पड़ती।

"तुम लजवनी उबालकर पी लिया करो।"

"लजवनी क्यों पियूँ ?"

"संयम आसान हो जायेगा।"

उस दिन खेत में शरीफा के पेड़ के नीचे सन्ध्या ने यों ही देवराज के साथ बिताये एकान्त के उस घण्टे का विस्तार से वर्णन कर दिया था। मीरा सुनती रह गयी थी। उस सुनते रह जाने में एक आनन्द निहित था। आनन्द जो बाद में पीड़ा दे जाता—पीड़ा जो अपने में आनन्द का अनुअंश लिये होती।

"अपनी चोली के एकदम इस तरह छोटी पड़ जाने की वजह जानती हो ?"

मीरा सन्ध्या को देखती रह गयी थी और जब सन्ध्या ने वजह बताने की कोशिश की थी तो मीरा ने अपना हाथ उसके मुँह पर रख दिया था। घर पहुँचकर उसने तख्ते पर से आधे आईने को लेकर आँखों के सामने किया था। आईने को धीरे-धीरे नीचे उतारा था। आईना ठिठका रह गया था जहाँ चोली ठिठक गयी थी।

उसे गन्ना चूसते देख उसकी मौसी कह उठती, "जब देख तब खालि गन्ना चूसत रहती हो।"

"बच्ची हूँ क्या जो दाँत सड़ जायेंगे ?"

"जवान लड़कियन के गन्ना ढेर ना चूसे के चाही।"

"क्यों ?"

"तू त बात-बात पर कॅंव करत हो। जानत नाहीं कि गन्ना में बहुत गरमी

होवेना ?"

मीरा भागी-भागी नदी पहुँच जाती और देर तक डुबकियाँ लगाती रह जाती। शरीर की ठण्डक मन-मस्तिष्क को भी ठण्डक दे ही जाती।

जीनत के यहाँ से वह मदन के बाप की वही ले आयी थी जिसमें किसनसिंह की यादें और गीत इकट्ठे थे। रात को मिट्टी के तेल के चिराग की रोशनी में वह उस हस्तलिखित पुस्तिका को खोलकर बैठ जाती। जीनत के यहाँ सपुरा के बालों से ढील हेरती हुई उसकी नजर उस बही पर पड़ गयी थी। किसनसिंह के गीतों से वह प्रभावित तो थी ही, पर वे मदन के बाप के गीत होते थे इससे वह उनकी ओर और भी आकर्षित थी। बही के उसी आखिरी गीत को गुनगुनाती हुई वह चल रही थी—

जीवन लागे साँझ के सुनसान डगरवा
धुकधुकी अँजोरवा में अंटकल बयरवा।

यह गीत मीरा को बड़ी सरलता से याद आ गया था। दिन में नदी किनारे भी वह इसी गीत को गुनगुनाती रह गयी थी। खेत में जब वह अपनी ही धुन में उसे राग के साथ गाये जा रही थी मदन पीछे आकर खड़ा हो गया था। मीरा के चौंककर चुप हो जाने पर मदन ने आश्चर्य के साथ पूछा था, "यह गीत कहाँ से सीखा तुमने ?"

मीरा अपने-आपमें सिकुड़ी रह गयी थी।

उसकी जबान काठ हो गयी थी।

मदन आगे बढ़ गया था। मीरा अपने-आप पर झुंझलाकर रह गयी थी। मीरा अंगुलियों पर गिनती आ रही थी। वह ग्यारहवाँ अवसर था। ग्यारहवाँ अवसर मदन के सामने गूँगी बन जाने का। ग्यारहवाँ अवसर अपने-आपको भीतर-ही-भीतर कोस जाने का। एक बार फिर पिछले दस अवसरों की तरह उसने तय किया था—इस बार मुझे हिम्मत से काम लेना होगा।

घर पहुँचकर मीरा ने अपनी मौसी को दोनों बकरियों को पानी पिलाते पाया। मीरा को देखकर उसकी मौसी बोली, "मना करल पर भी तू खेत पहुँच के रहले।"

"मौसी चिड़ियों का अंकुरों के नीचे से बीज चुग जाने का यही तो समय होता है।"

"मगर एमन बखत खेत मे अकेले होवल जवान छोकरी खातिर कहीं ले अच्छा होवेना ?"

"खेत में बनैला सुअर थोड़े ही होता है।"

"ना होवत है त हो जाय एक दिन।"

"मौसी, अब तो सरदारों की परछाइयाँ भी नहीं फटकतीं।"

"जीनत तोके खोजत रहल।"

यह कहकर मीरा की मौसी घर के भीतर चली गयी। मीरा डोल में पानी लेकर हाथ-पाँव धोने लगी।

○

वह दूर के किसी गांव से आया था। उसकी दाढ़ी नहीं थी, बाल लम्बे नहीं थे, फिर भी एक ही स्वर में सभी उसे स्वामी कहने लगे थे। उसकी असलियत का पता किसी को नहीं था। याददाश्त खोये हुए किसी व्यक्ति की तरह उसकी भावभंगिमा थी। उसे न अपने गांव का नाम मालूम था न अपना। वह अपनी जो उम्र बताता उसपर भी लोगों को सन्देह होता, फिर भी लोग उस पर विश्वास करते थे, उसपर आस्था रखते थे। उसे बहुत ही निकट से देखने के मदन को कई अवसर मिले थे। उसके चेहरे पर अजीब मासूमियत और आँखों में एक विचित्र चमक थी। उस आभा के सामने आँखें बरबस ही झुक जाती थीं। उसे सुनने के भी मदन को सैकड़ों मौके मिले थे। उसके स्वर में अजीब गहराई थी। ऐसा प्रतीत होता जैसे वह कुएँ के भीतर से निकली कोई आवाज हो या पर्वतों से टकराकर आती अपने ही स्वर की प्रतिध्वनि। उसके स्वर में लड़खड़ाहट अवश्य थी, शब्दों में कम्पन होता पर उसे सुन चट्टानें डगमगा जाती थीं।

वह किसी उजाले से निकलकर एक गहन अँधेरे में आया प्रतीत हो रहा था, जहाँ कोई भविष्य नहीं था। जहाँ अँधेरा-ही-अँधेरा था। बैठका के आँगन में अपने पहले भाषण के दौरान, जो कि उसने केवल सात व्यक्तियों के बीच दिया था, उसने कहा था :

"हमें अपने चारों ओर के घटाटोप अँधेरे को दूर करना है। प्रभु ने हमें एक सुन्दर धरती दी है। इस पर एकाधिकार है जिसे हमें तोड़ना है।"

वह बिना रुके घण्टों तक बोलता रहता। लोग सुनते-सुनते थक जाते, कोई झपकियाँ लेने लग जाता तो कोई अँगड़ाई। वह बार-बार एक ही बात पर अधिक जोर देता और कहता कि उसे अब भी पूरा विश्वास है कि एक-न-एक दिन यह सुन्दर देश श्रम करनेवालों का होकर रहेगा। यहाँ अपने लोगों का राज्य होगा। इस पर कुछ लोग उसे पागल कह जाते। स्वामी भी इन बातों को सुनता और हँस देता। वह एक रहस्यमय हँसी होती जिसका मतलब समझना चाहकर भी कोई नहीं समझ पाता। एक-दो बच्चे उसे अजीब लिबास में देख छेड़ दिया करते थे पर कभी किसी ने उसे बच्चों पर नाराज होते नहीं देखा था। वह जिधर भी जाता, एक-दो अधनंगे बच्चों को अपनी गोद में उठा लेता।

जब कभी कोई उससे उसके अतीत के बारे में कोई प्रश्न करता उस समय अपने होंठों के बीच मुस्कान लाकर वह पूरे भोलेपन के साथ कहता, "मैं जो जी रहा हूँ वही मेरा अतीत और वर्तमान है।"

"और आपका भविष्य ?"

"वह तुम सभी हो।"

बहुत कम लोग इस उत्तर का मतलब समझ पाये थे पर उस पर विश्वास प्रायः सभी को हो गया था। और सभी ने इस सच्चाई को मान लिया था कि हमें अगर किसी वस्तु की आवश्यकता है तो वह एक भविष्य है जिसके लिए पूरे संकल्प और लगन

के साथ हमें बहुत-कुछ करना था।

वह कभी किसी के खेत में पहुँचकर कुछ जोताई करता तो कभी अन्य कार्यों में भी हाथ बँटा लेता। किसी रोगी को धीरज बँधाता तो किसी को एक मुस्कान भेंट कर जाता।

गाँव में उसकी उपस्थिति से सभी ने यही एहसास किया था कि हमारे गाँव को नवचेतना मिली थी।

बारी-बारी से उसने बहुतों को भूख और दु:ख का परिचय दिया जिससे बस्ती में सच्चे सुख का मूल्यांकन हुआ। उसकी उस शक्ति पर सभी को आश्चर्य होता और चाहकर भी कोई यह नहीं जान पाया कि उसकी उस अद्भुत शक्ति का स्रोत क्या था।

उसके बाल घने और घुंघराले थे। माथे पर वह मिट्टी का टीका लगाता था और उसे चन्दन से भी निर्मल और शीतल बताता। इस बात को लेकर मन्दिर का पुजारी उसकी निन्दा करने लगा था। वह सभी कुछ सुनता और हँस देता। अपने प्रति बुराइयों पर भी वह हँसता और आभारी लोगों के धन्यवाद पर भी। हँसकर कहता, "धन्यवाद मुझे क्यों देते हो, अपने भीतर की जागी हुई भावना को क्यों नहीं देते? सोयी हुई भावना कुछ नहीं होती। वह भावना जो कर्तव्य से बड़ी होती है वह जागी हुई भावना होती है। धन्यवाद तो मुझे तुम लोगों को देना है। जितना कुछ तुम लोग कर जाते हो उतना मैं कहाँ कर पाता हूँ। मैं तो जो कुछ भी करता हूँ उसके बदले में तुम लोग मेरा पेट भर देते हो। तन भी ढाँप लेता हूँ तुम्हीं लोगों की कृपा से। जबकि तुम लोग अपने और मानवता दोनों के लिए काम करते हो।"

मदन उससे तर्क नहीं कर पाता। इसके लिए वह मदन और उसके साथियों को कभी गूँगा और अन्धविश्वासी भी कह जाता। वह सदा यही चाहता था कि लोग उससे तर्क करें, उसकी बातों को अपनी हथेली पर लेकर उन्हें अजमायें, तौलें और परख के बाद उनमें से वास्तविक सच्चाई को अपनायें, बाकी को तज दें। बस्तीवाले ऐसा नहीं कर पाते दो कारणों से। एक तो वे उसकी और अपनी मर्यादा की रक्षा करना चाहते थे, दूसरी बात यह थी कि उसकी बातों में अन्तर निकालना लोगों के लिए बहुत दुश्वार था।

एक दिन मदन स्वामीजी के साथ किसनवा के खेत की सफाई कर रहा था। किसनवा महीने-भर से बीमार था। उसका खेत जंगल पड़ा था। उसका परिवार रोटी का मुहताज था। वहाँ पर चावल-दाल पहुँचाते समय लोगों को रोककर स्वामी ने कहा था, "जिन्हें हिम्मत की आवश्यकता है उन्हें तुम लोग भीख क्यों देते हो? उसका खेत जंगल पड़ा है। सभी मिलकर उसे साफ कर सकते हैं, फिर तो उसकी पत्नी और दो बच्चे अपनी रोटी खुद रोप सकते हैं।"

कुल दस व्यक्ति थे। आधे खेत की सफाई हो गयी थी। स्वामीजी ने मदन के माथे से पसीना पोंछते हुए कहा था, "देखते हो इस पानी को, यह गंगाजल से भी

निर्मम है।"

मदन के माथे से पसीना पोंछते समय उसके हाथ की मिट्टी मदन के माथे पर टीका बना गयी थी और मदन ने तुरन्त ही महसूस किया था कि सचमुच ही मिट्टी का यह टीका सभी टीकों से अधिक शीतल था। उस समय मदन के शरीर की उष्णता मिट गयी थी। समूचे शरीर में नयी स्फूर्ति आ गयी थी।

उसी दिन पड़ोस के किसी गाँव से कोई बीस-पच्चीस नौजवानों ने आकर स्वामीजी को घेर लिया था।

"हम पीड़ित हैं।"

"इन सुन्दर हाथ-पैरों के साथ?" स्वामी ने हँसकर पूछा था।

"यहाँ भविष्य नहीं।"

"काम की कमी नहीं। सामने के तमाम खेतों को देखो, गली-कूचों को देखो। चारों ओर काम-ही-काम है। भविष्य काम से बनता है।"

"अपने योग्य कोई काम......"

"अपने योग्य काम क्यों चाहते हो? तुम अपने को काम के योग्य क्यों नहीं बनाते?"

तर्क करने की शक्ति भी उस आकर्षण-शक्ति के सामने जाती रही और देखते-ही-देखते वे सभी उसके पीछे हो लिये थे।

परिश्रम इतना आनन्ददायक और इतना सुन्दर कभी नहीं प्रतीत हुआ था। वह सभी के पास से गुजरता, सभी की पीठ पर स्नेह की थपथपाहट देते हुए। लोटे के पानी को वह एक से दूसरे तक पहुँचाता और जब कोई थक जाता तो उसे बैठने को कहकर वह उसकी जगह ले लेता। सभी थक जाते, वह नहीं थकता। उसके चेहरे पर हर वक्त वही चमक होती। सूरज की किरणों से उसकी आँखों की आभा और भी स्निग्ध हो जाती।

उसने मदन से कहा, "अपने-आपमें संगठन लाओ, अपने-आपको खड़ा करो। जो कुछ करना है अपने-आप करो। अपनी शक्ति को दूसरे के हाथों में देकर तुम अपने को कमजोर बना लेते हो। तुम मेरे भविष्य हो और तुम्हारा परिश्रम, तुम्हारा संगठन और भाईचारा तुम्हारा अपना भविष्य है। किसी भी कीमत पर अपने भविष्य का सौदा मत करो। उस पर विश्वास रखो।"

"लेकिन......जिस भविष्य के बारे में आप बातें कर रहे हैं उसे तो इन गोरे मालिकों ने अपनी मुट्ठी में बन्द कर लिया है।"

"नहीं! अपनी बेबसी का कारण तुम खुद हो। तुम्हारा भविष्य आज भी तुम्हारे हाथों में है, आज भी तुम्हारे चमकाने से वह चमक सकता है। जाओ, तुममें से कोई जाओ और पड़ोस के दूसरे गाँव में भी यह कह आओ कि वे आपसी सहयोग और प्रेम की शृंखला की आखिरी कड़ी को पास के दूसरे गाँव से जोड़ दें। दूसरे गाँव से कहो कि वह अपने और दूसरे गाँव के बीच की दीवार को तोड़ दे। दीवार दीवार

"स्वामीजी, हम आपके अपमान का बदला लेकर रहेंगे।"

"नादानी होगी।"

"हमें रोकने की कोशिश मत कीजिएगा।"

"मेरे अपमान का बदला तुम क्यों लेना चाहते थे ?"

"इसलिए कि हम आपको प्यार करते हैं और हमें यह गवारा नहीं कि कोई......"

"बस, अब जरा मुझे भी सुन लो। तुममें इसलिए प्रतिशोध की भावना जागी है क्योंकि तुम मुझे बेहद प्यार करते हो। यह बहुत अधिक प्यार भी कभी-कभार मानव को बेबस कर देता है। ऐसा प्यार केवल उससे किया जाता है जिससे कभी भी किसी भी हालत में बिछुड़ने की सम्भावना नहीं होती। यह प्यार उसीसे किया होता। मुझे तो कल तुमसे बिछुड़ना होगा, उस समय तुम्हारी क्या हालत होगी ! तुम हताश होकर अपने संकल्प को भूल जाओगे ?"

सभी उसे एकटक देखने लग गये थे। सभी अपने सामने के उस व्यक्ति को समझने की कोशिश में थे।

दूसरे ही दिन भोजन के बाद उसी ऊँचे पत्थर पर खड़े होकर उसने उसी स्वाभाविकता के साथ कहा था :

"कल मैं तुम्हें छोड़कर आगे जा रहा हूँ। यह आगे जाना सदा मेरे जीवन का उद्देश्य रहा है। मैं कल जा रहा हूँ इस विश्वास के साथ कि तुम्हारा भविष्य उज्ज्वल है। तुम्हें अपने निजी पैरों पर खड़े रहना है। धूप, वर्षा और तूफान में भी। सूरज उगता रहेगा और डूबता रहेगा पर एक दिन तुम सभी देखोगे एक ऐसा सूरज उदित होते जिसकी किरणें तुम्हारी सराहना करेंगी और तुम्हें छलनेवाले, तुम्हें दबानेवाले तुम्हारे सामने घुटने टेककर तुमसे क्षमायाचना करेंगे !

"कल मैं जा रहा हूँ। याद रहे, तुम उदास नहीं होगे। मेरे चले जाने के बाद तुम्हारा यह काम रुकने न पाये। तुममें शिथिलता न आने पाये। मेरी उपस्थिति का अनुभव तुम एक-दूसरे में करना।"

मदन ने उसे रोकने की अनेक कोशिशें कीं। लोग गिड़गिड़ाये और आँसू बहाने लगे पर याचनाओं का उसपर कोई असर नहीं हुआ।

दूसरे दिन सभी ने सूरज को ढलते देखा और उसके साथ ही स्वामीजी को क्षितिज की ओर बढ़ते भी देखते रहे। सभी को बिलखता छोड़ वह चला गया।

तीन दिन बाद—

बस्ती के लोगों को नदी के पास स्वामीजी की लाश मिली। कोठी के कुत्तों ने उसके शरीर के कपड़े को बत्ती-बत्ती कर दिया था।

उसकी नंगी छाती पर जहाँ गोरे मालिक की गोली लगी थी, उसकी बगल में गर्म सलाख से लिखा हुआ कैद का नम्बर था।

घर में कभी अकेली होने पर मीरा दरवाजे की सांकल को खींच लेती और अपने को भीतर बन्द करके ही वह उफनते ख्यालों से मुक्त होने का विचित्र प्रयास करती। अपनी माँ से पायी हुई हँसुली को गले से उतारकर खूँटी पर टाँग देती। चाहती कि अपने जेहन से अतीत, वर्तमान और भविष्य इन सभी के ख्यालों को फेंककर उसे कोरा कर ले। पर····· वह अतीत समय की लेई के साथ चिपका रह जाता। वर्तमान भीतर-ही-भीतर विद्रोह करता रह जाता और उसका भविष्य कल्पनाएँ बुनता रहता। मीरा मकड़ी के जाल से तार को सुलझाने की कोशिश में उसी में फँसती-उलझती चली जाती। बहुत कम अवसरों पर उसकी मौसी ने उसे उदास पाया था, पर जब भी उसे उदास पाया था इसी एक वाक्य से उसे कोस गयी थी :

"तू ऐसने घूटते रहे जयबे बिन ब्याह के।"

कोई दूसरा सुननेवाला यह समझ ही नहीं सकता था कि वह सन्दर्भ ब्याह की बात से कैसे जुड़ सकता था, पर मीरा कृत्रिम मुस्कान के साथ अपनी मौसी के आगे से हट जाती थी। इस पर भी उसकी मौसी चुप नहीं रहती :

"दिन-ब-दिन चुड़ैल बनत जात हवे।"

अपनी मौसी के कहीं जाते ही मीरा घर का किवाड़ बन्द कर लेती और अपने को वर्तमान से काटकर उस एकान्त के शान्त क्षणों में जीना चाहती। पर वर्तमान के बाद अतीत होता, अतीत के बाद भविष्य और वह पिसती रह जाती एक को नकार कर दूसरी दो चक्कियों के बीच। उसका आभास हड्डियों तक पहुँचने पर ही उसे उस पीड़न का पता चलता। पीड़ा और पीड़ा में अन्तर था। पीड़ा भूख की—नंगेपन की—अभाव की और इन सभी पीड़ाओं के अलावा बस्ती के लोगों के एहसास का बोझ··· और उस बोझ की पीड़ा। पर उन सभी पीड़ाओं से अलग एक दूसरी तरह की पीड़ा थी। वह पीड़ा जो आँसू नहीं देती, चीख नहीं देती। आँसुओं और चीखों को जब्त करके जो घुटन का संचय करती जाती। और उस ढेर के भीतर पलता हुआ ज्वालामुखी।

बिरनी के छाते पर कंकड़ फेंककर उन बिरनियों को बिच्याते देख कभी वह खुश होती थी। आज वह भी उन्हीं की तरह बिच्या जाती पर उनकी तरह किसी को बिचने-डँसने के लिए वह पीछे नहीं पड़ती थी। उस पर कई तरह से कंकड़ आ पड़ते थे।

"तुम बहुत ही सुन्दर हो मीरा!"

सहेलियों का यह वाक्य भी कंकड़ की तरह उसे बिच्या जाता। सभी कुछ उसकी इस सुन्दरता के कारण ही तो हुआ था।

"सूरत का घमण्ड न होता तो अब तक ब्याह कर लिया होता।"

रम्भा की माँ ने चाहा था कि वह उसकी बहू बने। सुमंगल ने भी यही चाहा

था। देवलाल की चाची ने तो घर छोड़ दिया था। मीरा को अगर दुख हुआ था तो केवल इस बात का कि उस दिन से रम्भा ने फिर उससे बात ही नहीं की। उसने अपने भाई के पागल हो जाने का कारण मीरा को ही समझा। यह झूठी अफवाह भी उसीने फैला दी थी कि ददिवल ने मीरा के लिए ही फांसी लगा ली थी। सहेली के इस तरह दुश्मन बन जाने की तो मीरा ने कभी कल्पना भी नहीं की थी। ददिवल की आत्महत्या का कारण सभी लोग नहीं जानते थे, फिर भी जिन्हें मालूम था वे तो अच्छी तरह जानते थे कि मालगासी क्रिओल सरदार ने उसके साथ बलात्कार किया था। सन्ध्या नहीं होती तो मीरा कभी यह समझ ही नहीं पाती कि मर्द के साथ मर्द का बलात्कार क्या हो सकता है। ददिवल ने शर्म से देवदारू के जंगल में फाँसी लगा ली थी। वह केवल जीनत थी जो जानती थी कि उसी घटना ने मीरा को अब तक ब्याह से दूर रखा था। जो जीनत नहीं जानती थी वह मीरा भी अपने बारे में नहीं जानती थी। परन्तु वह कोई धुंधली-सी याद थी······बहुत ही धूमिल। वह याद जितना धुंधलका लिये हुए थी उतनी ही अस्पष्ट भी थी। वह पांच-छः की रही होगी। घटना शायद दस-ग्यारह साल से अधिक की नहीं थी पर अपनी उम्र से अधिक पुरानी और धूमिल थी। लेकिन उस एकान्त में जिसने उस ठेकेदार का रास्ता रोक लिया था उसका चेहरा मीरा को बराबर याद था। वह मदन था। उसके हाथ में गड़ांसा था। वह घटना उस दिन एकाएक उसके सामने झिलमिला गयी थी जब अभी हाल ही में बस्ती की छोटी-सी बच्ची गायब हो गयी थी। तीन दिन की अथक खोज के बाद लोगों ने यही अनुमान लगा लिया कि पड़ोस की नयी कोठी के नये कारखाने के लिए बच्ची की बलि दी जा चुकी थी।

कालीमाई की बहरिया पूजा से लौटने के बाद एक रात मीरा ने सपना देखा था। बलि का बकरा रस्सी तोड़कर उसके पास भाग आया था। उसी समय मदन का भूला हुआ-सा चेहरा उसके सामने उभर आया था पर उसकी अपनी कल्पना की आंखें कैद की दीवारों को भेद नहीं पायी थीं।

पत्ता नहीं डोल रहा था। रात गरमी से लसीली थी। ऊपर आकाश में भी स्थिरता थी। बादल के टुकड़े जहां भी थे चिपके हुए थे। उस भारी उमस में मीरा ओरियानी के नीचे बैठी रही। उसकी मौसी ने दूसरी बार कहा, "रात के ओरियानी में बैठे के ना अच्छा ह और फिर शीत गिरत बा।"

फिर तो वह भी खीज उठी, "तू एतना गब्बर काहे हवे ?"

फरीद के कुत्ते को सामने पाकर मीरा ने अपनी मौसी को आवाज दी, "मौसी ?"

उसकी मौसी की आंख लगनी शुरू ही हुई थी। खीजकर उसने पूछा, "कोंचि बोलत हवे ?"

"मैं जीनत खाला के यहां से हो आऊं ?"

"हय कोनो बखत ह ?"

"जल्दी ही आ जाऊँगी।"

और फरीद के कुत्ते को पुचकारती हुई मीरा जीनत के घर की ओर बढ़ गयी, यह सोचती हुई कि शायद उधर घूम आने पर मस्तिष्क का तनाव कुछ कम हो जाये और उसे नींद आ सके।

वहाँ मदन पहले ही से मौजूद था। विवेक की चर्चा हो रही थी। फरीद कह रहा था, "मैं सोचता हूँ, डर की वजह से ही उसे बुखार है।"

"नहीं।" मदन धीरे से बोला।

"तो फिर?"

"पता नहीं।"

मदन को अपनी ओर ताकते पाकर जीनत ने कहा, "मैं भी सोचती हूँ कि डर ही के कारण उसे बुखार चढ़ आया है।"

"विवेक उन लोगों में नहीं है चाची, जो भूत-प्रेत की बातों से डर जाये।"

"मगर यह तो हो सकता है कि तरह-तरह के मुँह से तरह-तरह की बातें सुनकर उनका असर उसपर हो चला हो।"

"लेकिन चाची, बार-बार वह अपने हाथों को छाती पर पहुँचाकर दर्द से कराह क्यों उठता है?"

"तो तुम भी शक्की निकले! जादू-टोने का असर कहोगे क्या?"

इसके बाद काफी देर तक किसी ने कुछ नहीं कहा।

मीरा ने धीमे स्वर में सपुरा से पूछा, "विवेक भैया बीमार पड़ गया है क्या?"

सपुरा ने सिर सिर हिलाकर हामी भर दी।

मीरा अज्ञात आशंका से सिहर उठी। जीनत ने मद्धिम पड़ गये चिराग की बत्ती को उसकाते हुए कहा, "तुम लोग देखना, फकीर होते-होते वह एकदम ठीक हो जायेगा।"

मीरा मदन की ओर देख रही थी पर मदन को अपनी ओर देखते ही उसने आँखें नीची कर लीं। वह भी जीनत के स्वर में स्वर मिलाकर कहना चाहती थी कि जादू-टोना कोई चीज नहीं होती, पर बोल न सकी। वह सोचती, जब आदमी आदमी को इस आसानी से जादू-टोना करके मार सकता है तो फिर भगवान किस काम के लिए रह जाता है। उस दिन सन्ध्या से जादू-टोने पर बहस करके वह उस काली ताकत को नकार तो गयी थी लेकिन उसी के साथ उसे बस्ती की वह घटना याद आ गयी थी—अगर सचमुच जादू-टोना कुछ नहीं हुआ करता तो फिर वह बात कैसे हो सकती थी? मदन की गिरफ्तारी के दो-ही-तीन महीने पहले की तो बात थी। नाल्की के जंगल के पास हवा-पानी से सूख-सड़कर कोई पेड़ उखड़ गया था। शायद इमली का बहुत पुराना पेड़ था वह। वहाँ इर्दगिर्द की माटी लाल होने के कारण वहाँ से घर लीपने के लिए बस्ती की सभी औरतें माटी कोड़ लाती थीं। एक दिन इन्हीं [illegible]

हुई खाली हाथ वस्ती को आयी थी। उसके चेहरे की घवराहट देख कुएँ पर के सभी लोग हैरान हो गये थे।

एक ही लगे कई प्रश्न।

"क्या हुआ कुन्ती ? इस तरह तुम्हारे चेहरे के रंग क्यों उड़े हुए हैं ?"

हाँफती हुई वह बोली थी, "माटीकोड़वा के पास इमली के पेड़ की जड़ से आवाजें आ रही हैं।"

सभी लोग चौंक पड़े थे। मीरा हँसती हुई बोली थी, "अपने बाप के लिए गाँजे की पत्तियाँ खोजती हुई तू खुद नशे में तो नहीं आ गयी !"

व्यंग्य का ख्याल किये विना कुन्ती आगे बोली थी, "पैसों की झनकार के साथ कोई बोल रहा था—इस जड़ के नीचे छिपाया हुआ खज़ाना है। मैं इसका रखवार हूँ। तुम खुद कोड़ोगी तो सभी खज़ाना तुम्हारा हो जायेगा और अगर किसी दूसरे ने हाथ लगाया तो सिर्फ कोयले मिलेंगे।"

"नशे में न होते हुए भी शायद तुम नींद में होगी।"

"पैसों के खनकने की आवाज़ अब भी आ रही होगी—तुम लोग चलकर देखो तो सही।"

पूरी वस्ती माटीकोड़वा पहुँच गयी थी। किसी ने कोई आवाज़ नहीं सुनी थी। कुन्ती के जिद करने पर जड़ के पास ज़मीन कोड़ी गयी थी। हाथ-भर की गहराई के बाद सभी लोग मुँह बाये रह गये थे। कोयला-ही-कोयला। वे कोयले भी अजीब थे। जली हुई मिट्टी की तरह। लोगों ने हद तक कोड़ा था ताकि उस रहस्य को समझने के लिए एक भी सिक्का मिल जाता। कुछ भी हाथ नहीं आया था।

इसके बाद कई दिनों तक वस्ती में उस घटना की चर्चा होती रह गयी थी। सुगुन भगत ने कहा था कि इस टापू में लोगों के बसने से पहले जलदस्युओं की नावें इधर से आती-जाती रहती थीं। वह खज़ाना उन्हीं जलदस्युओं का होगा। वह आवाज़ उस हब्शी गुलाम की हो सकती है जिसकी खज़ाने की रखवारी के लिए वलि दी गयी होगी।

बस, उसी घटना के बाद से मीरा भूत-प्रेत की बातों को चाहे ऊपर से नकार क्यों न जाती थी, भीतर से वह उसके अस्तित्व की द्विविधा लिये रहती थी। अपने ब्याह से पहले कुन्ती पगली की तरह कूदती-फाँदती और चीखती-चिल्लाती बेहोश हो जाया करती थी। अगियारी होती, ओझाई होती तब कहीं जाकर वह शान्त होती थी। पुजारी तक ने इस बात को मान लिया था कि उसी हब्शी गुलाम की भटकती रूह उसे तड़पाती है। पर ब्याह के बाद जब कुन्ती एकदम स्वस्थ हो गयी थी, तब मीरा ने एक बार फिर अपने अन्दर से भूत-प्रेत के ख्याल को झटक दिया था। आंद्रे आ की माँ की उस डरावनी सूरत से भी वह कभी नहीं डरी थी······लेकिन उस सुईवाले पुतले ने उसे विचलित कर ही दिया। वह अब भी आशंकित थी।

जीनत ने कहा, "मदन, तुम मीरा को घर तक छोड़ते जाना।"

"नहीं खाला, मैं चली आऊँगी।"

"मदन को उधर ही से होकर तो आना है। वक्त-बेवक्त न जाने कब बुरी हवा घेर ले।"

"खाला, मैं इन बातों पर विश्वास नहीं करती।" कहने को तो वह कह गयी।

"कई लोग उस वक्त तक नहीं करते हैं जब तक कि खुद उन पर ही नहीं आ बीतता।"

मदन अपनी जगह से उठते हुए बोला, "चलो मीरा!"

मीरा खड़ी हो गयी।

बाहर हल्की बारिश थी। दूर से कुत्तों के रोने की आवाज आती। मीरा के घर के पास पहुँचकर मदन ने कहा, "मुझे लगता है, तुम भूत-प्रेतों से अधिक मुझसे डरती हो।"

मीरा बिना कुछ कहे घर के भीतर चली गयी।

बाईस

कल की बैठक में हुई बातों पर मदन देर तक गौर करता रहा। वह समझ नहीं पा रहा था कि कहाँ तक लोगों का विचार सही था। आज फिर जुटना था निर्णय लेने के लिए। क्या होगा वह निर्णय? आज बैठका पहुँचने को मदन का जी नहीं कर रहा था। वह जानता था कि उसके न पहुँचने पर लोग सीधे धनलाल के घर पहुँच जायेंगे। अतः बैठका में पहुँचना ही उसने बेहतर समझा। बैठके का प्रधान अपने ऊँचे स्वर में कह उठेगा, "कल से कोई भी आदमी दूसरी बस्ती में काम करने नहीं जायेगा।"

इस निर्णय को सुनने से पहले ही मदन द्विविधा में पड़ा हुआ था। वह अपनी सहमति दे या नहीं। वहाँ का काम कठिन नहीं था। पैसा अच्छा था। लेकिन वह दूसरी बात थी जिसके लिए बैठक में दो मत की नौबत आ गयी थी। सोन्द्रों और तालेजान्दी के घर का पानी पीना वर्जित मान लिया गया था। मदन केवल सोन्द्रों और तालेजान्दी के बारे में नहीं सोच रहा था, वह उन सैकड़ों लोगों के बारे में सोच रहा था जो उन्हीं की तरह ईसाई बनते चले जा रहे थे। उस पादरी ने बड़े गर्व के साथ मदन को यह बताया था कि तीन महीने के भीतर वह तीन सौ भारतीयों को सही रास्ते पर लाने में सफल हुआ था। वह सही रास्ता सलीब का रास्ता था—परमात्मा के पुत्र का रास्ता था। उसने मदन को यह भी बताया था कि शिवेन सोमों बनकर मजदूर से सरदार बन गया था। तालेजान्दी अपने दोनों लड़कों के गले में सलीब की माला पहनाकर कोठी के मालिक का चहेता बन चुका था। वह फेहरिश्त बहुत लम्बी थी।

मदन ने बैठका के प्रधान से पूछा था, "सोन्द्रों के घर का पानी न पीने से

समस्या का हल कैसे हो जाता है ?" इसका कोई उत्तर उसे नहीं मिला था। उस प्रलोभन से अपने लोगों को बचाने का उपाय चाहिए था उसे। सोन्द्रों बैंठका में पहुँचने से इन्कार कर गया था। उसने छड़ीबरदार को यह कहकर लौटा दिया था कि एक बीघा जमीन वहाँ की एक बित्ता जमीन से अधिक महत्त्व की थी।

बैंठका में मदन ने यह भी पूछा था कि हम रोटी के लिए अपने पसीने को तो बेचते रहे, क्या अब अपनी आस्था और आत्मा को भी बेच दें ? वह जानता था कि इसके उत्तर में आज यही कहा जायेगा कि वहाँ का काम ही बन्द हो जाये। इस पर मदन को अपने-आपसे पूछना रह जायेगा—क्या ऐसा करने से यह सौदा रुक जायेगा ? खरीदारी नहीं होगी ? नाम नहीं बदलेंगे ? धर्म नहीं बदलेगा ?

दाऊद मियाँ ने कहा था, "ऐसा इसलिए होता है कि हमारी अपनी स्थिति अच्छी नहीं। स्थिति अच्छी हो जाने पर अपने मजहब से गद्दारी करके अपने को बेचने का सवाल ही पैदा नहीं होगा और न ही सौदा करनेवाले को सौदेबाजी के लिए हिम्मत होगी। तो फिर क्या इसको रोकने का एक ही उपाय था—स्थिति को सुधारना ? मदन यह मानने को तैयार नहीं था। प्रलोभन के सामने स्थिति का क्या ? एक हाथ में लड्डू लेकर आदमी दूसरी मुट्ठी को बाँधे थोड़े ही रख सकता है ! दूसरे बड़े लड्डू को देखते ही उसका दूसरा हाथ आगे को फैल जायेगा।

बैंठका पहुँचने पर मदन को पता चला कि रात में सोन्द्रों ने बस्ती छोड़ दी थी। नालेताम्बी भी अपनी पत्नी के साथ जाने की तैयारी में था। सुगुन भगत से उसने कहा था कि वह चोर की तरह नहीं भागेगा। उसकी पत्नी गर्भवती थी। वह यह नहीं चाहता था कि उसका अपना बच्चा भी इसी हालत में जनम लेकर जिये और इसी हालत में मरे। उस बस्ती में उसे अच्छा घर मिला था। अच्छी नौकरी मिली थी। अच्छा भविष्य मिला था।

भविष्य क्या होता है ? मदन ने अपने-आपसे पूछा—वह तो अजनबी होता है। एक अजनबी के लिए कोई इतने पुराने और आत्मीय सम्बन्ध को झटके के साथ तोड़ कैसे सकता है ? वह दौड़ गया नालेताम्बी के घर।

"यह तुम क्या कर रहे हो नाले ?"

"मेरा बाप यहाँ मद्रास से आया था—जानते हो क्यों ? अपने दो बेटों के वास्ते बेहतर दिनों के लिए। उसकी मृत्यु इन गन्ने के खेतों में खून भकोरते-भकोरते हो गयी थी। मेरे भाई ने एक सरदार की नरेटी दबोचकर खुद फाँसी लगा ली थी।"

"यह कहानी तुम्हारी अकेले की नहीं।"

"यह कहानी हम सभी की हो सकती है और उन लोगों की भी जो आज बेहतर जीवन बिताने लगे हैं।"

"अपनी संस्कृति और धर्म को बेचकर ?"

"हमारे लोग तो बिककर ही आये थे।"

"वह शरीर का सौदा था नाले !"

नालेताम्बी की आँखों में आँसू थे। उसकी पत्नी सामने आ गयी। उसके गालों पर भी आँसू थे, "मदन भैयवा, तू इनके मना ले।"

नालेताम्बी की बाँह पकड़कर मदन बोला, "तुमसे एक बात पूछूं नाले? तुमने अपने विश्वास को त्याग दिया। ईसाई धर्म तुमने स्वीकार लिया। ठीक है तुम्हारी अपनी स्वतन्त्रता थी, अपनी खुशी थी, लेकिन अपने बच्चे की अनुमति के बिना तुम उसके जन्म-अधिकार को कैसे बेच सकते हो?"

"उसकी अपनी भलाई के लिए।"

"क्या प्रमाण है तुम्हारे पास कि उसकी वह भलाई उसी में है जो तुम कर रहे हो?"

"तो फिर क्या इसमें है जिसे हम-तुम जीते आये हैं?"

"इसमें कम-से-कम अपने आपको धोखा देने की बात तो नहीं है। मैं जानता हूँ तुमने अभी अपना धर्म नहीं छोड़ा है। तुम्हारे माथे पर अभी भी लाल टीका है। उधर जाने से पहले अपने लोगों का तो ख्याल रखो।"

"आदमी को एक अच्छा जीवन मिल जाये जीने को तो इससे अच्छा धर्म और क्या हो सकता है?"

"जिस जीवन को जीना अभी तुमने शुरू भी नहीं किया है उसे अच्छा कैसे मान बैठे?"

"दूसरों को जीते तो देख आया हूँ।"

"दूसरों का सत्य तुम्हारा सत्य कैसे हो सकता है? दूर के ढोल सुहाने होते हैं भाई!"

"मुझे अपने मन की करने दो मदन!"

कुछ देर चुप रहकर मदन ने धीरे से कहा, "तो फिर ठीक है। अपने मन की करके देख लो।"

मदन जाने को हुआ। नालेताम्बी की पत्नी आँखों में आँसू लिये सामने आ खड़ी हुई। मदन आगे बढ़ गया। वह झपटकर उसके आगे जा खड़ी हुई। नालेताम्बी चिल्ला पड़ा, "तागाची!"

सारी दयनीयता के साथ तागाची मदन के आगे खड़ी रही। मदन से कुछ कहा नहीं गया। नालेताम्बी आगे आया और तांगाची का हाथ पकड़कर उसे घर को घसीट ले गया। तांगाची के पाँव की झांझन खुलकर जमीन पर छूट गयी। मदन ने आगे बढ़कर उसे उठा लिया। धीरे-धीरे चलकर वह नालेताम्बी की झोपड़ी की चौखट तक पहुँचा। धीरे से झांझन को वहीं रखकर लौट आया।

रास्ते की बगल की बन आयी पगडण्डी से होते हुए मदन विस्तृत फैले पुराने बरगद के पेड़ के नीचे आ गया जहाँ से नीचे नदीकिनारे केले के पेड़ों से डोलते हुए पत्ते उसे बहुत ही अच्छे लगते थे। इस बरगद के नीचे जब भी वह आराम के लिए बैठा था उसे नींद आ गयी थी। बस्ती के लोग इस जगह की ओर नहीं आते थे।

नालेताम्वी के भाई ने यहीं पर फाँसी लगायी थी। लोगों का कहना था कि इस ठौर पर नालेताम्वी के भाई की आत्मा के भटकते रहने से पहले परियों की सभा लगा करती थी।

गोल पत्थर पर वैठकर मदन केले के डोलते पत्तों को देखता रहा। उसके अपने जेहन के भीतर के ख्याल भी उसी तरह डोलने लग जाते। यहीं पर वैठे-वैठे मदन को पहली वार यह ख्याल आया था :

> इस देश में कोई भी गोरा ईख काटने का काम क्यों नहीं करता ? क्या इसके लिए हम ही पैदा हुए हैं ? एक भी गोरे आदमी का हाथ कभी तो खेतों की माटी से मैला हो पाता। अगर ऐसा नहीं होता तो क्यों ? यह निर्णय भगवान के यहाँ से सीधे आया है या...... रंग और पैसे के एकसाथ मिल जाने की यह साजिश तो नहीं ? लेकिन पैसा लेकर थोड़े ही कोई आया था यहाँ ! तो फिर रंग ही की थी वह हस्ती ?

इसके वाद दूसरे ही दिन मदन को मथुरा के गाँव के शिवालय से गिरफ्तार कर लिया गया था। आज मुद्दत वाद वह इस ठौर पर पहुँचा था। सभी कुछ आज भी वैसा ही था। तराई के उस पार वह खेत वैसा ही था। वस, नालेताम्वी रहा होगा जिसने अपनी कहानी इस तरह सुनायी थी :

"जिस गोरे के हाथ मैं विका था वह लँगड़ा था। जितना मोटा था उतना ही जालिम था। मैं मजदूरी के सातवें दिन काम पर था। एक दूसरे मजदूर का पक्ष लेने के कारण मुझे उसे छोटे-से काले काज़-मोर में वन्द कर दिया गया था। उसका नाम काज़-मोर इसलिए था कि उसमें पाँच आदमियों की मृत्यु हो चुकी थी। मेरी भी हो जाती पर मैं वड़ा ही कठोर जीव ठहरा।"

नालेताम्वी की वह कहानी सच्ची होकर भी इस समय मदन को झूठी कहानी लगी। उस यन्त्रणा को सहकर भी नहीं झुकनेवाला आदमी आखिर अचानक आज अपने को वेचने के लिए तैयार कैसे हो गया ?

मदन को लगा कि यह उसी सच्चाई की मृत्यु थी जिसे वह नालेताम्वी की झोपड़ी में छोड़ आया था।

उससे कठोर सजा और क्या हो सकती थी ? मदन तो सुनकर दहल गया था। नालेताम्वी को उस मौत के घर में हाथ-पाँव वाँधकर वन्द कर दिया गया था। सजा अगर इतनी ही होती तो आदमी उसे उस वक्त तक सह लेता जव तक मरने की विवशता न आ जाती और वह अवधि महीने तक की भी हो सकती थी। लेकिन वह सजा उतनी ही नहीं थी। उस वन्द घर में वन्दी के सामने एक अँगीठी रख दी जाती थी। उसके धधकते कोयले के अंगारों पर सूखी हुई लाल मिर्च छोड़ दी जाती थी। घण्टा वीतते-न-वीतते रस्सी में जकड़ा हुआ आदमी छींकते-छींकते और खाँसते-खाँसते आधे दम का हो जाता था और कई अवसरों पर दूसरा घण्टा पूरा होते-होते वह ठण्डा

वह आता था।

अँगीठी की राख ठण्डी हो जाने पर ही काली कोठरी खोली गयी थी और नानेनाम्बी की साँसें चलती हुई पायी गयी थीं।

यही जीव हार मान गया था ?

सबसे दारुण दण्ड को झेल लेनेवाले ने अपने को प्रलोभन के हवाले कर दिया ?

केले के पत्तों को डोलते हुए छोड़कर मदन बस्ती की ओर लौट पड़ा। उसे अपने खेत की चिन्ता नहीं थी। खेत को पार करता हुआ वह घर आ गया। उसे हमेशा से अधिक गरमी महसूस हो रही थी। उसके शरीर के कपड़े पसीने से भीग गये थे। कुरता खोलकर उसे खूँटी पर टाँग दिया। धोती को मरोड़कर जाँघिया बना लिया और नीम के पेड़ के नीचे बैठ गया। उसे लगा कि हवा कहीं पहाड़ की ओट में टिकी हुई थी।

उतनी ही उमस उसके अपने भीतर भी महसूस हुई।

वह चिपचिपाहट उसके मस्तिष्क के उन सारे ख्यालों में भी थी।

नीम के नीचे से उठकर वह नदी की ओर बढ़ गया। पिछली शाम उसने नदीकिनारे मीरा को भीगे कपड़ों में नदी से बाहर आते पा लिया था। अपने शरीर से चिपके झिलमिल कपड़ों में संकुचित दोनों हाथों को छाती पर बाँधे मीरा रास्ता काटकर भाग जाना चाहती थी। मदन ने दोनों हाथों को पूरा फैलाकर रास्ता रोक लिया था। अपने में सिमटी मीरा खड़ी-की-खड़ी रह गयी थी। मदन अपने उस वाक्य को खुद नहीं सुन पाया था पर मीरा सुनकर सिहर गयी थी।

"इतनी सुन्दर तो तुम पहले कभी नहीं दीखी।"

और फिर सभी कुछ बिजली की तरह कौंधकर रह गया था। मीरा जा चुकी थी। मदन के कपड़े और बाँहें नदी में डुबकी लेने से पहले ही भीग गयी थीं।

अभी नदी दूर थी। पीछे से आवाज आयी। मदन ने रुककर पीछे देखा। वह नानेनाम्बी था। उसके मुँह से बात निकलती, इससे पहले मदन ने उसे सुन लिया :

"मैं नहीं जा रहा।"

तेईस

उस दूसरी बस्ती की नौकरी को छोड़कर मदन और उसके साथियों ने अपने को खेतों में लगा दिया था। अभी महीना भी नहीं बीता था कि अभाव एक घर से शुरू होकर दूसरे घर तक पहुँचता गया। बैठका की ओर से जो अनाज बाजार से खरीद लाया गया था उसका वितरण हुए भी इधर पूरा सप्ताह हो गया था। निर्णय लिया जा चुका था कि बैठका में संजोकर रखे गये अनाज का वितरण दो सप्ताह से पहले किसी भी हालत में नहीं किया जायेगा। खेतों की पहली फसल शुरू होने में अभी दो महीने से

कम की अवधि नहीं शेष थी। कुएँ, खेत, बैठका, नदीतट, हर जगह यही प्रश्न किया जाता रहा—ये दो महीने बाल-बच्चे क्या खायेंगे ?

मदन ने जो प्रश्न अपने-आपसे कई बार किया वह था—उस दूसरी बस्ती की नौकरी कहीं हमने खोखले आदर्श के लिए तो नहीं छोड़ी ? मस्तिष्क के तनाव के कम होते ही वह अपने प्रश्न का उत्तर खुद ही दे बैठता—और कुछ न सही बाप-दादे की धरोहर की रक्षा तो हुई !

मदन ने अकेले में वह सूची बना ली थी। उसने उन नामों को एक बार फिर से पढ़ा था। पच्चीस नाम आ गये थे। उसे पूरा विश्वास था कि सूची का कोई भी आदमी उसके प्रस्ताव को अस्वीकार नहीं कर सकता था। इन पच्चीस लोगों की बैठक बैठका में न करके उसी भूतिया बरगद के नीचे करने की सोची थी। फेहरिश्त के पच्चीसों आदमी उसी के जोड़ीदार थे। अपने हमउम्रवालों के साथ तो वह उस बात का तकाजा भी कर सकता था। फरीद और विवेक से उसने पहले ही बात कर ली थी। दोनों ने उसकी सूझ की दाद दी थी।

फरीद के साथ मदन उन घरों को देख आया था जहाँ तीन दिन से मुट्ठी-भर भात में गुजारा हो रहा था। हाँड़ी में बचे हुए अनाज को एकाध सप्ताह ले जाने के लिए और कोई दूसरा उपाय था ही नहीं। जिन घरों ने इस परहेज को अपनाया था वहाँ बच्चे भी थे। मदन को इसी बात की अधिक चिन्ता थी कि ये बच्चे अपने पेट को दबाये कैसे सो सकते थे !

खेतों से एक-एक करके पच्चीसों आदमी निकलकर बरगद के विस्तृत फैले पुराने पेड़ के नीचे इकट्ठे हुए थे। बिना किसी भूमिका के मदन ने बात सीधे शुरू की थी, "बस्ती के लोगों को भूखों मरने से रोकने का एक ही आसान तरीका है और वह हम नौजवानों से ही हो सकता है।"

उसने लोगों के चेहरे की प्रतिक्रिया देखी थी। हौसला पाकर आगे बोला था, "अगर हम सभी इसी क्षण यह निर्णय कर लें कि आज से कुछ दिनों के लिए हम घर पर भात न खाकर जंगल के फलों से अपनी भूख मिटा लेंगे तो शायद बस्ती के बच्चों के लिए कुछ अधिक दिनों के अनाज का प्रबन्ध हो जायेगा। मैं सोचता हूँ, पच्चीस मर्दों के हिस्से का खाना सौ से अधिक बच्चों की खुराक हो सकता है।

"मैं सहमत हूँ मदन।"

"मैं भी तैयार हूँ।"

और फिर समूह-स्वर में सभी ने स्वीकृति दी थी। सभी के चुप होने पर फरीद ने कहा था, "सप्ताह में दो दिन फल जुटाने की जिम्मेवारी मैं लेता हूँ।"

दो अन्य दिनों की जिम्मेवारी देवराज ने अपने ऊपर ले ली। हनीफ, भरतलाल और रामसेवक भी आगे आ गये थे। मदन ने मान लिया था कि अभाव की समस्या पर कुछ हद तक अधिकार पा ही लिया जायेगा। उसने अपनी दूसरी योजना भी सामने रखी थी।

समुद्री इलाके में झाऊ के पेड़ों से तन्दूर जलाने की बात उसने सुझायी थी। खेत के डालों से समय निकालकर कोयला पकाया जा सकता था और उससे खेत की फसल के पहले ही आमदनी की उम्मीद की जा सकती थी। यह बात भी मान ली गयी थी और इसकी जिम्मेदारी सुमंगल और धनपतवा पर सौंपी थी। धनपतवा ने यहाँ तक कहा था कि समुद्री इलाके के फिशोल मछुओं से उसकी दोस्ती हो चली है, अगर मछलियाँ पकड़कर भी कुछ धंधा करने की बात को ठीक समझा जाये तो वह उसका भी प्रबन्ध करवा सकता था। इस बात को भी लोगों ने खुशी-खुशी मान लिया था।

दूसरे ही दिन सुमंगल चार साथियों के साथ झाऊ के जंगल से लकड़ी काटकर तन्दूर की तैयारी में जुट गया था। धनपतवा लकड़ी की छोटी-सी नाव पाने में सफल रहा और जोसेफ के सहयोग से उसी पास धनपतवा और हनीफ मछली फँसाने के काम में लग गये थे। इधर खेतों के काम को भी पूरी रफ्तार दी गयी। आधे पेट खाकर भी पिछले दिनों से अधिक मेहनत की जाने लगी। चाँदनी रातों में गाने-बजाने का जो कार्यक्रम बैठका के आँगन में होता था वह खेतों में ही होने लगा था। काम करते हुए लोग गा-बजा लेते थे। गाते-बजाते काम कर लेते थे। खेत की पहली फसल की बेहतरी गाने का विषय बन जाया करती थी—

पहली फसलवा के सोना होवे धान हो
माँड़ो की दुलहीन जैसा
जेकर पवि होवे महावर हो
पहली फसलवा के सोना होवे धान हो
ठनवा में उमड़े बदरवा सा
जेकर बरसवा होवे देर हो
पहली फसलवा के सोना होवे धान हो
जोबन पर फले बनवा सा
जेकर बाली लगे झुमका हो——

मकई की बालियों के पहले दाने आने लगे थे। सब्जियों के पौधों ने भी जहाँ-तहाँ प्रथम फूलों का झाँकना शुरू हो गया था। जड़ों की मूँगफलियों के भीतर दुधिया दाने आने लगे थे। वर्षा के अभाव में भी कुएँ के पानी की सिंचाई ने हरियाली बिखेर दी थी।

मदन खेतों की फसल की सुनहरी कल्पना में खोया हुआ था कि फरीद के साथ उसने लम्बी चोटीवाले उन चीनी को आते देखा। पास पहुँचकर फरीद ने कहा, "मदन, यह आह-चोंग है। हमारी बस्ती में यह दुकान खोलना चाह रहा है।"

अपने चौड़े दाँतों को सामने करके हँसते हुए उस आदमी की ओर देखकर मदन ने पूछा, 'किस चीज की दुकान खोलना चाहते हैं आप ?"

उस आदमी ने भोजपुरी में अटक-अटककर कहना शुरू किया, "हेर चीज का—चावल का—आटे का—दाल का, कपड़ा का ....।"

"हमारे पास खरीदने के पैसे नहीं।"

"हो जायेंगा। हो जायेंगा। इस खेत में पैसा ही पैसा......।"

"वो तो ठीक है पर हमारे पास पैसे होने में अभी दो-तीन महीने से कम नहीं लगेंगे।"

"कोई बात नाहीं......कोई बात नाहीं......। तब तक हम दूकान बनायेंगा...... हम सबों को उधार देगा......। हम भगवान बुध को मानता......।"

छोटी-छोटी आँखोंवाला वह आदमी काफी देर तक बात करता रहा। जाते हुए मुड़कर कोई चार-पांच बार मदन को झुक-झुककर सलाम करता गया। दूर तक उसकी वह विस्तृत हँसी दीखती रह गयी। उसके ओझल हो जाने के बाद फरीद ने कहा, "अच्छा हुआ, बस्ती में एक दुकान भी हो जायेगी। दूसरी बस्ती से अनाज लाने की मुसीबत से तो बच जायेंगे।"

कुछ देर की चुप्पी के बाद मदन ने गम्भीर स्वर में कहा, "हमारे परिश्रम की बूंदों की कीमत इसके पास इकट्ठी होने न लग जाये!"

"मैंने तुम्हारा मतलब नहीं समझा।"

"व्यापार को हममें से ही कोई कर सकता था।"

"इसके लिए पैसा कहाँ से आयेगा?"

"तुम सोचते हो यह आदमी अपने देश से पैसा लेकर यहाँ पहुँचा है?"

इसका उत्तर फरीद ने नहीं दिया।

कई बार मदन सुन चुका था कि जमीन का काम पवित्र होता है। हर बार यह सुनने पर उसके मन में एक ही ख्याल कौंधा था—क्या यही कारण है कि हमारे अपने लोग जमीन से इस तरह चिपक गये हैं? हमें हमेशा-हमेशा के लिए मजदूर बनाये रखने की यह साजिश तो नहीं? कहाँ से आयी यह टेढ़ी सीख? अगर यह हमारे शास्त्रों की बात है तो किसने लिखा उसे?

वकील ने उस दिन कहा भी था, "जमीन से चिपके रहने से कुछ होने को नहीं। इससे अलग भी एक संसार है। पैसे का, प्रतिष्ठा का!" उसी समय मदन ने अपने-आपसे पूछा था—वह संसार हमारे संसार से अलग क्यों है? वकील ने तो कहा था, "सभी कुछ प्रयत्न से होता है।"

यह प्रयत्न अगर इस समय नहीं हुआ तो फिर हम पीछे रह जायेंगे। मदन ने भी यह चाहा था कि अपने लोगों का ध्यान व्यापार की ओर भी जाये......आज उसने यह अवसर किसी और को दे दिया। अब दे चुकने के बाद उसने अपने-आपसे प्रश्न किया—कहीं खुद लूटे जाने का अवसर तो हमने पैदा नहीं कर दिया?

सूरज का ताप कम हो चुका था, पर गरमी में अकुलाहट पैदा कर जाने की शक्ति अभी भी थी। सुगुन भगत इधर दो-तीन दिनों से यही कहता आ रहा था कि इतनी गरमी इस देश में कभी नहीं हुई थी। दोपहर में तो हड्डियाँ तक पिघलने को हो जाती थीं।

"तुम्हारी तो रिहाई भी नहीं हुई थी जब से वह तुम्हें अपनी आंखों में लिये बैठी है।"

चौबीस

मीरा अकेले में सोचती रह जाती।

सपना कहीं आदमी के अपने विचार या उसकी कल्पना का विकृत रूप तो नहीं हुआ करता ? नहीं तो फिर उसने जो भी सपने देखे थे वे उसके अपने विचारों और कल्पनाओं के विगड़े रूप क्यों होते थे ? पर यह भी तो हो सकता था कि वे सपने ही सही हों और उसके अपने विचार और उसकी अपनी कल्पना ही गलत रही हो !

मीरा अकेले में सोचती रह जाती।

उसकी अपनी कल्पनाओं की उष्णता और सपनों की ठण्डक दोनों विरोधी तत्त्व होते हुए भी जो कुछ छोड़ जातीं वह और कुछ न होकर एक तरह का पीड़न ही तो होता था। इस पीड़न से जूझती हुई वह इस निष्कर्ष पर पहुँचती कि कल्पना और सपना एक ही वस्तु के दो सिरे थे। सपना वह होता था जहाँ सिरा धुँधलका लिये होता और कल्पना का सिरा चमकदार होता। उसके अपने विचारों और कल्पनाओं का अनुगामी होता हुआ सपना उसके विचारों और कल्पनाओं की चमक को साकार करने में असफल क्यों था ? वह इसके उत्तर के लिए जीनत के सामने मौन खड़ी रहती और जीनत हँसकर रह जाती।

मीरा अकेले में सोचती रह जाती।

जीनत का यह कहना शायद सच हो कि मीरा जो थी वही उसकी स्वाभाविकता थी। वास्तविकता से दूर जाकर खड़े हो जाना और उसके आलिंगन की चाह में घुट भी खुश ही होना कुछ लोगों की अपनी स्वाभाविकता हुआ करती है।

को रोटी की ओर चटनी बराबर चौलाई का साग था। मीरा ने चाहा कि उसकी मौसी खुद खा ले। उसने कहा, "मैं नहीं खाऊँगी मौसी, तुम खा लो।"

"ए छोकरी, पेट में हवा भरा जाई।"

वह जानती थी कि उसके न खाने पर मौसी भी टोकरी को नीचे नहीं उतारेगी, इसलिए फव्वारे के पानी में हाथ-मुँह धोकर वह जामुन के पेड़ के नीचे पहुँची। उसकी मौसी पहले ही से वहाँ बैठी हुई थी। मीरा ने टोकरी नीचे उतारी। रोटी के एक छोटे-से टुकड़े पर चौलाई का थोड़ा-सा साग रखा और बाकी अपनी मौसी के आगे बढ़ाकर जीवन के खेत की ओर बढ़ गयी। जाते-जाते वह अपनी मौसी को सुनती रही।

"जोर से बैठ के बच्चों ने ध्यान आया। यही कारण है रोहानी ने पहेला मोर पर।"

जीवन भी मथुरा के साथ वहीं बन्द की रोटी खाती हुई मिली। मथुरा ने रोटी का जो टुकड़ा उसके आगे बढ़ाया उसे पूरा न लेकर मीरा ने उसमें से एक नन्हा-सा टुकड़ा ले लिया। जिस चौड़े पत्थर पर मथुरा बैठी हुई थी उसी पर बैठकर मीरा बोल उठी, "खाला, इतनी गरमी ? कहीं अंगारे तो नहीं बरसेंगे ?"

"पानी भी तो नहीं बरस रहा जिससे गरमी कुछ कम हो सके।"

"रात को यह गरमी तो और भी असह्य थी। सोने तक नहीं सो जा सकती थी। मौसी कहती है कि यह गरमी तूफान लाकर रहेगी।"

"मुझे भी तो ऐसा ही लगता है।"

"तूफान आ जाने से तो खेत चौपट हो जायेंगे।"

"खुदा न करे तूफान आये !"

कुछ देर बाद जब जीवन बैंगन के पौधों के बीच निराई करने चली गयी तो मथुरा ने मीरा से पूछा, "आजकल तुम मदन भैया को गाना सिखाने में लगी हुई हो क्या ?"

इस प्रश्न को भली-भाँति न समझकर मीरा ने मथुरा की ओर देखा। मथुरा हँसती हुई आगे बोली, "वह जहाँ भी होता है उन्हीं गानों को गुनगुनाता रहता है जो तुम गाती रहती हो।"

"उन्हें तो तुम भी गा सकती हो। कौन रोकता है ?"

"हमें भी उसी तरह सिखा जाओ तब तो !"

"तुम्हारा मतलब है कि मैं उसे अपने पास बिठाकर ये गाने सिखाती हूँ ?"

"अभी तो वह इतनी अच्छी तरह उन्हें गा लेता है।"

"तुम यह क्यों भूलती हो मथु, कि ये गाने मदन के बाप के लिखे हुए हैं ?"

"पर गाए तो तुम्हारे जाते हैं। तुम जानती हो मीरा, कल तो मैंने मदन भैया से पूछ ही लिया था !"

"क्या पूछ लिया था ?"

"कि ये गीत उसे किसने सिखाये।"

"आगम तो बरसा के भी मिलते रहते हैं। बरसा तो हुई नहीं।"

लोगों की आशंका को कम कर जाने का दम इस वाक्य में नहीं था।

दो तरह की कामनाएँ थीं लोगों के भीतर।

···तूफान न आकर कुछ दिनों के लिए सूखा ही पड़ा रहे। खेतों का थोड़ा-बहुत नुकसान ही सही, सारा-कुछ विध्वंस होने से तो बच जायेगा!

······तूफान के नाम पर हल्की-फुल्की हवा के साथ बरसा तो हो जाये, पानी का अकाल पड़ा हुआ है!

विवेक ने पुजारीजी से पूछ लिया था, "सूखा रोकने के लिए तो हरपड़ौरी गायी और इन्दरपूजा की जाती है, तूफान को रोकने के लिए कौन-सी पूजा होनी चाहिए?"

पच्चीस

रामजी की ईख की तू चूस लेइली मिठसवा
हमरो खातिर छोड़ गइले सीठिया हो रावा···

किसनसिंह के पुराने गीत को मीरा की नयी धुन में मदन गुनगुना रहा था। पाँच बोरे कोयले के बदले में पूरी बस्ती के लिए एक बोरा चावल आया था। अपने हिस्से का चावल जब वह मीरा की मौसी को देने लगा था, उस समय मीरा ने अपनी मौसी को इशारे से भीतर बुला लिया था। लौटकर सूप में चावल लेती हुई मीरा की मौसी बोल उठी थी, "हम लोग तोर हिस्सा के चावल तबही लेब स जब तू भात खाई हमरे हियाँ अयबे तब।"

मदन के लिए यह बिनमाँगी मुराद थी। मीरा के यहाँ खाने पर पहुँचने के लिए वह सुबह से अधीरता लिये हुए गुनगुना रहा था। अपनी अलसायी चाल से शाम आ ही पहुँची थी। बस और कुछ ही समय बाकी था। वह अपनी बेसब्री में गुनगुनाये जा रहा था कि सुमंगल सामने आ गया।

"मदन, जल्दी चलो।"

"कहाँ?"

"पुष्पा मौसी बहुत अधिक बीमार हो गयी।"

अपने हाथ के हँसुवे को मुंडेर पर रखकर मदन सुमंगल के साथ बस्ती की ओर लपट पड़ा। परसों इसी बात के लिए सीता उसे बुलाने आयी थी। वैद्यजी की जड़ी-बूटियों से पुष्पा की हालत थोड़ी-बहुत सुधर सकी थी, पर वैद्य ने मदन को अलग ले जाकर धीरे से कहा था कि अगर स्थिति ऐसी ही रही तो खतरा टल जायेगा मगर इसके और बिगड़ जाने पर बचने की उम्मीद जाती रहेगी।

विवेक के घर पहुँचकर मदन ने पहले ही से कुछ लोगों को वहाँ मौजूद पाया।

उसे देखते ही वैदजी ने उसे आश्वासन देते हुए कहा, "स्थिति उतनी नाजुक नहीं है। वह तुम्हें ढूंढ़ रही थी इसलिए तुम्हें बुलवाया।"

कुन्ता के पास पहुँचकर मदन को ऐसा लगा कि वह एकाएक बूढ़ी हो गयी थी। दो-तीन सप्ताह पहले मदन का ध्यान इस बात की ओर गया ही नहीं था कि कुन्ता की आँखें गहरी धँस गयी थीं। उसके सभी बाल सफेद हो गये थे। उसके चेहरे पर अगर कुछ था तो वह समय की झुर्रियाँ थीं। मदन को सामने पाकर कुन्ता ने उसे इशारे से खाट पर बैठ जाने को कहा। अपने टूटे हुए स्वर में वह बोली, "तुम बहुत अधिक काम करते हो मदन ! एकदम अपने बाप की तरह रहे तुम।"

"तुम्हारी तबीयत कैसी है चाची ?"

"तुमने हमेशा मुझे कभी चाची तो कभी मौसी कहा है।"

"दोनों तो एक ही चीज है।"

वैदजी ने बीच में कहा, "तुम्हें अधिक बात नहीं करनी चाहिए।"

"पुजारीजी, मैंने जीवन में कभी भी अधिक बातें नहीं कीं। अब तो कर लेने दो।"

उस दिन बात-ही-बात में दाऊद मियाँ किसन की पुरानी बातें बताने लग गया। कुन्ता और किसन पति-पत्नी नहीं बन सके थे, यह उसके जीवन की दुखद हैरानी थी। किसन के ब्याह के बाद सचमुच ही कुन्ता ने जो चुप्पी साध ली थी वह उसकी अपनी बेबसी की चुप्पी न होकर भी एक ऐसी लम्बी चुप्पी थी जिसे किसन ने समझने की कोशिश कभी नहीं की थी।

अपने बाप की मृत्यु के बाद मदन ने पहली बार यह महसूसा था कि कुन्ता का सदमा सबसे बड़ा था। उसके भीतर की चीत्कारती खामोशी ने उसे भीतर-ही-भीतर तोड़ डालने में तनिक भी देर नहीं की थी।

मदन ने चारों ओर देखा। विवेक को सामने न पाकर उसने पूछा, "विवेक ?"

उत्तर पुजारी ने दिया, "मैंने उसे पहाड़ीपार की बस्ती में वहाँ के वैद्य के यहाँ से दवा लाने को भेजा है।"

"अकेले गया है वह ?"

"नहीं, फरीद साथ गया है।"

कुन्ता के अनुरोध पर पुजारी अपने यहाँ से रामायण ले आया। पाठ मदन करता रहा। उस समय तक जब तक कि कुन्ता को नींद न आ गयी। उसके सो जाने पर मदन ने पुजारी की ओर देखा। उसके आश्वासन के बाद मदन अपनी जगह से उठा। जाने को हुआ कि पुजारी ने कहा, "तुम विवेक के पहुँचने तक ठहर जाओ।"

पुजारी के चले जाने के बाद झोंपड़ी के भीतर की गरमी से बचने के लिए मदन आँगन में आ गया। टिमटिमाते तारों के बीच सात दिन का चाँद एकदम सर के ऊपर था। मदन बरगद के पेड़ के नीचे बैठ गया। वह जहाँ बैठा था वहाँ से मीरा का घर

"आगम तो बरसा के भी मिलते रहते हैं। बरसा तो हुई नहीं।"

लोगों की आशंका को कम कर जाने का दम इस वाक्य में नहीं था।

दो तरह की कामनाएँ थीं लोगों के भीतर।

•••तूफान न आकर कुछ दिनों के लिए सूखा ही पड़ा रहे। खेतों का थोड़ा-बहुत नुकसान ही सही, सारा-कुछ विध्वंस होने से तो बच जायेगा!

••••••तूफान के नाम पर हल्की-फुल्की हवा के साथ बरसा तो हो जाये, पानी का अकाल पड़ा हुआ है!

विवेक ने पुजारीजी से पूछ लिया था, "सूखा रोकने के लिए तो हरपड़ौरी गायी और इन्दरपूजा की जाती है, तूफान को रोकने के लिए कौन-सी पूजा होनी चाहिए?"

पच्चीस

रामजी की ईख की तू चूस लेइली मिठसवा
हमरो खातिर छोड़ गइले सीठिया हो राव!•••

किसनसिंह के पुराने गीत को मीरा की नयी धुन में मदन गुनगुना रहा था। पांच बोरे कोयले के बदले में पूरी बस्ती के लिए एक बोरा चावल आया था। अपने हिस्से का चावल जब वह मीरा की मौसी को देने लगा था, उस समय मीरा ने अपनी मौसी को इशारे से भीतर बुला लिया था। लौटकर सूप में चावल लेती हुई मीरा की मौसी बोल उठी थी, "हम लोग तोर हिस्सा के चावल तबही लेब स जब तू भात खाई हमरे हियाँ अयबे तब।"

मदन के लिए यह बिनमांगी मुराद थी। मीरा के यहाँ खाने पर पहुँचने के लिए वह सुबह से अधीरता लिये हुए गुनगुना रहा था। अपनी अलसायी चाल से शाम आ ही पहुँची थी। बस और कुछ ही समय बाकी था। वह अपनी बेसब्री में गुनगुनाये जा रहा था कि सुमंगल सामने आ गया।

"मदन, जल्दी चलो।"

"कहाँ?"

"पुष्पा मौसी बहुत अधिक बीमार हो गयी।"

अपने हाथ के हँसुवे को मुंडेर पर रखकर मदन सुमंगल के साथ बस्ती की ओर झपट पड़ा। परसों इसी बात के लिए सीता उसे बुलाने आयी थी। वैद्यजी की जड़ी-बूटियों से पुष्पा की हालत थोड़ी-बहुत सुधर सकी थी, पर वैद्य ने मदन को अलग ले जाकर धीरे से कहा था कि अगर स्थिति ऐसी ही रही तो खतरा टल जायेगा मगर इसके और बिगड़ जाने पर बचने की उम्मीद जाती रहेगी।

विवेक के घर पहुँचकर मदन ने पहले ही से कुछ लोगों को वहाँ मौजूद पाया।

उसे देखते ही वैदजी ने उसे आश्वासन देते हुए कहा, "स्थिति उतनी नाजुक नहीं है। वह तुम्हें ढूंढ रही थी इसलिए तुम्हें बुलवाया।"

पुष्पा के पास पहुँचकर मदन को ऐसा लगा कि वह एकाएक बूढ़ी हो गयी थी। दो-तीन सप्ताह पहले मदन का ध्यान इस बात की ओर गया ही नहीं था कि पुष्पा की आँखें गहरी धँस चुकी थीं। उसके सभी बाल सफेद हो गये थे। उसके चेहरे पर अगर कुछ था तो वह समय की झुर्रियाँ थीं। मदन को सामने पाकर पुष्पा ने उसे इशारे से खाट पर बैठ जाने को कहा। अपने टूटे हुए स्वर में वह बोली, "तुम बहुत अधिक काम करते हो मदन ! एकदम अपने बाप की तरह रहे तुम।"

"तुम्हारी तबीयत कैसी है चाची ?"

"तुमने हमेशा मुझे कभी चाची तो कभी मौसी कहा है।"

"दोनों तो एक ही चीज है।"

वैदजी ने बीच में कहा, "तुम्हें अधिक बात नहीं करनी चाहिए।"

"पुजारीजी, मैंने जीवन में कभी भी अधिक बातें नहीं कीं। अब तो कर लेने दो।"

उस दिन बात-ही-बात में दाऊद मियाँ किसन की पुरानी बातें बताने लग गया। पुष्पा और किसन पति-पत्नी नहीं बन सके थे, यह उसके जीवन की दुखद हैरानी थी। किसन के ब्याह के बाद सचमुच ही पुष्पा ने जो चुप्पी साध ली थी वह उसकी अपनी बेबसी की चुप्पी न होकर भी एक ऐसी लम्बी चुप्पी थी जिसे किसन ने समझने की कोशिश कभी नहीं की थी।

अपने बाप की मृत्यु के बाद मदन ने पहली बार यह महसूसा था कि पुष्पा का सदमा सबसे बड़ा था। उसके भीतर की चीत्कारती खामोशी ने उसे भीतर-ही-भीतर तोड़ डालने में तनिक भी देर नहीं की थी।

मदन ने चारों ओर देखा। विवेक को सामने न पाकर उसने पूछा, "विवेक ?"

उत्तर पुजारी ने दिया, "मैंने उसे पहाड़ीपार की बस्ती में वहाँ के वैद्य के यहाँ से दवा लाने को भेजा है।"

"अकेले गया है वह ?"

"नहीं, फरीद साथ गया है।"

पुष्पा के अनुरोध पर पुजारी अपने यहाँ से रामायण ले आया। पाठ मदन करता रहा। उस समय तक जब तक कि पुष्पा को नींद न आ गयी। उसके सो जाने पर मदन ने पुजारी की ओर देखा। उसके आश्वासन के बाद मदन अपनी जगह से उठा। जाने को हुआ कि पुजारी ने कहा, "तुम विवेक के पहुँचने तक ठहर जाओ।"

पुजारी के चले जाने के बाद झोपड़ी के भीतर की गरमी से बचने के लिए मदन आँगन में आ गया। छिटपुट तारों के बीच सात दिन का चाँद एकदम सर के ऊपर था। मदन बरगद के पेड़ के नीचे बैठ गया। वह जहाँ बैठा था वहाँ से मीरा का घर

बाइसवें घर के वाद था। लोगों के नाम याद कर-करके उसने सारे घर गिन लिये थे। उसे दुराव वड़ा विस्तृत लगा। पूरे तीन सप्ताह होने को थे उसे भात खाये हुए। स्वाद जैसे भूल-सा गया था। तीन सप्ताह वाद भात खाने का अवसर आया था। मीरा प्रतीक्षा कर रही होगी।

सीता ने सामने आकर पूछा, "तुमने अभी तक कुछ खाया नहीं होगा ?"

"भूख नहीं।"

"हमारे यहाँ तो चूल्हा ही नहीं जला। तुम कहो तो मैं……"

"नहीं, मैं कुछ नहीं खाऊँगा, वस थोड़ा-सा पानी ला दो।"

सीता पानी लाने चली गयी।

मीरा के वारे में सोचने लगा वह। उसने चाहा कि उसके यहाँ से हो आये। वह भात पकाकर अपनी मौसी के साथ प्रतीक्षा कर रही होगी। पुजारी से आश्वासन पाकर भी मदन पूरी तरह आश्वस्त नहीं था। वह आशंकित था। पुष्पा के आँखें वन्द कर लेने पर वह घवरा गया था। उसके उधर चले जाने के वाद अगर पुष्पा को कुछ हो गया तो फिर मदन अपने-आपको माफ नहीं कर सकेगा।

वह वैठा रहा। सीता पानी लेकर आ गयी। उसके हाथ से लोटा लेकर मदन ने एक ही साँस में उसे खाली कर दिया। उससे खाली लोटा लेकर सीता सामने के दूसरे पत्थर पर वैठ गयी।

"विवेक कव तक आ जायेगा ?"

सीता ने धीरे से जवाव दिया, "जल्द-से-जल्द लौटने की वात कह गया है।"

"गया कव है ?"

"गया तो दोपहर से है।"

दोनों चुप रहे। झोपड़ी के भीतर का चिराग टिमटिमाता रहा। झिंगुरों की आवाजें आती रहीं। मदन को अपने वीच की चुप्पी खली और उसने उसे तोड़ दिया।

"वहुत गरमी है।"

"हाँ।"

खामोशी फिर छा गयी। हवा सहमी हुई थी।

"तुमने मेरी वात नहीं मानी थी सीता !"

सीता ने पहले अपने-आपसे पूछा फिर मदन से, "कौन-सी वात ?"

"मैंने कहा था कि जादू-टोना कुछ होता ही नहीं, तुम डर गयी थीं। मैंने कहा था कि विवेक को कुछ नहीं होगा और तुमने मेरी वात का विश्वास नहीं किया था। वस्ती के सभी लोग डर गये थे। सुईवाला पुतला देखकर सभी ने यही मान लिया था कि विवेक का वचना नामुमकिन है। मैंने कहा था कि उसका वाल भी वाँका नहीं होगा। भला जादू का भी असर होता है क्या ?"

"असर तो होता ही है मदन !"

"आज भी तुम्हें इस वात का यकीन है ?"

"अपने ऊपर बीतने पर तो यकीन अपने-आप हो जाता है।"
"क्या बीता है तुम्हारे ऊपर ?"
"बहुत-कुछ।"
"यही न कि विवेक की एक अंगुली में भी दर्द नहीं हुआ ?"
"कभी किसी की अंगुली का दर्द कोई दूसरा भुगत लेता है।"
"यही-समामत तुम भी हो। भाभी को तो उम्र की बीमारी है।"
"अपने कुछ विश्वासों को दूसरों के साथ बाँटना असम्भव होता है।"
"विश्वास या अन्धविश्वास को ?"
"कुछ भी कह लो।"
"तुम तो ऐसे बातें करने लगी जैसे आंटेआ की माँ का बान अचूक रहा हो।"
"वह तो अचूक ही रहा।"
"क्या मतलब ?"
"वह अचूक रहा मदन !"
"मैं समझा नहीं।"
"छोड़ो इन बातों को। माँ के बारे में तुम्हारा क्या ख्याल है ? इन्हें कुछ होगा तो नहीं ?"
"समझा। तो तुम इसी को अचूक कह रही हो। तुम सोचती हो कि वह जादू विवेक को नहीं लगकर तुम्हारी सास को लग गया ! इतने दिनों के बाद ?"
"मैं ऐसा नहीं सोचती।"
"तो फिर ?"
"कहा न छोड़ो इन बातों को। तुम्हें माँ की स्थिति सुधर जाने की उम्मीद तो है न ?"
"वह तो बराबर है। मैं तुमसे एक बात पूछूं ? तुम इस तरह परिवर्तित-सी क्यों लगती हो आजकल ?"
"मैं तुम्हें परिवर्तित लगती हूँ ?"
"क्या बात है सीता ? तुम बहुत दुखी लगती हो।"
एक व्यंग्यात्मक हँसी के साथ सीता बोली, "जादू का असर है।"
"कहीं विवेक के साथ तुम्हारा फिर झगड़ा तो नहीं शुरू हो गया ?"
"लोग कहते हैं तूफान आनेवाला है।"
"तुमने मेरा उत्तर नहीं दिया।"
"तुमने कोई प्रश्न किया था क्या ?"
"कहीं विवेक फिर से ···?"
"एक बात है मदन, सोचती हूँ तुम्हें नहीं बताऊँ तो किसको बता सकूँगी !"
"मैं तुम्हारे कोई काम तो आ सकूँ।"
"मैं इसलिए नहीं बताना चाहती। बताना चाह रही हूँ इसलिए कि तुम

जादू-टोने को खोखली बातें मत समझा करो। और फिर तुम्हें बताकर तुमसे यह उम्मीद तो रख सकूँ.....फिर तो तुम्हारी बात भी ठीक रही.....शायद तुम काम आ जाओ।"

"बात तो बताओ सीता !"

"बेशर्म होकर सुनाना पड़ रहा है। विवेक जीवित तो है पर जादू-टोने ने उसके भीतर के मर्द को मार डाला। तीन महीने होने को हैं—विवेक की बेबसी को। दो दिन हुए उसने यहाँ तक कह दिया था कि इस असमर्थता से तो मृत्यु भली है। माँ ने हमारी कोई बात सुन ली है और उसे मालूम हो गया है कि इधर तीन महीने से हम भाई-बहन की तरह एक खाट पर सोते हैं। तुम वैद्यजी से बातें करके उसे बचा......!"

वह मदन के पैरों पर आ गयी थी।

मदन अवाक बैठा रहा।

छब्बीस

मदन यह मानने को तैयार नहीं था कि विवेक की हालत जादू-टोने का नतीजा थी। पुजारीजी से बातें करने के बाद वह इसी निष्कर्ष पर पहुँचा था कि बहुत अधिक गाँजा पीकर विवेक ने अपनी वह हालत बना ली थी। उसे पुजारी तक ले आने में मदन ने अपने को असफल पाया। उसने चिल्लाकर मदन को बताया था कि वह उतना ही मर्द था जितना मदन। और भी अधिक चिल्लाकर उसने यह जानना चाहा था कि उस बात का पता मदन को कैसे लगा था। मदन से कोई उत्तर न पाकर उसने उसकी छाती के पास फतुही को मुट्ठी में लेकर पूछा था, "मेरी पत्नी एक पराये मर्द को मेरे अपने शरीर की आत्मीय बातें कैसे बता सकी ? कौन होते हो तुम उसके ?"

मदन ने कोई जवाब न देकर अपनी फतुही को उसकी मुट्ठी से छुड़ा लिया था। मदन की आँखों के सामने वही कल का दृश्य था। बैंगन के पौधों के कीटाणु लग गये पत्तों को तोड़ते हुए वह सीता के बारे में सोच रहा था कि जीनत आ पहुँची थी। आते ही उसने प्रश्न किया था, "तुमने विवेक से क्या कह दिया ?"

"क्यों ?"

"सीता को मार-पीटकर उसने बेदम कर दिया है।"

"मेरे कारण ?"

"वह कह रहा था कि वह बात सीता ने तुम्हें क्यों बतायी ! क्या बात हो सकती है मदन, जिसके लिए उस बेचारी को उतनी मार पड़ी ? भीतरी घाव तो अलग, पूरा चेहरा सूझ आया है। सिर के आधे बाल नोच लिये गये हैं।"

इसके बाद जीनत ने जो कुछ कहा उसे मदन नहीं सुन पाया था। उसकी आँखें सामने की मीरा पर टिकी रह गयी थीं।

कड़कती धूप से मुरझाया हुआ खेत सभी कुओं को पी चुकने के बाद भी झुलसा ही रहा। बादल उमड़-उमड़कर छितरते-बिखरते रहे। उमस साँसों को बोझिल करती गयी। वर्षा की सम्भावनाओं के साथ आशाएँ बँधती-टूटती रहीं पर लोगों का जूझना बना रहा। पसीना बहता रहा। धरती की प्यास बनी रही। इतने पर भी स्थिति के सुधरने की उम्मीद बनी रही। सभी को यही उम्मीद थी कि कल भी अगर पानी बरस जाये तो फसल अच्छी हो जायेगी। उस कल की प्रतीक्षा हर दूसरे दिन होती रही। आस्था और निष्ठा दबकर भी जीवित रहती है। वह जीवित रही किसी बहुत प्रचण्ड तूफान से चकनाचूर होने के लिए।

दूसरे दिन का वातावरण गुमसुम रहा।

शाम होते-होते एक गरम हवा बहनी शुरू हुई। जो तूफान देख चुके थे, छप्परों को पत्थरों से जाँतने लगे। दीवारों को टिकाये रखने के लिए लकड़ियों और खम्भों का सहारा पहुँचाने में जुट गये। खम्भों को पेड़ों से बाँधा जाने लगा। हवा का बढ़ना धीरे-धीरे हुआ। धीरे-ही-धीरे माहौल भयानक होता गया।

ऊपर बिना तारों का सपाट काला आकाश वातावरण को अधिक भयानक करता गया। देखते-ही-देखते हवा की रफ्तार तेज होकर दहाड़ने लगी। अपनी-अपनी झोपड़ी से लोग झाँय-झाँय करती हवा की ताकत का अन्दाजा लगाने लगे। दाऊद मियाँ ने फरीद को बताया कि हवा का यही रुख रहा तो आधी रात तक वह बढ़कर दुगुनी रफ्तार की हो सकती है। सुगुन पिछले तूफान से लड़खड़ा गयी अपनी छत की ओर देखकर सहम गया। झोपड़ी अभी ही हिलने लगी थी। हवा की गति और बढ़ी कि वह गयी। अपनी सारी शक्ति से थामे अधखुली खिड़की से बिजली चमकने पर मदन बाहर के पेड़ों को लचकते-ऐंठते और डोलते पाकर दहल गया। बादलों का प्रलयंकर गर्जन हुआ। पानी का झंझावात मदन को भिगो गया। हवा के एक तेज झोंके से खिड़की उसकी ताकत को मात करके झटके से बन्द हो गयी। बकरी को बाड़े से निकालकर घर के भीतर लाने के लिए मीरा ने बाहर निकलना चाहा। हवा के थपेड़ों के चलते दरवाजा उससे नहीं खुला। मूसलाधार वर्षा की झटास से वह अकबका गयी। किसी तरह एक लम्बी साँस लेकर वह पीछे को हट गयी।

हवा की रफ्तार बढ़ती गयी। पेड़ों से पहले पत्तियाँ उड़ीं। टहनियाँ और डालियाँ टूटीं। पेड़ उखड़े। झोपड़ियाँ हिलने लगीं। छप्पर ऊपर-नीचे होते रहे। कई घरों में एकमात्र महावीर स्वामी की गुहार हुई। पवनपुत्र की मनौतियाँ हुईं। कुछ झोपड़ियों की छतें टूटकर उड़ गयीं। बच्चे चिल्ला उठे। बड़ों ने उन्हें अंकों में समेट लिया। वे सिमटे रहे। विध्वंसात्मक गति से हवा तेज होती गयी।

बवण्डर! चक्रवात! गर्जन! धमाका!

सभी के जीवन की सबसे लम्बी रात थी वह।

मीरा को अपनी लड़खड़ाती झोपड़ी से अधिक चिन्ता अपने खेत की थी। कुछ भी बाकी नहीं रहा होगा उसका। उसकी मौसी ने आश्वासन दिया। तूफान में ऊँचे पेड़ों को अधिक नुकसान पहुँचता है। मक्की के पौधे लुढ़ककर भी बच सकते हैं।

सीता की बाँहों में पुष्पा ने दम तोड़ दिया।

बुझे हुए चिराग को बार-बार जलाने की विवेक ने कई कोशिशें कीं। अँधेरे में केवल सिसकियों का आभास था।

आधी रात के बाद हर झोपड़ी में यही सोचा जाने लगा कि सुबह होते-होते कुछ भी बाकी नहीं रहेगा। वह सुमंगल की छत थी जो सबसे पहले नीचे आयी। लोग भागकर दूसरी झोपड़ी में पनाह ले सके। उसी के साथ धड़ाम की बहुत बड़ी आवाज आयी। आँगन में कुछ गिरा था। अनुमान लगाया गया—बरगद का पेड़ होगा। दूसरी जो बहुत जोरदार आवाज हुई वह बादलों का गर्जन था। लोग काँप गये। बच्चों ने बादलों को माथे पर टूटते अनुभव किया और चीत्कार उठे।

संसार का अन्त गज-भर की दूरी पर प्रतीत हुआ। आँखें मूँद ली गयीं। परिवार के सभी सदस्य एक ही बन्धन में जकड़ गये। साथ मर मिटने का निर्णय हो चुका।

हवा के दहाड़ने की प्रतिक्रिया झोपड़ियों में आतंक के रूप में हुई।

रात कटे और सुबह हो! पर सुबह का कोई आसार नहीं था। कुच-कुच घटाटोप रात में तूफान और भी प्रचण्ड रहा। अपनी माँ की लाश से हटकर विवेक झुक आयी दीवार को ठीक करने के लिए बाहर निकला। बाहर हाथ को हाथ न सूझनेवाला अँधेरा था। हवा के आक्रमण से दो बार लुढ़ककर भी किसी तरह वह पिछवाड़े की दीवार तक पहुँचा। बिजली के प्रकाश में नीचे गिर आये खम्भे को उठाकर उसने दीवार को सहारा दिया। पानी और हवा की झटास से साँसें लेने में भी दिक्कत हो रही थी। वह खम्भे के साथ नीचे को गिर पड़ा। हवा ने उसे सूखे पत्ते की तरह उछालकर दूर फेंक दिया। किसी तरह अपने को सँभालकर वह उठ पाया। खम्भे को फिर से उठाया और दीवार को ठीक करके जब तक झोपड़ी को लौटता तब तक छप्पर का एक भाग जा चुका था।

फरीद के घर के भीतर पानी घुटने तक पहुँचने को था। खाट पर खाट रखकर उसने दाऊद मियाँ, जीनत और सपुरा को ऊपर चढ़ा दिया था। वे तीनों छत के झुक आये बाँसों को पूरी ताकत के साथ थामे हुए थे। हवा भीतर भी ऊधम मचा जाती थी। छोटे-मोटे तख्ते सभी नीचे आ गये थे। गोबर और सफेद मिट्टी के लेप-वाली पत्थरों की दीवार का अगला भाग ढह आया था। उसी रास्ते से हवा भीतर आकर और भी दहाड़ जाती। एक ओर झंझावात से, दूसरी ओर छत के रीसने से घर का कोई भाग बिनभीगा नहीं बचा था।

बिनसहरा तक हवा का रुख बदल चुका था। वह पश्चिम की समुद्री हवा थी जिससे लोगों की बची-खुची हिम्मत भी जाती रही। आशंकित सुमंगल की माँ ने कहा

कि जब तक यह हवा उलटकर अपनी जगह न ले ले तब तक संकट टलने की उम्मीद नहीं की जा सकती।

बादलों का विस्फोटक गर्जन हुआ। बिजली कड़की। हवा चिंघारी। घर के मुखिया ने बाकी लोगों को अपने अंक में बाँध लिया। बादलों की लम्बी घरघराहट हुई। बिजली पर बिजली कौंधी। हवा झनझनाती रही।

बड़ी देर पर घटाटोप अँधेरा फटा। बिना सूरज का उजाला धीरे-धीरे फैला। वर्षा थमी हुई थी। बादलों का गरजना बन्द था। बिजली की चमक रुक गयी थी, लेकिन हवा की रफ्तार अभी भी वही थी—पश्चिम से पूरब को। अभी हवा पलटी नहीं थी। अभी खतरा टला नहीं था। फिर भी उजाला फैल जाने के कारण मौसम की वह भयावह स्थिति नहीं थी। भय अदृश्य होकर अधिक भयानक होता है। उजाले में तूफान सामने-सामने होकर कम डरावना था।

सबसे पहले मदन घर से बाहर निकला। बाहर हवा इतनी अधिक तेज़ थी कि अपने को अडिग रखना नितान्त असम्भव था। बड़ी कठिनाई से कदम उठ पा रहे थे। बड़ी कठिनाई से अपने को सँभाला जा रहा था। भीतर से धनलाल ने आवाज़ दी :

"तूफान बहुत तेज है! पेड़ गिर रहे हैं, तुम भीतर आ जाओ।"

धनलाल का एक शब्द भी मदन को नहीं सुनायी पड़ा। एक डाली उसके ऊपर से होकर झोपड़ी से जा टकरायी। हवा से संघर्ष करते हुए उसकी विपरीत दिशा को वह लपका। हवा उसे खींचकर पीछे कर गयी। पूरे जोर के साथ हवा को पीछे ढकेलकर वह आगे बढ़ा। रास्ते से पेड़ की डालियों, छप्परों के टुकड़े और दीवारों को हटाते हुए दो बार वह गिरने से बचा। हवा साँय-साँय किये उस पर आक्रमण किये जा रही थी। सामने के घरों की बुरी हालत थी। कोई बिना दीवार का था, कोई बिना छत का। देवराज के घर की छत अपनी चारो दीवारों के साथ दब गयी थी। अज्ञात आशंका से घिरकर मदन ने दीवारों के इर्द-गिर्द देखा। किसी की लाश न दीखने पर उसने लम्बी साँस ली और आगे बढ़ा। पहला आदमी जो उसे मिला वह फरीद था। उसके माथे से खून बह रहा था। पास पहुँचते ही मदन ने पूछा, "तुम्हारा घर कैसा है?"

"अगर हवा की यही रफ्तार रही तो दो-तीन घण्टे से ज्यादा टिका नहीं रहेगा।"

"सभी लोग सही-सलामत हैं न?"

"सभी लोग सही-सलामत हैं।"

"पर तुम्हें चोट आयी है।"

"सिर पर खम्भा गिर गया था। घाव मामूली है।"

दूर से उड़ती हुई एक डाली आकर दोनों के सामने गिरी। उसे हटाकर वे आगे बढ़े। मीरा के घर के सामने पहुँचकर मदन ने आवाज देते हुए दरवाज़े को थपथपाया। मीरा ने दरवाजा खोला। दोनों भीतर पहुँचे। उन्हें देखते ही मीरा की

मौसी बोल पड़ी, "अभी तूफान रुकल ना वाते, तू लोग घर से वाहर काहे होयल स ?"

"तुम दोनों तो ठीक हो न ?" मदन ने पूछा।

तभी उसकी नज़र देवराज और उसके परिवार पर पड़ी जिन्होंने वहाँ आश्रय लिया था। देवराज ने आगे आकर कहा, "हम तो घर के नीचे दबते-दबते बचे। किसी तरह एक-दूसरे के हाथ थामे टटोलते हुए यहाँ पहुँच सके। अगर यह उल्टी हवा होती तो शायद बरगद के पेड़ के नीचे दबे हुए होते। वह एकदम हमारे घर के पिछवाड़े में गिरा है।"

देवराज को पीठ पर हाथ रखते हुए मदन बोला, "चलो ! कुछ लोगों को हमारी मदद की आवश्यकता होगी।"

मीरा की मौसी बीच में बोल उठी, "ऐसन जोर के तूफान में अभी वाहर जाए के वात न सोच स ! तूफान के थोड़ा थमे त दे।"

"अगर तूफान के रुकने की प्रतीक्षा करें तो तबाही आ जायेगी। जो कुछ करना है अभी ही करना है।"

"अभी हवा पलटेगी तो तूफान और भी जोरदार हो जायेगा।"

"इसीलिए तो उसके पलटने से पहले जो करना है कर लें।"

फरीद और देवराज के साथ मदन वाहर निकल पड़ा। वाहर होते ही मदन ने आवाज़ को हवा के कोलाहल से ऊपर उठाकर कहा :

"पहले हम उनको सही ठिकाने पहुँचाएँ जिनके घर धराशायी हैं।"

हवा हाहास करती हुई आयी और देवराज सामने न होता तो फरीद पीठ के वल जमीन पर होता। एक-दूसरे को सहारा देते हुए उस प्रलयंकर नाद करते तूफान में तीनों आगे बढ़ गये।

सत्ताईस

हवा पेड़ों को ऐंठती-मरोड़ती रही। दो ढह गयी झोपड़ियों से तीन लाशें वाहर आयीं। तीनों लाशों को पास की झोपड़ी में रखकर मदन अपने साथ के सात आदमियों के संग विवेक के घर पहुँचा। पुष्पा की लाश के सामने मदन को अपना वाप याद आ गया। उसकी मृत्यु का वह दृश्य आँखों के सामने बिजली की तरह कौंधकर गायब हो गया। विवेक अपने भीगे हुए कपड़ों में सिमटा हुआ वैठा था। मदन ने सीता की ओर देखा। सिर झुकाये वह सिसकती जा रही थी। मदन ने विवेक से वातें कीं। विवेक चुपचाप वैठा रहा। उसकी चुप्पी को अनुमति मान मदन ने दो अन्य साथियों की सहायता से पुष्पा की लाश को उठाया और उसे पिछली लाशों के बीच रख आने के बाद विवेक से कहा, "रतनो चाचा की झोपड़ी अच्छी है, तुम सीता को लेकर वहाँ पहुँच जाओ। हम

बाकी लोगों को देख आते हैं।"

विवेक को उसी तरह बैठे पाकर मदन ने फिर से कहा, "यह कुटिया अधिक देर नहीं टिकेगी। चलो, निकल चलो यहाँ से।"

इतने में फरीद सामने आ गया। विवेक के कन्धे को पकड़कर उसने उसे उठाया और उसके साथ झोपड़ी से बाहर हो गया। सीता खुद अपनी जगह से उठी और वह भी बाहर आ गयी।

बाहर हवा बिफ्यायी हुई थी। सीता उसके साथ जूझ न सकी। अधटूटी राफ़िया की दीवार को थामकर वह खड़ी हो गयी। दीवार के साथ वह भी आगे-पीछे होती रही। मदन ने आगे आकर उसके कन्धे को थाम लिया। उसको पकड़े हुए मदन फरीद और विवेक के पीछे चल पड़ा। गिरते-पड़ते चारों व्यक्ति रेतनो के घर पहुँचे। सीता और विवेक को वहीं छोड़कर जब दोनों बाकी लोगों के पास पहुँचे उस समय तक कुछ और लोग बाहर निकल आये थे।

आधा दिन बीतने पर हवा धीरे-धीरे अपनी जगह लेती प्रतीत हुई। पर उसकी रफ्तार बनी रही। कभी-कभी तो लगता था कि क्षण-भर के लिए थमकर वह और भी विकराल हो गयी हो। विद्रोही गति के साथ वह सभी को दहला जाती। सुगुन भगत के घर के सामने गिरकर मदन ने अपने घुटने को घायल कर लिया था। ढही-अधढही झोपड़ियों से लोगों को निकालकर सुरक्षित स्थानों पर पहुँचाने के बाद सभी लोग अपने-अपने ठौर को लौट गये।

हवा हुंकार भरती हुई तोड़ती-उजाड़ती रही। दिशा बदलने से पहले एक बार फिर जोरों की वर्षा हुई। कम हो आयी रफ्तार ने एक बार फिर जोर पकड़ा। कुछ ही घड़ी के लिए एक जबरदस्त तेजी के साथ दहाड़कर फिर वह कम होने लगी। और जब हवा सीधी बहने लगी तब कहीं जाकर लोग आश्वस्त हुए।

शाम होने को थी जब हर झोपड़ी का दरवाज़ा खुला। सामने के बचे-खुचे पेड़ निपाती थे। आँगन से पेड़ों, डालियों और छप्परों का ढेर था। श्मशान की-सी उदासी के बीच तबाही का मुआइना होता रहा। मीरा खेत की ओर दौड़ गयी। दूर से आता हुआ समुद्र का गम्भीर गर्जन अब भी जारी था। अपने छिने जा चुके सपनों के पीछे दौड़कर मीरा जिस ठौर को पहुँची वह हरियाली नोच ली गयी पंजरों का जंगल था। कुछ भी नहीं बचा था। एक ठूँठे पेड़ का सहारा लेकर वह खड़ी रह गयी। आँखें मूँद लेने के सिवाय उसे और कुछ नहीं सूझा।

अपने कन्धों पर हाथों का स्पर्श पा उसने आँखें खोल दीं। मदन को सामने पाकर वह उससे लिपट गयी। मदन ने उसे अपने अंक में बाँध लिया। तूफान उधर सागर में अपने दम तोड़ता रहा। सागर की लहरें उफनकर कराहती रहीं।

मदन का अपना मुँह मीरा के दाहिने कान के पास था। उसने धीरे से उसके कान में कहा, "मेरी माँ कहा करती थी कि आदमी की परीक्षा होती रहती है। यह तुम्हारी-हमारी सभी की परीक्षा थी। इसमें हताश होकर बैठ जाने का मतलब होगा

असफल रह जाना।"

मीरा के दीर्घ श्वास को मदन ने अपनी छाती पर अनुभव किया।

मीरा की उन साँसों में उसके सपने बिलख रहे थे। उसने सोचा था मक्की की फसल बहुत अच्छी रहेगी। उसके आँगन के सामने सूखी हुई मक्की की बालियों का ढेर होगा। बस्ती के सभी लोग इकट्ठे होकर मक्की के दाने छुड़ाने पहुँचेंगे। उसके आँगन में ब्याह की-सी रौनक होगी। किस्से-कहानियाँ होंगी। चक्की की घरघराहट के साथ गाने-बजाने होंगे। सतवा के लिए मक्की के महीन बारीक आटे को अलग रखा जायेगा। भुनी और उबली हुई मकई की सोंधी गन्ध हवा में तैर जायेगी। मक्की के लावे होंगे और……

"लौट चलो मीरा ! यहाँ कुछ भी नहीं है।"

बस्ती में सबसे पहले लाशों के क्रियाकर्म पर ध्यान दिया गया। मीरा को घर पहुँचाकर मदन उस झोंपड़ी को पहुँचा जहाँ लाशें थीं। पुष्पा की लाश पर केले के दाग वाली धोती थी। मदन उस लाश को एकटक देखता रहा। वह सोयी हुई-सी लग रही थी। लोगों से यह सुनकर कि अर्थी सजाने के लिए एक भी फूल प्राप्त नहीं था, मदन ने मन-ही-मन सोचा—कितना करारा व्यंग्य था कि पुष्पा की लाश को पुष्प नसीब नहीं हुआ !

उधर लाशों की चिताएँ जल रही थीं इधर लोग घरों से बचेखुचे अनाज बटोरने में लगे रहे। आटा गलकर लेई बन गया था। कठिनाई से थोड़ा-बहुत चावल बटोरा जा सका। मीरा के शरीर पर भीगे कपड़े सूख जाने के कारण उसे बुखार चढ़ गया था। शाम होते-होते उससे अपने पाँवों पर खड़ा नहीं हुआ गया। जिस चटाई पर वह सोती थी वह अब भी भीगी हुई थी। वह ठण्ड से काँपने लगी थी। ओढ़ने के लिए भी कुछ सूखा हुआ नहीं बचा था। मीरा कोने में खड़ी रही। घर में कोई भी सूखा कपड़ा न मिलने पर उसकी मौसी ने अपनी ओढ़नी उतारकर मीरा को ओढ़ा दिया।

झोपड़ी के पश्चिमी भाग का एक अंश उड़ जाने के कारण रात में आकाश के तारे दीखते रहे। बुखार से दग्ध मीरा भूमि पर पड़ी रही। बीच में रावेनाल की दीवार लुढ़क गयी थी, उसे एकदम जमीन पर लिटाकर मीरा की मौसी बोली, "मीरा, तू एकर पर आकर सूत जा बेटी !"

मीरा को उसी तरह अपने-आपमें सिमटी हुई पाकर उसने फिर कहा, "भूयाँ में ना सूत बेटी, ऊ बहुत ठण्ड बा।"

मीरा का हाथ पकड़कर उसने उसे रावेनाल की नीचे पड़ी दीवार पर लिटा दिया। मिट्टी के तेल में पानी मिल जाने के कारण चिराग का जलना असम्भव रहा। मीरा की मौसी ने दूसरे घर से चिराग पाने की कोशिश की। वहाँ भी अँधेरा था। अँधेरी रात में वह मीरा के कराहने की आवाज़ सुनती रही। खिड़की से बाहर देखने पर दूर के एक-दो घरों में रोशनी दिखायी पड़ रही थी।

मीरा के बहुत अधिक कराह उठने पर उसकी मौसी उसके पास जा पहुँची।

निर्दोषिता व्यक्त करती-सी लग रही थीं। वह प्रलय तो रात में आया था। सूरज तो गवाह तक नहीं था। लोगों की अपनी आँखें भी साक्षी नहीं थीं। उस हाथ को हाथ न सूझनेवाले घटाटोप अँधेरे में वे केवल लोगों के अपने कान थे जिन्होंने उस प्रलय को पास से गुजरते सुना था।

यह जानकर कि सभी लोग आ पहुँचे थे, मदन ने फरीद की ओर देखकर उसे बात शुरू कर देने का इशारा किया। पर चूँकि लोग आपस में बातें किये जा रहे थे इसलिए फरीद चुप रहा। मदन ने सभी को सम्बोधित करके कहा, "हम लोग चाहेंगे कि आप लोग पहले फरीद को सुनें।"

लोगों के चुप हो जाने पर फरीद ने बात शुरू की, "जो होना था वह तो हो गया। अब हाथ-पाँव बाँधे बैठे रहने से कुछ होने को नहीं। हम तीन-चार साथियों ने मिलकर कुछ बातें तय की हैं।"

उसने मदन की ओर देखा। मदन ने धीरे से कहा, "तुम बातें तो पूरी करो।"

"इस समय हमारे सामने तीन महत्त्वपूर्ण काम हैं। पहला तो टूटे हुए सारे घरों को बनाना है, दूसरा काम हमारे लिए अनाज की व्यवस्था है और तीसरा काम है उजड़ गये खेतों में फिर से प्राण फूंकना। घरों को छाने-बनाने का काम आज ही से शुरू हो जाना चाहिए। इस काम के लिए बीस आदमी चाहिए। जहाँ तक अनाज की व्यवस्था की बात है, उजड़े खेतों से कुछ मक्की, कन्द आदि बटोरे जा सकते हैं। पर यह सप्ताह-भर से ज्यादा समय के लिए नहीं है। इस काम के लिए पाँच आदमी चाहिए। रही खेत की बात, इसके लिए बाकी सभी लोग आज ही जुट जायेंगे। घरों की मरम्मत की जिम्मेवारी विवेक को सौंपा जा रही है, वह अपने बीस आदमियों को चुन ले। मैं पाँच आदमियों के साथ अनाज जुटाने में लगता हूँ। खेतों की जिम्मेवारी मदन की होगी। अब आप लोग अपनी राय दें।"

उसके रुकते ही धनपतवा बोला, "हम लोग तो जीते-जी मर गये। अब पंजरों पर कोई मांस उगा नहीं सकता।"

मदन ने खड़े होकर कहा, "हम लोग जीवित हैं अभी। और पंजरों पर मांस उगाकर रहेंगे।"

प्रतिक्रियाहीन भीड़ से कोई उत्तर पाने से पहले मदन खेतों की ओर बढ़ गया।

अट्ठाईस

मीरा का बुखार बना रहा। ओषधि देने के बाद पुजारी ने मीरा की मौसी को आश्वासन दिया था कि शाम तक वह चंगी हो जायेगी। शाम होने को थी, बुखार ज्यों-का-त्यों था। घण्टे-भर तक मीरा की मौसी उसके तलुओं पर फूल की कटोरी मलकर भी हार चुकी थी। शाम होते-होते मीरा की पंजरी में दर्द भी शुरू हो गया

था। साँस लेने में उसे दिक्कत होने लगी थी। पुजारी को फिर से बुलाया गया। मुआइने के बाद उसने यह कहते हुए जड़ी-बूटियों की बनी हुई दूसरी गोली दी कि उसे सर्दी लग गयी है। पंजरी और फेफड़े को गरमी पहुँचाने के लिए उसने सेंकने का आदेश दिया।

खेत से लौटने पर मदन को मीरा की बीमारी का पता चला। अपने हाथ-पाँव धोये बिना ही वह आ पहुँचा। मीरा को उस दयनीय हालत में देखकर वह घबरा गया। उसने उसकी मौसी से पूछा, "मौसी, इसकी यह हालत कबसे है ?"

"कल साँझ से बेटा !"

"तुमने वैद्यजी को ·····"

"ऊ त अभी-अभी हियाँ से जात हवन।"

"क्या कहा उन्होंने ?"

"सरदी।"

मीरा के पास पहुँचकर उसने अपनी हथेली को उसके माथे पर रखा।

"मौसी, इसे तो बहुत जोर का बुखार है।"

मीरा ने अपनी पलकें धीरे से झुका लीं। कल रात से अभी तक उसने हर दूसरे पल मदन को अपने निकट पाना चाहा था। अपने माथे पर उसके हाथ के स्पर्श को महसूस कर उसने राहत-जैसी किसी चीज को अपने में अनुभव किया और आँखें बन्द कर ली।

"यह तो काँप रही है मौसी ! इसको ओढ़ाने के लिए कुछ नहीं है ?"

मीरा की मौसी को चुप पाकर उसने कहा, "मैं जीनत चाची के यहाँ से ले आता हूँ।"

"तू हियें रहो बेटा, हम ले आईला।"

वह बाहर निकल गयी। मदन ने मीरा के हाथो को अपने हाथों मे लेकर कहा, "और तुमने मुझे खबर तक नही भेजी !"

मीरा के सूखे होंठो पर एक कठिन मुस्कान क्षण-भर को तैरी।

सामने की खाली खाट की ओर देखकर मदन ने मीरा से पूछा, "तुम एक क्षण के लिए खडी हो सकती हो ?"

मीरा ने सिरा हिलाकर हामी भरी।

"तुम्हारा नीचे सोना अच्छा नही।"

उठकर उसने खाट को ठीक किया। मीरा को कन्धे का सहारा देकर खड़ा किया। रावेनाल की दीवार के छोटे टुकड़े को खाट पर रखकर उसने मीरा को उस पर लिटा दिया।

"आज सबसे पहले हमने तुम्हारे ही खेत की सफाई की है मीरा ! तुम्हें यह जानकर खुशी होगी कि सभी कुछ नष्ट हो जाने के बावजूद तुम्हारे खेत से तीन बोरी मक्की प्राप्त हुई है। वे कच्ची हैं, सुखायी तो नही जा सकती, फिर भी उनसे एक

सप्ताह के लिए हम अपने को भूख से बचा सकते हैं।"

इस बार वह सूखी और कठिन मुस्कान मीरा के होंठों पर न थिरककर उसकी आँखों में चमकी।

"तुम मेरी एक बात मानोगी ? दिन-भर मैं खेत में प्रतीक्षा करता रहा। तुम्हें न आते पाकर मैं बार-बार अपने से यही पूछता रह गया था कि कहीं तुम बीमार तो नहीं पड़ गयीं।"

मीरा उसे एकटक देखती रही। मदन बोलता जा रहा था। वह बोलता ही रहता अगर मीरा की मौसी जीनत के साथ भीतर न आ जाती। अपने साथ लायी हुई चादर और सन के जुड़े हुए दोनों बोरों को खाट की गोरतारी में रखकर जीनत मीरा के पास झुक गयी। उसकी गरदन पर हाथ रखने के बाद बोली, "इसे इतने जोरों का बुखार है और मुझे बताया तक नहीं ?"

"फजीर के पुजारी बोल गइल रहल कि सांझ होवत-होवत ई अच्छा हो जाय, इहे खातिर हम चुप रहलीं।"

"इसे तो जरैया है।" यह कहकर जीनत ने अपने साथ लायी हुई चादर उसे ओढ़ा दी।

"कुसमी, तूने इसे कुछ पीने को दिया या नहीं ?"

"ई घर में त ई बखत पानी भी ना बा।"

"मैं कुछ लाये देता हूँ।" यह कहता हुआ मदन उस धुंधलके में घर से बाहर हो गया।

बगल से पीढ़ा लेकर जीनत मीरा के सिरहाने बैठ गयी। मीरा की मौसी ने खाट के नीचे से टीन के चिराग को ढूंढ़ निकाला। पड़ोस से माँगकर लाये मिट्टी का तेल उसमें भरने के बाद बत्ती को ठीक किया। चिराग जलाया और उसे बीच के खम्भे के छोटे-से तख्ते पर रख दिया जिसके ऊपर टीन का एक छोटा-सा टुकड़ा अब तक के सारे धुएँ से अपने को एकदम काला कर चुका था।

मीरा के सिर को धीरे-धीरे दबाते हुए जीनत ने पूछा, "तुम्हारी पँजरी का दर्द कैसा है ?"

"साँस लेने और खांसने पर दुखता है।"

"मैं थोड़ी देर में अँगीठी ले आऊँगी। सेंकने से दर्द मिट जायेगा।"

चादर के भीतर भी मीरा को काँपते पाकर जीनत ने सन के बोरे को भी उसके ऊपर रख दिया।

"अपने सिर पर खेत की चिन्ता लेकर बीमार पड़ी है तू !"

काफी देर बाद मदन जब दूध लिये पहुँचा उस समय जीनत मीरा को सेंक चुकी थी। मदन के हाथ से दूध लेकर मीरा की मौसी ने उसे गरमाया। दो घूंट पीकर मीरा ने कटोरा लौटा दिया। बस्ती-भर में दो ही तो गायें थीं। एक जुगाली छोड़कर बैठी थी तो फिर कभी उठी ही नहीं। दूसरी गाय का दूध केवल उन्हीं घरों को बारी-

चारी से पहुँचाया जाता था जहाँ छोटे बच्चे होते थे। बस्ती के दूसरे छोर पर बड़ी कठिनाई से मदन को दूध मिल सका था। मीरा के न पीने पर उसे दुख हुआ। उसके चेहरे से उस बात को ताड़कर जीनत बोल उठी, "दूध पीने से तुम्हें कुछ ताकत तो मिलती! शरीर कमज़ोर होने पर रोग और भी दबाता है।"

"सुबह तक मैं ठीक हो जाऊँगी, खाला!"

"अल्लाह करे तुम ठीक हो जाओ।"

न चाहते हुए भी जीनत के साथ मदन को वहाँ से हटना पड़ा। उस अँधेरे में गौतम राव का बेटा ऊँचे स्वर में गाये जा रहा था—

झरी गयले रे सभी गैंछवन के फूलवा
बही गयले रे सभी अँखियन के लोरवा।...

जीनत के जाने के बाद मदन अकेला चलता रहा।

अकेले चलते हुए दिमाग में अकारण एक आवारा ख्याल आ गया—आदमी के पास जो कुछ होता है वह उससे खुश नहीं होता। अगर ऐसा होता तो वह अपने अभाव, अपनी यन्त्रणाओं तथा असफलताओं से भी खुश होता।

आदमी उस चीज़ की चाह लिये होता है जिससे वह वंचित रहा हो।

अपनी झोपड़ी तक पहुँचने पर भी उसे गौतम राव के बेटे का आलाप सुनायी पड़ता रहा। धनलाल और धनपतवा जागे हुए उसकी प्रतीक्षा कर रहे थे।

सुबह सूर्योदय से पहले ही दोनों को सर पर लकड़ियों का बोझ लिये शहर पहुँचना था। तय हुआ था कि अगर सुबह चार बजे बस्ती से निकला जाये तो सात बजे से पहले शहर पहुँचा जा सकता था। बस्ती के लिए अनाज जुटाने का कोई दूसरा तरीका था ही नहीं। लकड़ियाँ बेचकर उसी पैसे से अनाज खरीद लाने की बात थी। पाँच आदमियों के बोझ से बस्ती के लिए दो दिन का खाना भी मिल जाये तो सन्तोष की बात थी, पर लोगों को मालूम नहीं था कि लकड़ी किस भाव पर जायेगी।

बातें करते हुए सबसे पहले धनपतवा को नींद आयी, फिर धनलाल को और बहुत देर बाद मदन भी सो सका। सुबह उसके उठने तक धनलाल और धनपतवा शहर जा चुके थे। उठते ही मिट्टी की सुराही से पानी लेकर उसने मुँह खँगारा और झपट पड़ा मीरा के घर की ओर। सूरज की पहली किरणें निपाती पेड़ों से झाँकने लगी थीं। रास्ते में लोटा लिये मैदान को जाते हुए पहला आदमी जो मदन को मिला, वह हनीफ था। जिस ढंग से वह अपनी धोती थामे झपट रहा था उसे देख मदन हँसे बिना नहीं रह सका। उसकी वह हँसी क्षणिक रही। मीरा की हालत जानने की अधीरता के साथ वह आगे बढ़ गया।

दो झोपड़ियाँ पार करने के बाद मदन को और ग्यारह झोपड़ियाँ पार करनी थीं। वह बारहवीं झोपड़ी मीरा की थी जिसपर पिछवाड़े से आकर गुलैंची की डाली टिकी हुई थी। एक तरह से उस डाली ने तूफान के दौरान उस झोपड़ी की काफी रक्षा की थी अन्यथा पूरी छत उड़ गयी होती। मीरा के घर से अभी वह दो घर दूर ही था कि

मीरा को बाड़े के पास खड़ी पाया। वह खिल उठा। उसके पास पहुँचते ही उसने पूछा, "कैसी है तुम्हारी तबीयत ?"

मीरा हँस पड़ी। उस हँसी के बावजूद उसकी शारीरिक कमजोरी चेहरे पर स्पष्ट थी।

"तुम्हें इतने सवेरे नहीं उठना चाहिए था। ठण्ड दोबारा लग सकती है।"

अपनी इस बात के साथ मदन को अपने जीवन की एक पुरानी बात याद आ गयी। वह छोटा था। सवेरे उसकी माँ उसे जगाने की कोशिश में थक जाती थी। एक सुबह खाट पर बैठती हुई उसने मदन के कान में धीरे से कहा था, "सुबह-सवेरे उठने से आदमी बीमारी से दूर रहता है। सूर्योदय से पहले की बहती हवा में सेहत के लिए अमृत रहता है।"

अपनी माँ की यह बात याद आ जाने पर उसने झट कहा, "सुबह की यह ठण्ड हानिकारक नहीं होती।"

काली बकरी की पीठ पर हाथ फेरती हुई मीरा धीरे से बोली, "मैं तुम्हारे ही बारे में सोच रही थी कि तुम आ गये।"

"क्या सोच रही थी मेरे बारे में ?"

"हमारी ये दोनों बकरियाँ हैं न ? इन्हें बेचकर सप्ताह दो सप्ताह के लिए चावल-आटा खरीदा जा सकता है।"

मदन से तुरन्त कुछ कहा नहीं जा सका। मीरा को अपनी ओर ताकते हुए पाकर उसने कहा, "चावल-आटे की चिन्ता तुम क्यों करने लगीं ?"

"हम सभी तो खाते हैं।"

"उसकी व्यवस्था हो रही है, तुम फिकर मत करो।"

"पर इन बकरियों को बेचने में क्या आपत्ति है ? बाड़ा छोटा और नया होने के कारण ये दोनों जीव बच पाये नहीं तो दब ही गये होते !"

"इन्हें खरीदेगा कौन ?" जानबूझकर मदन ने इस तरह का प्रश्न किया।

"शहर में तो हर चीज़ बिक जाती है।"

"ठीक है, बाद में देखेंगे।"

"मैंने जो चाहा था वह नहीं हुआ।"

"क्या चाहा था तुमने मीरा ?"

"कि पूरी बस्ती मेरे खेत की मक्की की खीर खाये।"

"कौन कहता है यह नहीं हुआ ! तुम्हें नहीं मालूम कि तुम्हारे खेत से तीन बोरी मक्की प्राप्त हुई है ?"

"तुम्हें इन बकरियों को बेचवाने का प्रबन्ध करना ही होगा।"

"तुम्हारी मौसी को आपत्ति हो सकती है।"

"नहीं।"

"एक शर्त है।"

"कौन-सी ?"
"तुम्हें पहले अपना ख्याल अच्छी तरह रखना है।"
मीरा हँस पड़ी।

उन्तीस

स्थिति पर गौर करके मदन बार-बार एक ही निष्कर्ष पर पहुँच रहा था। लेकिन कोठी के मालिक से समझौता का मतलब था अपने को फिर से बेबस बनाकर सिर ओखली के हवाले कर देना। भरतलाल और हनीफ भी यही कहते रहे। और आज तो रामसेवक भी यही कह गया कि कोई दूसरा चारा भी तो नहीं। निष्कर्ष को स्वीकारना मदन के लिए एक ही बात नहीं थी। मीरा की दोनों बकरियों के बदले अनाज लेकर शहर से लौटने पर उसने बड़े गाम्भीर्य-भरे स्वर में मीरा से पूछा था, "तुम क्या कहती हो मीरा ?"

मीरा ने उसी क्षण उत्तर नहीं दिया था।

मदन के साथ चलते-चलते वह ऊपर किसनसिंह की कुटिया तक पहुँच गयी थी। तूफान उस झोपड़ी का कुछ भी नहीं बिगाड़ पाया था। उसी के आगे के सूखे तने पर बैठती हुई मीरा ने कहा था, "ऐसी हालत में कोठी के मालिक की गुलामी करना तो अपने-आपको आदमी के स्तर से गिरा देना होगा।"

"तुम ठीक कहती हो मीरा ! लेकिन मानरक्षा के साथ-साथ कहीं भूखों मरने की नौबत न आ जाये।"

"तुम बता रहे थे कि भरतलाल का भी कोई प्रस्ताव था ?"

"उसका अपना भाई जिस कोठी में काम करता है वह यहाँ से तीन घण्टे पैदल के फासले पर है। वहाँ पर काम की शर्तें अच्छी तो है पर फिर यह फासला !"

"नहीं मदन, तुम इतनी दूर नहीं जा सकते।"

"लोगों को मेरे उत्तर की प्रतीक्षा है।"

"इतनी दूर तो आने-जाने में ही दिन निकल जायेगा।"

"वहीं ठहरने का इरादा है। हफ्ते में एक बार इधर लौटेंगे।

"नहीं। मैं तुम्हें जाने नहीं दूँगी।"

"तुमने एक बात नहीं सुनी ?"

"कौन-सी ?"

"एक-दूसरे से दूर रहने पर घनिष्ठता अधिक बढ़ती है।"

"मुझे घनिष्ठता बढ़ानी नहीं है।"

"क्या कहा ?"

मीरा ने झट अपनी बाँहों को मदन के गले में डाल दिया।

एक-दूसरे का हाथ थामे किसनसिंह की कुटिया के पिछवाड़े से दोनों उस ठौर को पहुँचकर खड़े हो गये जहाँ से पहाड़ी झरने की झूलती सफेदी सामने थी। मदन इस स्थान पर कई बार पहुँचा था पर इससे पहले सामने के दृश्य से वह प्रभावित हुआ ही नहीं था।

आज उसे लग रहा था कि सामने की वह प्राकृतिक सुषमा अत्यन्त ही सुन्दर थी। एक पहाड़ की गोद से दूसरे पहाड़ की गोद तक का वह इन्द्रधनुष उस मंजर को और भी खूबसूरती दिये जा रहा था।

दोनों कुछ और आगे बढ़ गये। आगे खाड़ी थी। दोनों खड़े होकर दूर तक की तबाही को देखते रहे। मदन ने जैसे अपने-आपसे कहा, "काश, तूफ़ान न आया होता और इस दृश्य की हरियाली बनी होती !"

फिर उसे ख्याल आया कि शायद हरियाली के घनेपन से जलप्रपात इतना प्रत्यक्ष न होता और न ही इन्द्रधनुष इतना टहकार दीख पाता।

मीरा कुछ और ही सोच रही थी। वह बोल पड़ी, "इतने विस्तृत फैले देश में क्या यह जरूरी है कि आदमी कोठीवालों की चाकरी और गुलामी करके ही जीवित रहे ?"

"अपना काम करके भी तो देख लिया हमने।"

"वह पूरा ही कहाँ हुआ है ?"

जब दोनों नीचे को उतरने लगे तो मदन ने कहा, "आज तो तुम बहुत अधिक बोल गयीं।"

इसके बाद मीरा ने चुप्पी साध ली। तंग आकर मदन सामने की काली चट्टान पर बैठ गया। मीरा भी चार कदम आगेवाले पत्थर पर बैठ गयी। मदन ने जब उठने का नाम ही नहीं लिया तो मीरा को विवश हो बोलना ही पड़ा।

"तुम अगर नहीं चलोगे तो मैं अकेली चली जाऊँगी।"

"एक बात तो हम भूल गये।"

"क्या भूल गये ?"

"तुम मेरे बाप की झोपड़ी को भीतर से देखना चाहती थीं न ?"

"अब तो नीचे आ गये हम।"

"एकदम नीचे थोड़े ही आये हैं !"

"फिर से ऊपर चढ़ना चाहते हो क्या ?"

"तुम्हें झोपड़ी जो दिखानी है।"

"फिर कभी देख लेंगे।"

"मेरे उधर चले जाने पर तो फिर न जाने कब इधर आने का अवसर मिले !"

"किधर चले जाने पर ?"

"नौकरी के लिए उस दूर की बस्ती......।"

"कहीं नहीं जाओगे।"

"क्यों ? रोटी के लिए तो जाना ही होगा।"

"नहीं।"

"यह भी हो सकता है।"

मीरा ने उसे गौर से देखा।

"ठीक है, अगर तुम कहती हो तो मैं नहीं जाऊँगा, लेकिन······।"

"लेकिन क्या ?"

मदन ने ऊपर की ओर अंगुली का इशारा किया।

"झोपड़ी देखने ?"

"हाँ।"

"पर मुझसे चढ़ा नहीं जायेगा।"

"मेरे कन्धे का सहारा लेकर तो चढ़ सकती हो !"

तय किये हुए रास्ते पर मदन के कन्धे का सहारा लिये मीरा जब ऊपर को चढ़ने लगी तो मदन ने धीरे से कहा, "तुम बहुत ही सुन्दर हो मीरा !"

"गुदगुदी मत लगाओ।"

"क्या ?"

"तुम्हारी इस बात से गुदगुदी होती है।"

किसनसिंह की झोपड़ी के पास पहुँचकर मदन ने नीचे की ओर देखा। मीरा का ध्यान भी नीचे की बस्ती की ओर आकर्षित करते हुए उसने कहा, "क्या दशा हो गयी है हमारी बस्ती की !"

"उस तूफान के मारे तो हम भी हैं, पर क्या बात है कि वैसे लगते नहीं ?"

"तुमने तो मेरे मुँह में मेरी बात छीन ली। सचमुच तूफान के इस घाव को हम इतनी जल्दी भूल कैसे गये ?"

"भूले तो नहीं। शायद भूलने की कोशिश कर रहे हों।"

पानी से भीगकर चिपक गये किवाड़ को मदन ने जोर का धक्का देकर खोला। दरवाजा खुलते ही एक सीली-सी गन्ध आयी। भीतर पहुँचकर मदन ने खिड़की खोल दी। मीरा अब तक बाहर खड़ी थी। दरवाजे के पास आकर मदन ने कहा, "भीतर नहीं आओगी क्या ?"

भीतर पहुँचकर मीरा ने झोपड़ी को गौर से देखा।

"पसन्द आयी मेरे बाप की झोपड़ी ?"

"कितनी शान्ति है यहाँ !"

"मुझसे तो ऐसी एकान्त जगह में रहा नहीं जायेगा।"

"मैं तो ऐसे ही स्थान में रहना पसन्द करूँगी।"

"सच ?"

"प्यारी जगह है।"

"लेकिन अगल-बगल में जंगल-ही-जंगल है।"

"जंगल काटा जा सकता है।"

"तुम कहो तो कल ही से काटना शुरू कर दूं।"

"इतनी जल्दी !"

"शुभ काम में देर क्यों ?"

"कहीं यहां लौटते-लौटते जंगल फिर खड़ा न हो जाये।"

"हमारे यहां पहुंचने में इतनी देर लगेगी क्या ?"

झोपड़ी से वाहर आकर मदन नीम के पेड़ के पास खड़ा हो गया। दायीं ओर अंगुली से संकेत करते हुए उसने कहा, "वह दूर का घर देख रही हो मीरा ! जानती हो क्या है वह ?"

"कोंस्तां साहव का घर होगा।"

"यह वही घर है मीरा, जिसमें वन्द हैं हम मजदूरों के पसीने की उन सारी बूंदों के मूल्य, जो कभी हमारे नहीं हुए।"

अपने वाप के मुंह से सुनी हुई उस घर की कहानी मीरा को सुनाने के वाद मदन ने कहा, "तुम जानती हो मेरा चले तो क्या करूं ?"

"घर लूट लोगे ?"

"नहीं।"

"तो फिर ?"

"उसके मालिक की नरेटी पर वन्दूक की नली रखकर उसे विवश कर दूं।"

मदन की वात को अधूरा पाकर मीरा ने प्रश्न किया, "किस वात के लिए विवश ?"

"कि अपनी तिजोरियों का सारा धन देश के अभावग्रस्त मजदूरों के बीच वरावर हिस्सों में वांट दे।"

"यह तो लूटना ही हुआ।"

"हड़पी हुई चीज को वापस लेना लूटना कैसे हुआ ?"

"दिलेरी हुई क्या ? दिलेरी तो उस समय होती जव अपनी चीज को लूटे जाने से रोका गया होता।"

"काश ! ऐसा ही हुआ होता !"

"खैर......चलो मदन, नहीं तो देर हो जायेगी।"

तूफान के वाद की सपाट पगडण्डियों से दोनों नीचे उतरने लगे। सुवह के एक ख्याल ने मदन को फिर एक वार दवोच लिया—वस्ती-भर का वचाखुचा अनाज दो दिन से तीसरे दिन तक पहुंचने को था नहीं। इधर नालेताम्वी खवर ले आया था कि शहर में अनाज का दाम दुगुना हो गया था। वह भी जाने-माने चेहरों को ही प्राप्त होता है। जिस कागज के साथ दूकान पर पहुंचना होता है वह भी तो किसी के पास नहीं। होता भी उनके पास तो कोई फायदा नहीं था क्योंकि उस पर कोठी के मालिक के हस्ताक्षर की जरूरत होती है जो कि इस वस्ती के लोगों को मिलना नितान्त

विवेक को जब पता चला कि कोठी के गोदाम में चावल-दाल भरे पड़े हैं तो अपने-आपसे यह पूछते हुए कि अनाज को सड़ाया क्यों जाये, वह अँधेरी रात में कोठी के गोदाम की ओर बढ़ गया था। कई दिनों से उसे एक ऐसे अवसर की तलाश थी जिससे वह अपने भीतर की लाघव भावना से मुक्ति पा सके। पहला विचार तो उसके मन में यह आया था कि वह आंद्रेआ के घर पहुँचकर उसका गला दबोच दे। उसी के जादू-टोना ने उसे अधूरा पुरुष बनाकर छोड़ दिया था। ऐसा करने का मतलब होता जादू-टोने पर विश्वास कर लेना, जब कि वह उस तरह की किसी भी बात को नहीं मानता था। पौरुष तो ऐसे कामों से झलकता है जो कठिन हो और जिसे विरला ही कोई कर सके।

उसे कोठी के गोदाम की पूरी जानकारी थी। वह यह जानता था कि आगे का वह बड़ा-सा फाटक तूफान में टूट गया था। उसकी जगह पर लकड़ियों की घिरावट थी जिसे वह आसानी से फाँद सकता था, लेकिन जिस बात को वह नहीं जानता था उसी का शिकार होकर वह पकड़ लिया गया था। पत्थर और लकड़ी की ऊँची दीवारों के पास लकड़ी के छोटे-छोटे चिपटे टुकड़ों पर नुकीली कीलें बिछाकर छोड़ी गयी थीं। विवेक के दोनों तलुवे लहूलुहान नहीं होते तो वह भागकर अपने को रखवारों से बचा सकता था।

तीसरा दिन था उसके ओझल रहने का। खेतों में जहाँ-तहाँ नये अंकुर आने लगे थे। सिंचाई के बाद मदन मीरा की ओर बढ़नेवाला था कि भरतलाल सीता का सन्देश लिये आ गया था।

"क्या कहा तुमने, तीन दिन से वह घर नहीं लौटा ?"

सीता के सामने पहुँचकर भी उसने यही सवाल किया।

"तो फिर पहले क्यों नहीं बताया ?"

"उसके लौट आने की उम्मीद थी।"

"कुछ तो कहकर गया होगा ?"

"नहीं, कुछ भी नहीं बताया था।"

"तुम्हारे देखने में वह कौन-सी जगह है जहाँ जा सकता है ? तुमसे झगड़कर तो नहीं गया न ?"

"नहीं।"

"किसी को तो कुछ बताया होगा ?"

"देवराज कह रहा था कि उसके साथ गाँजे का आखिरी दम लेकर वह कोठी के गोदाम की ओर बढ़ गया था। देवराज को छोड़कर आगे बढ़ते हुए उसने उससे कहा था कि उसके होते हुए बस्ती का कोई भी भूखा नहीं मर सकता। रामनारायण भैया के बेटे को कल मैंने कोठी की ओर भेजा था। उधर से लौटकर उसने बताया कि उधर किसी ने विवेक को नहीं देखा।"

कुछ देर चुप रहने के बाद मदन ने कहा, "अनाज चोरी करने की कोशिश में

कि ईख के खेतों को तूफान से कम नुकसान पहुँचा था।

"फरीद, तुम देख रहे हो इन खेतों को ? हवा भी शायद धनी की ताकत से सहम गयी थी। हमारे अपने खेतों में भी तो गन्ने का एक खेत है। उसका तो सत्यानाश हो गया है जबकि ये खेत अब भी खड़े पड़े हैं।"

"तुम देखते नहीं ये दो कारणों से बच सके हैं ?"

"यही कहोगे न कि पौधे छोटे हैं और पहाड़ों ने इनकी रक्षा की ? तुम कुदरत को कम मक्कार मत समझना।"

फरीद को हैरानी हुई। इतनी रुखाई और निराशा के साथ मदन ने कभी भी बातें नहीं की थीं। उसने ढिठाई की, "तुम मेरी बात मानो या न मानो मदन, पर मैं तो यही कहूँगा कि तूफानों के इस देश में वह गन्ने की खेती ही है जिसे एकदम तबाह हो जाने का डर रखे बिना किया जा सकता है। बाकी कब चौपट हो जाये कोई नहीं कह सकता।"

"गरीब आदमी तो लोहा भी उगाये तो भाग अच्छा न होने पर फसल काट न पाये।"

"आज तो तुम भाग की बात करने लगे ?"

"सुगुन चाचा ठीक ही तो कहता है कि हम लोगों के भाग पर कुत्ता मूत गया है।"

"सुगुन चाचा तो रंज में आकर यह भी कह जाता है कि नयी पीढ़ी सोच ही नहीं पाती। यही हाल रहा तो पीढ़ी-दर-पीढ़ी हम गुलाम ही रह जायेंगे।"

"ठीक ही तो कहता है।"

"आज तुम नशे में प्रतीत हो रहे हो।"

"तुम्हारी नज़र में अगर मैं बड़बड़ा रहा हूँ तो फिर ठीक है, पर एक बात पूछूँ ?"

"पूछो।"

"तुम्हें कभी जोरों का बुखार आया है ?"

"नहीं।"

"तो फिर तुम नहीं समझोगे।"

मदन के चेहरे को एकदम देखते हुए फरीद ने पूछा, "क्या नहीं समझूँगा ?"

"भूख तो तुम्हें कभी लगी होगी बहुत जोरों की ?"

"वह तो अभी भी लगी है।"

"इतने अधिक जोर की कि तुम्हें उसका नशा आने लगे और बड़बड़ाने को जी करे ?"

"मुझे तो इतने जोरों की भूख लगी है कि ताव में आकर मैं भूख ही को खाने लग जाता हूँ।"

मदन रुक गया। उसने फरीद को ताका। हँसकर उसके कन्धों को झकझोर

भी जानता था कि मदन की अपनी वात में कितना संकल्प-वल था। कोठीवाले विवेक की रिहाई के लिए तैयार नहीं होंगे और वह विवेक के विना वस्ती लौटने को तैयार नहीं होगा। इन दोनों वातों के वीच वहुत वड़ी वात वीत सकती थी। मदन को जंजीरों से जकड़ा जा सकता था। फरीद के भीतर अगर कोई भय था तो वह वस्ती की शक्ति के वांझ हो जाने का।

गोदाम से कोठी कुछ दूरी पर थी। तीन चक्करदार रास्तों के वाद ही वहाँ पहुँचा जा सकता था। अपने भीतर के तनाव को कुछ कम करने के लिए मदन मीरा के वारे में सोच उठा। मीरा को देखते रहने में उसे जो सुख मिलता था वह उसके जीवन के सभी दुखों को अपने में समेटकर उन्हें पिघला जाता। कभी-कभार वह इस स्थिति तक आ जाता था कि मीरा को वस देखते-निहारते रहने के अलावा जीवन उसके लिए कोई दूसरा अर्थ ही नहीं रखता। वह उसकी संवेदनाओं का क्षण होता था। उसकी भावुकता उस समय पराकाष्ठा पर होती और वह मीरा के साथ एक अलग ही संसार के सपने सँवारने लग जाता।···

"जानती हो मीरा, इस वस्ती से वहुत दूर जिस वस्ती में मेरे वाप ने अपने जीवन को जिया था, मैं उस वस्ती को देखना चाहता हूँ। वहीं जीना चाहता हूँ।"

"यहाँ के संघर्ष से भागना चाहते हो क्या ?"

"नहीं मीरा, तुम मेरी एक वात को नहीं समझ पा रही हो। तुम नहीं जानतीं कि जिस वस्ती में मेरे वाप ने अपने जीवन को जिया था वहाँ के संघर्ष इस वस्ती के संघर्ष से कहीं चार गुने अधिक थे। सुनता हूँ कि मिट्टी के उस टुकड़े पर इतने अधिक खून-पसीने वहे हैं कि उसका रंग हर जगह की मिट्टी के रंग से अलग हो गया है। मैं उस मिट्टी को देखना चाहता हूँ पर चाहूँगा कि तुम भी मेरे साथ रहो। हम दोनों एक साथ उस जगह को देखें। चलोगी मेरे साथ ?"

'कहो तो आज ही !"

"यहाँ की स्थिति थोड़ी सुधर जाये तो फिर चलेंगे···पर सचमुच चलोगी न ?"

"तुम अगर इरादा वदलकर अकेले जाने लगो तव भी मैं तुम्हारे पीछे-पीछे दौड़ी चली आऊँगी।"

"मीरा, तुमने कभी जानने की कोशिश की है कि कोई तुम्हें कहाँ तक प्यार कर सकता है ?"

"नहीं तो। क्यों तुम्हारे अलावा भी मुझे कोई वहुत अधिक चाहता है क्या ?"

"मैंने तो कभी सोचा ही नहीं था।"

"क्या ?"

"कि किसी लड़की के लिए किसी की अपनी सुध-वुध जाती रहे।"

"सुमिया भौजी की तरह तू भी झूठ वोलता है क्या ?"

"नहीं तो।"

"किसी लड़की के लिए सुध-वुध भूलनेवाला आदमी गलर का फूल क्यों

वेरहमी के साथ वरसती रह गयी थी। सौ तक गिनने के वाद बड़ा साहव चुप हो गया था, पर बौछार होती रह गयी थी। मदन अपनी जगह से एक कदम आगे बढ़ने की हिम्मत कर सका था—

"वस करो साहव !"

वड़े साहव ने रखवार के हाथ से चमड़े की पेटी ले ली थी। मदन का हाथ पकड़कर उसे इस तरह खींचा था कि वह पेट के वल जमीन पर जा गिरा था। पेटी के वार के साथ वड़ा साहव चिल्ला उठा था—"उसकी जगह तुम्हीं लो !"

तीन दिन वाद मदन अपनी चारपाई पर हिलडोल सका था। तीन दिन वाद मुनेस की मृत्यु हो गयी थी। उसका कसूर वस इतना था कि छोटे साहव की वेटी ने किसी सरदार के हाथ मुनेस के पास वगीचे के आम भिजवाये थे। वदले में मुनेस ने लालमुनिया की जोड़ी उसके पास भेजी थी। सरदार की मदद से दोनों वगीचे में मिले थे। दूसरे सरदार ने दोनों को देख लिया था। पहले सरदार ने अपनी देह वचाकर सारा दोप मुनेस पर थोप दिया था।

वाद में मदन ने सुना था कि छोटे साहव की उस लड़की ने जहर खाकर आत्महत्या कर ली थी। पता नहीं वह वात कहाँ तक सच थी ! लेकिन उसी के वाद मदन के भीतर की प्रतिशोध की भावना शिथिल पड़ गयी थी।

आज उस घर······उस पेड़······उस माहौल को देखकर मदन भीतर-ही-भीतर सिहर गया। सिपाही ने कड़ककर पूछा, "कोत जोत पे आले ?"

"साहव से मिलना है।"

"मिस्ये फ़िन आपेल जोत ?"

"नहीं, साहव ने नहीं बुलाया, हम खुद उनसे मिलना चाहते हैं।"

"नहीं मिल सकते—मिस्ये पे एना लेताँ।"

"हम अधिक समय नहीं लेंगे।"

"कहा न साहव के पास समय नहीं !"

दूसरा सिपाही सेंहुड़ की दीवार के वीच के छोटे-से दरवाजे से सामने आ गया। उसने भी पहले सिपाही के-से कड़कते स्वर में पूछा, "क्या काम है मालिक से ?"

"उन्हीं को वताना है।"

"नहीं मिल सकते।"

"सिर्फ दो वातें करनी हैं।"

"मों जीर वूरे दे पी इसी ला एँ।"

इतने में वड़े साहव को वायीं ओर के वड़े फाटक से आते हुए फरीद ने देख लिया। उसने मदन को अंगुली से छूकर उस ओर इशारा किया। दोनों एकसाथ झपट पड़े। उन पर नजर पड़ते ही वड़े साहव ने गरजकर पूछा, "कोमाँ वू जावे फेर पूर राँते इसी ?"

"साहव, हम पिछवाड़े से आये हैं।"

"काम माँगने आये हो ?
"नहीं साहब।"
"चावल ?"
"नहीं साहब।"
"अपने साथी को लेने आये हो ?" व्यंग्य-भरी मुस्कान के साथ वह बोला।
"हाँ साहब।"
"तुम्हें किसने कहा कि चोरों की जगह यहाँ होती है ?"
"वह आप ही की कैद में है।"
"तुम दोनों उसे छुड़ाने आये हो ? दो सौ रुपये चाहिए।"
"दो सौ रुपये ?"
"वरना कल तक पुलिस के हवाले कर दिया जायेगा। वह गोदाम से अनाज
की चोरी करते हुए पकड़ा गया है।"
"साहब, हमारे पास दो आने नहीं, दो सौ कहाँ से लायेंगे ?"
मदन को गौर से देखने के बाद बड़े साहब ने एक परिवर्तित स्वर में कहा,
"तुम्हीं हो वह आदमी !"
मदन और फरीद दोनों को बात समझते देर नहीं लगी।
"वीलें बातार ! तुम्हीं ने मजदूरों को भड़काया था। तुम्हारे ही कारण मेरी
पूरी फसल खेतों में सूख गयी थी।"
इशारे से उसने सामने के रखवार से कुछ कहा। एक ही साथ चार सिपाही
आये और इससे पहले कि मदन और फरीद को स्थिति समझ में आती, दोनों पर लात-
मुक्के बरसने लगे। दोनों हाथों के बीच चेहरों को छिपाये उन काले प्रहारों को रोकने
के सिवाय कोई दूसरा चारा नहीं था दोनों के पास। मोटे कठोर चमड़ों के जूते के वार
को अपने खाली पेट पर रोकते हुए मदन लोछिया गया। पेट पकड़कर दर्द को महसूसने
का मतलब था दूसरी लात को पँजरी पर पाना। इसके आगे के लिए मदन तैयार नहीं
था। मालगासी रखवार की वह दूसरी लात उसकी कमर तक पहुँचती कि इससे पहले
मदन ने उसकी लात को फुर्ती से पकड़कर पीछे को ढकेल दिया।
उस रखवार के गिरते ही दो दूसरे रखवार मदन पर टूट पड़े। फरीद ने
उसकी रक्षा के लिए आगे आना चाहा पर उससे जूझनेवाले मालगासी ने उसे पीछे
से जकड़ लिया। दोनों के वारों को रोकते हुए मदन पीछे को हटता गया। इतने में
नीचे गिरे हुए रखवार ने अपनी आँखें बाहर किये मदन को लात जमा ही दी। मदन
के सँभलते-सँभलते उसने उसे इस जोर का धक्का दिया कि वह पूरी रफ्तार के [illegible]
सँहुड़ की कँटीली दीवार से जा टकराया। एक चीख के साथ मदन के दोनों हाथ [illegible]
आँखों पर पहुँच गये। दूसरी चीख के साथ वह जमीन पर [illegible]
उसपर लातों की बौछार होती रही। उस समय तक नहीं [illegible]
आँखों में खून न झलक आये।

[illegible]

और, जब तक फरीद उसके पास पहुँचता, मदन के सामने का वह गहरा अँधेरा स्थायी बन चुका था।

बत्तीस

मदन को कन्धों के सहारे लिये फरीद किसी तरह बस्ती को पहुँच सका। सीता के घर के सामने पहुँचकर उसने आवाज़ दी। सीता बगल के रम्भा के घर से बाहर आयी। फरीद की उस आवाज से आशंकित सीता के साथ ही रम्भा भी घर से बाहर हुई। उसके पीछे उसकी माँ और उसका भाई भी सामने आकर स्तब्ध रह गये। सीता चिल्ला उठी :

"यह क्या हो गया फरीद ? मदन, तुम्हारी आँखें ?"

मदन की आँखों से अब भी खून बह रहा था। यह जानकर कि सीता सामने थी, मदन ने अपनी पीड़ा को नकारने का प्रयास किया। बिना किसी प्रतिक्रिया के वह खड़ा रहा। सीता से कहना चाहा कि विवेक को वह नहीं ला सका, पर कह नहीं सका। अपने सामने के गहन अँधेरे में वह एक-एक करके कई जानी-पहचानी आवाजों को सुनता रहा।

कैसे हुआ ? किसने तुम्हारी यह हालत की ? बिल्कुल नहीं दीख रहा तुम्हें क्या ?

उत्तर न उससे दिया गया न फरीद से।

और जब जीनत सामने आयी, फरीद उससे लिपटकर रो पड़ा।

"उन लोगों ने मदन की आँखें ले लीं माँ !"

जीनत ने पिछली रात जो सपना देखा था, वह सच होकर रहा। फरीद की चोट पर अधिक ध्यान न देकर वह मदन के करीब पहुँची।

"मदन !"

मदन के सामने के उस गहरे अँधेरे में भी जीनत की उस आवाज़ ने मदन के सामने जीनत की आँखों के आँसुओं को स्पष्ट कर दिया।

लोगों ने मदन को घेर लिया।

सीता के घर के सामने की भीड़ से अलग उधर मीरा अपने खेत में नयी हरियाली को झाँकते पाकर खुश थी। तीन दिन पहले की वह बरसात समूचे खेत में नये अंकुरों की कोमल हरियाली फैला चुकी थी। पूरे खेत में फैले इस नये रंग को मदन ने अभी नहीं देखा था और मीरा अधीर थी। वह अधीर थी कि मदन जल्द-से-जल्द खेतों तक पहुँचकर खुश हो उठे। हर दूसरे क्षण मीरा की पलकें बस्ती से आनेवाली पगडण्डी की ओर उठ जाती थीं।

घण्टा भी नहीं हुआ होगा कि मीरा के पास खड़ी जीनत खेत की नयी रौनक

को निहार रही थी। उसी समय उसने मीरा को अपना रात का सपना सुनाया था।

"रात मे मैंने अजीब सपना देखा है मीरा ! देखा कि तुम्हारे घर के सामने फूल खिले हुए हैं। मदन अपनी आँखों में पट्टी बाँधे तुम्हारे साथ आँखमिचौली खेल रहा है। तुम बहुत हँस रही थी। लोग कहते हैं कि हँसी-खुशी का सपना अच्छा नहीं हुआ करता। पता नहीं यह कैसा सपना था !"

मीरा हँसकर बोली थी, "तुम्हारा सपना सच हो गया खाला ! मैं हँस रही हूँ।"

उसकी इस बात को सुने बिना जीनत बोली थी, "मेरी आँख भी फड़क रही है......"

"सगुन अच्छा है खाला ! देखती नहीं खेतों को नया जीवन मिला है ? यह तो खुशी मनाने का अवसर है।"

"लोग यहाँ भूखों मर रहे हैं और तुम खुशी मनाने की बात करती हो ?"

"खाला, तुम्ही तो कहती हो कि दिन बराबर नहीं रहते ? अच्छे दिनों का आसार जब सामने दिखायी पड़ने लगे तो आदमी खुश क्यों न हो ?"

"अल्लाह करे तुम्हारे मुँह की बात सच हो जाये !"

जीनत के चले जाने के बाद मीरा आसपास के सभी खेतों को दौड़ गयी थी। बरसात का वह जादू हर जगह था। मृत खेतों में बरसात ने जान फूँक दी थी। स्पन्दन आ गया था उन खेतों में।

इधर के अपने दो-तीन दिनों से मन में उठनेवाले सारे ख्यालों को मीरा इस कदर दोहराती रह गयी थी कि उनमें एक शृंखला-सी आ गयी थी, और कड़ियों में जुड़ आये ख्यालों को वह मन-ही-मन गुनगुनाती रहती। इस समय भी खेतों में आ गये स्पन्दन के साथ स्वर मिलाकर वह गुनगुना उठी थी। वह जो गुनगुनाती वह गीत नहीं होता, जुड़े हुए शब्द होते। एक ही पंक्ति का राग कभी एक होता तो कभी दूसरा, पर उद्देश्य एक ही होता—आओ, इन खेतों में हम संग-संग घूम लें ···· यहाँ की अंकुरित और पनपती आशाओं में, आओ, हम भूल जायें भूख के दर्द को······अभाव को भूल जायें, पीड़ा को भूल जायें ·····आओ, सामने के पहाड़ की गोद तक चलकर आनेवाले दिनों की झलक देख लें····संग-संग रहकर हम एक-दूसरे की गिरवी पड़ी साँसों को गाँठों को खोल लें····· नागफनी पर चलकर चुभन न महसूसें·····आओ, हम दोनों एक होकर झेल लें जो भी झेलना हो।

गुनगुनाना बन्द करके मीरा बस्ती से आनेवाली पगडण्डी की ओर देखती और एक खेत से दूसरे खेत को बढ़ती गयी। वह रामसेवक के खेत से निकलकर हनीफ के खेत में आ गयी थी जब सपुरा दौड़ी हुई उसके पास पहुँची।

"मीरा, तुम यहाँ हो, वहाँ अनर्थ हो गया !"

"क्या हुआ ?"

"मदन····"

"क्या हुआ मदन को ?"

"उसकी आँखें चली गयीं।"

"क्या कह रही हो तुम ?"

"सेंहुड़ के कांटों से उसकी दोनों आँखें......"

"नहीं।"

अपनी ओढ़नी पीछे छोड़ वह बस्ती को दौड़ गयी। जहाँ पहुँचकर उसे रुकना था, वहाँ बस्ती के सभी लोग जमा हो गये थे। वह रुककर फिर आगे नहीं बढ़ सकी। भीड़ की मोटी दीवार के उस पार से जिस आवाज को उसने सुना वह एक आदमी की आवाज नहीं थी। कई आवाजों का मिला हुआ स्वर था वह—हाय का स्वर ! आह का स्वर !!

एक शून्य !

और वह उस शून्य में खड़ी रही। तिलमिलाकर फिर स्थिर हो गयी। वह भीतर से उबलनेवाली स्थिरता थी।

वह मदन को उस समय देख सकी जब वैद्य के लिए रास्ता बन पाया। आँखों के नीचे खून की जमी हुई परतें......और......मीरा ने उस अँधेरे को महसूसने की कोशिश की जो मदन की आँखों के सामने था। उसे अपने भीतर की उस प्रलयंकर चीख को भीतर-ही-भीतर रोककर उसी तरह स्थिर खड़े रहना पड़ा। उसकी वह स्थिरता भीतर-ही-भीतर खौलती रही।

वैद्य के सिर हिला चुकने के बाद मदन को जीनत के घर पहुँचाया गया। मीरा दौड़कर वैद्य की झोपड़ी में पहुँची।

"चाचा, थोड़ी-बहुत उम्मीद तो होगी ?"

वह चुप रहा। मीरा ने अपने प्रश्न को दोहराया।

"बोलो चाचा, थोड़ी-बहुत उम्मीद तो होगी ?"

वह चुप ही रहा। देखते-ही-देखते मीरा की आँखें डबडबायीं और छलक आयीं।

पुजारी ने मीरा की ओर देखा, फिर धीरे से बोला, "उन आँखों से काँटे तो निकाल सका, पर उन्हें रोशनी देना मेरे बस की बात नहीं। कुछ पत्तियों की पट्टी बाँध सकता हूँ ताकि दर्द कम हो सके और घाव भर आये। इससे आगे तो नहीं जा सकता।"

मीरा के बाकी आँसू आँखों ही में जम गये।

"कुछ तो किया जा सकता है चाचा ?"

"कुछ भी नहीं किया जा सकता।"

"किसी दूसरे वैद्य......"

"तुम्हें कैसे समझाऊँ मीरा !"

मीरा ने अपने को समझा लिया। कुछ घड़ी चुप खड़ी रहने के बाद वह जीनत

के घर की ओर चल पड़ी। उस घर के भीतर से उसकी मौसी का स्वर बोल उठा :

'मीर·····चांद देख के तू केकर मुँह देखले रहले बेटी ?·····कुत्ता मूत गइल तोर भाग में।"

मीरा का अपना स्वर इसके विपरीत रहा—बस्तीवालों ने सुबह-सुबह किसका मुँह देखा था ? क्या वह अन्धापन मदन के अपने-आपसे अधिक बस्ती का अन्धापन नहीं था ?

मीरा को सामने पाकर जीनत ने भी यही कहा, "अन्धी हो गयी यह बस्ती !"

इस बस्ती को जीनत ने कभी गूंगी बस्ती कहा था, कभी बहरी, कभी अपाहिज बस्ती। गूंगी उस समय कहा था जब सुखराम की पत्नी के बलात्कार के समय किसी ने भी मुँह नहीं खोला था।

उस वक्त बहरी कहा था जब किसनसिंह के लाख धिक्कारने पर भी कोई आदमी हड़ताल के लिए तैयार नहीं हुआ था, और अपाहिज तब कहा था जब बीच खेत में डेढ़ सौ मजदूरों के बीच सुरेखा की चोली फाड़ दी गयी थी।

आज तो उसके लिए पूरी बस्ती अन्धी थी।

दूसरे दिन मदन के बिना जाने पाँच आदमी पड़ोस के गाँव के थाने में पहुँचे। धनपतवा ने हाथ जोड़कर गिड़गिड़ाहट-भरे स्वर में अपनी फरियाद सामने रखी।

"थानेदार साहब, हमारा एक आदमी कई दिनों से गायब है। कल हमारे दो आदमियों को बेरहमी से पीटा गया है। उनमें से एक की आँखें फोड़ दी गयी हैं। अगर आप हमारी सहायता नहीं करेंगे तो यह जुल्म होता ही रहेगा।"

थानेदार ने धनपतवा को गौर से सुनने के बाद जोर से ठहाका लगाया।

"तुम जिस गायब आदमी की बात करते हो वह नदी में कहीं डूब मरा होगा। रही आँखें फूटने की बात सो वह तो एकदम साफ है।"

"आप ही तो कानून हैं माई-बाप·····अपराधियों को आप जरूर सजा दें ताकि आईन्दा ऐसा न हो।"

"कोई अपराधी हो तब तो !"

"दिन-दहाड़े आदमी को मार-पीटकर अन्धा कर देना क्या अपराध नहीं ?"

"किसी ने किसी को मार-पीटकर अन्धा नहीं किया।"

"हम झूठ नहीं बोल रहे साहब·····!"

"तुम झूठ बोल रहे हो। जिस समय यह घटना घटी थी तुम पांचों में से कोई वहाँ था ?"

"हम पाँचों में से तो कोई नहीं था, पर बस्ती का एक दूसरा आदमी तो साथ ही था।"

"जिस समय यह घटना घटी थी पुलिस का सिपाही वहाँ मौजूद था। उसने आँखोंदेखी बात हमें बतायी है।"

"नहीं साहब, वहाँ पुलिस का कोई भी आदमी नहीं था। कोठी का मालिक

और रखवार थे।"

"तुम भी वहाँ थे ?"

"नहीं।"

"तो फिर इतने विश्वास के साथ बातें मत करो।"

थानेदार की चीख से धनपतवा सहम गया। थानेदार ने अपने स्वर को नीचे लाते हुए कहा, "हमारे अपने आदमी का कहना है कि तुम्हारे दोनों आदमी मालिक से अनाज माँगने पहुँचे थे। मालिक के यह कहने पर कि अनाज नहीं है, दोनों में से एक आदमी साहब पर लपक पड़ा था। वह साहब की गरदन को दबोचे हुए था कि कोठी के दो कुत्ते उस पर कूद पड़े थे। कुत्तों से डरकर दोनों व्यक्ति पागलों की तरह वहाँ से भागे थे और उसी भागदौड़ में तुम्हारे दोनों आदमियों में से एक सेंहुड़ की दीवार पर जा गिरा था और उसकी आँखें सेंहुड़ के काँटों से घायल होकर जाती रहीं।"

"आँखें सेंहुड़ के काँटों से जख्मी हुई थीं यह सही है, पर वह अपने-आप उन काँटों पर जा गिरा था यह सही नहीं।"

"तुम्हारा मतलब है मैं झूठा हूँ ?"

"नहीं साहब।"

"तो फिर यहाँ से ओझल हो जाओ।"

पाँचों आदमी बस्ती को लौट आये।

तेंतीस

ठण्ड से काँपती सुबह।

सूरज की प्रथम किरणों के कोमल ताप में अपने को सेंकती हुई पेड़ों की परछाइयों से अलग धूप के बचे टुकड़ों में अपने भीगेपन को सुखाते हुए गौरैया और मैनाओं के झुण्ड। उनके डैनों की फड़फड़ाहट और फिर दूर तक फैली लम्बी खामोशी।

उसी विस्तृत खामोशी में डूबे हुए खेत। खेतों में तैरती हुई खामोशी की सक्रियता। सुबह के फैलते उजाले के बीच का अँधेरा गलियारा, जिसमें अँधेरे को टटोलते हुए मदन निराई में व्यस्त था। बैगन के पौधों और उग आयी जंगली घास के बीच के अन्तर को टटोलकर घासों को उखाड़ते हुए और एक ही साथ पौधों पर माटी चढ़ाते हुए मदन पौधों की दो कतारों के बीचोंबीच उकड़ूँ ही बैठे-बैठे आगे को बढ़ता रहा।

मुंडेर के उस पार से मीरा उस पर नजरें टिकाये रही। कतार समाप्त होने में अभी दस-बीस पौधे और थे। अपने सामने के काम को रोके हुए मीरा खड़ी उसे देखती रही। मदन को दूसरी कतार में पहुँचाकर ही वह अपने काम के साथ आगे बढ़ना चाहती थी।

बस्तीवालों ने जब मदन को खेत के काम से अलग रखने की कोशिश की थी

उस समय उसने मुस्कराकर कहा था, "अपनी मृत्यु का अहसास नहीं करना चाहता हूँ मैं। खेत ही तो वह स्थान है जहाँ मैं अपने अंधेरेपन को भूल सकता हूँ। नहीं तो अपने को जीवित मानना बड़ा कठिन हो जायेगा। और फिर जिस दिन मुझसे काम नहीं हो सकेगा उस दिन तो पूरी बस्ती लाख चाहकर भी मुझे काम में नहीं लगा सकेगी।"

अन्त में दाऊद मियाँ ने कहा था, "उसे छोड़ दिया जाये अपने खेत के साथ।"

इधर तीन दिनों की लगातार वर्षा के कारण मदन के बैंगन के पौधों में जो जान आयी थी उसे वह अंगुलियों से देखकर खुश था। उस खुशी में उसने मीरा से कहा था, "मैं जानता हूँ तुम्हें हमारी इस शादी की इतनी जल्दी क्यों है......लेकिन मीरा, तुम प्यार और दया इन दोनों को अपने अलग स्थान पर ही रहने दो। मैं तुमसे बस, थोड़ी-सी मुहलत माँगता हूँ। मैं इस अंधेरे जीवन का आदी हो जाऊँ फिर। मैं तो तुम्हें अपने सर्वस्व के रूप में पाना चाहता हूँ, मात्र लाठी के रूप में नहीं। बस, कुछ दिनों की बात समझो।"

जीनत ने मीरा को समझाया था, "शायद मदन का सोचना ही ठीक हो। तुम भी उसकी भावनाओं को समझती हो। अन्धेपन से वह मुक्त तो अब न हो सकेगा, लेकिन उस अन्धेपन को वह भूल तो सकता है। वह उसे नकारने के लिए तुमसे समय चाह रहा है। तुम्हें समय देना होगा।"

छलक आयी आँखों से मीरा ने स्वीकृति दी थी।

सूरज सिर के ऊपर पहुँचकर भी हवा की ठण्डक को एकदम से खत्म नहीं कर पाया था। माहौल में अब सिहरन थी इसलिए मदन और मीरा दोनों धूप ही में बैठ गये। मीरा ने पोटली खोलकर मान्योक की लीटी और चौलाई के साग को बाहर निकाला।

"आज क्या लायी हो मीर?"

"जो कल लायी थी।"

"कल तो चौलाई का साग बहुत ही अच्छा था।"

मीरा कुछ नहीं बोली। आज का साग बिना तेल का था।

"मैं पहले पानी पियूँगा।"

"तुम तो पहले ही पानी से पेट भर लेते हो।"

"पानी से पेट नहीं भरता मीरा! अगर ऐसा ही होता तो फिर आदमी को मुसीबत उठानी ही नहीं पड़ती।" कुछ रुककर वह आगे बोला, "पर कौन जाने पानी से अगर सचमुच ही पेट भरने लगता तो शायद पानी का भाव सोने से भी अधिक हो जाता!"

मीरा ने लीटी पर चौलाई का साग रखकर मदन के हाथों में दिया। लीटी को हाथों में थामे मदन अपने ख्यालों में डूबा ही रहा। उसने एक स्वप्निल स्वर में कहा, "मीर! सच पूछा जाये तो मैं अपनी इस स्थिति का आदी हो ही नहीं पा रहा हूँ। अब तो एक और प्रण मेरे भीतर विद्रोह करने लगा है। कब तक?"

दोनों चुपचाप अपने हाथों में खाना लिये बैठे रहे। मीरा चाह रही थी कि मदन पहले खाये, फिर वह शुरू करे पर मदन अपने ही में खोया रहा।

"शायद प्यार ही है मीरा, जिसमें स्थिति को सबसे अधिक सहना पड़ता है। एक बार पुष्पा चाची कह रही थी कि प्यार की सार्थकता इस बात में है कि स्थिति के साथ जूझकर दर्द को हद तक झेला जाये।"

"तुम्हारे साथ भाँवर काटे बिना भी तो मैं तुम्हारी उतनी ही हूँ जितनी सात फेरी लेने के बाद बनूँगी। हमारी शादी के लिए अगर तुम दुखी हो तो यह नादानी है मदन ! आखिर ब्याह होता क्या है ? हमारी इस आत्मीयता से भी वह बड़ी होगी क्या ? निभानेवाली चीज है......समय आया तो उसे भी निभा लेंगे।"

वह एक सरसराती हुई हवा थी जो मदन के कानों में किसनसिंह के स्वर को गुंजा गयी—जानते हो मदन, हमारे अपने लोग जब से इस देश में पहुँचे हैं उन्होंने कोई त्योहार, कोई उत्सव नहीं मनाया। तुम्हारी अपनी पीढ़ी तो गिरमिटिया नहीं। तुम किसी बन्धेज में नहीं, फिर भी न जाने कौन-सी दास मनोवृत्ति है जिसके तुम सब भी कैदी हो !

"क्या सोच रहे हो मदन ?"

"पुजारीजी बता रहे थे कि एक महीने बाद होली है मीरा !"

"वह तो हर बरस आती है चली जाती है, किसी को पता तक नहीं होता।"

"इस बार यों ही नहीं जायेगी मीर !"

मदन को समझने की कोशिश में मीरा चुप रही।

दूसरे दिन शाम को बैठका के आँगन में बस्ती के सभी लोगों का जुटाव हुआ। वहाँ भी मदन के कानों में अपने बाप का स्वर गूँजता रहा। उसी के बीच मदन ने कहा, "कहते हैं कि होली खुशी और समृद्धि का त्योहार है—विजय का त्योहार है। कुछ ही दिनों में यह त्योहार आ रहा है। बैठका के सदस्यों की ओर से यह तय हो चुका है कि हम इस बार इस त्योहार को मनाकर रहेंगे।"

भीड़ से आवाज आयी :

"यहाँ पेट भरने के लिए रोटी नहीं, गुलाल-अबीर कहाँ से आयेगा ?"

मदन ने अपने स्वर को अधिक ऊँचा करते हुए कहा, "अपने अभाव के बीच ही हम इसे मनायेंगे।"

कुछ दूरी पर आमड़ा के पेड़ के नीचे से मीरा मदन को सुनती रही—एक विश्वास के साथ। उसे सबसे अधिक विश्वास था अस्मिता की रक्षा की लड़ाई में। वह मदन के साथ थी। पूरी बस्ती साथ होगी......बस्ती ही नहीं पास-पड़ोस के दूसरे गाँव, दूसरी बस्तियोंवाले सभी साथ आ जायेंगे। अपनी पहचान के बाद ही अपने अधिकार की आवाज लगायी जा सकती है। उसे विश्वास था मदन की योजना पर......उसे विश्वास था उस योजना की सफलता पर।

जुटाव की समाप्ति पर मीरा ने मदन को फरीद से कहते सुना, "यार, कभी

दूर तक देखा पाने के लिए आँखों का गँवाना भी अर्थ रख जाता है।"

यह फिर से किशनसिंह की आवाज थी जो पूर्वी हवा के साथ आयी—हमारी सबसे बड़ी भूल······आज तक हम छोटे-छोटे मुद्दों पर लड़ते रहे। हमारा संघर्ष बस्ती या संघर्ष बनकर रह गया है। जब तक यह संघर्ष पूरे देश का संघर्ष नहीं होता तब तक पार पाना मुश्किल है। कई कोठियों में लोग आज भी बन्धक हैं। मेरा एक प्रयास असफल रहा है, इसका यह मतलब तो नहीं कि इस बढ़ते हुए अनर्थ को मिटाने का दूसरा प्रयास ही न हो!

मीरा से मिलने पर मदन बोला, "इस देश में अकाल नहीं, अभाव नहीं, फिर भी क्या कारण है कि इस तरह मुहताज और अभावग्रस्त रहें? यहाँ सरकार है, पुलिस है, फिर भी न्याय नहीं हो पाता। मुझे अपने बाप की एक बात याद आ रही है मीरा······ एक बार बैठका के आँगन में उसने सभी से कहा था—'हमारे अपने लोगों ने इस देश के जंगल को काटकर इसे हरे-भरे खेतों में परिवर्तित किया, लेकिन इसके बावजूद यह एक भयानक जंगल है। यहाँ आज भी जंगल का कानून है। दबोचकर चबा जाने का कानून। अगर ऐसा ही रहा तो इस देश में मेहनतकश मजदूरों के पंजर ही होंगे जो चलते-फिरते दिखायी पड़ेंगे।' "

कुछ देर चुप रहकर मदन ने मीरा के हाथों को अपने हाथों में लेकर कहा, "तुम साथ रहो मीरा, तो मैं अपने बाप की अधूरी लड़ाई को फिर से लड़ने की कोशिश करूँगा।"

"पर वह तो लड़ी जाती रही है मदन!"

"उस ढंग से नहीं जिस ढंग से उसे लड़ा जाना था। इसीलिए मैं तुमसे महीने-भर का समय चाहता हूँ।"

"महीने-भर का समय? किसलिए?"

"मैं इस देश के बैठका-बैठका में पहुँचकर होली का आयोजन करवाना चाहता हूँ। मैं चाहता हूँ कि होली हमारे लिए एक त्योहार के साथ-साथ संगठन का बहाना बने।"

"यह तो ठीक है लेकिन तुम······"

"मैं जानता हूँ तुम क्या कहोगी। तुम मेरे अन्धेपन को मेरी कमजोरी मत समझो और फिर मैं अकेले नहीं जा रहा। मेरे साथ फरीद और देवराज भी होंगे।"

मीरा चुप रही।

मीरा उस समय भी चुप रही—उस समय, जब मदन फरीद और देवराज के साथ एक बैठका से दूसरी बैठकाओं को निकल पड़े। भीड़ से अलग वह ऊँची चट्टान पर खड़ी तीनों को पगडण्डी से ओझल होते हुए देखती रही। वह जिस चट्टान पर खड़ी थी वहाँ से दूर तक फैले हुए ईख के खेतों की हरियाली विविधता लिये हुए थी। तूफान का मारा हुआ एक निपाती पेड़ अपनी सूखी डालियों के साथ अपनी पहचान खोये खड़ा था। दूर तक का वह अकेला पेड़ था जिसे पिछली बरसातें भी पत्तियाँ नहीं

दे सकी थीं।

मीरा की अपनी आँखों में आँसू नहीं थे। पिछली रात उसे इसी वात का डर था। वह डरती थी कि कहीं इस अवसर पर उसकी आँखों से आँसू न वह जाये। मदन के दूर होकर फिर ओझल हो जाने तक भी उसने अपने आँसुओं को बाँधे रखा। और अव जव उसने चाहा कि वे आँसू वह ही जायें ताकि वह अपनी पलकों को हल्का पा सके तो भी आँसू नहीं वहे। उस लम्वे संयम ने आँसुओं को जमा दिया था।

मदन को विदा करने से पहले मीरा ने उससे कहा था, "मुझे वस एक ही वात का दुख है मदन·····इस लम्वी यात्रा के लिए मैं तुम्हें अपने कन्धे का सहारा नहीं दे पा रही।"

मदन ने हँसकर उत्तर दिया था, "एक मर्द को मुसीवत में दो ही कन्धे काम आते हैं मीर···! तुम्हारा कन्धा तो जीवन-भर के लिए है। दूसरा कन्धा मित्र का होता है। याद है जव मैं विवेक के लिए दुखी हो रहा था उस वक्त तुमने कहा था कि फरीद जैसा दोस्त भी लोगों को कम मिलता है·····आज उसी फरीद के कन्धे के सहारे जा रहा हूँ। फरीद के कन्धे पर तो मेरा हाथ होगा·····जवकि वह मेरी हर याद होगी जो तुम्हारे कन्धे पर टिकी रहेगी। होली पर मिलेंगे।"

ठण्ड वढ़ती गयी।

एक के वाद एक सुवह सिहरन लिये होती और हर दूसरी शाम अधिक उदास होती।·····और इसी में अभावों के वीच वस्ती में होली की तैयारियाँ होती रहीं। सुगुन वारह नौजवानों के साथ रामलीला की तैयारी करने में लगा रहा।

वह होली जो वस्ती के लोगों के लिए देखते-ही-देखते आयी थी और सारी तैयारी अधूरी प्रतीत होने लगी थी, मीरा के लिए वड़ी देर से पहुँची थी।

वस्ती में झाल-ढोलक के साथ होली का खेल शुरू हो चुका था।

उसी चट्टान पर खड़ी मीरा सामने की पगडण्डी पर नजरें विछाये रही। सामने दूर तक फैले ईख के खेतों में जहाँ-तहाँ गन्ने के श्वेत-वैंगनी फूल झूमते दिखायी पड़ रहे थे। वगल का वह पतझड़ा पेड़ अव भी डालियों के पंजर लिये उसी तरह खड़ा था।

मीरा खड़ी एकटक पगडण्डी के उस छोर को देख रही थी जो दूर थी, जहाँ धुंधलका था, जहाँ गन्ने के खेत क्षितिज से मिले हुए लग रहे थे। वह खड़ी रही अपलक नजरों के साथ—तेज धड़कनों के साथ। वहुत देर वाद, वहुत दूरी पर पगडण्डी जहाँ मरती थी वहाँ, उस धुंधलके में उसे तीन अस्पष्ट और धुंधली आकृतियाँ दिखायी पड़ीं।

मीरा की धड़कनें और भी तीव्र हो गयीं।